'सुभाष चन्द्र बोस'' का आधुनिक भारतीय राजनीति में वैचारिक एवं रचनात्मक योगदान

- एक मूल्यांकन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की पी०एच०डी० (राजनीति विज्ञान) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2004

निर्देशिका:
डा. जयश्री पुरवार
विभागाध्यक्षा, राजनीति विज्ञान
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, उरई (जालौन) उ०प्र०

शोधकर्ता
नगमा खानम
एम.ए. राजनीति विज्ञान
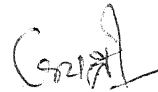
CERTIFICATE

It is certified that the thesis entitled **"PHILOSOPHICAL AND CONSTRUCTIVE CONTRIBUTION OF SUBHAS CHANDRA BOSE "TO THE MODERN INDIAN POLITICS" - AN APPRAISAL,"** is being submitted by Miss Nagma Khanam for the award of Ph.D. in political science of Bundel Khand University Jhansi (U.P.). This is a record of candidates work carried under my supervision and guidance. She has worked under me for the period, required under Ordinance, (more than 200 days).

It is also to certify that this is her original work and has never been submitted for the award of any degree in any University.

Date- 20.12.2004

Dr. Jayshree Purwar
Head of the Department of Political Science
D.V. Post Graduate College
ORAI (Jalaun) U.P.

घोषणा -पत्र

मैं नगमा खानम यह घोषित करती हूं कि पी.एच.डी. (राजनीतिविज्ञान) उपाधि हेतु बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी के विचारार्थ प्रस्तुत ''सुभाष चन्द्र बोस का आधुनिक भारतीय राजनीति में वैचारिक एवं रचनात्मक योगदान - एक मूल्यांकन'' शीषर्क पर यह शोध प्रबन्ध मेरी मौलिक कृति है शोध प्रबन्ध में दिये गये तथ्य एवं तत्सम्बन्धी सामग्री मेरा अपना स्वयं का मौलिक कार्य है। कृति में उपलब्ध मार्गदर्शन एवं तत्सम्बन्धी सुझावों का उपयोग किया गया है, जिसका यथास्थान उल्लेख किया गया है मैं यह भी घोषणा करती हूं कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अन्य व्यक्तियों द्वारा इस विश्वविद्यालय या अन्य विश्वविद्यालय में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अंश नहीं है।

Nagma Khanam

(कु0 नगमा खानम)

आभार प्रदर्शन

शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की पी0एच0डी0 (राजनीति विज्ञान) उपाधि हेतु प्रस्तुत है। इस शोध प्रबन्ध में मुझे जिनसे सहायता मिली है मैं उनके प्रति आभार प्रदर्शित करती हूं।

मैं परमश्रद्धेय डा0 जयश्री पुरवार अध्यक्षा राजनीति विज्ञान विभाग दयानन्द वैदिक विश्वविद्यालय उरई की हृदय से आभारी हूं जिनके निर्देशन में मैने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की रचना होस की। शोध प्रबन्ध के निर्माण में उनके मूल्यवान निर्देश, उपयोगी सुझाव, तार्किक पद्धति एवं प्ररेणादायी प्रोत्साहन के कारण अभियोजित अध्ययन पूर्ण हो सका है।

मैं डॉ0 राजेन्द्र पुरवार जो कि स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं से ही मेरे लिए असीम प्रेरणा स्रोत रहे हैं, का सहृदय आभार व्यक्त करती हूं जिन्होने इस शोध प्रबन्ध ा के सम्पादन में अपना महत्वपूर्ण समय निकालकर मेरा मार्गदर्शन किया है। साथ ही मैं डा0 आदित्य कुमार सक्सेना एवं डा0 रिपुसूदन सिंह का हृदय से आभार प्रकट करती हूं जिनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से इस अध्ययन को पूर्ण करने का प्रयास कर सकी हूं। मैं श्रीमती शुभ्र ज्योत्सना त्रिपाठी (अध्यक्ष विधान सभा लाइब्रेरी) लखनऊ की विशेष आभारी हूं जिनके रचनात्मक सुझावों, सहयोग एवं मार्गदर्शन से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध से महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त हुई।

मैं अपनी पूज्यनीय माता जी एवं पिताजी की कोटि–कोटि वन्दना करती हूं जिनके स्नहे, आर्शीवाद एवं सतत् प्ररेणा से यह प्रयास पूर्ण हो सका है। मैं अपने आदरणीय नानाजी एवं मामा जी की विशेष आभारी हूं जिन्होने मुझे प्रोत्साहन एवं सहयोग प्रदान किया।

मैं अपनी छोटी बहन नौशीन एवं भाई नुअमान खान सहित पूरे पारिवारिक सदस्यों की ऋणी हूं जिनके सक्रिय सहयोग एवं प्रोत्साहन के अभाव में प्रस्तुत अध्ययन भी सफल परिणति मेरे लिए असम्भव थी।

अनुक्रमाणिका

प्रस्तावना

PREAMBLE

"भले ही कोई कोई तात्कालिक और मूर्त लाभ न हो, तथापि कोई भी वेदना और बलिदान कभी निस्सार नहीं जाता। बलिदान और कष्टों के द्वारा ही कोई उद्देश्य सफल और प्रतिफलित हो सकता है"

सुभाष चन्द्र बोस

प्रस्तावना

भारतीय स्वतत्रंता संग्राम के महानायक सुभाष चन्द्र बोस भारतीय जनता के उन नेतोओं में से एक है, जिन्होंने प्रगतिशील एवं क्रन्तिकारी राष्ट्रवादी विचारधारा द्वारा राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन को एक नयी दिशा दी। अपने कुशल नेतृत्व गुण के कारण नेताजी के रूप में प्रसिद्धि पायी।

वाल्यावस्था से ही बोस ने भौतिक सुखो को वास्तविक सुख नही माना। इसलिए कलकत्ता का विलासितापूर्ण जीवन उन्हे गरीब देश पर एक बोझ अनुभव होने लगा था। कॉलिज जीवन के इन प्रारम्भिक दिनों में उनकी रूचि अध्ययन से हटकर आध्यात्मिक विषयों पर केन्द्रित हो गयी थी।

जनवरी 1916 में ओटेन काण्ड घटित हो गया जिसने किशोर सुभाष बोस के जीवन में एक नया मोड़ दिया। ओटेन घटना से सुभाष बोस में आत्म- विश्वास की जड़े और ही गहरी जम गयी। उनके मस्तिष्क में अंग्रेजों के प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी। इग्लैण्ड में जब अंग्रेज उनके जूते साफ करते तब उनको सन्तोष होता। यह सन्तोष अंग्रेज जाती द्वारा किये गये भारतीय जनता के अपमान की प्रतिक्रिया मात्र था।

सुभाष चन्द्र बोस एक महान राजनीतिक नेता थे। गम्भीर तथा उग्र देशभक्ति और भारत मे व्रिटिश शासन के प्रति तीक्ष्ण शत्रुता उनके व्यक्तित्व का सार थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय में विद्यार्थी के रूप में उन्होंने भारतीय असैनिक सेवा (इण्डियन सिविल सर्विस, आई0 सी0 एस0) की परीक्षा में सफलता प्राप्त की। मई 1921 में चौबीस वर्ष की आयु में उन्होंने इण्डियन सिविल सर्विस से त्याग पत्र दे दिया और सक्रिय राजनीति में उतर पड़े। उनमें कष्ट सहन करने की अपरिमित क्षमता थी। भारतीय स्वतंत्रता के आदर्श में उनकी गम्भीर निष्ठा थी। उसको साक्षात्कृत करने के लिए उन्होंने अथक प्रयत्न किया।

सुभाष राजनैतिक दृष्टि से यथार्थवादी थे। उनका सम्पूर्ण राजनैतिक चिन्तन वास्तविक मान्यताओं और व्यवहारिक उपलब्धियों से अनुप्रेरित था। वह राष्ट्र को व्रिटिश सम्राज्य से मुक्त देखना चाहते थे। यद्यपि 1930-38 तक उन्होंने गांधी जी के अंहिसात्मक आन्दोलन को अपनी पूरी शक्ति के साथ समर्थन दिया। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध काल में जब उन्हें

नजरबन्दी से भागना पड़ा, तब उन्होंने शक्ति के आधार पर अंग्रेजी साम्राज्य को मिटाने के कठिन काम को मूर्त रूप देने का प्रयास किया।

सुभाष बोस ने आंग्रेजो के खिलाफ जर्मनी से सहायता प्राप्त करने के लिए हिटलर से भेट की थी। हिटलर ने उन्हें एक हवाई जहाज और ट्रांसमीटर भेट किया था। बोस कई बार इटली भी गये थे। बोस यूरोप से निकल कर पूर्वी एशिया में गये थे, जहॉ उनकी भेट क्रान्तिकारी रास बिहारी बोस से हुई और आजाद हिन्द संघ का निर्माण हो गया उन्होंने 5 जुलाई 1943 को 'आजाद हिन्द फौज' की स्थापना की जिसे जर्मनी, स्वतंत्रता वर्मा, फिलिपाइन, चीन, इटली, मंचूरिया और जापान आदि देशों ने मान्यता दे दी थी।

स्वतंत्रता प्रेमी नेताजी के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप जापान ने आण्डमान एवं निकोबार द्वीप नेताजी की इस अस्थायी सरकार को दे दिये थे। देशभक्त नेताजी ने इन द्वीपों का नाम 'शहीद द्वीप' और 'स्वराज्य द्वीप' रखा। सुभाष बोस ने स्वयं इन द्वीपो पर स्वतंत्र भारत का झण्डा फहराया था।

बोस फासिस्टवादी नहीं थे-

इस काल में उनका सम्बंध फासिस्टवादी और नाजीवादी शक्तियों से बना रहा जिससे देश में उन पर गांधी समर्थक लोगों द्वारा वामपंथी और फासिस्टवादी होने का आरोप लगाया गया। जवाहर लाल जैसे समर्थ राजनीतिज्ञ की दृष्टि भी इस संदेह से मुक्त नहीं रह सकी। सुभाष बोस के विचारों को प्रजातंत्र विरोधी और स्वतंत्रता विरोधी अनुभव किया जाने लगा था।

यह सही माना जा सकता है कि उन्होने 'भारत के लिए, ब्रिटिश साम्राज्यवाद की समाप्ति के बाद एक तानाशाही व्यवस्था की मांग की थी, एक कमाल पाशा की मांग की थी। भारत के भविष्य के लिए बोस ने अच्छी व्यवस्था देने की जो कामना की थी, आज की परिस्थिति को देखते हुए वह सही है। लेकिन इस बात से उन्हे फासिस्टवादी कहना उपयुक्त नहीं है।

सुभाष बोस में राष्ट्रवाद था, जो कठोर साधना और अनुशासन की भावना को समर्पित था। वह भारत को एक मुक्त देश देखना चाहते थे। प्रत्येक व्यक्ति को उसके मौलिक अधि ाकार दिये जाने का समर्थन करते थे। बोस वास्तविक अर्थो में, सामाजिक और राजनैतिक

प्रजातन्त्र के समर्थक थे। उन्होने भारत में रहते हुए सदैव दलितों की सेवा का आदर्श व्यवहार में प्रस्तुत किया। वह अंग्रेजों की धोखा देने वाली नीति के आलोचक थे। इस प्रकार से सुभाष अंग्रेजों की कुटिल नीतियों के विरोध में खड़े एक पूर्णरूपेण राष्ट्रवादी व्यक्तित्व थे जिनमें न विरोधभास है न छलदद्य।

राष्ट्रवाद के प्रणेता–

सुभाष का राष्ट्रवाद उनकी स्वतंत्रता की आंकाक्षा का प्रतिफल है। बोस का राष्ट्रवाद उन्हें बलिदान और संघर्ष की प्रेरणा देता था। वह ऐसे किसी विचार के समर्थक नहीं थे जो उन्हें, संघर्ष से समझौते की राजनीति का रास्ता दिखाये।

सुभाष बोस के लिए परतन्त्रता एक महानतम अभिशाप थी। वह अन्याय और अनैतिकता से समझौता करना पाप मानते थे। इसलिए वह कहते थे कि असमानता को मिटाने के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहो। भले ही उसकी कितनी भी महान कीमत देनी पड़े।

सुभाष बोस के पास संघर्ष करने की भावना और साहस था, लेकिन हथियारों के रूप में भौतिक शक्ति और साधनों का अभाव था। इसलिए वह अपने लक्ष्य को पूर्णरूप नहीं दे सके। बोस आर्थिक स्वतंत्रता से पहले स्वाधीनता को आवश्यक मानते थे। यही कारण है कि उन्होने विचार के रूप में एक आन्दोलन दिया जो राष्ट्र की मुक्ति और स्वतंत्रता की भावना से सम्बद्ध रहा।

सुभाष चन्द्र बोस ने काफी सोच–विचारकर यह फैसला किया कि केवल खोखली राजनीति के सहारे ही देश को स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। "तुम मुझे खून दो मैं तुम्हे आजादी दूंगा" जैसे ओजस्वी नारे द्वारा स्वतंत्रता की चाहत का रंग प्रत्येक भारतीय की नस–नस में भर देने वाले इस महान व्यक्तित्व की सबसे बड़ी अभिलाषा देश की गुलामी की जंजीरों को तोड़कर एक ऐसे राष्ट्र की स्थापना की थी, जिसमें शान्ति, सहयोग, एकता व समृद्धि का वातावरण हो और जो साम्राज्यवादी देशों की नीतियों का विरोध करने का साहस कर सके।

चूकि बोस को समझौतावादी रवैया पसन्द नहीं था, और प्रवृत्ति से वे विद्रोही थे। यही कारण था कि उन्होने कांग्रेस में गांधीवादी दक्षिणपंथी वर्ग के विरुद्ध सदैव वामपंथी विरोधी पक्ष का साथ दिया। उन्होने अपने मौलिक, दूरदर्शी तथा यथार्थवाद चिन्तन के द्वारा

स्वतंत्र भारत के लिए एक सुदृढ़ अनुशासनबद्ध प्रजातंत्रीय पद्धति की अनुशंसा की एवं सशक्त अर्थव्यवस्था के लिए समाजवाद को ही मात्र आधार माना।

भारत की तत्कालीन समस्याओं के समाधान के लिए स्पष्ट एवं व्यवहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। ऐसे ने स्वतंत्रता संग्राम में बोस की भूमिका एवं स्वतंत्र भारत के पुर्ननिर्माण में उनके वैचारिक एवं रचनात्मक योगदान का महत्व एवं प्रासंगिकता का विश्लेषण करना सम-सामयिक है।

प्रस्तावित शोध का उद्देश्य-

प्रस्तावित शोध का उद्देश्य राष्ट्रवाद के इस प्रणेता का आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचारों में योगदान का एक पूर्वाग्रह रहित मूल्यांकन प्रस्तुत करना है। साथ ही स्वतंत्रता संग्राम में सुभाष चन्द्र बोस की ऐतिहासिक भूमिका को उचित स्थान देना एवं उनके रचनात्मक योगदान की सार्थकता का शोधपरक एवं निस्पृट विश्लेषण प्रस्तुत करना भी प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का लक्ष्य है।

उपकरण

प्रस्तावित शोध के उपकरण है-सुभाष चन्द्र बोस के जीवन दर्शन एवं आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन पर प्रकाशित लेख व पुस्तकें। तत्कालीन राजनेताओं व वर्तमान राजनीतिशास्त्रियों के विचार एवं उनके द्वारा लिखित सामर्ग्रियों से भी सहायता ली गयी है। समसामयिक सन्दर्भ में उनके विचारों का अध्ययन तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के विषय से सम्बन्धित प्राप्त सामग्री का उपकरण के रूप में प्रयोग किया गया है।

पद्वति-

प्रस्तावित शोध प्रबन्ध में विचारात्मक, तुलानात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति के द्वारा सुभाष चन्द्र बोस के चिन्तन का सामयिक सन्दर्भ में अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। एक राष्ट्रवादी व्यक्तित्व एवं साहसी सेनानायक के रूप में उनके चिन्तन के व्यापक राजनीतिक प्रभाव का सम्यक शोधपरक एवं वैज्ञानिक अध्ययन करने का भी प्रयत्न किया गया है।

परिकल्पना-

सुभाष बोस ने अपने विचारों के माध्यम से एक नवीन मौलिक सामाजिक एवं

राजनीतिक दर्शन प्रस्तुत किया। बोस ने राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ ही सामाजिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता का भी समर्थन किया। आधुनिक भारतीय राजनीति के बदलते स्वरूप के सन्दर्भ में उनके वैचारिक एवं रचनात्मक योगदान का विशिष्ट स्थान है। भारतीय प्रजातन्त्र में उभरते हुए दोषों के निराकरण में आज भी उनके मौलिक चिन्तन की विशेष प्रासंगिकता है।

निष्कर्ष–

स्वतंत्रता संग्राम के अप्रतिम नायक बोस को उनकी तीव्र राष्ट्रीयता तथा देश को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बन्धनों से मुक्त कराने के आदर्श के प्रति उनकी त्यागपूर्ण निष्ठा के लिए सदैव स्मरण किया जाएगा। राष्ट्र के लिए उन्होने जो कठोर कष्ट सहे उनके कारण वह सदैव प्रथम श्रेणी के देशभक्त के रूप में अभिनन्दनीय बने रहेगे। गांधीजी के बाद भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का सबसे महान व्यक्ति निःसन्देह बोस ही थे।

–आर0सी0मजूमदार

भारतीय स्वतंत्रता के अग्रदूत नेताजी सुभाष चन्द्र बोस राष्ट्रीय क्रान्ति को योजनाबद्ध तरीके से सशस्त्र क्रान्ति के रूप में ढालने वाले अदम्य साहसी और अद्वितीय वीर योद्धा थे। बोस ने एकाकी लोमहर्षक एवं संघर्षपूर्ण मार्ग अवलम्बन किया तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सामने निर्भीकता पूर्वक एक विशिष्ट चुनौती प्रस्तुत की।

उनमें राष्ट्रवाद था जो कठोर साधना और अनुशासन की भावना को समर्पित था। सुभाष बोस ने अपने मौलिक, दूरदर्शी तथा यथार्थवाद चिन्तन के द्वारा स्वतन्त्र भारत के लिए एक सुदृढ़ अनुाशासनबद्ध प्रजातंत्रीय पद्धति की अनुशंसा की एवं सशक्त अर्थव्यवस्था के लिए समाजवाद को ही मात्र आधार माना। भारत की तत्कालीन समस्याओं के समाधान के लिए स्पष्ट एवं व्यवहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

एक अद्वितीय योद्धा के रूप में स्वतंत्रता संग्राम में उनकी भूमिका एवं एक प्रखर विचारक के रूप में स्वतन्त्र भारत के पुर्ननिर्माण में उनके वैचारिक योगदान का महत्व सदैव बना रहेगा।
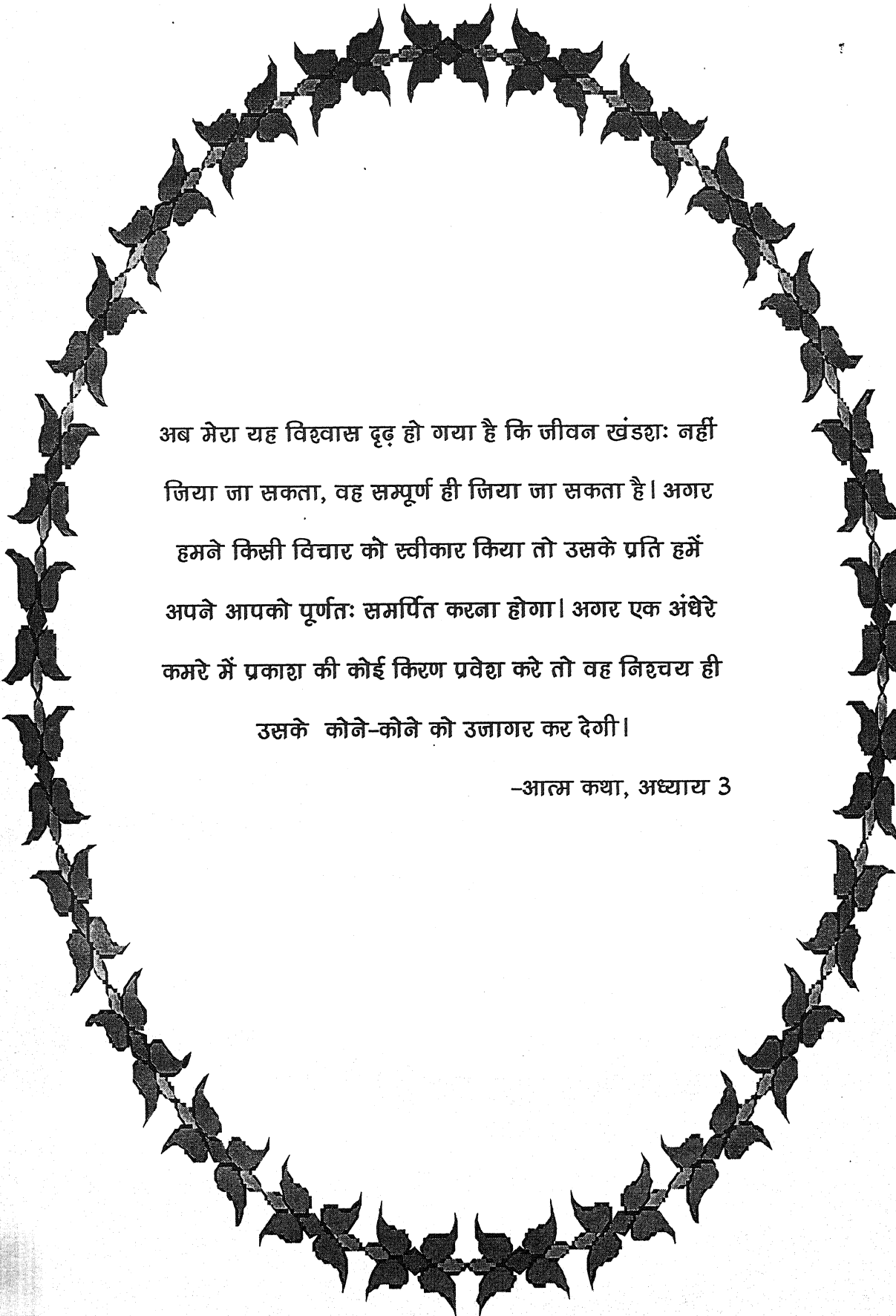
प्रथम अध्याय

जीवन एवं व्यक्तित्व

LIFE AND PERSONALITY

1- बाल्य जीवन एवं प्रारम्भिक शिक्षा।

2- उच्च शिक्षा

3- सामाजिक पृष्ठभूमि एवं बोस पर प्रभाव

- रामकृष्ण परमहंस
- स्वामी विवेकानन्द
- अरविन्द घोष

अब मेरा यह विश्वास दृढ़ हो गया है कि जीवन खंडशः नहीं जिया जा सकता, वह सम्पूर्ण ही जिया जा सकता है। अगर हमने किसी विचार को स्वीकार किया तो उसके प्रति हमें अपने आपको पूर्णतः समर्पित करना होगा। अगर एक अंधेरे कमरे में प्रकाश की कोई किरण प्रवेश करे तो वह निश्चय ही उसके कोने-कोने को उजागर कर देगी।

–आत्म कथा, अध्याय 3

जीवन एवं व्यक्तित्व

मानव जीवन प्रथमतः और अन्ततः एक यात्रा है और यह एक ऐसी यात्रा है जो असमाप्त है। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त यात्रा करता है। आर्चाय बिनोवा भावे ने अपने एक प्रवचन के अवसर पर कहा था-'इस जन्म का जो अन्त है, वही अगले जन्म का आरम्भ है।''[1] वस्तुतः यात्रा ही वह तत्व है जिसमें मनुष्य जीवन जीवंत बनता है और दीर्घकाल तक मानव समाज में जीवित रहता है। इस चिन्तन के अनुरूप नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की जीवन यात्रा केवल देश ही वरन सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रेरणा देने वाली है।

सुभाष चन्द्र बोस उन भारतीय नेताओं तथा वीरो में से एक है जिन्होने नेता नाम को सार्थक किया। 'आपके नाम के साथ नेताजी शब्द रूढ़ी हो गया।''[2] सुभाष चन्द्र बोस ने अपने वैचारिक एवं कार्मिक जीवन की गतिविधियों द्वारा नेताजी शब्द को सच्चे अर्थ में सार्थक बनाया।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद के प्रेणता सुभाष चन्द्र का जन्म कोदाजिया के जानकी नाथ बसु तथा प्रभावती के घर पर उड़ीसा राज्य के कटक जिले में 23 जनवरी सन् 1897 को शनिवार के दिन हुआ था।[3] इनके पिता श्री जानकी नाथ महिनगर के बोस परिवार तथा माता दत्त परिवार की कन्या थी। सुभाष चन्द्र बोस माता-पिता की संतन्ति में नवें और पुत्रो में छठे थे।

जिन दिनों जानकी नाथ बसु कटक में आकर बसे थे शहर विशेष बड़ा न था। किन्तु अपनी अनेक विशेषताओं के कारण कटक देश के प्रमुख शहरो में गिना जाने लगा था। कटक उड़ीसा राज्य की राजधानी थी। इस राज्य में हिन्दुओं के चार तीर्थ स्थानों में से एक जगन्नाथ पुरी भी स्थित है।[4] इसके अतिरिक्त कोणार्क, भुवनेश्वर, उदयगिरी जैसे मन्दिरों का विश्व प्रसिद्ध शिल्प निदर्शन कटक की देन है। कटक उड़ीसा के ब्रिटिश प्रशासक का ही नहीं अपितु अनेक देशी राजाओं का भी मुख्यालय था।

सुभाष बोस के पिता श्री जानकी नाथ कटक के बहुत बड़े वकील थे। उन्हें उड़ीसा

---

1. त्रिपाठी वी.आर. – भारत के दुर्धर्व कान्तकारी पृष्ठ 49
2. शर्मा, सुधीर – भारत के कर्णधार : पृष्ठ 49
3. प्रयाग नारायण त्रिपाठी – नेता जी सम्पूर्ण वाड्मय भाग –1 पृष्ठ 31
4. शर्मा, सुधीर – भारत के कर्णधार : पृष्ठ 49

की अदालत में शीर्ष स्थान प्राप्त हो चुका था। वे 1909 में कटक म्यूनिसिपैलिटी के प्रथम असरकारी सभापति चुने गये। 1912 में वे बंगाल व्यवस्थापक सभा के सदस्य बने और 'रायबहादुर' की उपाधि पायी।[1]

1917 में जिला मजिस्ट्रेड के साथ मत वैषम्य होने पर जानकी नाथ ने सरकारी वकील और पब्लिक प्रासिक्यूटर के पद से इस्तीफा दे दिया तथा तेरह वर्ष वाद 1930 में सरकार की दमन नीति के विरोध में 'रॉयबहादुर' की उपाधि भी लौटा दी। जानकीनाथ जी ने पिता के नाम से खैराती अस्पताल तथा एक पुस्तकालय भी स्थापित किया था।

सुभाष बोस की मां श्रीमती प्रभावती सहृदय तथा गृहस्वामिनी थीं। वह अत्यन्त बुद्धिमती एवं गुणवती थीं। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को सुयोग्य बनाने में इन्होने विशेष योगदान दिया। जानकी नाथ अपने काम धंधे तथा सार्वजनिक कार्यो में इतने व्यस्त रहते थे कि वह परिवार के लिए अधिक समय नहीं दे पाते थे। पारिवारिक मामलों में उनका निर्णय अन्तिम होता था। सुभाष बोस अपने माता-पिता के निकट सम्पर्क के लिए लालायित रहते थे। उनके लालायित रहने का कारण पिता की अति व्यस्तता तथा परिवार में अधिक संख्या थी। माता-पिता के सामीत्य-सानिध्य अभाव की पूर्ति किसी हद तक उनकी दाई शारदा ने की थी।

घर के वातावरण ने सुभाषचन्द्र बोस को अर्न्तमुखी बना दिया था। वे निरन्तर हीन भावना से ग्रसित रहते थे। भीरू स्वभाव ही कहा जायेगा कि माता से कटक यात्रा के यातायात के किस्से सुनने के बाद सुभाष चन्द्र बोस ने कभी समुद्र यात्रा की इच्छा तक प्रकट नहीं की।

पारिवारिक परिवेश ने यद्यपि सुभाष बोस के मन को सहज रूप से व्यापकता दी तथापि बोस को उस संकोच और अलगाव की भावना से मुक्ति नहीं दे सका जो वर्षो तक उनके मन में हावी रही। यही कारण था कि सुभाष चन्द्र बोस पहले भी अर्न्तमुखी थे और अन्तिम समय तक अर्न्तमुखी बने रहे।[2]

बोस परिवार का ज्ञात इतिहास लगभग 27 पीढ़ी पहले तक जाता है। बोस जाति के कायस्थ थे। बोस या बसु परिवार की शाखा दस पीढ़ियों से कोदालिया में रहती आ

1. आश गुप्त – सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रान्तिकारी – पथिक पृष्ठ 2
2. प्रयाग नारायण त्रिपाठी – नेता जी सम्पूर्ण वाड्मय भाग –1 पृष्ठ 31

रही थी। जानकी नाथ बसु गोपनीय 'पुरन्दर खां, की तेहरवी पीढ़ी के सन्तति थे। दशरथ बसु के प्रपौत्र मुक्तिबोस कलकत्ता से चौदह मील दूर महिनगर में रहते थे। महिनगर दक्षिण में स्थित है और इसी नाम पर महिनगर के बोस प्रसिद्ध है। दशरथ बसु की दसवीं पीढ़ी के महिपति असाधारण ज्ञानी और गुणी हुए। बंगाल के तत्कालीन राजा ने उन्हे 'अर्थ' और 'युद्ध मंत्री' नियुक्त किया और काम से सन्तुष्ट हो 'सुबुद्धि खां' की उपाधि प्रदान की। तत्कालीन प्रथा के अनुसार महिपति 'सुबुद्धि खां' को राजा से जागीर भी मिली थी। महिपति के दस पुत्रों में से 'ईसान खां' विख्यात हुए और पिता के बाद राजदरबार में महत्वपूर्ण पद प्राप्त किया। इनके तीनों पुत्रों ने राजा से उपाधियां पायीं। किन्तु मझला पुत्र गोपीनाथ असाधारण बुद्धि सम्पन्न, वीर एवं क्षमताशाली निकला। तत्कालीन सुल्तान हुसैन शाह (1439-1579) ने उसे अर्थमंत्री तथा नौसेना अध्यक्ष नियुक्त किया और पुरन्दर खां की उपाधि प्रदान की। महिनगर के पास की जागीरं आज भी 'पुरन्दर पुरम' नाम से विख्यात है। इन्हीं पुरन्दर खां की बारहवीं पीढ़ी में हरनाथ बसु के चार पुत्रों में से जानकीनाथ थें। हरनाथ बसु से पूर्व उनका परिवार शाक्त धर्मालम्बी था।[1] अतः परिवार में दुर्गा पूजा के अवसर पर छाग-बलि बन्द हो गयी।

सुभाष बोस के पिता श्री जानकीनाथ का जन्म् 28 मई 1860 को तथा मृत्यु 1934 में हुयी थी। सुभाष की माता का जन्म् 1869 में हुआ था। जानकीनाथ बसु ने कलकत्ता के एलबर्ट स्कूल से दसवीं कक्षा उत्तीर्ण करके सैंट जेवियर कॉलेज एवं एकटिश चर्च कॉलेज से शिक्षा प्राप्त की उसके बाद कटक के रॉवेन्शा कॉलेज से बी0ए0 पास किया। वकालत पढ़ने के लिए वे कलकत्ता लौट आये। यहां ब्रह्मानन्द, केशव चन्द्र सेन, उनके भाई कृष्णबिहारी सेन तथा सिटी कॉलेज के अध्यक्ष उमेश चन्द्र दत्त आदि ब्रह्म समाजियो के निकट सम्पर्क में आये। जानकी नाथ बसु ने कुछ समय तक एलबर्ट कॉलेज में अध्यापन भी किया था। वे 1815 में कटक जाकर स्थायी रूप से बस गये।

1. आश गुप्त – सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रांन्तिकारी – पथिक पृष्ठ 1

१. बाल्य जीवन एवं प्रारम्भिक शिक्षा

सुभाष ने बाल्यावस्था से ही अपने भीतर दो भिन्न आकर्षण अनुभव किये-एक भारतीय और दूसरा पश्चिमी। एक के मूल में उनके पिता की विचारधारा है और दूसरे का उद्‌गम-स्थल उनकी मां और उनके शिक्षक थे।

पांच वर्ष की आयु में (1902) सुभाषचन्द्र भी अपने भाई बन्धुओं की तरह बैप्टिस्ट स्कूल में दाखिल करवा दिये गये। इस स्कूल में एंग्लों-इण्डियन छात्रों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक थी। देशी छात्रों के लिए कुल पन्द्रह सीटें रहती। चूंकि उन दिनो अंग्रेजी भाषा का ज्ञान रखना बड़ी विशेष बात समझी जाती थी। इसीलिए सुभाष का दाखिला मिशनरी स्कूल में कराय गया था।[1] स्कूल के शिक्षक वर्ग में भी महिलाओं की संख्या अधिक थी। प्रध ाान शिक्षक और शिक्षिका मिस्टर-मिसेज यंग इग्लैण्ड से आये थे। आचरण और व्यवहार की दृष्टि मिस्टर यंग को भद्र कहा जा सकता था, परन्तु वेंत का अधिक व्यवहार करते थे। इसी कारण अधिकांश अध्यापक सुभाष बोस को पसन्द नहीं थे।

मिस सारा लॉरेन्स सुभाष चन्द्र बोस की सबसे प्रिय टीचर थीं कारण कि जब सुभाष बोस अंग्रेजी का एक भी शब्द लिख बोल नहीं सकते थे इनकी सहायता से चल निकले थे। देशी स्कूलों की अपेक्षा मिशनरी स्कूलों में पढ़ाई के अलावा पारस्परिक व्यवहार, सफाई और समय की पाबन्दी पर अधिक ध्यान दिया जाता था। इसके साथ-साथ बाइबिल की पढ़ाई को अधिक महत्व दिया जाता था।[2] इतिहास के पाठ्‌यक्रम में ग्रेट ब्रिटेन का इतिहास था। भूगोल के ज्ञान में भी भारत का एकांश तक न रहता।

स्कूल के सात वर्ष (1902-1908) बडे शान्तिपूर्ण व्यतीत हुए। लेकिन स्कूल के अन्तिम दिनों में सुभाष खुश नही थे। इसका सीधा कारण शायद अपने परिवेश की विसंगति थी। आयु बढ़ने के साथ-साथ वे अपने पारिवारिक तथा स्कूली वातावरण के अन्तर को समझने लगे थे। पारिवारिक परिवेश सर्वथा देशीय था, रहन-सहन आचरण व्यवहार सव भारतीय। जबकि स्कूल पूरी तरह विदेशी भावापन्न न होते हुए भी बहुत कुछ वैसा ही था। एंग्लो-इण्डियन छात्रों की अपेक्षा भारतीय छात्रों को स्कूली सुविधाऐं भी कम मिलतीं थी।

---

1. व्यथित हद्रय - स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तकारी सेनानी : पृष्ठ 156
2. प्रयाग नारायण त्रिपाठी - नेता जी सम्पूर्ण वाड्मय भाग -1 पृष्ठ 20

तात्पर्य यह हैं कि सुभाष बोस ने सात वर्ष यों तो बड़ी स्वच्छन्दता से व्यतीत किये किन्तु स्कूल छोड़ने तक एक प्रच्छन्न विद्रोह के मनोभावो ने स्वदेशी आदर्शो वाले किसी देशी स्कूल में प्रवेश की लालसा जगा दी। यही कारण था कि जब सुभाष बोस अन्तिम बार अपने प्रधानाध्यापक से हाथ मिलाने गये थे तो उन्हें रत्ती भर अफसोस नहीं हुआ था।[1] इस प्रकार सुभाष बोस सन् 1909 में कटक चले आये।

कटक में जनवरी माह सन् 1909 में सुभाष चन्द्र बोस ने रॉवेन्शां कॉलिजियेट में प्रवेश लिया। सुभाष बोस में एकाएक परिवर्तन आया क्योंकि मिशनरी स्कूल के सात वर्ष एंग्लो-इण्डियन वातावरण में बीते थे तथा उनकी पारिवारिक स्थिति का कोई प्रभाव नही पड़ा था। अपने बढ़िया अंग्रेजी भाषा ज्ञान तथा पारिवारिक सम्पन्नता के कारण यहां आकर उन्हें बहुत सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा था।[2] अपने सहपाठियों की दृष्टि में सुभाष बोस को कहीं अधिक उच्च स्थान प्राप्त था। देशीय स्कूल में अच्छे बुरे छात्र का मापदण्ड छात्र की लिखाई-पढ़ाई में क्षमता पर निर्भर होता था। शिक्षक वर्ग को आशा थी कि सुभाष जैसा मेघावी छात्र कक्षा में प्रथम पद पायेगा। इस नूतन परिवेश ने सुभाष को उनकी क्षमता का बोध कराया। उनके अपने शब्दों में इसे अहंकार नहीं बल्कि 'आत्म-विश्वास' कहा जा सकता था। अब उन्होने स्कूल में मातृ-भाषा बंग्ला सीखना शुरू कर दी।

सुभाष बोस अपने इस नवीन वातावरण से बहुत खुश थे। बहुत से ऐसे मित्र भी वन गये जिन्हे सुभाष बोस की तरह खेलकूद में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उनके माता-पिता भी सुभाष के खेल-कूद में समय व्यर्थ करने के पक्ष में नहीं थे। समग्रतः सुभाष चन्द्र बोस थे सुबोध, सुशील बालक, इसलिए मन लगाकर संस्कृत की नीति कथाओं का परायण किया करते। किन्तु युवावस्था के समय सुभाष बोस सोचते थे कि उन्हे खेलकूद के प्रति लापरवाही नहीं करनी चाहिए थी। ऐसा करके शायद उन्होने असमय प्रौढ़ता की भावना विकसित कर ली थी। उनका मानना था कि 'समय से पूर्व की परिपक्वता अच्छी नहीं होती चाहे वह व्यक्ति की हो या वृक्ष की।[3]

सुभाष बोस पर प्रथम प्रभाव छोड़ने वाले व्यक्ति उनके स्कूल के प्रधान शिक्षक बेनीमाध ाव दास थे। उनके व्यक्तित्व से सुभाष अत्यन्त प्रभावित थे। उन्होने उनके व्यक्तित्व में इस

1. प्रयाग नारायण त्रिपाठी – नेता जी सम्पूर्ण वाङ्मय भाग –1 पृष्ठ 20
2. आश गुप्त – सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रान्तिकारी – पथिक पृष्ठ 5
3. Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages-79-1948

प्रकार की आभा का दर्शन किया जिसे वे अदम्य छाप कहते थे। वे जब नैतिक मूल्यों तथा सामाजिक दायित्वों की चर्चा करते तो सुभाष बोस पर इसका गहरा असर होता। बेनीमाध व दास के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा आकर्षण था कि बोस को वे सामान्य शिक्षक से उच्चतर प्रतीत होते। वे मन ही मन सोचते,''यदि जीवन के लिए आदर्श की आवश्यकता है तो इनके चरण चिन्हों पर चलना होगा।''[1]

प्रार्थना के वक्त प्रार्थना मंच पर छात्रों के पीछे आकर उनका खड़ा होना और भाव-बिहल होकर सम्पूर्ण प्रार्थना के दौरान निष्ठापूर्वक नेत्र बन्द किये रहना सुभाष को बड़ा अच्छा लगता था। उनसे संवाद करने का उसका बहुत जी करता पर अभी तक ऐसा कोई अवसर हाथ नहीं आ पाया था। एक दिन की बात हैं अभी स्कूल की घंटी लगने में देर थी। प्रध ाानाध्यापक जी अपनी गरिमायुक्त गति से सहन पर चलते हुए आ रहे थे। सुभाष अपने सहपाठियों की उछल-कूद देखने में मस्त थे। अचानक हेमन्त की नजर अपनी ओर आते प्रधानाध्यापक जी पर पड़ी। वह फुसफुसाया-'प्रधानाध्यापक जी....' हड़बड़ाहट में ही हेमन्त ने सुभाष को पीछे से धकेलकर एक ओर करना चाहा लेकिन जोर से धक्का लगने के कारण सुभाष लड़खड़ाकर गिर गये। बेनीमाधव दास जी ने सुभाष को उठाया और स्नहे से हाथ फेरकर आगे बढ़ गये।[2] सुभाष उन्हें तब तक देखते रहे जब तक वे उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गये।

मोहग्रस्त सुभाष को बेनीमाधव दास जी के प्रति अपनी इस भावना का कारण समझ में नहीं आ रहा था। ऐसा खिचाव, ऐसा बन्धन, ऐसा आकर्षण-आखिर क्यों ? इस बात का जिक्र बहुत बाद में उन्होने अपनी पुस्तक में किया है-'किसी व्यक्ति का आदर किस प्रकार किया जाता है। इसका मुझे अभी तक कोई अनुभव नहीं था। लेकिन मेरे लिए इस समय वेनीमाधव दास जी को देखना, सिर्फ देखना ही नहीं था। यह मेरे द्वारा उनकी पूजा थी। अभी मैं इतना बड़ा नहीं था कि समझ सकूं कि आखिर उनमें ऐसी क्या बात है जिसकी मैं पूजा करने लग गया। मैने सिर्फ यही अनुभव किया है कि वही एक मनुष्य है जो साधारण शिक्षक नहीं है। वे सबसे भिन्न और समुदाय से ऊपर है। मैने चुपके से अपने को समझाया कि यदि मुझे अपने जीवन के लिए कोई आदर्श चाहिए, तो वह

1. Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages-37
2. सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 22

आदर्श बस वही है।''[1]

एक वर्ष बाद प्रधान शिक्षक बेनीमाधव दास की स्कूल से बदली हो गयी किन्तु पत्र–व्यवहार द्वारा उन्होने सुभाषचन्द्र बोस के साथ सम्पर्क बनाये रखा और अपने प्रिय शिष्य सुभाष को निरन्तर प्रकृति प्रेम की ओर उन्मुख करते रहे। सुभाष ने अपने आदर्श के परामर्श को अनदेखा नहीं किया और उनसे प्रकृति में रमने का तरीका पूछा। बेनीजी ने प्रत्युत्तर भेजा–

–''बेटे, प्रकृति को प्यार करोगे, उसके संग जीना सीखोगे तो तुम्हे लगेगा कि आनन्द धन का कोष तुम्हारे हाथ लग गया है। तुमने अंग्रेजी की कविताऐं पढ़ी है और पढ़ रहे हो। उन कविताओं के माध्यम से जीवन के जिस सत्य को दर्शाया गया है, वह क्या है?. ....प्रकृति ही तो है। प्रकृति की अपनी कोई भाषा नहीं है। उसके क्रियाकलाप रहस्यात्मक है। उसकी ध्वनि मनभावन है। कभी इस ध्वनि को अपने हृदय में उतारने की कोशिश करो। नदी का बहना, वृक्षों की पत्तियों की हवाओं में अठखेलियां, पुष्पों का मदमस्त ढंग से लहराना, बरसात की रिमझिम, घहराते बादलों का विभिन्न आकृतियों मे बदलना, सूर्य की प्रखरता और चांद की स्निग्घता आदि का अवलोकन करो। उसमें समा जाने की कोशिश करो। उसमें एकलक्ष्य हो जाओं। तुम देखोगे कि प्रकृति का साथ स्फूर्तिदायक है, शान्तिदायक है।''[2]

सुभाष का रूझान बेनीजी की प्रेरणा से प्रकृति की ओर बढ़ा। प्रकृति सरल होती है पर सरलता से अपने निकट आने कहां देती है? हां इतना अवश्य हुआ कि सुभाष जहां पहले प्रकृति सम्बन्धित कविता को साहित्य के रूप में पढ़ते थे अब वह उन्ही कविता को प्रकृति में डूबने के लिए पढ़ते थे। उन्हे इस प्रवृत्ति से एक अद्‌भुत आनन्द आने लगा। इस प्रकार एक अध्येता प्रकृति की प्रयोगशाला में खुद व खुद व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करता और अपनी अनुप्रेक्षा की धार पैनी करता।

सुभाषचन्द्र बोस बेनीमाधव दास के व्यक्तित्व से कुछ इस कदर प्रभावित थे कि उन्होने लिखा है कि–उनके मुखमण्डल पर ऐसी भावाभिव्यक्ति थी, जिसे मैं केशवचन्द्र सेन के चित्रों में पाता था और यह आश्चर्यजनक नहीं था, क्योंकि वे केशवचन्द्र सेन के कट्‌टर भक्त

---

1. सुभाष चन्द्र बोस – भारत – पथिक : पृष्ठ 6
2. शिक्षक बेनी माधव दास का सुभाष के नाम पत्र

और शिष्य थे।''[1]

सुभाषचन्द्र का खेल के मैदान से तो कोई सरोकार था ही नहीं, किशोरावस्था में पदार्पण करने के साथ वे आत्मकेन्द्रित भी होते गये। इस आयु मे मानसिक तनाव सहज प्रक्रिया थी। सुभाषचन्द्र बोस ने इस सम्बन्ध में अपने मित्र हेमन्त कुमार को पत्र लिखा था कि, 'जो विचार किशोरावस्था में सभी अवरोधों से टक्कर लेते हुए संघर्ष के बीच अपनी राह बनाने के लिए कसमसाते रहते है वे ही उम्र बढ़ने के साथ गंभीर बनते जाते है।''[2]

सुभाषचन्द्र बोस अभी पूरे सोलह के भी नहीं हुए थे कि ग्राम सेवा और ग्राम सुध ाार की धुन सवार हो गयी। गांव के एक स्कूल में जाकर कुछ दिन पढ़ाया भी बहुत आदर-सम्मान मिला। दूसरे गांव में पहुचे तो गांव वाले इन्हे टैक्स कलैक्टर समझकर भाग खड़े हुए। स्कूली शिक्षा के साथ-साथ बोस के विचार प्रौढ़ होते गये किन्तु राजनीतिक ज्ञान नहीं के बराबर रहा। एक तो यों इनकी अभिरूचि राजनीति के तरफ न थी, दूसरे घर में राजनीतिक चर्चा निषिद्ध थी। राजनीतिक दृष्टि से उड़ीसा उन दिनों बहुत पिछड़ा हुआ प्रान्त था। ब्रिटिश सरकार की बंगाल विभाजन (1905) योजना के बाद से पूरे बंगाल प्रदेश का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था।

सन् 1913 में सुभाष मैट्रिक परीक्षा में बैठे, उस समय अपनी आयु का पन्द्रहवां वर्ष उन्होने पूर्ण ही किया था। पूरे विश्वविद्यालय में उनका स्थान द्वितीय रहा। उनके माता-पिता आनंदित हो उठे और उन्होने सुभाष बोस को कलकत्ता रवाना कर दिया।

स्कूल छोड़ने के समय तक सुभाष अपने विषय में कुछ निर्णयों पर पहुंच चुके थे-वह लकीर के फकीर नहीं बनेगे और अपने आध्यात्मिक-कल्याण और मानवता उत्थान के अनुकूल जीवन व्यतीत करेगे।

---

1. आत्मकथा – सुभाष चन्द्र बोस ने कहा था, अध्याय-5
2. मित्र हेमन्त कुमार सरकार को बोस का पत्र (1947)

२. उच्च शिक्षा

विद्यार्थी का प्राथमिक कर्तव्य है चरित्र-निर्माण। विश्व विद्यालय की शिक्षा चरित्र-निर्माण में सहायक होती है और हम किसी के चरित्र के उसके कार्यो द्वारा आंक सकते है। कार्य ही चरित्र को व्यक्त करता है। किताबी जानकारों से मुझे घोर वितृष्णा है। मैं चाहता हूं चरित्र, विवेक कर्म।

-माता प्रभावती देवी को पत्र (सन् 1912-13)

कॉलेज जीवन की देहली पर खड़े सुभाष का विश्वास था। कि जीवन का एक अर्थ है; एक उद्देश्य है और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शरीर और मन दोनो का नियमित अभ्यास और शिक्षण अनिवार्य है। आगे चलकर संघर्षो और परीक्षाओं से निपटने में यह आत्मानुशासन उनके बहुत काम आया।

उच्च शिक्षा के लिए सुभाषचन्द्र बोस को प्रेसीडेन्सी कॉलेज कलकत्ता में भर्ती करा दिया गया। सुभाषचन्द्र अपने जीवन का लक्ष्य तो निर्धारित कर ही चुके थे। यानि जन-सेवा और आध्यात्मिक उन्नति। अतः कॉलेज में उन्होने दर्शन शास्त्र से बी0ए0 करने की ठान ली।

प्रेसिडेन्सी कॉलेज था तो सरकारी किन्तु उसके छात्र सरकार-भक्त नहीं थे। इंडेन हिन्दू हास्टेल क्रान्तिकारी आतंकवादियों का प्रमुख अड्डा समझा जाता था। यह हॉस्टेल सी0आई0डी0 विभाग में बहुत बदनाम था। पुलिस अक्सर तलाशी लेने पहुंच जाती। सुभाषचन्द्र कलकत्ता आकर जिस दल में शामिल हुए, वह आतंकवादी या षडयन्त्रमूलक कार्यो का विरोधी था। इस कारण सुभाष चन्द्र आतंकवादी दल में विशेष प्रिय नहीं हो सके। सुभाष और उनके साथी अपने को 'नव विवेकानन्द दल' कहते थे। उनका लक्ष्य राष्ट्रवाद और धर्म में एक प्रकार का समन्वय स्थापित करना था। राष्ट्रवाद पर बल देना कलकत्ता के तत्कालीन राजनीतिक वातावरण में अनिवार्य था। विवेकानन्द ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के माध्यम से विशेषकर शिक्षा-क्षेत्र में समाज सेवा पर जोर दिया था। दल के नए सदस्य बनने में ऐसे प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की सूची बनाने पर ध्यान दिया जाता था जो दल द्वारा संचालित शिक्षा-योजना में प्रशिक्षित

प्राध्यापक बन सकें। सप्ताहांत तथा अन्य छुट्टियां अधिकाशतः घर से दूर–बहुधा बिना अनुमति लिए–ऐसे व्यक्ति की तलाश में व्यतीत होती थी, जो आध्यात्मिक प्रकाश तथा प्रेरणा दे सकें।

राजनीतिक दृष्टि से दल सशस्त्र कार्यवाहियों और गुप्त गतिविधियों के विरुद्ध था।[1] इसी कारण यह दल बंगाल के तत्कालीन सशस्त्र क्रान्तिकारी वातावरण में विद्यार्थियों में उतना लोकप्रिय नहीं था। अतः यह वर्ग बहुत सक्रिय था, गुप्त पुलिस को इस पर सन्देह हो गया। इनका दल धर्म चर्चा को लेकर मस्त रहता। सी0आई0डी0 सोचती कि धर्म चर्चा के बहाने यहां भी कुछ षड्‌यंत्र पकता होगा इसलिए कभी–कभी छापा मारती रहती। उन दिनों सुभाषचन्द्र जातीय पुनर्गठन को जन–कल्याण का उपचार मानते थे।

सुभाष के इण्टर के शिक्षाकाल में 1909 में स्वेच्छया फ्रांसीसी बस्ती पांडिचेरी में निर्वासित हो जाने पर भी अरविंद घोष बंगाल के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता थे। देशवासी अरविन्द को महापुरुष के रूप में स्वीकार कर चुके थे। वे आर्य पत्रिका का सम्पादन करते थे। वे कारारुद्ध भी रह चुके थे। बाल गंगाधर तिलक के साथ घनिष्ठ सम्पर्क के कारण अरविन्द की ख्याति दूर–दूर तक फैल गयी थी। तिलक थे वामपंथी नेता! क्रान्तिकारी आतंकवादी आन्दोलन के अग्रदूत! पुलिस अफसरों को सन्देह क्या पूरा विश्वास था कि दोनों में गोपन योगायोग है। तरह–तरह की बातें फैल रही थी। अतः देश के युवा वर्ग में अरविन्द के प्रति श्रद्धा का कोई अन्त न था।

किन्तु सुभाषचन्द्र तो परम सत्य की खोज और आध्यात्मिक चिन्तन द्वारा आत्मिक–उन्नयन को अपना जीवन लक्ष्य निर्धारित कर चुके थे। उन्होने इसलिए बी0ए0 में दर्शनशास्त्र विषय चुना। वे जीवन की मूल समस्याओं का हल खोजना चाहते थे।[2] और वाद में सुभाष ने एक ऐसी सोसाइटी को सहायता देना प्रारम्भ किया, जो घर–घर से धन और खाद्य सामग्री मांगकर गरीबों की सहायता करती थी। वह उन छात्र–स्वंयसेवकों में सम्मिलित हो गए, जो द्वार–द्वार जाकर इस प्रकार दान मांगते थे। पहले दिन तो हाथ में झोला लिए चावल मांगते हुए सुभाष को एक नवीन और ग्लानिदायक अनुभव हुआ और लज्जा की शक्तिशाली भावना को परास्त करने में उन्हें कठिन संघर्ष करना पड़ा। कालेज में सुभाष ने पढ़ाई की ओर से उदासीनता धारण कर ली; क्योंकि सामान्यतः व्याख्याता तथा प्राध्यापक–गण उन्हे नितांत

आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 10

Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages-45

नीरस लगे किन्तु अपने स्वभाव के प्रतिकूल जाकर भी उन्होने विख्यात रसायन तथा नृतत्व शास्त्री श्री प्रफुल्लचन्द्रराय जैसे प्राध्यापकों से परिचय प्राप्त किया। छात्र-वर्ग के विभिन्न क्रियाकलापों तथा वाद-विवाद प्रतियोगिताओं का संयोजन, अकाल एवं बाढ़-सहायता निधि का संग्रह, अधिकारियों के समक्ष विद्यार्थियों का प्रतिनिधित्व तथा साथी विद्यार्थियों के साथ दौरे पर जाने में सुभाष संलग्न रहने लगे। फलतः शीघ्र ही उनकी अर्न्तमुखी प्रवृत्यिां घटने लगीं।

ऐसे ही एक ग्रीष्मावकाश में, जब वह अपने माता-पिता के साथ कटक में थे, अपने कुछ पुराने साथियों को लेकर सुभाष कुछ मील दूर स्थित एक गांव में हैजा फैला था, घर में सूचना दिये बिना रोगियों की सेवा के लिए निकल गये। घातक संक्रामकता से स्वंय बचे रहने की कोई चिंता न करते हुए रोगग्रस्त ग्रामीणों की सेवा में दत्त-चित्त होकर लगे रहे। घर से लंबे समय तक गायब रहने पर घरवालो को चिंता हुई और जब उन्हे सुभाष के अभियान की प्रकृति के बारे में पता चला तो घबराकर उनकी खोज के लिए लोगों को भेजा। यों तो दल कोई महती सेवा न कर सका, किन्तु एक सप्ताह बाद जब वे घर लौटे तो कुण्ठा ग्रस्थ थे। उनका कहना था कि,'एक हफ्ते के अनुभव ने मेरे नेत्रों के समक्ष भारत का वास्तविक चित्र उभार दिया-वह भारत जिसके गांवो में निर्धनता का राज्य है, जहां गांव वाले मक्खियों की तरह मरते रहते है। चारों तरफ मूढ़ता ही मूढ़ता है।''[1] वे सोचने लगे कि यदि विश्व में इतना कष्ट, इतनी पीड़ा है तो योग-साधना का क्या लाभ! उनका अन्तस् वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह करने को व्यग्र हो उठा।''[2]

सुभाषचन्द्र को दया-ममता पिता से विरासत में मिली थी। उन्होने लिखा है कि कॉलेज से घर आते-जाते रोज किसी भिखारिन को देखते। मन वेदना से तड़प उठता। अपने को दोषी ठहराते कि 'इन्हे तो सब प्रकार भी सांसारिक सुख सुविधायें उपलब्ध है। तीन मंजिला मकान रहने को है। और इन बेचारों के पास न खाने को अन्न है, न सि पर छत।'' क्या करते ! ट्राम छोड़कर कॉलेज पैदल आना जाना शुरू कर दिया और ट्राम के किराये के पैसे उसे देने लगे।[3]

दो वर्ष तक अध्ययन की उपेक्षा बरतने पर भी 1915 में सुभाष ने इंटरमीडिएट-परीक्षा सम्मानपूर्वक उत्तीर्ण की। बी0ए0 मे ऑनर्स पाठ्यक्रम में दर्शनशास्त्र लेकर उन्होने अपनी

1. Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages-78
2- Ibid : 76-77
3- Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages-82

दीर्घकालीन इच्छा की तुष्टी की और कॉलेज-जीवन में प्रथम बार अध्ययन की ओर गम्भीरता पूर्वक ध्यान दिया।अगले वर्ष के प्रारंभ में ही एक आकस्मिक घटना से उनके छात्र-जीवन को गम्भीर आघात लगा।[1]

जनवरी 1916 में ओटेन काण्ड हो गया जिसने सुभाषचन्द्र बोस के जीवन को एक नया मोड़ दे दिया। हुआ यों कि सुभाषचन्द्र कॉलेज लाइब्रेरी में बैठे थे। सूचना मिली की ओटेन साहेब कक्षा के किसी छात्र को पीट रहे है। पड़ताल करने पर ज्ञात हुआ कि कुछ छात्र उनके कमरे के सामने घूम रहे थे। विरक्त हो ओटेन साहेब बाहर निकले और कई छात्रों को धक्का देकर भगा दिया। कक्षा प्रतिनिधि की हैसियत से सुभाषचन्द्र ने प्रिन्सिपल एच0आर0 जेम्स के पास जाकर ओटेन साहेब के दुराचरण की शिकायत की और कहा कि जिन छात्रों का अपमान किया है, ओटेन साहेब उनसे मांफी मांगे। प्रोफेसर आई0एफ0ओटेन थे इडियन एजुकेशन सर्विस के आदमी। इसलिए प्रिन्सिपल साहब ने मध्यस्थता करने में असमर्थता प्रकट की, बल्कि कहां कि ओटेन ने किसी को पीटा नहीं, केवल हाथ पकड़कर भगाया है। सुभाषचन्द्र बोस को प्रिन्सिपल की इस प्रवंचना पर बहुत क्षोभ हुआ। अगले दिन छात्रों ने हड़ताल कर दी। प्रिन्सिपल तो हड़ताल क्या रोकते मौलवी साहब तक प्राणपण से चेष्टा करते मुसलमान छात्रों को वापिस न ला सके। सर प्रफुल्लचन्द्र रॉय और डॉ0डी0एन0 मल्लिक भी विफल रहे। अनुपस्थित छात्रों पर जुर्माना ठोंक दिया गया।

प्रेसीडेन्सी कॉलेज जैसी शिक्षा-संस्था में हड़ताल की खबर ने चारों ओर उत्तेजना फैला दी। ब्रिटिश सरकार संत्रस्त हो उठी। एक शिक्षक ने सुभाषचंद्र को कोने में ले जाकर समझाया कि प्रतिनिधि की हैसियत से हड़ताल को लेकर तुम्हें बड़ी लांछना सहनी पड़ेगी। शिक्षक ने यह भी पूछा कि हड़ताल का परिणाम क्या होगा। सोचा भी है?' सुभाष का निर्भीक उत्तर था, "सोच लिया है।"[2] दूसरे दिन भी हड़ताल जारी रही। मिस्टर ओटेन पर अधिकारियों ने समझौते पर दबाब डाला। लाचार होकर ओटेन साहेब ने छात्रप्रतिनिधियों को बुलाकर सुलह की बातचीत की। बात खत्म हो गयी। दोनो तरफ का सम्मान रह गया था। जो होना था सो हो गया, सोचकर सब छात्र अपनी कक्षाओं में पहुंच गये। प्रिन्सिपल छात्रों

1. Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages-82
2. Reva Chatterjee : Neta Ji Subhas Bose : Bengal Revolition and Independence,: 53

का जुर्माना माफ करने को राजी न हुये। केवल गरीबी की दुहाई देने वाले छात्रों का जुर्माना मांफ कर दिया गया। लड़कों का मिजाज फिर बिगड़ गया। एकाध महीनों बाद पुनः खबर मिली कि मिस्टर ओटेन ने किसी प्रथम वर्षीय छात्र के साथ दुर्व्यवहार किया है। अब न तो हड़ताल करने का कोई लाभ था, न प्रिन्सिपल से शिकायत का। कानून अपने हाथों में लेकर छात्रों ने ओटेन साहब को पीट डाला। समाचार-पत्र आफिस से लेकर लाटसाहेब के भवन तक खबर उड़कर पहुंच गयी। छात्रों पर अभियोग था कि उन्होने ओटेन साहेब पर पीछे से प्रहार करके सीट के नीचे गिराया है। इस घटना के साथ सुभाष चन्द्र का योगायोग केवल दर्शक रूप में था। छात्रों ने केवल एक बार पीछे से मारा था, वह भी कोई मारात्मक किस्म का प्रहार न था। उनको पीटा गया था सामने आकर और वे जोर-जोर से प्रतिवाद करते रहे थे।

सरकार की विशेष विज्ञप्ति द्वारा कॉलेज बन्द हो गया। घटना की जांच पड़ताल तहकीकी कमेटी को सौंप दी गयी।[1] सरकार इतनी चिढ़ गयी थी कि चिरकाल तक कॉलेज बन्द रखने को तैयार बैठी थी। उधर सरकारी विज्ञप्ति को लेकर प्रिंसिपल साहब का सरकार से झगड़ा हो गया कि इनसे परामर्श किए बिना कॉलेज बन्द करने का आदेश इनका अपमान है। प्रिन्सिपल ने शिक्षा विभाग के मंत्री से भी भेंट की। बात तूल पकड़ गयी। अगले दिन एक और विज्ञप्ति द्वारा शिक्षा-मंत्री के साथ अभद्र व्यवहार के अपराध में प्रिंसिपल साहेब को अनिश्चित काल के लिए पदच्युत कर दिया गया। यहीं नहीं, चार्ज देने से पहले उनसे सब अधिकार ले लिये गये। प्रिंसिपल की जिन छात्रों पर कुदृष्टि थी, उन्हें बुलवा भेजा,। सुभाषचन्द्र तो उनमे से थे ही। प्रिंन्सिपल ने कहा, 'बोस! तुम कॉलेज के सबसे उत्पाती व्यक्ति हो, मैं तुम्हें निलंम्बित करता हूं। सुभाषचन्द्र 'धन्यवाद' कहकर बाहर निकले और घर चले गये। अब शंकराचार्य के 'मायावाद' का जादू उनके मन से पूरी तरह कट चुका था।[2]

प्रेसिडेन्सी कॉलेज से निष्कासित छात्र को किसी अन्य शिक्षा संस्था में प्रवेश मिलना दुष्कर था। तहकीकी कमेटी के अध्यक्ष हाईकोर्ट के न्यायाधीश एवं विश्वविद्यालय के उपकुलपति सर आशुतोष मुखर्जी के सामने सुभाषचन्द्र की पेशी हुई। इन्हे पूरी आशा थी कि सुविचारपूर्वक

---

1. प्रयाग नारायण त्रिपाठी – नेता जी सम्पूर्ण वाड्मय भाग –1 पृष्ठ 63
2. आशा. गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक (तरूण सुभाष चन्द्र बोस के स्वप्न) : पृष्ठ 13

न्याय किया जायेगा। इनसे सीधे प्रश्न किया गया, ''मिस्टर ओटेन को पीटना क्या न्याय था ?'' सुभाषचन्द्र ने कहा, 'अन्याय अवश्य हुआ किन्तु छात्रों पर जो अत्याचार हुआ इसलिए उन्होने यह अन्याय किया।'' सुभाषचन्द्र ने बात वही समाप्त नहीं की, दूसरे अंग्रेज अध्यापकों के अभद्र व्यवहार की घटनाए भी धारा प्रवाह सुनाते चले गये। कुछ लोगों को लग रहा था कि ओटेन को पीटने के अन्याय को बिना शर्त स्वीकार न करके सुभाष ने अपनी ही क्षति की है। उधर सुभाष ने सोचा फलाफल जो भी हो, इन्होने उचित ही किया ! सुभाष फिर भी न्याय की प्रत्याशा में कलकत्ता में रूके रहे। कमेटी की रिपोर्ट पेश हुई, जिसमें अन्य छात्रों के विरूद्ध एक शब्द भी नहीं था, केवल सुभाष पर आरोप था। उनका शैक्षणिक जीवन समाप्त था और भविष्य अन्धकारमय एवं अनिश्चित! इसी बीच कलकत्ता की राजनीति जोर पकड़ चुकी थी। बहुत से देशवासी गिरफ्तार हो चुके थें। सुभाषचन्द्र के भाई घबरा उठे। फैसला हुआ कि वापिस कटक चले जायें, जगह कम से कम निरापद तो है।

ट्रेन में सुभाष ने विगत कई महीनो की घटनाओं की आलोचना करते रात बिता दी। सोचा,'लिखना-पढ़ना तो समाप्त है ही, भविष्य भी अन्धकारमय है।' किन्तु उन्हे रंचमात्र भी खेद न था बल्कि कर्तव्य-पालन का आस्वाद था कि एक महत् उद्देश्य के लिए अपना स्वार्थ विसर्जित करके आत्म-सम्मान सुरक्षित रख सके। यद्यपि लघु रूप में उन्होने नेतागीरी का स्वाद पहले ही चख लिया था। उन्होने एक चरित्र प्राप्त कर लिया था और वह भविष्य का सामना सक्षमता से कर सकते थे। इस प्रकार की मनोधारणा लेकर सुभाष कलकत्ता से अपने माता-पिता के पास कटक लौट गए।

ओटेन घटना से सुभाष में आत्म-विश्वास की जड़ें और गहरी जम गयीं, नेतृत्व की अनुभूति सजग हो गयी। अब वे भावी-जीवन संघर्ष के लिए पूरी तरह तैयार हो गये। उन्होने इस घटना के चौदह-पन्द्रह वर्ष बाद पहली दिसम्बर 1929 को एक छात्र सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में इसका उल्लेख करते हुए कहा था, 'अनेक पक्षों से वह मेरे लिए चिर-स्मरणीय दिवस था। मेरी जीवन यात्रा में नया मोड़ था। यह पहला अवसर था जब किसी लक्ष्य के निमित्त, कष्ट सहने में आनन्द की अनूभूति हुई थी............ऐसा आनन्द

जिसकी तुलना में जीवन के शेष आनन्द फीके और तुच्छ प्रतीत होते है। मेरे जीवन में पहला अवसर था कि सिद्धान्ताश्रित आचरण और सैद्धान्तिक देशभक्ति की परीक्षा–कठिन परीक्षा–से गुजरना पड़ा था। जब मै उस कठिन घड़ी से अक्षत बाहर आ गया तो मेरे जीवन का भावी पथ सदा के लिए निर्धारित हो चुका था।''[1]

लियोनार्ड ए० गॉर्डन यह तो मानते है कि बोस की किशोरावस्था की यह सबसे महत्वपूर्ण घटना थी, किन्तु उनका मत है कि बीस वर्ष वाद लिपिबद्ध करते समय बोस भविष्यत् जीवन प्रति आंशकाओं को नगण्य मानकर कदाचित् अपने तत्कालीन राजनीतिक मार्ग को हमवार करना चाहते रहे हो।''[2]

मार्च 1916 से जुलाई 1917 तक सुभाषचन्द्र कटक में रहे। घर लौटने पर न पिता से डॉट पड़ी न भाई ने कुछ कहा। इस बात से उन्हें आश्चर्य हुआ कि उनके माता–पिता उनके संकल्प को समझते थे और उन्होने सुभाष के प्रति सहानुभूति की। कदाचित् परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में परिवार ने सुभाषचन्द्र के आचरण–व्यवहार का समर्थन किया था। अन्य कोई काम न होने पर वह पुनः समाज सेवा में प्रवृत्त हो गए। कटक–निवास–अवधि में सुभाष निरन्तर गांवों का दौरा करते रहे और समाज–सेवा एवं महामारी से ग्रस्त रोगियों की सेवा में समय विताते रहे।[3] इस बीच उनके पिता और भाई दोनो उनके दाखिले के लिए जी तोड़ कोशिश करते रहे। विश्व विद्यालय ने पाबन्दी उठा दी थी। बंगवासी कॉलेज प्रवेश देने को तैयार था किन्तु वहां दर्शनशास्त्र अध्यापन की कोई व्यवस्था नहीं थी। 'स्काटिश चर्च कॉलेज' के प्रिंसिपल डॉ० अर्कुहार्ट इस शर्त पर प्रवेश देने को तैयार हुए कि प्रेसिडेंसी कॉलेज के प्रिंसिपल से 'नो ऑब्जेक्शन' (कोई आपत्ति नहीं) सर्टिफिकेट लाकर दें। प्रेसिडेन्सी कॉलेज के नये प्रिंसिपल मिस्टर वर्ड् सवर्थ ने 'ओटेन काण्ड' को लेकर लम्बी जिरह की अन्त में यह कहते हुए 'प्रवेश–स्वीकृति पत्र' दे दिया कि अतीत की अपेक्षा भविष्य अधिक महत्वपूर्ण है अतः वे सुभाष के रास्ते में रूकावट नहीं बनना चाहते।

इस प्रकार से जुलाई 1917 मे सुभाषचन्द्र बोस को 'स्कॉटिश चर्च कॉलेज' में बी०ए० तृतीय वर्ष में दाखिला मिल गया। अब उन्होने पूरे उत्साह के साथ पढ़ाई करने का विचार बना लिया। क्योंकि उनके दो वर्ष खराब हो चुके थे। सुभाष बोस कॉलेज में शान्त जीवन

1. Kalicharan Gosh Quotes in "A Saint turns patriot Sri Ram Sharma (Ed.) Netaji his life and work"-31
2- Events in bose's Late adoloscence.
3. सुभाष चन्द्र बोस – " भारत पथिक"–119

बिता रहे थे क्योंकि डर्कहर्ट जैसे विचारशील प्रिन्सिपल होने के कारण अधिकारियों से किसी प्रकार की टक्कर होने की कोई सम्भावना नहीं थी।[1]

इसी बीच 1918 में इण्डियन टैरिटोरियल आर्मी में संयुक्त यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर में उन्होने प्रशिक्षण लेना भी आरम्भ कर दिया। उनके जीवन में यह दूसरा महत्वपूर्ण मोड़ था। सुभाष बोस एक सैनिक बनने में अपार प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे क्योंकि इससे उन्हें साहस तथा आत्मविश्वास प्राप्त हुआ।[2] सुभाष बोस के शब्दों में, "परम नियन्ता के ज्ञानार्थ सन्यासियों के चरणों में बैठने और राइफल कन्धे पर रखकर ब्रिटिश अफसर से आदेश लेने मे कितना अन्तर था! इस प्रशिक्षण से शक्ति और आत्मविश्वास की वृद्धि हुई जिसकी मुझे आवश्यकता थी अथवा मुझमें कमी थी। सैन्य प्रशिक्षणाधीन छात्रों को कलकत्ता के फोर्ट विलियम से राइफल लाने के लिए प्रवेश की अनुमति थी।...............पहले दिन हम मार्च करते हुए अपनी राइफले लाने फोर्ट विलियम में गये। अब हम उन पुलिस और अन्य कर्मचारियों को अगूठा दिखा सकते थे जो हमें सताने तथा आतंकित करने के अभ्यस्त थे।"[3]

सन् 1919 में सुभाषचन्द्र ने प्रथम श्रेणी में द्वितीय स्थान पर बी0ए0 परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। किन्तु उनका बी0ए0 का परिणाम उनके मन माफिक नही रहा क्योंकि दर्शनशास्त्र में उन्हें आशाअनुरूप परिणाम प्राप्त नहीं हुआ था। इसलिए दर्शनशास्त्र से उनका मन विच्छिन्न हो चुका था। वे एम0ए0 में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान लेने का इरादा कर रहे थे।[1] यह अपेक्षाकृत नया विषय था।

श्री जानकीनाथ उन दिनों कलकत्ता आये हुए थे तो एक दिन सुभाष को बुलवा भेजा और उनसे पूछा कि क्या भारतीय सिविल सेवा की पढ़ाई के लिए विलायत अर्थात् इग्लैण्ड जाना चाहोगे। इस निर्णय को लेने के लिए सुभाष बोस को केवल 24 घण्टे का समय दिया गया।

बोस के लिए यह आश्चर्य चकित कर देने वाला प्रस्ताव था लेकिन उन्होने इस प्रस्ताव पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया किन्तु उनकी आत्मा उनसे सिर्फ एक प्रश्न पूछ रही थी कि "क्या इण्डियन सर्विस का सदस्य बनना ठीक रहेगा।" क्योंकि इस सर्विस को ग्रहण करने का सीधा मतलब अंग्रेजो की गुलामी करना था। तभी सुभाष बोस ने अपने पिता

1. प्रयाग नारायण त्रिपाठी – नेता जी सम्पूर्ण वाड्मय भाग –1 पृष्ठ 47
2- व्यथित हृदय, स्वीधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी सेनानी– पृष्ठ 158
3. Kalicharan Gosh Quotes in "A Saint turns patriot : Sri Ram Sharma (Ed.) Netaji his life and work":82

से इग्लैण्ड न जाने के लिए कहा। जानकीनाथ ने क्रोधित होकर कहा कि 'क्या तुम अंग्रेजों से मुकाबला करने से डरते हो।[1] पिता की यह बात सुनकर कुछ धण्टे सोचने के बाद उन्होने इग्लैण्ड जाने का निर्णय कर लिया। एक सप्ताह के नोटिस पर कलकत्ता से जाना था। भाई के प्रयत्न से पार-पत्र की व्यवस्था भी हो गयी।

वस्तुतः देश की गम्भीर राजनीतिक परिस्थिति के कारण बसु परिवार सुभाष चन्द्र बोस को भारत से हटा देने के पक्ष में था। जलियावाला बाग का हत्याकाण्ड हो चुका था, जिसमें 379 मारे गये और 1200 जख्मी हुए थे।'[2] यह सरकारी संख्या थी, गैर सरकारी कहीं अधिक थी। देश में 'सैनिक कानून' लागू हो चुका था। हत्याकाण्ड की सूचनाऐं पंजाब से बाहर नहीं निकलने दी जाती थी। सरकारी अत्याचार, अनाचार और दमन पराकाष्ठा को पहुच चुके थे। कड़ा सेंसर लागू था। लाहौर और अमृतसर की भयावह स्थिति की खबरे अफवाहों के साथ जुड़कर फिर भी बंगाल तक पहुंच रही थी। अतः सुभाष चन्द्र बोस को राजनीतिक पटभूमि से हटा दिया गया था।[3] अतः इस प्रकार से अपने माता-पिता का आर्शीवाद लेकर सुभाष बोस आई0सी0एस0 की परीक्षा के लिए इग्लैण्ड को प्रस्थान कर गये।

सुभाष बोस अपने ही साधनों पर निर्भर करते हुए और अपनी किस्मत आजमाने का पक्का इरादा लेकर 15 सितम्बर सन् 1919 जहाज से इग्लैण्ड के लिए रवाना हुए। कैम्ब्रिज में प्रवेश कुछ विलम्ब से, नवम्बर के प्रथम सप्ताह में मिला। भारतीय-सिविल-सेवा परीक्षा की तैयारी के लिए उनके पास कुल आठ-नौ महीने थे। सुभाषचन्द्र बोस ने यहां छह सत्र बितायें। इस अवधि में उनका ब्रिटिश छात्रों के साथ सम्बन्ध तो ठीक ठाक ही रहा किन्तु बन्धुत्व नहीं हो पाया। उनके विचार में इसका कारण युद्धोत्तर प्रभाव तो था ही, इसके अतिरिक्त साधारण अंग्रेजों के व्यवहार में अहंकार का भाव भी इसका कारण था।[4] वे स्वदेश की दयनीय राजनीतिक और सामाजिक स्थिति को विस्मृत नहीं कर पा रहे थे। मध्यमवर्गीय अंग्रेजों में जनरल डायर के प्रति सहानुभूति देखकर भी इन्हे बहुत कष्ट होता।

तात्पर्य यह कि ब्रिटिश और भारतीय छात्रों में बन्धुत्व की कोई भित्ती थी ही नहीं। अंग्रेज जाति निरन्तर अपनी प्रवरता जताने की कोशिश करती। प्रारम्भ में सुभाष बोस को

1. आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : तरूण सुभाष चन्द्र बोस : पृष्ठ-15
2. Hnge Toye- The springing tiger :23
3. सुधीर शर्मा, भारत के कर्णधार – पृष्ठ 7
4. सुभाष चन्द्र बोस – " भारत पथिक"-128

लगा कि मध्यमवर्गीय अंग्रेज को न्याय-अन्याय का ज्ञान होता है। उसमें खिलाड़ी सा स्वस्थय मनोभाव होता है। यदि सुभाष बोस कैम्ब्रिज में इसका प्रमाण पाते तो निश्चय ही श्वेतांगों के प्रति उनके मन में इतनी कड़वाहट न होती। उन्होने देखा कि व्यवहारिक रूप से अंग्रेजों का आचरण ठीक उसके विपरीत था। उन्हें इसका प्रमाण भी मिल गया।

उस वर्ष सुन्दरदास नामक भारतीय छात्र टेनिस का चैम्पियन हो गया। आशा थी कि इन्टर यूनिवर्सिटी बैच में उसे कैप्टन बनाया जाएगा। पता चला किसी पुराने श्वेतांग (ब्लू) को एक वर्ष के लिए यह पद सौंप दिया गया है। सुभाष बोस के अनुसार, 'यों तो किसी पुराने 'ब्लू' को कैप्टन बनाना न्याय था किन्तु इसके आवरण में जो मनोभाव था वह इनसे छिपा नहीं रह सका।'[1]

सुभाष चन्द्र बोस भारतीय संस्कृति, परम्परा तथा सभ्यता के बड़े प्रशंसक थे। इसकी अवमानना उन्हें जरा सहन न होती। वे विद्रोही हो उठते। सिविल सर्विस प्रोवेशनर्स के लिए कुछ विशेष अनुदेश जारी किये जाते थे। उदाहरणार्थ-शीर्षक था 'केयर ऑफ हॉर्सेज इन इण्डिया' (भारत में घोड़ों की देखभाल) साथ में टिप्पणी संलग्न रहती कि भारतीय रईस भी अपने घोड़े जैसा खाना खाता हैं-भारतीय बनिया जाति बड़ी बेईमान होती हैं आदि।[2] परीक्षाधीन छात्रों को भी कुछ इस प्रकार के अनुदेश मिले थे। इन अनुदेशों को सर्वथा भ्रामक एवं अपमानजनक सोचकर सबने संयुक्त आपत्ति पत्र भेजने का निश्चय किया। इनके समसामयिक वाई0एन0 सुकथंकर लिखते है, 'सुभाष ने इण्डिया ऑफिस को कड़ा आपत्ति-पत्र भेजा। जहां तक मुझे ज्ञात है इंडिया ऑफिस ने खेद सहित अनुदेश वापिस ले लिये।[3]

सन् 1920 की जुलाई माह में सिविल सर्विस की खुली प्रतियोगिता प्रारम्भ हुयी जो एक माह तक चली। सुभाष ने परीक्षा के लिए कठिन परिश्रम किया क्योंकि तैयारी के लिए उन्हें कुल आठ-नौ महीने का ही समय मिल पाया था। ये प्रतियोगिता परीक्षाऐं लगभग 1 माह तक चली। जिस परिश्रम के साथ सुभाष बोस ने तैयारी की थी उनकी आशा से कम ही हो पायी थी और शायद इसलिए उन्हें अपनी सफलता की उम्मीद भी नहीं थी। किन्तु सुभाष बोस को तब बड़ा आश्चर्य हुआ जब एक रात वे लन्दन में थे और उनके एक मित्र का तार आया कि 'बधाई, ''मॉर्निग पोस्ट' देखों''। अगले दिन जब

1. सुभाष चन्द्र बोस – " भारत पथिक"–129
2. आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 108
3. Subahas we knew at cambridge : The Indian Express Jan. 28, 1970

सुभाष बोस ने 'मॉर्निंग पोस्ट' देखा तो उन्हे इस वर्ष की आई0सी0एस0 परीक्षा में चौथा स्थान प्राप्त हुआ था।[1]

भारतीय-सिविल-सेवा परीक्षा का परिणाम 22 सितम्बर, 1920 को घोषित हुआ। सुभाषचन्द्र बोस चौथे नम्बर पर यानि प्रशंसनीय सफलता के अधिकारी हुए। किन्तु इस शानदार सफलता ने उन्हें बड़ी परेशानी में डाल दिया। क्योंकि एक ओर सुभाष बोस के स्वप्न तथा महत्वाकांक्षाये थी और दूसरी ओर आरामदायक जीवन। वे तो निश्चय कर चुके थे कि बंध ो-बधायें रास्ते पर नहीं चलेगें यानि ब्रिटिश सरकार के अधीन सेवा-वृत्ति ग्रहण ही नहीं करेगे। परिणाम घोषित होते ही उन्होने ले-आन-सी (एॅसेक्स इग्लैण्ड) से 22 सितम्बर 1920 को अपने भाई शरतचन्द्र को पत्र में लिखा कि, आई0सी0एस0 परीक्षा उत्तीर्ण करके कुछ ठोस उपलब्धि हुई है क्या ? बढ़िया वेतन तथा अच्छी पेंशन अवश्य मिलेगी। 'जी हजूरी' कर सके तो कमिश्नर बन सकेगे या प्रादेशिक सरकार में चीफ सेक्रेटरी के पद की प्रत्याशी भी की जा सकती है। किन्तु जीवन का 'आरम्भ' और 'अन्त' क्या केवल सर्विस है?''

26 जनरवरी 1921 को अपने भाई को उन्होने पत्र में फिर लिखा कि 'सर्विस' में रहकर जितना कल्याण किया जा सकता है, सर्विस से मुक्त रहकर करने की तुलना में अत्यन्त है। मैं इस समय चौराहे पर खड़ा हूं। अब किसी प्रकार का समझौता सम्भव नहीं है। या तो इस रद्दी सर्विस को छोड़कर देश कल्याण के लिए पूरी तरह स्वयं को अर्पित कर दूं अथवा फिर अपने सारे आदर्शो महत्वाकांक्षाओं को अलविदा कर दूं।''[2] 23 जनवरी 1921 को उन्होने फिर लिखा कि, 'देश में इतना आन्दोलन हो रहा है किन्तु आश्चर्य है कि जन आन्दोलन में भाग लेने के लिए अभी तक किसी भी सिविल-सेवा-अफसर ने पद त्याग नही किया।''

सुभाषचन्द्र बोस देशबन्धु चितरंजनदास के बड़े प्रशंसकों में से थे। क्रेम्ब्रिज-निवास के दौरान उन्होने पत्र-व्यवहार द्वारा उनके साथ बराबर सम्पर्क रखा। अतः देश में भारतीय नेशनल कांग्रेस की गतिविधि तथा ब्रिटिश सरकार के व्यवहार के सम्बन्ध में सुभाष बोस को पूरी जानकारी रही। 16 फरवरी 1921 को उन्होने दास को लिखा था कि स्वदेश लौटकर वे कालेज में शिक्षण कार्य तथा समाचार में लेख-निबंध आदि लेखन कार्य करेगे। अतः

---

1. प्रयाग नारायण त्रिपाठी – नेता जी सम्पूर्ण वाड्मय भाग –1 पृष्ठ 87
2. Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages : 95-96

आई0सी0एस0 से त्याग-पत्र देने का इरादा है।"[1]

भारतीय कांग्रेस के बारे में भी सुभाष बोस की निश्चित योजना थी। वे चाहते थे कि कांग्रेस का भी अपना ऑफिस हो, अपना भवन हो, शोधार्थियों का दल देश की छानबीन करें, भारतीय मुद्रा तथा आयात निर्यात की निश्चित नीति हो और प्रादेशिक रियासतों के बारे में सुचिन्तित योजना हो। दलित वर्ग के उत्थान की सुनश्चित रूपरेखा बनायी जाये। कांग्रेस का अपना गुप्तचर विभाग होना चाहिए। कांग्रेस अपनी कार्य-प्रणाली के प्रचारार्थ हस्त पुस्तिकायें जनता को बिना मूल्य वितरित करें आदि।"[2]

तात्यपर्य यह कि सुभाषचन्द्र बोस ने 22 अप्रैल 1922 को आई0सी0एस0 के पद से त्याग-पंत्र दे दिया। रूपया न भेजने की पिता की अन्तिम चेतावनी की भी उपेक्षा कर दी। सत्येन्द्र नाथ टैगोर आई0सी0एस0 स्वीकार करने वाले प्रथम भारतीय थे तो सुभाषचन्द्र बोस उससे त्याग-पत्र देने वाले प्रथम भारतीय सिद्ध हुए।[3] सुभाष बोस का यह कदम उनके महान त्याग का सूचक है। अब उनका पथ निर्धारित हो चुका था। इंग्लैण्ड में इनके साथी छात्र इस त्याग-पत्र से इतने अभीभूत हुये कि एक ने तो इस अवसर पर कविता भी लिख डाली।[4]

"Bullets all round him hiss.

But fall his feet to kiss

This occasion he never can miss.

To three, O Hero! we bow !

On-------On the tyrants to fight !

behold ! gone, gone is the Night !

Trample on them in delight !

Hark ! calls the new Sun, glow."

मर्यादा पूर्ण पद आदर और सम्मान तथा अच्छा वेतन देने वाली सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र देने का सुभाषचन्द्र का साहस पूर्ण निर्णय तत्कालीन परीक्षाधीन छात्रों की प्रेरणा

1. Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages : 95-96
2. सुभाष चन्द्र बोस- तरुणेर स्वप्न : 2- 4
3. V.S.Patil: Subhas Chandra Bose : His Contribution to India Nationalism : 26
4. Dilip Kumar Roy : Netaji The Man : Reminiscences Appendix IX-190

बन गया। उनके सुहृदय बन्धु दिलीप कुमार रॉय पढ़ाई अधूरी छोड़कर संगीत शिक्षा प्राप्ति के लिये जर्मनी चले गये। क्षितीशप्रसाद चटोपाध्याय ने पढ़ाई तो अधूरी छोड़ी ही, सतेन्द्र नाथ टैगोर ने आई0सी0एस0 की प्रपौत्री के साथ सगाई तोड़ दी।[1] कि भविष्य में वे इसका खर्च नही उठा सकेगे। (यद्यपि नृतत्व शास्त्री होने के बाद इनका विवाह उसी कन्या से हुआ)। सुभाष बोस ने सिविल सर्विस का त्याग कर भारतवर्ष के उन लोगो के लिये एक आदर्श प्रस्तुत किया जो आदर्शवाद के नाम पर बड़े-बड़े भाषण देते थे। किन्तु समय आने पर उनसे काफी पीछे चले जाते थे।''[2]

कालान्तर में सुभाषचन्द्र बोस ने दिलीपकुमार रॉय को लिखा था कि देश में ऐसे युवकों की संख्या अधिक है जो अच्छी नौकरी मिलने तक तो देश के लिये सबकुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार रहते है, जैसे ही नौकरी हासिल हुयी अपने सांस्सारिक जीवन के उन्नयन में व्यस्त हो जाते है उन्होने लिखा जब बार-बार यही देखने में आता है तो क्या यह अनुभूति नहीं होती कि अच्छी जीविका का लालची और मुसीबत से छुटकारा पाने की कामना करने बाला यह युवा वर्ग देश-सेवा को नकाब की तरह इस्तेमाल करता है।''[3] उन्होने यह भी लिखा है कि 'पिष्टपेषित मार्ग पर अज्ञात की खोज में बढ़ने से कही अधिक अच्छा है कि संकटपूर्ण पथ पर साहस के साथ आगे बढ़ते जाओ। इस जीवन में कष्ट हैं तो सुख भी है। यदि निराशा का अन्धकार है तो प्रातः कालीन किरणों की आशा भी है।''

इस प्रकार पिता के आदेश की अवमानना, मित्रों के प्रबोध की उपेक्षा एवं स्वयं अपने भविष्य को भूमिसात् करके चौबीस वर्षीय नवयुवक सुभाषचन्द्र बोस जीवन के चौराहे पर खड़े हो गये उन्होने अपने मित्र चारूचरण को लिखा था कि इनका अर्न्त-मन पुकार-पुकार कर कह रहा है कि सुख और आनन्द उस (सर्विस) में नही मिल सकता।' विदेश छोड़ने के समय उन्होने फिर लिखा,''आज उस अर्न्तमन की पुकार तथा अपनी जीवन-पतवार ईश्वर के हाथों में सौंपकर जा रहा हूं। केवल 'वह' जानता है कि मेरी नौका की मन्जिल कौन सी है। निश्चय नहीं कर पाया हूं कि क्या करूंगा। कभी रामकृष्ण मिशन में भर्ती होने को जी चाहता है-कभी बोलपुर जाने की सोचता हूं। पत्रकार बनने का मन भी होता है। देखे क्या होता है।'' आत्मविश्वास का तेज, किन्तु अनिश्चित भविष्य से आलोड़ित हृदय लेकर सुभाष चन्द्र बोस ने जून के अन्त में स्वदेश लौटने के लिये जहाज पकड़ा।

---

1. आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : तरुण सुभाष चन्द्र बोस के स्वप्न : पृष्ठ 20
2. व्यथित हृदय, स्वीधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी सेनानी– पृष्ठ 156
3. Dilip Kumar Roy : Netaji The Man : Reminiscences Appendix IX-21

३. सामाजिक पृष्ठभूमि एवं बोस पर प्रभाव

मुझे इसके सिवा और कोई रास्ता

नहीं दिखाई देता कि हम जिस घरेलू

और सामाजिक परिवेश में जन्में हैं,

उसका पूरा फायदा उठायें।

-मित्र हेमन्त कुमार सरकार को पत्र (1917)

साधारणतया प्रत्येक महापुरूष, विद्वान एवं क्रान्तिकारी अपने युग का शिशु होता है क्योंकि उस पर समकालीन परिस्थितियों, घटनाओं, प्रचलित विचारधाराओं एवं तत्कालीन सामाजिक पृष्ठभूमि का प्रभाव पड़ता ही है और वह अपने देश और काल के रंग में रंगा होता है। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों एवं महान विभूतियों ने बोस पर कुछ गहरा ही प्रभाव डाला।

बचपन से सुभाषचन्द्र बोस पर अपनी धर्मपरायण माता का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। सुभाष अभी बालक थे। 5 साल के ऊपर होगें। मां प्रभावती उन्हें अक्सर पौराणिक कथाएं सुनाया करतीं उन्होने एक बार बताया कि किस प्रकार शंकरजी हिमालय के ''कैलास स्थान पर तपस्या करते थे, जहां वर्फ ही वर्फ है-ठंड की जरा भी चिन्ता न करते हुए शंकर जी अपना तप अखण्ड रखते थे.........आदि।[1] सुनने के बाद उस दिन शिब्बू जाने क्या सोचता रहा। घरवाले सुभाष को बचपन मे ''शिब्बू'' कहते थे-लाड़-प्यार का नाम।

एक रात बड़ा जाड़ा था। हड्डियों को बेधने वाली तेज हवा चल रही थी। ठंड के मारे दांत बज उठते थे। इस रात माताजी ने सुभाष को बड़े जतन से रजाई ओढ़ा दी और सो गई अचानक आंख खुलने पर देखती हैं कि बालक शिब्बू चारपाई से नीचे उतर गया है। रजाई अलग पड़ी है और वह फर्श पर लेटा है। माताजी ने उठकर कहा-'अरे-शिब्बू। इतने जाड़े-पाले में नीचे फर्श पर क्यों लेटा है।'' सुभाष चुप रहे। उठे और खाट पर जाकर लेट गए। मां ने उन्हे रजाई ओढ़ा दी। आधी रात के बाद मां की नींद फिर उचट गई।

1. सं0 वचनेश त्रिपाठी अंगार पुरुष : सुभाष चन्द्र बोस : पृ. 44

पुनः उन्होने देखा कि उनका शिब्बू दोबारा फर्श पर जाकर लेटा है। वे हड़बड़ाकर उठी और यह कहते हुए उठा लाई कि "शिब्बू! क्या आज की रात तू सोएगा नहीं?" सुभाष फिर भी चुप रहे। मां ने फिर रजाई ओढ़ा दी।

यह क्रम कई दिन रहा। एक रात मां तीन बार जागीं। और तीनों बार उन्हें शिब्बू को फर्श से उठाकर सुला देना पड़ा। जब कई रातें उन्हें यही करते गुजरीं तो एक रात वे परेशान होकर कहने लगीं-'शिब्बू!इतने जाड़े में फर्श पर क्यों साते हो ? रजाई ओढ़कर सोते क्यों नहीं ?"

शिब्बू महाशय यानी सुभाषचन्द्र कहते हैं-'मां, तुम्ही ने तो कहा था कि शंकरजी पहाड़ों की वर्फ पर बैठ्कर तपस्या करते है ठंडक से जरा भी घबराते नहीं; तो मुझे ही जाड़े से डरने की क्या जरूरत है। फिर हमारे ऋषि मुनि भी तो इसी धरती पर बैठ्कर तपस्या करते थे।" मां पुत्र का भाव समझकर मन-ही-मन गद्-गद् हो उठी थीं और उसका हाथ पकड़कर कह उठीं थी कि 'अच्छा रे! तू बहुत वीर है। लेकिन अभी सो ले फिर सवेरे तपस्या करना।"

यही शिब्बू आगे चलकर वेदांत दर्शन स्वामी रामकृष्ण देव, विवेकानन्द और हिमालय का परम प्रेमी बन गया था। दुनिया ने जिन्हें सुभाष बोस के नाम से सराहा।[1]

किशोरावस्था में पदार्पण करने के साथ सुभाष आत्म केन्द्रित तथा मानसिक तनाव से ग्रस्त होते गए। सुभाष बोस अपने इस मानसिक तनाव एवं आध्यात्मिक चेतना के संघर्ष को सही रास्ते पर डालने के लिए किसी आदर्श की खोज के लिए इच्छुक हो उठे। सुभाष के मन में पहले से अन्तर्द्वंद्व चल रहा था। वह अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित नहीं कर पा रहे थे। धीरे-धीरे माता-पिता की आज्ञा का बिना ननुनच किए पालन करने के उनके स्वभाव में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया। वस्तुतः उन्हें इस बात की अनुभूति हो गई थी कि अपने लिए निर्धारित मार्ग पर चलने के लिए आज्ञोलंघन करना ही होगा। अध्ययन में उनकी रूचि दिनानुदिन घटने लगी। अपने से मिलते-जुलते विचारो वाले लड़कों के साथ घंटो विचार-विमर्श, वाद-विवाद और दूर-दूर तक घूमने में उनका समय अधिक लगने लगा। इसी समय दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव स्वामी विवेकानन्द के भाषणों एंव लेखों के रूप में उनके

1. सं0 वचनेश त्रिपाठी अंगार पुरुष : सुभाष चन्द्र बोस : पृ. 45

जीवन पर पड़ा। उनके मन में विवेकानन्द के गुरू श्री रामकृष्ण के विचारों को जानने के प्रति उत्सुकता पैदा हुई।

स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव

स्वामी विवेकानन्द ने बंगाल के इतिहास में एक नया मोड़ दिया। उन्होने बार-बार कहा कि मानव-निर्माण उनके जीवन का लक्ष्य है। मानव निर्माण के कार्य में स्वामी विवेकानन्द ने अपने अवधान को किसी विशेष सम्प्रदाय के लिए सीमित नहीं किया वरन् सम्पूर्ण समाज को अपनाया। उनकी जोशीली वाणी-'नया भारत कारखानों से तथा झोपड़ियों और बाजारों से प्रस्फुटित होगा' आज भी बंगाल के प्रत्येक घर में निनादित हो रही है।

-रंगपुर राजनैतिक सम्मेलन (30.3.1929)

उन दिनों सुहचन्द्र मित्र नामक उनका एक आत्मीय कटक आया हुआ था। वे उससे मिलने गये। वहां स्वामीविवेकानन्द के कुछ ग्रन्थों पर नजर पड़ी। घर जाकर उनका परायण करने लगे। विवेकानन्द की रचनाओं को पढ़ने से उनकी भूख मिट्ती ही नहीं थी। सुभाष की आयु उस समय मुश्किल से पन्द्रह वर्ष की होगी, जब विवेकानन्द ने उनके जीवन में प्रवेश किया। पुस्तकों में वर्जित गहरी आध्यात्मिकता और स्वामीजी द्वारा की गई तात्विक मीमांस को उसका कैशोर्य मस्तिष्क ग्रहण नहीं कर पाया, पर जितना कुछ भी वह समझ पाया, वह उसके मनो मस्तिष्क में नर्तन करने लगा। नर्तन की पद-ध्वनियां, भाव-भंगिमाएं यद्यपि स्पष्ट संकेत नहीं दे पा रही थीं किन्तु दूर, बहुत दूर से एक क्षीण रागिनी उभरती हुई उसके कानो में जरूर पड़ रही थीं जिसे अन्ततः एक न एक दिन स्पष्ट होना था।

कैशार्य मन चंचल जरूर होता हैं; लेकिन इस वक्त के अनेक क्रिया-कलापों की छाप अचेतन मस्तिष्क-पटल पर कहीं-न-कहीं दवी अवश्य रहती हैं जो समय पाकर फलती-फूलती है, पललवित होती है। सुभाष कोई सिद्धपुरूष नहीं था सो वह भी भ्रमित सा डोल रहा था। कई बार उसे लगता कि उसकी जीवन-नैया डगमगा रही है और आसपास कोई किनारा

भी तो नहीं दिखता। वह जो शिक्षा प्राप्त कर रहा था, वह भी तो उसके विचारों को स्थायित्व नहीं दे पा रही थी। उनके जीवन में एक आध्यात्मिक क्रान्ति हो गई, जिसने सब कुछ उलट दिया उन्हें लगा जिस आदर्श का संघान कर रहे थे वह स्वामी विवेकानन्द के विचारों में उपलब्ध कर लिया यानी मानव मात्र की सेवा तथा आत्मा की मुक्ति। यही था विवेकानन्द की चिन्तन पद्धति का केन्द्र विन्दु मानव जाति की सेवा से उनका तात्पर्य था–स्वदेश सेवा

सन् 1914 में रामकृष्ण मिशन का वार्षिकोत्सव शुरू हो गया था। स्वामी जी के प्रति उनका मोह पहले से ही सर्वविदित था। सुभाष ने उनके विषय में कहा था,"स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना सन्यासियों के निमित्त की थी जिससे कि वह हिन्दू धर्म को पूर्ण सात्विक रूप से भारत और भारत के बाहर विशेष रूप से अमेरिका में प्रस्तुत कर सकें। स्वामी विवेकानन्द ने प्रत्येक स्वस्थ राष्ट्रीय कार्य को प्रोत्साहित करने का कार्य किया। उनके लिए धर्म राष्ट्रवाद की प्रेरक शक्ति था। उन्होने नई पीढ़ी को भारत के अतीत तथा भविष्य में आस्था रखने के गर्व की अनुभूति प्रदान की। उन्होने आत्म सम्मान तथा आत्म–विश्वास की भावना का पाठ पढ़ाया। यद्यपि स्वामी जी ने कोई राजनीतिक सन्देश नहीं दिया, लेकिन जो व्यक्ति उनके अथवा लेखों के सम्पर्क में आया उसमें उनके कारण देश भक्ति की भावना तथा राजनीतिक चिन्तन की मनोवृत्ति पैदा हो गई। जहां तक बंगाल का सम्बन्ध है स्वामी विवेकानन्द आधुनिक राष्ट्रीय आन्दोलन के आध्यात्मिक पिता थे।[1] इस आकर्षण ने सुभाष को विवेकानन्द के चरणो में बैठा दिया।

स्वामी विवेकानन्द के प्रति अपार श्रद्धा के रहते सुभाष चन्द्र बोस ने अपनी आत्मकथा में लिखा था कि,–'मैं उस समय मुश्किल से पन्द्रह वर्ष का था जब विवेकानन्द ने मेरे जीवन में प्रवेश किया। इसके परिणामस्वरूप मेरे भीतर एक उथल–पुथल गई, एक क्रान्ति घटित हुई। स्वामी जी को तो समझने में मुझे काफी समय लगा लेकिन कुछ बातों की छाप मेरे मन में शुरू से ही ऐसी पड़ी कि कभी मिटाए नहीं मिट सकी। विवेकानन्द अपने चित्रों में और अपने उपदेशों के जरिये मुझे एक पूर्ण विकसित व्यक्तित्व लगे। मैने उनकी कृतियों में उन अनेक प्रश्नों के सन्तोषजनक उत्तर पाये जो मेरे मन में उस समय घुमड़ रहे थे या जो अस्पष्ट थे और बाद में स्पष्ट होकर सामने आये।"[2]

---

1. Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-35
2- आत्मकथा – अध्याय 5

विवेकानन्द से सुभाष चन्द्र बोस ने यही सीखा कि अपनी मानवता की सेवा ही सर्वोच्च आदर्श है, जिसमें स्वदेश सेवा भी अंतर्हित है।

रामकृष्ण परमहंस का प्रभाव

रामकृष्ण परमहंस बार-बार इस बात को दोहराया करते थे कि आत्मानुभूति के लिए त्याग एक अनिवार्य शर्त है और सम्पूर्ण अहंकार शून्यता के बिना आध यात्मिक विकास असम्भव है। उनके उपदेशों में कोई नयी बात नहीं थी। वे वस्तुतः उतने ही पुराने है जितनी भारतीय सभ्यता। रामकृष्ण के उपदेशों की विशेषता यह थी कि उन्होने जो कुछ कहा उसके अनुरूप अपने जीवन को ढाला और उनके शिष्यों के अनुसार वे आध्यात्मिक प्रगति की चरम सीमा तक पहुंच सके।

–आत्मकथा, अध्याय–5

स्वामी विवेकानन्द के गुरू थे रामकृष्ण परमहंस। सुभाष चन्द्र बोस के मन मे उनके विचारों से भी अवगत होने की लालसा जाग उठी। विवेकानन्द से वह उनके गुरू रामकृष्ण परमहंस की ओर मुड़े।

सुभाष को सूझा कि जिस व्यक्ति ने विवेकानन्द जैसे महापुरूष को ढाला, उसके बारे में भी अध्ययन करना चाहिए। इसी सन्दर्भ में वह रामकृष्ण परमहंस के जीवन एवं शिक्षाओं का अध्ययन कर गया। इससे अध्यात्मिकता की ओर उसकी रूचि और भी गहन हो गई। समय के साथ यौवनकाल का पदार्पण हो रहा था। अनैतिक और अस्वाभाविक कर्मो की ओर बार–बार चित्त जाता पर सुभाष कठोरता से उसे संयमित कर लेता। वह परमहंस के वाक्य को सदा याद रखता–

"सदा–चरित्रता प्राप्त करना धन और लिप्सा के त्याग से ही संभव है। रामकृष्ण ने भी संभवतः इसीलिए आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए संसार त्याग को आवश्यक माना है। आत्मज्ञान की उपलब्धि ही आध्यात्मिक विकास की अन्तिम सीढ़ी हैं। इस स्थिति पर पहुंचकर ही ईश्वर से साक्षात्कार किया जा सकता है।"[1] और उनके शिष्यों द्वारा प्रकाशित

(1) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –2,पृष्ठ 48–49

पुस्तकों तथा दैनंदिन से परमहंस की शिक्षाओं का सुधा रस पान किया। विवेकानन्द ने बहुत से ग्रन्थ लिखे थे जिनका परायण सहज सम्भव था किन्तु रामकृष्ण ने वह सबकुछ नही किया। कहते हैं वे प्रायः निरक्षर थे। उन्होने मात्र अपने सिद्धान्त एवं आदर्शो का अनुयायी रहकर जीवन यापन किया था यद्यपि उनके शिष्यों ने उनके उपदेशों को पुस्तकालय में प्रकाशित किया था।[1] रामकृष्ण परमहंस का आदर्श चारित्रियक गठन और आध्यात्मिक चिन्तन पर केन्द्रित था। वे बार-बार कहते 'आत्म संयम बिना आध्यात्मिक उन्नति संभव नहीं। अनाशक्ति के बीच आती है मुक्ति'' दूसरे शब्दों में उनके उपदेश का सारतत्व था-कामिनी कंचन का परित्याग।

सुभाषचन्द्र को लगता कि मानव-कल्याण के लिए आत्मोन्यन परम आवश्यक है। इसके निमित्त व्यवहारिक जीवन को यथाशक्ति रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द के विचार एवं सिद्धान्तों पर ढालना होगा। उन्होने अपनी माता को लिखा था कि जो मनुष्य एक बार इन स्वर्गीथम आन्दानुभूति का आस्वादन कर लेता है, इस पापी भौतिक संसार की ओर आकृष्ट नहीं होता।''

सुभाष पर रामकृष्ण और विवेकानन्द के विचारों का प्रभाव था। वे दोनों महापुरूष विश्व को 'ईश्वर का लीला क्षेत्र' मानते थे। बोस ने रामकृष्ण तथा विवेकानन्द के प्रभाव में आकर विश्व के मायावादी दृष्टिकोण का जो खण्डन किया वह 'आर्या' ने अरविन्द की रचनाओं को पढने से और भी पुष्ट हो गया।

(1) महिन्द्रनाथ – श्री रामकृष्ण कथामृत भाग –5

अरविन्द घोष का प्रभाव

राजनीति में सक्रिय होने की खातिर अरविन्द घोष ने अच्छी नौकरी छोड़ दी थी। कांग्रेस के मंच पर वे वामपंथी विचारो के अलंवरदार बनकर खड़े हुए थे और एक ऐसे समय में स्वाधीनता के पक्ष में निर्भीक होकर बोले थे जबकि अधिकांश नेता केवल औपनिवेशिक स्वशासन की बात करते थे। उन्होने बड़े प्रशांत भाव से जेल की सजा झेली थी।

–आत्मकथा, अध्याय 6

सुभाष पर रामकृष्ण और विवेकानन्द के विचारों के अलावा अरविन्द घोष के विचारों का भी गहरा प्रभाव पड़ा। सुभाष के इन्टर के शिक्षाकाल में 1909 में स्वेच्छया फ्रांसीसी बस्ती पांडिचेरी से निर्वासित हो जाने पर भी अरविन्द घोष बंगाल के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता थे। बोस ने कलकत्ता तथा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों में दर्शन का अध्ययन किया था और विवेकानन्द तथा अरविन्द की रचनाऐं पढ़ी थीं।[(1)] अरविन्द के मासिक पत्र 'आर्य' के नियमित पाठक होने के कारण सुभाष उनके गहन रहस्यवादी दर्शन से अत्यधिक प्रभावित हुए कि किस प्रकार विभिन्न योग–क्रियाओं के द्वारा कोई भी व्यक्ति क्रमशः सर्वोच्च सत्य की ओर अग्रसर होता है। अपनी धारा प्रवाह हृदयग्राही श्रेष्ठ वक्तृत्व–शक्ति के बाबजूद बंग–नायक सुरेन्द्रनाथ बनर्जी सुभाष को अपनी ओर आकृष्ट न कर सके क्योंकि जो भावाकुलता अरविंद के इन सीधे–सादे शब्दों में उन्हें मिली, श्री बनर्जी का वक्तृता में उनका अभाव थाः ''मैं तुममें से कुछ को महान् बनता देखना चाहूंगा; किन्तु तुम्हारे स्वयं के लिए नहीं; वरन् भारत को महान बनाने के लिए; ताकि वह विश्व के स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच सिर ऊँचा करके खड़ा हो सके। तुममें से जो निर्धन और अप्रसिद्ध है, मै चाहता हूं वे अपनी निर्धनता और प्रसिद्धिहीनता को मातृभूमि की सेवा के लिए अर्पित कर दें। काम करो, ताकि वह सम्पन्न हो सके; कष्ट सहो, ताकि वह आनंदित हो सके।''

अरविन्द के इन प्रेरणादायक शब्दों को अपने बड़े भाई के मुख से प्रेमपूर्वक उच्चरित

1- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - 1935-1942

होते सुभाष अनेक बार सुन चुके थे।

सुभाष अरविंद के आध्यात्मिक ज्ञान से प्रभावित थे। उसके लिए उनके यह रूप पूजनीय था। वह अरविन्द के लेखों और पुस्तकों के दीवाना हो गये। अरविन्द लोगों के पत्रों का जबाब भी देते थे। सुभाष के एक मित्र ने अरविन्द को पत्र भेजकर अपनी शंका के समाधानार्थ निवेदन किया था। अरविन्द का उत्तर आया तो उसने वह सुभाष को भी पढ़वाया। एक-एक शब्द गूढ़ अर्थ लिये हुए था पर सुभाष को जो पंक्तियां अच्छी लगी, वे थीं-

"हममें से प्रत्येक को दैवी विद्युत का डायनमो बनना चाहिए, जिससे कि हममें से प्रत्येक जब उठ खड़ा हो तो हमारे आस-पास हजारों व्यक्ति प्रकाशवान हो जाएं और आनन्द एवं दैवी अनुभूति से ओतप्रोत हो जाएं।"(1)

सुभाष सोचता था कि बात बिल्कुल सही है। राष्ट्र-सेवा के लिए "दैवी विद्युत का डायनमों' बनना बहुत जरूरी है। उसके मस्तिष्क में अरविन्द के शब्द गूंजते-

'तुम श्रम करो जिससे मातृभूमि सबल बने, समृद्धिशाली बने ! तुम कष्ट सहो जिससे मातृभूमि सुखी हो।"(2)

सुभाष का अंतर्द्वंद समाप्त हो गया। उनके समक्ष अब एक नवीन आदर्श था, जिससे उनकी आत्मा प्रज्वलित हो उठी-अपनी मुक्ति और मानवता की सेवा के लिए सभी लौकिक कामनाओं का परित्याग और सभी अनपेक्षित बंधनों को तोड़ फेंकना। उनके माता-पिता जितने भी प्रतिबंध लगाते गए, उतने ही वह विद्रोही होते गए समय के साथ सुभाष चन्द्र को मनोनुकूल साथियों का दल भी मिल गया। इनमें उनके आत्मीय सुहचन्द्र मित्र भी रहते। सब दल बांधकर घूमने निकल जाते। परिवार को पता चला। सुभाष चन्द्र को बहलाया-फुसलाया फिर डॉटा-फटकारा। पर सुभाषचन्द्र अब पहले जैसे सुबोध और सुशील बालक तो रहे नहीं थे। उनकी दृष्टि को एक लक्ष्य और एक आदर्श मिल चुका था। माता-पिता के प्रबोध से विरक्ति बढ़ गई, वे अबाध्य एवं लापरवाह होते गए। लिखना-पढ़ना तक छूट गया। बस एक काम था निरन्तर योगाभ्यास किन्तु महीनों तक योगाभ्यास के बाद भी किसी अलोकिक दिव्य शक्ति का संचार न हुआ। हां उनमें आत्मविश्वास और आत्मसंयम अपेक्षाकृत अधिक हो गया।

---

(1) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 61

2. सुभाष चन्द्र बोस : तरुणाई के स्वप्न पृ. 46–47

जब योगाभ्यास से मनोवांछित फल उपलब्ध न हुआ तो उन्हे लगा कि गुरू के अभाव में साधना पूर्ण नहीं हो रही है। सारा देश संसार–त्यागी परिब्राजकों से भरा पड़ा है। वाराणसी, पुरी, रामेश्वरम् आदि तीर्थ स्थानों में इनका अन्त नहीं। उन्हीं दिनो एक वृद्ध सन्यासी आ निकले। नब्बे से कुछ अधिक आयु होगी। उनकी कथा–वार्ता से प्रभावित हो सुभाषचन्द्र ने उनके उपदेशानुरूप जीवन यापन प्रारम्भ कर दिया। जब कुछ लाभ न हुआ तो स्वामी विवेकानन्द और एवं उनके गुरू रामकृष्ण परमहंस की बचनावली में अपनी समस्याओं का समाधान खोजने लगे। विवेकानन्द का कहना था कि 'दरिद्र रूप में नारायण प्राप्त होते है। दरिद्र की सेवा भगवान की सेवा है।''[1] इन भावनाओं से प्रेरित हो सुभाषचन्द्र भिखारियों, फकीरों, साधु–सन्यासियों के साथ बड़े प्रेम और आदरभाव से पेश आने लगे, यथाशक्ति उनकी आर्थिक सहायता भी करने लगे। समग्रतः सुभाषचन्द्र की विरक्त वृत्ति के कारण मित्र बन्धु इन्हे मजाक में 'सन्यासी' कहने लगे थे।

सुभाषचन्द्र बोस ने एक पत्र में लिखा था–'भिाखरियों का सा स्वभाव एक दिन में नहीं बदला जा सकता। यदि तुम सोचते हो कि एक दिन में भिखारियों की प्रवृत्ति परिवर्तित की जा सकती है तो तुम्हें निराश ही होना पड़ेगा। समाज सेवा के लिए बहुत धैर्य रखना पड़ता है।''[2]

सुभाषचन्द्र बोस का मानना था कि, '–अपने पास जो उत्कृष्टतम वस्तु हो उसका दान देना ही सच्ची सेवा है। हमारी अन्तः प्रकृति, हमारा धर्म जब सार्थकता प्राप्त कर सके तभी हम वास्तविक सेवा के अधिकारी बनते है।''[3]

तात्पर्य यह कि बिना जीवन दिये जीवन पाया नहीं जा सकता, बिना स्नहे दिये बदले में स्नेह नहीं मिलता, वैसे ही स्वयं इंसान बने बिना इंसान बनाया नहीं जा सकता। सिर्फ काम के द्वारा मनुष्य का आत्मविकास सम्भव नहीं है। वाह्य कामों के साथ लिखना–पढ़ना और चिन्तन–मनन आवश्यक है। काम के द्वारा जैसे बाहर की उच्छृंखलता मिट्ती है, मनुष्य संयत होता है, उसी प्रकार चिन्तन–मनन करने से आन्तरिक संयम आता है।

भक्ति और प्रेम के द्वारा मनुष्य निःस्वार्थ हो जाता हैं। आदमी के मन में जब भी किसी व्यक्ति या आदर्श के प्रति प्रेम और भक्ति उपजतीं हैं, तब ठीक उसी अनुपात

1. सुभाष चन्द्र बोस : तरुणाई के स्वप्न पृ. 46–47
2. श्री हरिचरण बागची के नाम बोस का पत्र – 3.7.1925
3. श्री दिलीप कुमार राय को पत्र 9.10.1925

में स्वार्थपरता का ह्रास होता है। प्रेमाभ्यास से मनुष्य क्रमशः सभी संकीर्णताओं के ऊपर उठकर विश्व मे लीन हो सकता हैं। इसी से प्रेम,भक्ति या श्रद्धा किसी को भी चित में लाना आवश्यक है। मनुष्य जैसा सोचता है वैसा हो जाता है।
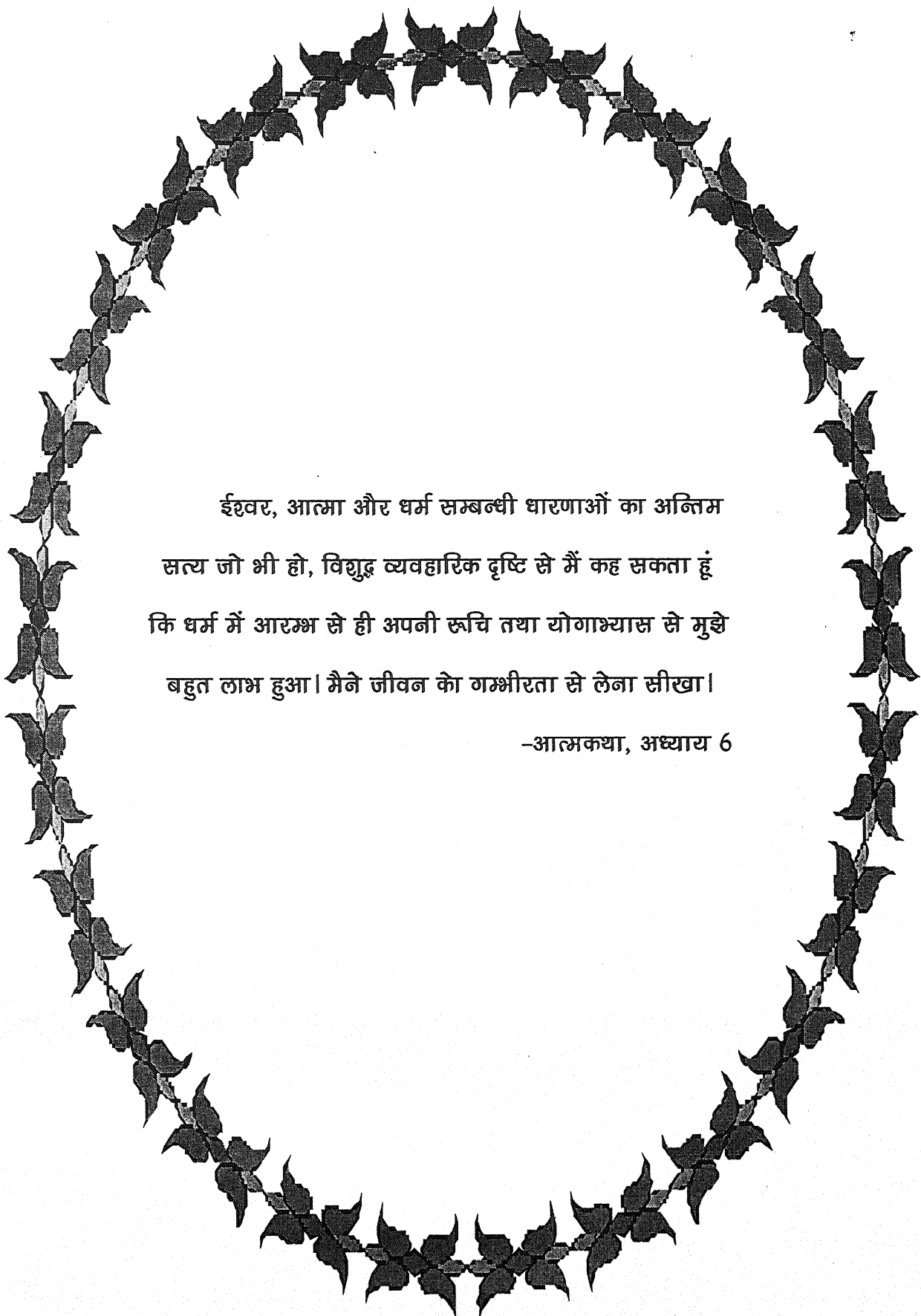
द्वितीय अध्याय

सुभाष चन्द्र बोस के

विचारों का दार्शनिक आधार

PHILOSOPHICAL BASIS OF

BOSE'S THOUCHT

1- धार्मिक विचार - आध्यात्मिक आदर्शवाद

2- सामाजिक यथार्थवाद - कर्मवाद पर विश्वास

3- सुभाष चन्द्र बोस के राजनीतिक विचारों का विकास-एक दृष्टि में

ईश्वर, आत्मा और धर्म सम्बन्धी धारणाओं का अन्तिम सत्य जो भी हो, विशुद्ध व्यवहारिक दृष्टि से मैं कह सकता हूं कि धर्म में आरम्भ से ही अपनी रूचि तथा योगाभ्यास से मुझे बहुत लाभ हुआ। मैने जीवन को गम्भीरता से लेना सीखा।

–आत्मकथा, अध्याय 6

विचारों का दार्शनिक आधार

सुभाष बोस दार्शनिक नहीं थे, और न ही उन्होने सैद्धान्तिक दार्शनिक मूल्य की कोई चीज लिखी है। किन्तु विद्यार्थी जीवन में उन्होने दर्शन का अध्ययन किया था। उन पर विवेकानन्द और अरविन्द की रचनाओं का प्रबल प्रभाव पड़ा था। बोस विवेकानन्द की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुए थे। पन्द्रह वर्ष की आयु में ही उन्होने उनकी रचनाओं का अध ययन कर लिया था। बोस की दृष्टि में विवेकानन्द निर्भीक मनुष्यत्व का मर्तरूप थे। उनसे बोस ने 'आत्मनो मोक्षार्थम् जगद्हिताय च' (निजी मोक्ष तथा मानवता के कल्याण) के लिए का जीवन दर्शन सीखा। बोस विवेकानन्द के वाक्यों को वीरतापूर्ण मानते थे।

स्वामी जी की पुस्तकों को पढ़कर बोस को लगा कि हम शिक्षा के नाम पर अपने को ढग रहे है। अंग्रेज हमें मूर्ख बना रहे है। हम वर्षो से उनकी कुचाल का शिकार हो रहे है। उन्हें लगता हम जो शिक्षा प्राप्त कर रहे है, यह शिक्षा नहीं है। 'स्वामीजी ने कहा है कि यदि हम केवल पांच परखे हुए विंचार भी आत्मसात् कर लें और तदनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लें, तो हम किसी पूरे ग्रंथालय को कंठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित होंगे। शिक्षा का अर्थ केवल जानकारी नहीं है।''[1]

आखिरकार एक दिन सुभाष ने गणित के अध्यापकजी से पूछ ही लिया कि 'सर! शिक्षा क्या है?'' अध्यापक ने उत्तर दिया आप सभी छात्रगण इस शिक्षालय में जो कुछ प्राप्त कर हरे हैं, वह शिक्षा ही है। शिक्षा का स्रोत विद्यालय नहीं है अपितु घर, समाज और प्रकृति भी है। हम जो कुछ प्राप्त कर रहे है या जो शिक्षा दे और ले रहे हैं, वह कोई नई वस्तु नहीं है बल्कि शाश्वत चिरकाण्विक है। हम इसी शाश्वत बात को बोधगम्य बनाकर आप लोगों को परोस रहे है।''

'सर! इसका मतलब यही हुआ कि हम जो कुछ भी प्राप्त कर रहे हैं, वह शिक्षा नहीं है। यह तो पेट भरने का एक साधन है, एक गुर है, जिसे हम हासिल कर रहे हैं।'' अध्यापक समझ गये कि सुभाष गहन चिन्तन करने वाला प्राणी है, वह पुस्तकीय ज्ञान

(1) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 45

को शिक्षा नही मानता। इसलिए सुभाष से बोले आपकी दृष्टि में शिक्षा क्या है ?

मेरी दृष्टि अभी इतनी व्यापक नहीं है। लेकिन मैं विवेकानन्द जी के शब्दों में कहूंगा कि शिक्षा मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।''[1] सुभाष बोस के विचारों का आधार दर्शनिक था। तभी तो वे छिपे हुए ज्ञान के सत्य को प्रकट कर सके।

सुभाष बोस सन् 1913 में अपनी हाईस्कूल की परीक्षा पास करने के बाद प्रेसीडेन्सी कॉलेज कलकत्ता में अपनी भावी शिक्षा ग्रहण करके के निमित्त आये। कलकत्ता में उनके पिता ने उनके लिए बहुत सुन्दर कोठी किराये पर ली थी। कलकत्ता का जीवन भी विलासितापूर्ण था। संगी-साथी भी इस विलासितापूर्ण वातावरण में डूबे थे। लेकिन सुभाष पर तो उनकी धर्मपरायण माता का अत्यधिक प्रभाव था। वे गरीब की भांति धार्मिक विचारों से पूर्ण अपना जीवन व्यतीत कर हरे थे।

1. धार्मिक विचार-आध्यात्मिक आदर्शवाद

कॉलिज जीवन के आरम्भिक दिनों में उनकी रूचि अध्ययन से हटकर आध्यात्मिक विषयों पर केन्द्रित हो गई। पुस्तकीय ज्ञान में तो उनका मन ही नहीं लगता था। वह आध्यात्म को समझ पाने में अभी समर्थ नही थे फिर भी न जाने क्यों उस ओर खिचे चले जा रहे थे। बोस जानते थे कि आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करना सरल नहीं है किन्तु जब वह इस विषय का साहित्य पढ़ते और आध्यात्मिक विज्ञजनों की जीवनियां पढ़ते तो उन्हें लगता कि आध्यात्मिक विकास कोई कठिन कार्य नही है। धन और लिप्सा त्याग देने से इस ओर बढ़ा जा सकता है।

लेकिन उनका अर्न्तद्वन्द्व जारी रहा। मन की व्यग्रता समाप्त नहीं हुई-भौतिक ऐश्वर्य और सुख की कामना से जो शिक्षा ली जाये, वह शिक्षा नहीं है। तो फिर जीवन का लक्ष्य क्या निर्धारित किया जाये ?

'जब मन अध्येता वन अंतर्ज्योति पाने को छटपटा रहा हो, अंतर-पट पवन के झोको से विचलित हो रहा हो, भौतिकता और आध्यात्मिकता के मध्य अंतराल स्थापित न कर

---

(1) एम.पी. कमल- नेताजी सुभाष चन्द्र बोस (भारत के वीर सपूत) - पृष्ठ 16

पा रहा हो तो तन को भी चैन क्यों लेने दिया जाय।''[1] वैसे भी जब मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान की ओर खिचंता है तो वह सभी भौतिक लिप्साओं से दूर हो जाता है। वह मानस की सीमाओं से दूर हटने लगता है।''

बोस ने जब विवेकानन्द को प्रथम बार पढ़ा, उनका हृदय सत्य की खोज के लिए बैचेन हो उठा। उन्हें रात भर नींद नहीं आई। वे सत्य की खोज के लिए कॉलिज छोड़कर वाराणसी होते हुए हरिद्वार पहुंचे। साधु-महात्माओं की संगति में भटकने के बाद भीं उन्हें आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त नहीं हुई। प्रमादी, महन्तों और. पण्डों की भर्त्सना करके उन्होने अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयत्न नहीं छोड़े।

दुरलव सिंह के अनुसार, 'दूसरे बुद्ध के समान, उन्होने अपना गृह त्याग दिया तथा अतीत में महान ऋषियों की तरह धार्मिक लक्ष्य की ओर बढ़े। ठीक इसी समय जब महान महात्मा गांधी, जिन्होने अभी तक लंगोटी धारण नहीं की थी, एक वैरिस्टर के रूप में अपने भविष्य के निर्माण में संलग्न थे तथा जब जमनालाल बजाज, जो अभी तक रॉय बहादुर थे, धन के संग्रह में व्यस्त थे, तब यह महान साधु आध्यात्मिक गुरू की खोज ये अकेले घूम रहा था।''[2]

स्कूल छोड़ने का समय ज्यों-ज्यों पास आता गया। सुभाषचन्द्र की धार्मिक भावना तीव्र होती गई। पढ़ाई से मन उचाट रहने लगा। वे मित्रमण्डली के साथ गप्पबाजी में समय बिताने लगे। शिक्षकों में उन्हें वही पसन्द आते जो विवेकानन्द या रामकृष्ण परमहंस की चर्चा करते। इधर जानकीनाथ के गुरू कटक आये। उनसे मिलने के बाद सुभाष बोस का धर्म के प्रति झुकाव और बढ़ गया। पढ़ाई छोड़ वे साधु-सन्यासियों की मण्डली को लेकर मस्त रहने लगे। माता-पिता की चिन्ताओं का अन्त न रहा। निषेध करने पर हठी पुत्र का दुराग्रह और बढ़ गया। यही कारण था कि वे घर से भाग गये, किसी को भी 'नही' बतलाया। घर में उनकी तलाश होती रही।

इधर यह परिस्थिति थी और उधर सुभाष साधुओं से मिलते, उनका सत्संग करते,

(1) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा - भाग -1,पृष्ठ 73
(2) सिंह दुरलव, दि रिवैल प्रेसीडैण्ट -पृष्ठ 39

लेकिन किसी तरह भी उनके चित्त को शान्ति नहीं मिल रही थी। सुभाष बोस के हाथ अचानक 'आर्य' मासिक का एक अंक लग गया। एक गद्यांश पर बार-बार उनकी दृष्टि पड़ती। योगी अरविन्द के शब्द थे-'निम्न प्रकृति और उसकी बाधाओं पर बहुत विचार करना भूल है यह साधना का एक नकारात्मक पक्ष है। उन्हें देखना और शुद्ध करना जरूरी है लेकिन उन्हें सबसे महत्वपूर्ण चीज मानकर उन्हीं में लगे रहना सहायक नही होता। अवतरण की अनुभूति की सकारात्मक दिशा अधिक महत्वपूर्ण चीज है। अगर सकारात्मक अनुभूति को नीचे बुलाने से पहले तुम इस चीज के लिये प्रतीक्षा करो कि निम्न प्रकृति हमेशा के लिये और पूरी तरह शुद्ध हो जाए, तो हो सकता है कि तुम्हें सदा के लिये प्रतीक्षा ही करनी पडे यह समय और धीरजपूर्ण प्रगति की बात है।

"शुद्धि और अभिव्यक्ति दोनो साथ ही साथ प्रगति करती जाती है। यही साधना का सामान्य मार्ग है"।

इन शब्दों को पढ़कर सुभाष बोस की अर्न्तात्मा से आवाज आयी-"अहापोह की इस स्थिति को त्याग कर उठ खड़ा हो। जब तक कदम बाहर नहीं निकलेगा तो सही और सच्चा मार्गदर्शक कैसे मिलेगा ? प्यासें को कुऐं के पास जाना होता है। कुआं प्यासे के पास नही आता। गुरू ही तो निम्न प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने का मार्ग दिखायेगा साधना भी उसके बिना न हो सकेगी।

सुभाष ने तीर्थ यात्रा भी की। वे मन ही मन कहते कि भगवान श्रीकृष्ण का वह रूप मुझे प्रभावित नही करता जो तीर्थो में पूजा जाता है सुभाष अपने मित्र चारू से कहते थे कि घर से दूर रहने में मुझे आत्मिक शान्ति मिलती है। लगता है कोई शक्ति मुझे निरन्तर घर,मित्र,-सम्बन्धियों से दूर खीचती जा रही है। मुझे न जाने किस वस्तु की तलाश है। कभी-कभी तो दिमाग में आता है कि कही दूर निकल जाऊँ जहां कोई व्यवधान न हो।, ...हो सकता है मैं अन्धकारपूर्ण खोह से निकलकर प्रकाश युक्त वातावरण की ओर बढ़ने जा रहा हूं। मुझे चाहिए कि चिरस्थ ज्ञान ताकि चित्त-भेद एकाग्रता में बदल सके।"[1]

---

(1) गिरिराज शरण – सुभाष ने कहा था – पृष्ठ 79

जन–सेवा पर तो विवेकानन्द ने काफ़ी बल दिया है किन्तु क्या सांस्सारिक सुख–सुविधाओं के बीच रहकर यह संभव है? मुझे एक सिद्धान्त की आवश्यकता है जिस पर मैं अपना सम्पूर्ण टिका दूं। लगता है यह सिद्धान्त त्याग और तपस्या युक्त जीवन से ही संभव है। लगभग तीन महीने के बाद सुभाष बोस वापस घर आ गये।

सुभाष प्रायः हेमन्त के साथ आध्यात्मिक चर्चा में लगे रहते हेमंत की एक खूबी थी वे सुभाष के विचारों का विरोध नही करते थे। अपितु इन विचारों को विभिन्न कसौटियों में कसकर विश्लेषित कर देते थे। धीरे–धीरे उनकी विचारधारा के कुछ विद्यार्थियों ने एक समूह बना लिया। यह समूह समीपवर्ती गांवों में जाकर कार्य करता था। सुभाष एकाग्र मन से गरीबों की सेवा में जुटे रहते थे। बीमारों की सेवा–शुश्रूषा करने में उन्हें आनन्द आता था। सुभाष बोस विवेकानन्द जी के इस वाक्य से प्रभावित थे कि– 'भगवान बहुदा निर्धन के वेष में रहते है मैं उसी भगवान की खोज में तन्मय में रहता हूं। यही असली अध्यात्मिकता है।[1]

सुभाष अपने मित्र हेमन्त से कहते, हम जो कार्य कर रहे है वह अच्छा है, पर मैं समझता हूं कि यह काफी नहीं है। इससे क्या होगा ? पूरे राष्ट्र के उत्थान के लिए तो हम जैसे लोगों की सेना चाहिए–सेना, जो जत्थों के रूप में पूरे देश में फैल जाय। इसके लिए ताकत चाहिए। ऐसी ताकत, जो लाखों, करोड़ों लोगों को अपने पीछे चलने के लिए प्रेरित कर सके। इसके लिए हमें खुद ताकतवर बनना होगा।''

'यह काम आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करके ही हो सकेगा।''[2] बोस ने शंकर के मायावाद के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया, यद्यपि विद्यार्थी जीवन में वे शंकर के सिद्धान्त को हिन्दू दर्शन का सार मानते थे। उन्हें ईश्वर में आस्था थी। किन्तु वे विश्व को माया मानकर त्यागने को तैयार नहीं थे। उन पर रामकृष्ण और विवेकानन्द के विचारों का प्रभाव था। वे दोनों महापुरूष विश्व को 'ईश्वर का लीलाक्षेत्र मानते थे।[3] बोस ने रामकृष्ण तथा विवेकानन्द के प्रभाव में आकर विश्व के मायावादी दृष्टिकोण का जो खण्डन किया है वह 'आर्या' में अरविन्द की रचनाओं को पढ़ने से और भी पुष्ट हो गया। बोस दैवी विधान

(1) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 54

(2) सुभाष चन्द्र बोस , तरुण के स्वप्न – पृष्ठ 39

(3) डा0वी0पी0 वर्मा– क्रान्ति का देवता – सुभाष चन्द्र बोस पृष्ठ 559

की सत्ता को स्वीकार करते थे किन्तु साथ ही साथ इस धारणा पर डटे रहे कि विश्व की सत्ता यथार्थ है और इसके दायित्व तथा अधिकार आदेशात्मक है।

बोस ने माया के सिद्धान्त का खण्डन किया और विश्व की वास्तविकता को स्वीकार किया। उन्हें क्रमिक विकास के सिद्धान्त में विश्वास था। प्रगति की धारणा के समर्थन में उन्होने तीन तर्क प्रस्तुत किये है। प्रथम प्राकृतिक जगत तथा इतिहास का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि विश्व प्रगति भी ओर जा रहा है। दूसरे, अन्तःप्रज्ञा से भी यही अनुभूति होती है कि हम आगे की ओर बढ़ रहे है। इसके अतिरिक्त बोस ने मूल्यशास्त्रीय तर्क भी दिया हैं। उनका कहना है कि जीवशास्त्रीय तथा नैतिक आधार पर प्रगति में विश्वास करना आवश्यक है।

बोस का विचार है क़ि प्राचीन सांख्य सम्प्रदाय के दार्शनिकों ने विकासात्मक प्रगति की जो ठोस अवस्थाऐं और कोटियां निरूपित की थी वे आधुनिक मानव को स्वीकार्य नही हो सकतीं। उन्होने स्पेन्सर के विकासवादी सिद्धान्त का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार सरल से जटिल का विकास होता है। उन्होने फोन हार्टमन द्वारा प्रतिपादित इस धारणा का भी उल्लेख किया है कि विश्व-ज्ञान शून्य इच्छाशक्ति की अभिव्यक्ति है। वे वर्गसा के सृजनात्मक विकास तथा अन्तःप्रज्ञा के सिद्धान्तों से भी परिचित थे। किन्तु बोस की धारणा है कि यद्यपि इन सिद्धान्तों में सत्य का कुछ अंश हैं, फिर भी हेगेल का द्वन्द्वात्मक विकास का सिद्धान्त इन सबसे अधिक समीचीन है।

वे स्वीकार करते है कि कोई भी सिद्धान्त सत्ता के समग्र पहलुओं का समुचित वर्णन नहीं कर सकता, फिर भी वे मानते है कि स्पेंसर के विकास और वर्गसां के सृजनात्मक विकास के सिद्धान्तों की तुलना में हेगेल का द्वन्द्वात्मक प्रगति का सिद्धान्त तर्कशास्त्रीय धारणाओं तथा देश काल में अभिव्यक्ति, दोनो ही क्षेत्रों में अधिक उपयुक्त है। बोस लिखते है, 'किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हेगेल का सिद्धान्त सत्य के सर्वाधिक निकट हैं। वह तथ्यों की अन्य किसी सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक सन्तोषजनक व्याख्या करता है। साथ ही साथ उसे अविकल सत्य नही माना जा सकता, क्योंकि जिन तथ्यों का हमें ज्ञान है वे सब

उससे मेल नही खाते।''[1]

किन्तु हेगेल के द्वन्द्वात्मक विकास के सिद्धान्त से अनुप्रेरित होने के बाबजूद बोस हेगेल की इस धारणा को स्वीकार करते है कि सत्ता (वास्तविकता) का स्वभाव बौद्धिक है। एनेक्सेगोरस तथा हेगेल सत्ता को बुद्धि अथवा विचार मानते हैं।

बोस ने लिखा भी है कि, 'मेरी दृष्टि में प्रेम सत्ता का तात्विक स्वभाव है। प्रेम का विश्व का सार है और मानव जीवन का तात्विक गुण है। मैं मानता हूं कि यह ध ारणा भी अपूर्व है, क्योंकि मैं वास्तविकता को नहीं जानता और न आज परम सत्य को जानने का दाबा करता हूं। चाहे अन्ततोगत्वा वह ज्ञान और अनुभव द्वारा भले ही साक्षात्कृत की जा सके। फिर भी मेरी दृष्टि में यह सिद्धान्त सब दोषों के बाबजूद अधिकतम सत्य का घोतक है और परम सत्य के सर्वाधिक निकट है।

.............मुझसे लोग पूछ सकते हैं कि मैं इस निष्कर्ण पर कैसे पहुंचा कि प्रेम सत्ता का स्वभाव है। मुझे कहना पड़ेगा कि मेरा ज्ञानशास्त्र परम्परावादी नहीं है। मुझे इस निष्कर्ष पर जीवन के कुछ अंशों में जीवन के सभी पहलुओं का बौद्धिक अध्ययन करके, कुछ अन्तः प्रज्ञा के द्वारा कुछ व्यवहारिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर पहुंचा हूं।

.............मैं अनुभव करता हूं कि 'मुझे अपना जीवन सार्थक बनाने के लिए प्रेम करना चाहिए'। चूंकि जीवन में बहुत कुछ ऐसा देखने को मिलता है जो प्रेम के विरूद्ध हैं इसलिए मेरे इस कथन को चुनौती दी जा सकती है। किन्तु इस विरोधाभास का समाध ान सरलता से किया जा सकता है। सारतत्व की अभी पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हुई है, वह अपने को देश और काल में व्यक्त कर रहे है। प्रेम की सत्ता की भांति, जिसका वह सार है, गत्यात्मक है।''[2]

चूंकि बोस ने सत्ता को प्रेम के रूप में देखा, इससे प्रकट होता है कि सत्ता के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण मानवतावादी था। सत्ता की यह धारणा जो प्रेम को उसका सार मानती है वैष्णव दर्शन के समान है। यह भी सम्भव है कि उन पर अप्रत्यक्ष रूप

1- Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages-144.

2- S.C. Bose - An Indian pilgrim - Pages-142

से ईसाइयत की प्रेम की धारणा का भी प्रभाव पड़ा है। बोस की सत्ता विषयक-धारणा से जिसे उन्होने मैकटैगार्ट से सीखा था, प्रतीत होता है कि उनका दृष्टिकोण अस्तित्ववादी भी है। उन्हें जीवन से अनुराग है।[1]

सुभाष बोस का विचार था कि इस मृत्यु-लोक में प्रत्येक वस्तु नष्ट हो जाती है और नष्ट हो जाएगी, परन्तु विचार, आदर्श और स्वप्न नष्ट नही होते। एक व्यक्ति एक विचार के लिए मरता है परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका विचार हजारो-लाखों के जीवन में अवतरित हो जाता है। यही विकास चक्र की गति का नियम है और इसी नियम के अनुसार एक पीढ़ी के विचार, आदर्श और स्वप्न दूसरी पीढ़ी को उत्तराधिकार में मिलते है। इस संसार में कोई विचार बिना त्याग और बलिदान की मिट्‌टी में तपे फैलता नहीं है।[2]

किसी के लिए भी इससे अधिक सन्तोष की बात और क्या हो सकती है कि वह एक सिद्धान्त के लिए जिया और मरा। एक व्यक्ति के लिए इस ज्ञान से अधिक सन्तोष और क्या हो सकता है कि उसकी भावना के समान भावनाओं वाले व्यक्ति उसके अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए आगे आएंगे। किसी आत्मा को इससे अच्छा पुरूस्कार और क्या मिल सकता है कि उसका सन्देश उसके देशकी पहाड़ियों, घाटियों और मैदानों में फैलेगा और समुद्र पार कर सुदूर देशों में पहुचेगा। जीवन में इससे ऊँची और क्या सफलता हो सकती है कि कोई अपने जीवनोद्‌देश्य के लिए प्राणों की आहुति दे।

अतएव यह स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति त्याग और बलिदान करके घाटे में नहीं रहता। यदि वह इस पृथ्वी पर पृथ्वी की वस्तुओं को प्राप्त नही करता तो वह एक अमर जीवन प्राप्त कर कई गुना लाभ प्राप्त करता है।

यह आत्मा की प्रक्रिया है। व्यक्ति को मरना चाहिए कि उसका राष्ट्र जीवित रहे। आज मुझे मरना चाहिए जिससे कि भारत जीवित रहे और अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर वैभवशाली बने।

(1) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –2,पृष्ठ 97.98.

(2) सुभाष का एतिहासिक वक्तव्य – 9मई 1933, वियना।

............मैं अपने देशवासियों से कहता हूं कि-इस सर्वकालीन नियम को याद रखो कि तुम यदि जीवन प्राप्त करना चाहते हो तो तुम्हें जीवन देना होगा।''[1]

सुभाष बोस को विचारों की सृजनात्मक शक्ति में विश्वास था। कभी-कभी वे इस धारणा को भी स्वीकार करते थे कि विचारों की अन्तः शक्ति स्वंयचालित होती है। 26 जनवरी, 1940 को बोस ने बंगाल के गर्वनर को एक पत्र में लिखा था, 'इस संसार में हर वस्तु नाश को प्राप्त होती है और होगी-किन्तु विचार, आदर्श तथा स्वप्न नहीं होते। किसी एक व्यक्ति को एक विचार के लिए भले ही मरना पड़े-किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त यह विचार हजारों व्यक्तियों के रूप में अवतरित होगा। इसी प्रकार विकास का चक्र घूमता रहता है और एक पीढ़ी अपने विचारों और स्वप्नों को दूसरी पीढ़ी को विरासत के रूप में देती रहती है।''[2]

प्रायः वे आस्तिक भक्त की भांति ईश्वर की महिमा तथा शक्ति का भी अनुभव करते थे और उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि मनुष्य ईश्वर के हाथों में एक लघु मूर्ति है।[3]

सुभाष बोस ने अपने मित्र दिलीप को आध्यात्मिक आदर्शवाद के सम्बन्ध में माण्डले जेल से एक पत्र लिखा था कि-यह कदापि न सोचना कि मेरा दृष्टिकोण संकुचित है। 'अधिक से अधिक प्राणियों का अधिक से मात्रा में कल्याण हो'-इस सिद्धान्त में मेरी आस्था हैं। परन्तु भलाई करने का वह गुण मुझमें कहां ? अर्थनीति के अनुसार मनुष्य के सब काम उत्पादक होते हैं या अनुत्पादक। कौन सा काम शास्त्र के अनुसार उत्पादक हैं और कौन सा अनुत्पादक, इस बात को लेकर बहुत तर्क-वितर्क किया जाता है। मैं तो शिल्प कला को या तत्सम्बन्धी अन्य किसी क्रिया को अनुत्पादक नहीं मानता और दार्शनिक चिन्तन या तत्व जिज्ञासा को निष्फल या निरर्थक मानकर उसकी उपेक्षा भीं नहीं कर सकता।

................मै तो यह बात पूर्णता मानता हूं कि प्रत्येक को अपनी शक्ति से पूर्ण विकास करने का प्रयास करना चाहिए। अपने पास जो उत्कृष्टतम वस्तु हो उसका दान देना ही सच्ची सेवा है। हमारी अन्तः प्रकृति, हमारा धर्म जब सार्थकता प्राप्त कर सकें तभी

(1) सुभाष का एतिहासिक वक्तव्य – 9मई 1933, वियना।

(2) सुभाष चन्द्र बोस– तरुण के स्वप्न (बंगाल के गर्वनर को पत्र – 26जनवरी 1940)

(2) Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages-142.

हम वास्तविकता सेवा के अधिकारी बनते है। इमर्सन की भाषा में कहूं तो हमें सुधार अपने भीतर से ही करने चाहिए। एक आदर्श से प्रभावित होने पर हम सब एक मार्ग पर चलेगे, यह आवश्यक नहीं है। शिल्पी की साधना कर्मयोगी की साधना से भिन्न होती है। तपस्वी की सी साधना विद्यार्थी के लिए उचित नही है।

परन्तु मेरे विचार से इन दोनो के आदर्श एक से है। स्वयं के प्रति सच्चा होने पर कोई भी मार्ग मानव के लिए असत्य नहीं हो सकता। साधना की स्थिति मे मानव को ऐसा जीवन व्यतीत करना पड़ सकता है कि वह बाहर से स्वार्थी दिखाई दे परन्तु उस दशा में मनुष्य विवेक-बुद्धि से प्रेरित होता है, अन्य लोगो के विचारों से नही। जब साधना का परिणाम सामने आता है, तभी लोग स्थायी रूप से उस पर विचार करते है। इस आधार पर यदि आत्म-विकास के वास्तविक मार्ग को ग्रहण किया जाता है तो लोकमत की उपेक्षा की जा सकती है।[1]

धार्मिक विचारो को लेकर सुभाष बोस का दृष्टिकोण बहुत विस्तृत था। अलीपुर सेन्ट्रल जेल से अपनी भाभी को लिखे गये पत्र में कहा था कि-'भगवान हमें लेकर गुड़ियों का नाच करता है। हम लोग पृथ्वी के रंगमंच पर अपना-अपना पार्ट करने आए है। पार्ट खत्म होते ही आवश्यकता समाप्त हो जाएगी। वे हमें रंगमंच से हटा ले जायेगे। इसमें अफसोस करने की क्या बात है ?

पृथ्वी के किसी भी धार्मिक विचार को क्यों न मानों, तुम्हें आत्मा की नश्वरता पर विश्वास करना पडेगा। अर्थात देह के मरने पर भी हमारा सब-कुछ खत्म नही हो जाता है, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा हम हिन्दू हैं, इस बारे में हिन्दू धर्म क्या कहता है, थोड़ा बहुत जानते है। मुसलमान धर्म भी कहता है मनुष्य जब मरता है उस वक्त खुदा के फरिश्ते उसे रूखसत करने आते हैं। ईसाई धर्म कहता है-'Very quickly there will be an end of the here, consider what will become of the next world ?' अर्थात दिन तो तुम्हारे खत्म हो आए, परलोक की बात सोचो।

(1) मित्र दिलीप के नाम सुभाष का पत्र – 9.10.1925 माण्डले जेल

इन तीनों धर्मो में से किसी एक को स्वीकार करने पर मुझे मानना होगा कि मेरी मृत्यु नहीं होगी। मैं अमर हूं। मुझे कोई मारे यह साहस किसी में नहीं है।

सुना है, हम भारतवासी बड़े धार्मिक विचारों वाले है। धर्म के नाम पर हमारे पंडितों की चुटिया खड़ी हो जाती है। तो फिर हम मरने से इतना क्यों डरते हैं? मैं पूछता हूं, धर्म नाम की कोई चीज हमारे देश में है क्या ? जिस देश में दस साल की लड़की को, पचास साल के बूढ़े से धर्म के नाम पर शादी करनी पड़ती हैं। उस देश में धर्म है कहां ?

जिस देश में मनुष्य को छूने से मनुष्य का धर्म नष्ट हो जाता है, उस देश में तो धर्म को गंगा में ले जाकर विसर्जित कर आना चाहिए। सबसे बड़ा धर्म है मनुष्य का विवेक। उसी विवेक की उपेक्षा कर धर्म के नाम पर हम अधर्म के दरिया में बहते चले जा रहे है। एक तुच्छ गाय के लिए हम लड़ मरते है। इसके लिए क्या भगवान ने बैकुण्ट का दरवाजा खोल रखा है या कि खुदा जन्नत में हमें जगह देने वाला है ?

जिस देश को मैं इस जन्म के लिए छोड़ रहा हूं, जिसकी धूल का एक-एक कण मेरे लिए परम पवित्र है, आज बड़े दुख के साथ मै उसी के बारे में यह सब कह रहा हूं।[1]

सुभाष बोस ने इन सब बातों का अवलोकन किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि धर्म मनुष्य का प्राण है किन्तु इसे पाखण्ड क्यों बनाया जाता है। तात्यपर्य यह कि मनुष्य की उन्नति में सबसे भयानक अड़चन है भ्रान्त आदर्श। मनुष्य जब कोई सही या गलत काम करता है तब वह किसी नीति की दुहाई देकर आत्म-सन्तोष पाना चाहता है।

अध्ययन कभी तपस्या नहीं हो सकता। अध्ययन का अर्थ है कुछ पुस्तकें पढ़ लेना और परीक्षाएं पास करना। इसके द्वारा आदमी स्वर्ण पदक प्राप्त कर सकता है-हो सकता है वह ऊँची नौकरी भी पा जाय-पर उसे मनुष्यत्व प्राप्त नहीं हो सकता। पुस्तक पढ़कर हम ऊँचे भाव या आदर्श शिक्षा पा सकते है यह सही है-परन्तु जब तक हम उन भावों

(1) शैलेश डे- मैं सुभाष बोल रहा हूं खण्ड 1(भाभी के नाम सुभाष का पत्र - अलीपुर सेन्ट्रल जेल - 30 जून 1931, कलकत्ता)

को उपलब्ध या हृदयगम कर कार्यरूप में परिणत नहीं करते तब तक हमारा चरित्र-निर्माण हो ही नहीं सकता। तपस्या का उद्देश्य है, सत्य की उपलब्धि-श्रवण, मनन, अनवरत चिन्तन आदि उपायों से सत्य में लीन हो जाना। उस अवस्था को मनुष्य जब प्राप्त करता है तब उसके जीवन में परिवर्तन आता है। वह तब जीवन का वास्तविक अर्थ और उद्देश्य समझ सकता है और अन्तलब्धि नवीन शक्ति तथा प्रकाश के द्वारा वह अपने जीवन को नये प्रकाश में नियन्त्रित कर सकता है। ऐसी साधना में सिद्ध होने के लिए कम उम्र से ही काम शुरू करना आवश्यक है। जब मनुष्य में अदम्य शक्ति और उत्साह होगा, अशेष कल्पना-शक्ति और त्याग की स्पृहा होगी, तब निःस्वार्थ भाव से आदमी प्रेम कर सकता है-तभी वह आदर्श के चरणों पर आत्म-समर्पण कर सकता है-आगे पीछे बिना सोचे-विचारे भावों की अबाध तरंगों में जीवन नौका छोड़ सकता है।

ईश्वर ने मनुष्य भी क्या प्राणी बनाया है? इसे चैन नहीं। न सुख में, न दुख में। कोई बीहड़ों में सुख की तलाश में भटकना पसन्द करता है तो कोई राजमहलों की चहारदीवारियों में। कोई उन्मुक्तता के लिए पहाड़ और घाटियों को तलाशता है तो कोई ऐतिहासिक खण्डहरों को ! तलाश है अपनी-अपनी दृष्टि की।

इस दृष्टि के लिए कौन नही भटकता। बुद्ध, महावीर स्वामी, रामकृष्ण-सभी भटकें, पर वे जो पाना चाहते थे उसे पाकर रहे।

सुभाष बोस! भी अपनी इसी आध्यात्मिक प्यास के निमित्त भटके। उनके विचारों का दर्शनिक आधार ही उनका आध्यात्मिक आदर्शवाद था। अन्ततः सुभाष बोस ने भारत को 'आध यात्मिकता का स्रोत'' कहा था। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि आध्यात्मवादी विचार उनमें प्रधान थे और वे क्रान्तिकारियों से बहुत निकट सम्बन्ध रखते थे। यानि वे राष्ट्रीयता और आध्यात्मिकता को विल्कुल अलग नही करते थे।

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है,-तिलक, अरविन्द, गांधी जिस कोटि के राष्ट्रीय नेता थे, सुभाष बोस भी उसी कोटि में पड़ते हैं।

२. सामाजिक यथार्थवाद : कर्मवाद पर विश्वास

हम बगिया में काम करते है, लेकिन वहां के फल-फूल पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। जो भी फल वहां होते है उन्हे हम उसके (ईश्वर के) चरणों में अर्पित कर देते हैं। हमें केवल काम करने का अधिकार है, कर्म ही हमारा कर्तव्य है। कर्म फल का स्वामी वह है, हम नहीं।

-माता प्रभावती देवी को पत्र (सन् 1912)

'मुक्त आकाश की कल्पना करना बहुत सुखद बात है पर उससे जुड़ी निस्सीमता अच्छे भलों को थर्रा देती है। बहुत कम होते है जो अज्ञात और प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझ पाने की क्षमता रखते हों। अपमान और असफलताऐं भी उन्हें डिगा नहीं पातीं। वे कर्मयोगी होते हैं और ऐसे कर्मयोगी सब नहीं हो सकते। ऐसे ही एक कर्मयोगी थे सुभाष बोस!''[1]

यद्यपि अपनी किशोरावस्था में बोस वेदान्त दर्शन के प्रशंसक थे, किन्तु धीरे-धीरे वे सामाजिक तथा राजनीतिक यथार्थवादी बन गए। तिलक की भांति वे भी कर्म के समर्थक थे। वे आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता की प्रविधियों को अपनाने के पक्ष में थे। विवेकानन्द की भांति उनका भी विश्वास था कि अतिशय अहिंसा भारत के पराभव के लिए उत्तरदायी थी। भारत की शक्ति के ह्रास के कारणो का विश्लेषण करते हुए बोस ने लिखा था,

-'अन्त में वह क्या चीज है जिसके कारण भारत का भौतिक तथा सामाजिक क्षेंत्रों में पतन हुआ है ? उसका भाग्य तथा अतिप्राकृतिक शक्तियों में विश्वास, आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के सम्बन्ध में उसकी उदासीनता, आधुनिक युद्ध-विज्ञान में उसका पिछड़ापन, उसके परवर्ती दर्शन से उत्पन्न शान्तिमय सन्तोष की भावना तथा अहिंसा का पालन जो हास्यपद सीमा तक पहुंच गया है-ये सब भारत के पराभव के कारण है।''[2]

बोस ने कहा कि मैने गीता पढ़ी है, उसे पढ़कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि कर्म प्रधान है। काम करना चाहिए और वह भी ऐसा कार्य जो श्रेष्ठ हो, जिसकी आवश्यकता

(1) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा - भाग -1,पृष्ठ 72

(2) Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - (1920-1934) Pages-192

हो। भगवान् श्रीकृष्ण ने कुरूक्षेत्र के मैदान में अर्जुन का मोह दूर किया, उन्हे सिखलाया कि अहं ब्रह्मास्मि।' मैं ही ब्रह्मा हूं।'' धर्म युद्ध के वे प्रेरक थे। मोह से दूर थे और अपने कर्तव्य के प्रति पूर्णतया जागरूक थे।

सुभाष किसी समय विरक्ति के जाल में उलझकर साधना की ओर उन्मुख हुआ था किन्तु शीघ्र ही वह 'कर्म' ही साधना है' के तत्व को समझकर कर्मयोगी बनकर लौट आया था। उसकी अध्ययन प्रवृत्ति एवं गहन मीमासांपूर्ण रूख को सभी समझते थे। उसने सहयोगी अरविन्द की आलोचना की और कहा कि उन जैसा मार्ग अपनाने का विचार वह कभी का छोड़ चुका था। उस वक्त यह साहस केवल सुभाष ही कर पाया था।

सुभाष का तो अब दृढ़ मत बन चुका था कि अपना सब कुछ लोकहितार्थ अर्पण कर दो। जन सेवा और मातृभूमि की सेवा ही सर्वश्रेष्ठ है तथा आत्मविकास का एकमात्र साधन है। संघर्षो से न जूझकर, किसी एकान्त कोने में बैठकर आत्मविकास का मार्ग तय करना एकांगी नहीं तो और क्या है ?[1]

जब तक गांव में दूसरों के प्रति दुख का मोल नहीं समझा जाएगा तब तक सेवाकार्य सम्भव नहीं है। वह सार्थक तभी होगा जब कार्यकताओं में परजनहितार्थ संवेदना एवं सहानुभूति जागेगी।

सुभाष बोस ने निर्धन परिवार में जन्म् नहीं लिया था। उनके पिता जानकीनाथ बोस मशहूर सरकारी वकील थे। अमीरी जब विरासत में मिलती है तो निर्धन होने पर भी उसकी गंध नही जाती। ऐसे ही जब गरीब अमीर हो जाता है तो आदतों से पहचान लिया जाता है कि वह पहले गरीब रहा होगा, किन्तु बालक सुभाष को अपनी सम्पन्नता का तनिक भी गर्व–गुमान न था। वे जीवन की मूल समस्याओं का हल खोजना चाहते थे।[2] किसी धर्म–प्रचारक को देखते ही अलाप–आलोचना करने बैठ जाते। समाज सेवा के लिए सदा तत्पर रहते। छुट्टियों में आस–पास के गांवों में पहुंच जाते। अपने दल की सहायता से हर रविवार को रूपया और अनाज इकट्ठा करके जरूरत मन्दो में बाटते।[3]

छात्र–वर्ग के विभिन्न क्रियाकलापों तथा वाद–विवाद प्रतियोगिताओं का संयोजन, अकाल एवं बाढ़ सहायता निधि का संग्रह, अधिकारियों के समक्ष विद्यार्थियों का प्रतिनिधित्व तथा

---

(1) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –2,पृष्ठ 25–26

(2) Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages-45

साथी विद्यार्थियों के साथ दौरे पर जाने में सुभाष संलग्न रहने लगे। फलतः शीघ्र ही उनकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियां घटने लगी।[1]

अन्य कोई काम न होने से वह पुनः समाज-सेवा में प्रवृत्त हो गए। विशेषकर हैजा या चेचक संत्रस्त समाज के निर्धन वर्ग की सेवा करने और इन महामारियों से मरने वालों के अंतिम संस्कार के लिए धन जुटाने में।

एक बार जाजपुर में हैजा फैला। सैकड़ों लोग भयानक मौत मर रहे थे। इस वक्त अपने भी पराए हो रहे थे क्योंकि हरेक को अपने प्राणों का मोह था। सरकार नींद ले रही थी। 12-13 वर्ष के सुभाष के लिए यह अवसर समाज सेवा का था। उसके मस्तिष्क में एक ही बात थी कि उन जरूरतमन्द लोगों को मदद् की आवश्यकता है।

घर में सूचना दिये बिना सुभाषचन्द्र रोगियों की सेवा के लिए निकल गये। यों तो दल कोई महती सेवा न कर सका, किन्तु एक सप्ताह बाद जब वे घर लौटे तो कुण्ठा ग्रस्थ थे। उनका कहना था कि,-'एक हफ्ते के अनुभव ने मेरे नेत्रों के समक्ष भारत का वास्तविक चित्र उभार दिया-वह भारत जिसके गांव में निर्धनता का राज है, जहां गांव वाले मक्खियों की तरह मरते रहते हैं, चारों तरफ मूढ़ता ही मूढ़ता है। वे सोचने लगे कि यदि विश्व में इतना कष्ट, इतनी पीड़ा है तो योग साधना का क्या लाभ! उनका अन्तस् वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह करने को व्यग्र हो उठा।''[2]

सुभाष को दया माता-पिता से विरासत में मिली थी। उन्होने लिखा है कि कॉलेज से घर आते जाते रोज किसी भिखारिन को देखते। मन वेदना से तड़प उठता अपने को दोषी ठहराते कि इन्हें तो सब प्रकार की सांसारिक सुख-सुविधाएं उपलब्ध है। तीन मंजिला मकान रहने को और बेचारी के पास न खाने को अन्न है, न सिर पर छत'। क्या करते ? ट्राग छोड़कर पैदल आना-जाना शुरू कर दिया और ट्राम के किराये के पैसे उसे देने लगे।[3]

सुभाष ने किशोरावस्था में ही गरीबों और पीड़ितों की सेवा के लिए अपने साथियों का एक दल बना रखा था। कॉलेज में एक दिन अवकाश भी होता तो ये लोग गेरूआ वस्त्र पहनकर दूर-दूर निकल पडते और आवश्यकतानुसार लोगों की सेवा-शुश्रूषा में जुट जाते।

---

(1) स0बचनेश त्रिपाठी – अगार पुरुष – सुभाष चन्द्र बोस, पृष्ठ 17

(2) Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages-76

(3) Ibid - 82

जहां कहीं भी योग एवं साधना शिविर चलते सुनते वहीं उपस्थित हो जाते। विद्यार्थी मुट्ठी भर थे।[1]

प्लेग और हैजा फैलने पर वे अपने दल के साथ गांवों में चले जाते थे और बिना किसी भय के पीड़ितो की सेवा किया करते थे। माता-पिता के मना करने पर भी वे रोग-पीड़ितो की सेवा करना छोड़ते नहीं थे। गरीबों के प्रेम के ही कारण सुभाष अंग्रेजी कपड़े छोड़कर साधारण कपड़े पहनने लगे थे।

एक बार सुभाष ने अपने एक गरीब साथी को अपने बंगले पर मिलने के लिये बुलाया। जब वह बंगले के फाटक पर गया, तो ठाठ-बाट को देखकर बंगले के भीतर प्रवेश करने का साहस उसमें नहीं हुआ। वह लौट गया। सुभाष ने जब न आने का कारण पूछा, तो उसने कहा-'भाई, तुम्हारे बंगले में तो सभी लोग बड़े ठाट-बाट से रहते है। मेरा तो तुम्हारे बंगले के अन्दर प्रवेश करने का साहस ही नहीं हुआ।'' साथी की बात का सुभाष के ह्रदय पर गहरा प्रभाव पडा। उनके गरीब मित्र बिना किसी संकोच के उनसे मिल सके, इसलिए वे भी अपने मित्रो के समान ही साधारण कपड़े पहनने लगे थे।

सुभाष बोस भौतिक सुखों को वास्तविक सुख नहीं मानते थे। इसलिए कलकत्ता का वास्तविक जीवन उन्हें गरीब देश पर एक बोझ अनुभव होने लगा इसी समय डॉ. सुरेश बैनर्जी ने राष्ट्रसेवा के निमित्त एक संस्था का निर्माण किया। संस्था मूल रूप से नवयुवको के सहयोग पर खड़ी थी। इस संस्था में केवल वही नवयुवक सदस्य बन सकते थे जो मातृभूमि की सेवा के निमित्त आजीवन अविवाहित रहने का संकल्प करें। सुभाष इस संस्था के प्राणवान सदस्य बन गए। जन-सेवा का ध्येय प्रमुख हो गया।[2] सुभाष ने अपना लक्ष्य 'मानव जाति की सेवा करना' बनाया। क्योकि सुभाष का मानना था कि इसी से मनुष्य का भला हो सकता है और यही सच्ची शिक्षा है।

सुभाष के मन में यह विचार कौंधने लगता कि,-'इसके लिए क्या ऊचा पद ही आवश्यक है ? विवेकानन्द परमहंस और अन्य कई महापुरूषों ने कौन-कौन से ऊचे पद प्राप्त किए थे ? लेकिन वे फिर भी वह पद पा गए जो दूसरा नही पा सकता।''

एक बार सुभाष अपने मित्र सावंत से बोले कि, 'हम अनुकरण किसका करें? बुद्ध,

(1) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 60,61

(2) डा0 वीरेन्द्र शर्मा, क्रान्ति का देवता! सुभाष चन्द्र बोस – पृष्ठ – 519

महावीर, गोखले, तिलक, रामकृष्ण, अरविन्द, विवेकानन्द................किसकी जीवन शैली को हम अपनाऐं ?'' यह निर्णय तो तुम्हें करना, भाई। फिर भी कर्तव्य के निर्णय के विषय में अगर शंका हो जाए तो उत्तम विचार वाले सत्कर्म और सदाचार में सलंग्न, स्नेहपूर्ण स्वभाव वाले तथा उचित परामर्श देने में दक्ष विद्वान पुरूषों का आचरण देखकर उसका अनुकरण करो।[1]

प्रथम विश्व युद्ध ने सुभाष के इस विचार को दृढ़ कर दिया कि सैन्य शक्ति विहीन राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की आशा नहीं कर सकता।[2] अतः सुभाष ने अपनी पढ़ाई पूरी लगन से प्रारम्भ कर दी और भारतीय-रक्षा-सेना (प्रादेशिक सेना) की यूनिवर्सिटी इकाई में भर्ती हो गए।

फोर्ट विलियम के निकट प्रशिक्षण शिविर में खाकी वर्दी पहनकर उन्होने रायफल की ट्रेनिंग ली। अपने इस परिवर्तन में भी उन्होने विशेष योग्यता प्रदर्शित की-कहां तो भगवा वस्त्रधारी साधु के चरणों में प्रणति और कहां रायफल रखे खड़े अंग्रेज अधिकारी से आदेश लेते हुए। उन्हें नए रोमांच का अनुभव हुआ, जब वह अन्य प्रशिक्षणर्थियों के साथ पथ-संचालन (मार्च) करते हुए रायफल लेने फोर्ट विलियम में घुसे। एक भारतीय के रूप में फोर्ट विलियम के द्वार उनके लिए बन्द थे, किन्तु एक सैनिक के रूप में खोल दिए गए थे। नगर के मध्य से पथ-संचालन (रूट-मार्च) के समय उन्होने गौरव का अनुभव किया और इस प्रकार जन-सेवा (कर्म) को अपना लक्ष्य बनाया।

सुभाष बोस को रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखे पत्र में कर्मवाद की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि-सुभाषचन्द्र! मैन राजनीति का वह प्रभात देखा है, जिसमें तुम्हारी राजनीतिक

---

(1) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 78

(2) बचनेश त्रिपाठी , अंगार पुरुष – सुभाष चन्द्र बोस – पृष्ठ 18

साधना का जन्म हुआ।..................उस अनिश्चित ऊषाकाल की पूर्व अवस्था में मेरे हृदय में एक अविश्वास था और आज जिस रूप में मध्याहन के सूर्य के समान उज्जवल तुम तप रहे हो, ऐसा भी संभव है; इनके प्रति मेरे हृदय में हिचकिचाहट रही हो।............आज जो भी कार्य तुम्हारे हाथ में रहता है उसे तुम परिपक्व मस्तिष्क एवं पूर्ण जीवनीशक्ति के साथपूर्ण कर रहे हो।

'तुम्हारे दृढ़ संकल्पयुक्त साधनामय संदेश से देशवासी जीवंत विजय प्राप्त करना सीखें और तुम्हारी जीवन-पद्धति और कार्यप्रणाली से प्रेरणा प्राप्त करें। बंगाल अपने दृढ़ एवं एक स्वर में कहे 'आओ तुम्हारे लिए मुक्तिदाता का आसन बिछा पड़ा है'.................और वह तुम्हारे माध्यम से अपने सुख-दुख के दिनों में अपनी प्रतिष्ठा पुनः स्थापित कर तुम्हें अपने नेता का सम्मान प्रदान करें।'[1]

सुभाष बोस ने अपनी कर्मवाद पर आस्था इन शब्दों में व्यक्त की है कि-

'मेरा अपना ख्याल यह है कि अंग्रेज उस वक्त तक हिन्दुस्तान को नहीं छोड़ेगे जब तक हिन्दुस्तान में एक खूनी क्रान्ति न हो जाएगी। उन्होने आज तक कभी किसी मुल्क को सीधे हाथों आजाद नही किया। फिर हिन्दुस्तान को वे किस तरह आसानी से छोड़ देगे।''[2]

सत्य की खोज में भटकते सुभाष को विचारमग्न देखकर रामकृष्ण मिशन के स्वामी ब्रह्मानंदजी बोले-तुम घर लौट जाओं और संयम, विवेक, धीरता से कर्मक्षेत्र में जुट जाओं, तटस्थ भाव से। योग और साधना तुम्हारे भाग्य में नही है। हां, कर्मक्षेत्र में तुम उच्च स्थिति प्राप्त करोगे।''[3]

सुभाष बोस के शब्दों में, कभी-कभी तो मुझे ऐसा भान होता है कि में अंधेरे में कुछ टटोल रहा हूं, परन्तु जब तक मैं सच्चाई और ईमानदारी को नही छोड़ता तब तक में गलत मार्ग पर जा ही नहीं सकता। यह सम्भव है कि सत्य की ओर मेरी प्रगति सीधी न होकर टेढ़ी-मेढी हो। आखिर जीवन का प्रयास सीधे थोड़े ही होता है। पूरा सीधापन तो केवल एक सीधी रेखा में ही हो सकता है।

यदि कर्म की व्याख्या विस्तृत दृष्टिकोण से करें तो परमात्मा ने हमें कार्य करने के लिए अलग-अलग क्षेत्र नियत नही किए हैं, और क्या यह क्षेत्र हमारे पूर्वजन्म के संस्कारों,

---

(1) सुभाष चन्द्र बोस को रविन्द्र नाथ ठाकुर का पत्र,मई 1939 , कलकत्ता

(2) बचनेश त्रिपाठी , अंगार पुरुष – सुभाष चन्द्र बोस – पृष्ठ 22

(3) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 119

हमारी वर्तमान इच्छाओं और हमारे वातावरण के अनुसार हमें नहीं मिला है ? फिर भी हमारे लिए अपने कार्यक्षेत्र को पहचानना अथवा उसकी अनुभूति करना कितना कठिन कार्य हैं। यह कार्य-क्षेत्र हमारे धर्म का बाह्य रूप है। कहना तो बड़ा सरल है कि-'स्वधर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करो।'' परन्तु यह जान लेना बहुत ही कठिन है कि हमारा धर्म क्या है? यहीं पर आकर 'गुरू' की आवश्यकता पड़ती है, अपितु मैं तो यह कहूंगा कि उनके बिना काम ही नहीं चल सकता।

सुभाष तो निष्फिक्र होकर कर्मरत, चिंतनरत था।

शरीर को धर्म का साधन माना जाता है। कोई भी श्रेष्ठ कर्म शरीर के अभाव में नहीं किया जा सकता।

'जीव कामना का बना हुआ है। उसकी जैसी कामना और इच्छा होती है, वैसा ही वह कार्य करता है। जैसा कर्म करता है उसके अनुरुप फल को प्राप्त हो जाता है। जीव अपने कर्म के साथ आसक्त हुआ अपने सूक्ष्म शरीर मे उस लोक को चला जाता है, जहां उसका मन निविष्ट होता है। वह अन्नयम, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय आदि लोको में कर्मानुसार जाता है और वहां अंत हो जाने पर उस लोक से फिर कर्म करने लिए यहां चला आता है।''अर्थात यही था सुभाष का कर्मवाद।''

संक्षेप में सुभाष के कर्मवाद में अटूट विश्वास से यही निष्कर्ष निकलता है कि -''निष्क्रिय कर्महीन, गतिहीन जीवन मृत्युतुल्य है। विफलता की लहरों से आक्रान्त होकर मुंह छिपा लेना कायरता है। थोड़ी सी सफलता से संतोष पाकर शान्ति से बैठ जाना भी मनुष्य को शोभा नहीं देता। उसे तो अपना जीवन अग्निशिखा के सदृश उज्जवल बनाना होगा, तभी मनुष्य................कर्मयोगी बन सकेगा। एक ऐसा कर्मयोगी जिसका लक्ष्य जन सेवा हो। जरूरत है मार्ग और दिशा निश्चित करने तथा पूरी सद्इच्छा से उस पर चलने की।

सुभाष चन्द्र बोस के राजनैतिक विचारों का विकास-एक दृष्टि में

महात्मा गांधी जनवरी 1915 में दक्षिण अफ्रीका से सफल सत्याग्रही की ख्याति प्राप्त कर भारत आये थे। श्री पोलक के अनुसार 'गांधी जी अफ्रीका से अपने साथ जीवन का एक विशिष्ट दर्शन तथा विशिष्ट राजनैतिक पद्धति लाये थे। भारतीय जनता गांधी जी से प्रभावित थी। गोखले, तिलक, फिरोजशाह मेहता की मृत्यु तथा सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, विपिन चन्द्र पाल के उत्साह में कमी हो जाने के कारण भारतीय राजनीति का नेतृत्व 1918 के लगभग स्वतः गांधी जी के हाथों में आ गया।

प्रारम्भ में गांधी जी ब्रिटिश शासन के सहयोगी थे। इसी विचारधारा के कारण महात्मा गांधी ने भारतीय जनता से युद्ध काल में ब्रिटिश सरकार का पूरा-पूरा सहयोग करने की अपील की थी। किन्तु इसके बाद भारतीय राजनीति में कुछ ऐसी घटनायें जिनमें रौलेट एक्ट, जलियावाला बाग हत्याकाण्ड, हण्टर कमीशन की रिपोर्ट तथा खिलाफत का प्रश्न सम्मिलित है, घटित हुई जिनसे प्रभावित होकर महात्मा गांधी ने असहयोगी का रूप धारण कर लिया।

महात्मा गांधी जैसे गम्भीर और विनम्र राजनीतिज्ञ का जिसका ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश जनता पर अगाध विश्वास था, यकायक ब्रिटिश सरकार को शैतान कहने लगे तथा देश को असहयोग के लिए तैयार करने लगे।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जो असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ होने के समय इग्लैण्ड में थे, का "राजनैतिक जीवन में प्रथम प्रवेश इसी आन्दोलन के मध्य हुआ।" नेताजी ने इस आन्दोलन की नीतियों के तहत आई0सी0एस0 से त्यागपत्र दे दिया तथा कहां कि मेरा दो मालिकों के नीचे काम करना सम्भव नहीं होगा।'[1]

सुभाष बोस गांधी जी के इस आन्दोलन में पूर्ण मनोयोग से भाग तो ले रहे थे लेकिन उन्हें गांधी जी द्वारा एक वर्ष में स्वराज्य की प्राप्ति के मामले में आपत्ति थी। उनका मानना था कि ब्रिटिश शासन इतनी जल्दी घुटने टेकने वाला नहीं है। लेकिन जब अचानक गांधीजी द्वारा आन्दोलन वापस लेने की घोषणा की गयी तो सुभाष चन्द्र बोस हतप्रभ हो गये तथा कहा कि ठीक उस समय जबकि जनता का उत्साह चर्मोत्कर्ष पर था वापस

---

(1) सूर्य नारायण सक्सेना, नेता जी सम्पूर्ण वाड्मय– भाग2 : पृष्ठ 121

लौटने का आदेश दे देना राष्ट्रीय दुर्भाग्य से कम न था।

इस प्रकार नेताजी और गांधी जी के विचारों में प्रारम्भ से ही मतांत्तर होने लगा लेकिन तभी कांग्रेस के अन्दर ही सी0आर0दास तथा मोतीलाल नेहरू ने खिलाफत स्वराज्य दल की स्थापना कर दी, जिसमें नेताजी ने हिस्सा लेना प्रारम्भ कर दिया।

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस चित्तरंजन दास से बहुत प्रभावित थे। इसी कारण वे 'स्वराज्य पार्टी' से जुड़ गये।[1] तथा उनकी नीतियों के समर्थन में पूर्ण मनोयोग से कार्य करने लगे। स्वराज्य पार्टी ने अपने विचारों को जन-जन तक पहुंचाने के लिए 'फारवर्ड' नामक पत्र निकाला जिसका सम्पादन सुभाष चन्द्र बोस करते थे।

कौंसिलों तथा परिषदों के चुनाव में नेताजी ने कठिन परिश्रम किया किन्तु स्वंय उम्मीदवार नही बने। कलकत्ता कार्पोरेशन में स्वराज्य दल का बहुमत होने पर बोस को कारपोरेशन का आफीसर बनाया गया। उस समय नेताजी की उम्र 27 वर्ष की थी। यह पद इसके पूर्व किसी भी भारतीय को नहीं मिला था। इसलिए सरकार ने इसमें अड़चन पैदा की। इस पद की नियुक्ति के लिए सरकार की अनुमति की आवश्यकता थी जो बड़ी कठिनाई से प्रदान की गई।

उसी समय सरकार ने बंगाल आर्डिनेन्स बिल पास किया जिसका स्वराज्यवादियों ने नेताजी के नेतृत्व में विरोध तथा प्रदर्शन किया। जिसके कारण सरकार ने नेताजी को बन्दी बना लिया। जनता ने जब सुभाष बोस के दोष के बारे में जानना चाहा तो सरकार ने कहा-यह क्रान्तिकारियों के सलाहकार है। सरकार ने उन पर मुकद्‌दमा भी चलाया किन्तु फिर भी अभियोग साबित न कर सके और न ही सुभाष बोस को मुक्त किया।

सन् 1926 ई0 में कौंसिल का नया चुनाव हुआ। स्वराज्य दल ने सुभाष बोस को खड़ा किया। जेल में रहने के बाबजूद नेताजी चुनाव में विजयी हुए। विजयी होने के बाद उनकी रिहाई का प्रश्न कौसिल में रखा गया लेकिन सरकार अपने निर्णय से टस से मस न हुई।

जेल में सुभाष बोस का स्वास्थ्य इतना गिर गया कि लाचार होकर उन्हें बिना शर्त छोड़ दिया।

---

(1) सुधीर शर्मा,भारत के कर्णधार,- पृष्ठ 12

साइमन कमीशन बहिष्कार को सफल बनाने में भारतीय नौजवानों की अत्यन्त सक्रिय भूमिका थी। इस आन्दोलन से युवा वर्ग तथा छात्रों के बीच से जवाहर लाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस नेता के रूप में उभरे।[1] युवा वर्ग के मध्य से नेता के रूप में उभरे सुभाष बोस ने कमीशन का विरोध किया ही साथ ही विरोध के लिए सारे देश का दौरा भी किया।[2]

इस वर्ष कांग्रेस अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। इस अधिवेशन में 'नेहरू रिपोर्ट' पेश की गयी, जिसका नेताजी सुभाष बोस तथा जवाहर लाल नेहरू ने उग्र विरोध किया। महात्मा गांधी ने मध्यस्थता करके समझौता कराया कि 'ब्रिटिश सरकार को एक वर्ष यानि 31 दिसम्बर 1929 तक मोहलत दी जाये। यदि इस बीच में वह भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य न दे तो फिर कांग्रेस पूर्ण स्वतंत्रता के लिए युद्ध आरम्भ कर देगी। गांधी जी के इस मध यस्थता से जवाहर लाल नेहरू सहित अन्य लोग सनतुष्ट हो गये किन्तु सुभाष बोस सन्तुष्ट नही हुए। वे ब्रिटिश सरकार को कोई मोहलत न देकर तुरन्त युद्ध आरम्भ करने के पक्ष में थे।[3]

पूर्ण स्वराज्य की मांग को लेकर नेताजी तथा गांधीजी के विचारों में मतभेद हो गया था फिर भी नेताजी ने गांधी जी के नमक तोड़ो आन्दोलन का पूर्ण समर्थन ही नही किया बल्कि आन्दोलन को सफल बनाने के लिए बंगाल प्रान्त का नेतृत्व भी किया तथा 21 अप्रैल को नमक कानून तोड़कर गिरफ्तार भी हुए।[4] नेताजी को अलीपुर जेल में रखा गया। सुभाष बोस ने गांधी जी की एतिहासिक यात्रा की तुलना 'इल्बा से लौटने पर नेपोलियन के पेरिस मार्च तथा मुसोलिनी के राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने हेतु मार्च से की है।

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस प्रारम्भ से ही ब्रिटिश सरकार से किसी भी प्रकार की बातचीत के पक्ष में नहीं थे। किन्तु जब कांग्रेस कार्यकारिणी द्वारा लन्दन में आयोजित गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने का प्रस्ताव पारित किया गया तो सुभाष बोस ने कहा कि 'गांध ी जी ने अनजाने में भारत को बेच दिया है।''[5] सुभाष बोस को इस बात का पूरा आभास था कि ब्रिटिश सरकार यह सम्मेलन मात्र इस कारण से आयोजित कर रही है कि कांग्रेसियों के मध्य दरार डाली जा सके तथा दिन-प्रतिदिन जोर पकड़ते जा रहे आन्दोलन को रोका

(1) सूर्य नारायण सक्सेना, नेता जी सम्पूर्ण वाड्मय- भाग 2 पृष्ठ 84
(2) व्यथित हृदय, स्वीधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी सेनानी- पृष्ठ 160
(3) सुधीर शर्मा, भारत के कर्णधार - पृष्ठ 14-15
(4) व्यथित हृदय, स्वीधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी सेनानी- पृष्ठ 160'161
(5) Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-275

जा सके।

सम्भवतः ब्रिटिश अपने इरादों में सफल भी रहे क्योंकि सम्मेलन में गांधी जी द्वारा रखी गयी अनेक समस्याओं में से किसी का भी समाधान करने का प्रयास नहीं किया गया।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन की असफल वार्ता के उपरान्त भारत वापस आकर गांध ी जी ने कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक बुलाई। सुभाषचन्द्र बोस उसके सदस्य नहीं थे। उनको विशेष निमन्त्रण पर गांधी जी ने बुलाया था।[1] सरकार ने कांग्रेस को अवैध घोषित करके जब नेताओं को गिरफ्तार करना प्रारम्भ कि तो उसमें नेताजी सुभाष बोस भी सम्मिलित थे।

सुभाष बोस को पहले से ही याक्षमा की शिकायत थी। जेल जाकर यह और बढ़ गयी। ऐसी दशा में सरकार ने उन्हें सर्शत छोड़ने का निश्चय किया किन्तु बोस सरकार की किसी भी शर्त को मंजूर करने के पक्ष में नहीं थी। जब नेताजी का स्वास्थ्य अधि ाक खराब होने लगा तो डॉक्टरों की सलाह पर नेताजी ने सरकार की यह शर्त कि रिहा होकर वे विदेश चले जायेंगे मान ली तथा अपनी चिकितस हेतु नेताजी आस्ट्रिया की राजध ानी वियना रवाना हो गये। वहां उन्होने 'भारत में साम्यवादी संघ स्थापित करने की योजना बनायी।

सुभाष चन्द्र बोस जब योरुप प्रवास से वापस आये तो उसी समय ब्रिटिश सरकार ने 1938 का भारत सरकार अधिनियम पारित किया था। बोस ने इस अधिनियम का जमकर विरोध किया था, जिससे नेताजी की ख्याति और भी अधिक फैल गयी। इसी क्रम में 1998 में कांग्रेस का अधिवेशन हरिपुरा में हुआ जहां पर सुभाष बोस को कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। उस समय उनकी उम्र 41 की थी।

सन् 1939 में वे गांधीजी तथा कांग्रेस के दक्षिणपंथी पक्ष के प्रत्याशी डॉ0 पट्टाभि सीतारमैय्या को परास्त करके त्रिपुरा कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इस विजय ने उन्हें राजनीतिक उत्कर्ष के उच्च शिखर पर पहुंचा दिया। चूंकि उनका यह चुनाव गांधी के विरूद्ध हुआ था। इस कारण गांधीजी ने कांग्रेस से त्यागपत्र देने की घोषणा की। लेकिन सुभाष

(1) सुधीर शर्मा, भारत के कर्णधार – पृष्ठ 16

बोस यह नहीं चाहते थे कि गांधीजी कांग्रेस से पृथक हो अतः उन्होने स्वयं ही अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया तथा 'फारवर्ड-ब्लाक' की स्थापना की।

कांग्रेस से पृथक होने पर सुभाष बोस ने 'फारवर्ड ब्लाक' प्रचारित एवं प्रसारित करने के उद्देश्य से सम्पूर्ण देश का दौरा किया। वे जहां भी गये बड़े जोरो से उनका स्वागत किया गया। सारे देश में 'फारवर्ड ब्लाक' की शाखायें स्थापित हो गयीं। द्वितीय विश्व युद्ध के समय कांग्रेस से अलग होने के बाद भी सुभाष बोस ने गांधी जी तथा पं० नेहरू से स्वतंत्रता की अन्तिम लड़ाई लड़ने की अपील की। किन्तु उनकी अपील को दोनों नेताओं ने अस्वीकार कर दिया। जिससे नेताजी को अत्यधिक आधात लगा।

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस अपने को देश सेवक ही समझते थे। उन्होने कालान्तर मे गांधीजी को संकेत दिया था कि आजादी के बाद बहुत से राजनीतिज्ञ निवृत्ति लेना चाहेंगे। उनका अपनी तरफ स्पष्ट संकेत था। उनके व्यक्तिगत पत्रों, लेख-निबन्धों, ग्रन्थों से कहीं संकेत नहीं मिलता कि वे पार्टी बनाकर कांग्रेस को कमजोर बनाना चाहते थे। यदि उन्हें नेता बनने की अभिलाषा होती तो कोई शक्ति उनके पथ में बाधा नहीं डाल सकती थी।
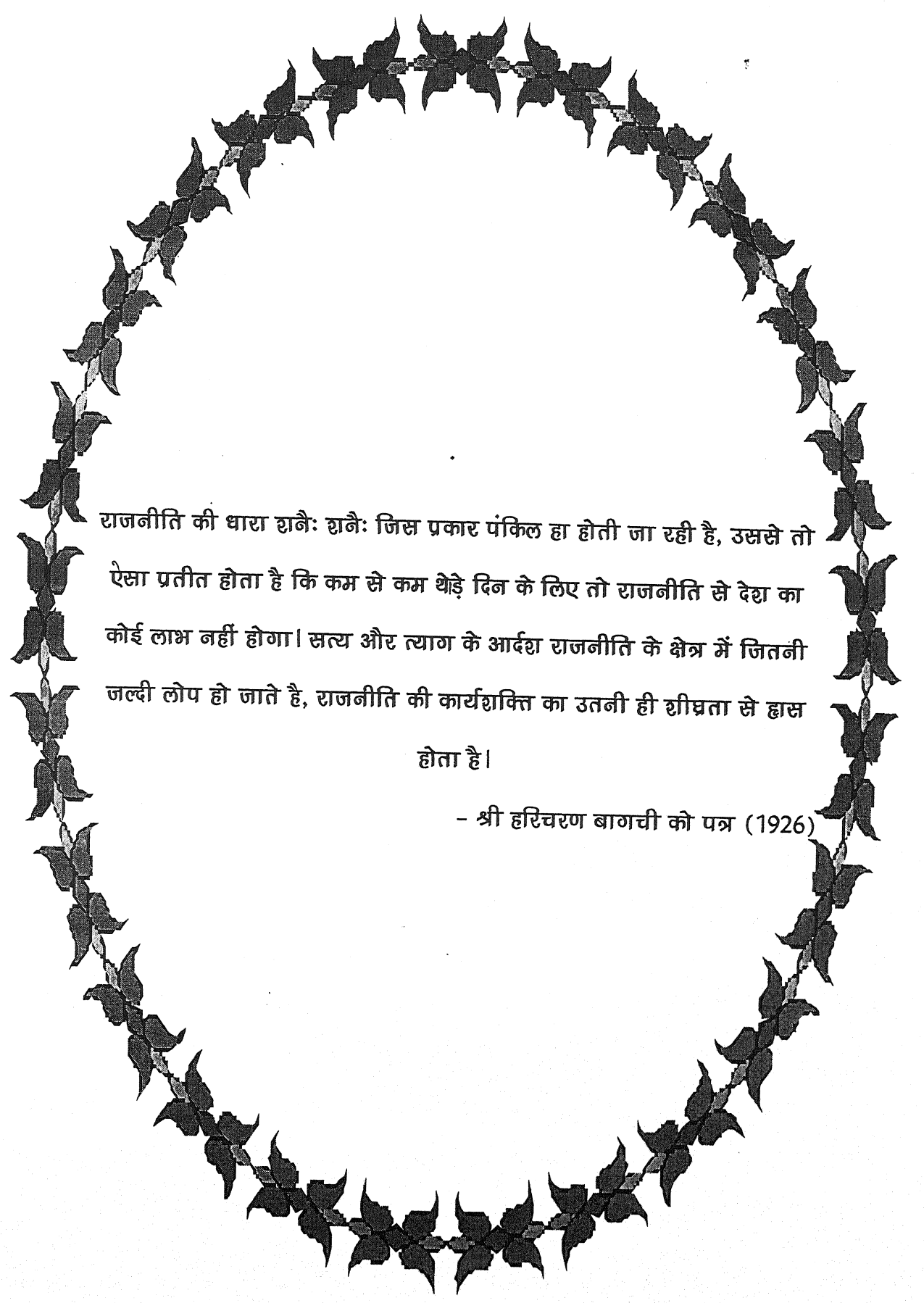
तृतीय अध्याय

सुभाष चन्द्र बोस के राजनीतिक विचार

POLITICAL THOUCHT OF SUBHAS BOSE

1- कांग्रेस का युवा आन्दोलन

2- सुभाष का असहयोगवाद

3- स्वराज्यवादी विचार

4- राष्ट्रवाद एवं स्वतंत्रता पर विचार

राजनीति की धारा शनैः शनैः जिस प्रकार पंकिल हा होती जा रही है, उससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि कम से कम थेड़े दिन के लिए तो राजनीति से देश का कोई लाभ नहीं होगा। सत्य और त्याग के आर्दश राजनीति के क्षेत्र में जितनी जल्दी लोप हो जाते है, राजनीति की कार्यशक्ति का उतनी ही शीघ्रता से ह्रास होता है।

– श्री हरिचरण बागची को पत्र (1926)

सुभाष चन्द्र बोस के राजनीतिक विचार

16 जुलाई 1921 को जहाज बम्बई बन्दरगाह पर पहुचा। बाईस महीने अनुपस्थित रहने के उपरान्त जब सुभाष बोस ने देश की धरती पर पॉव रखा, ब्रिटिश सरकार के अत्याचार और अनाचार से देश की छाती छलनी हो चुकी थी। 'रॉलट एक्ट' (18 मार्च1919), जलिवालावा बाग का हत्याकाण्ड' (13 अप्रेल 1919) पंजाब में सैनिक कानून' (मार्शल ला) 'हण्टर कमेटी की रिपोर्ट', मोण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार-योजना, खिलाफत नेताओं के साथ नृशंस व्यवहार आदि के कारण भारत तड़प रहा था। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद से देश की नयी पीढ़ी व्यग्रता से किसी पथ-प्रदर्शक 'मसीहा' की कामना कर रही थी।

इस समय गांधीजी ने राजनीतिक क्षेत्र में पॉव रखा। वे चम्पारन, अहमदावाद और खेड़ा के किसान और श्रमिक वर्ग के संघर्ष का नेतृत्व कर चुके थे। सत्याग्रह का नारा बुलन्द था। दिसम्बर 1919 में गांधीजी (असहयोग) के लिए पूरी तरह तैयार हो गये थे। पंजाब के हत्याकाण्ड तथा अन्य अत्याचारों से पीड़ित जनता ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध विद्रोह करने के लिए अपनी शक्ति संचित करने लगी थी। 'असहयोग आन्दोलन' प्रारम्भ करने की तारीख 1अगस्त 1920 निश्चित थी। 9 जून 1920 को इलाहाबाद की अखिल भारतीय 'खिलाफत' कमेटी ने भी सर्वसम्मति से गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में सहयोग देने का फैसला कर लिया था। पहली अगस्त 1920 को बालगंगाध्र तिलक का स्वर्गवास हो गया। शोक में डूबी जनता ने 'असहयोग-आन्दोलन' की तरफ कदम बढ़ा लिये। सारे देश में हड़तालें हुई, जुलूस निकाले गये, उपवास रखे गये और प्रार्थना सभाएं हुई। आन्दोलन के प्रोग्राम में सरकारी उपाधियां एवं सम्मान लौटाना, सरकारी स्कूल-कॉलेजों का बॉयकाट, अदालतो का बहिष्कार, विदेशी कपड़ो की होली, सरकारी नौकरियों से स्तीफा और टैक्स न देना शामिला था।

रचनात्मक दृष्टि से राष्ट्रीय स्कूल-कॉलेजों की स्थापना, ग्राम पंचायतो का संगठन, खादी पहनना, छुआछूत का बहिष्कार तथा सम्प्रदायिकता का उन्मूलन समाविष्ट थे। गांधीजी की शर्त थी कि आन्दोलन अहिंसात्मक रहना चाहिए। उस स्थिति के एक वर्ष के अन्दर स्वराज्य

प्राप्ति निश्चित है।

मार्च1921 में कांग्रेस कमेटी के सदस्यों को रूपया इकट्ठा करने, नये सदस्य बनाने तथा चर्खे बाटने का आदेश मिला। कांग्रेस की सदस्यता लगभग पचास लाख तक पहुंच गयी। तिलक स्वराज्य-निधि में एक करोण से अधिक धन राशि इकट्ठी हो चुकी थी। सारा देश गांधीजी की जयकार से गूँज रहा था। एसे समय में सुभाषचन्द्र बोस लन्दन से लैटकर भारत आने के बाद महात्मा गांधी से मिलने के इच्छुक थे। महात्मा गांधी सुभाष के सिविल सेवा के लिए चुने जाने तथा सुख-सम्पत्ति व शोहरत का लोभ त्यागकर देश के लिए काम करने हेतु स्वदेश लौटने के सत्य से परिचित थे।[1]

गांधीजी उन दिनो बम्बई में थे। बम्बई पहुचते ही सुभाष चन्द्रबोस उनसे मिलने के लिए मणिभवन निवास पर गये। उन्होंने लिखा है,- "उस दिन के उपराहन का दृश्य आज भी स्पष्ट रूप से स्मरण है। देशी कालीनों से ढके फर्श के एक कमरे में मुझे पहुँचाया गया। कमरे के लगभग बीच में दरवाजे की तरफ मुँह किये महात्मा अपने निकटतम अनुयायियों से घिरे बैठे थे। सबने खादी पहनी हुई थी। कमरे में प्रवेश करते ही स्वयं को विदेशी कपड़ो में देखकर कुछ असंगत सा अनुभव करके क्षमायाचना की। महात्मा ने अपनी स्वाभाविक मुसकुराहट के साथ मेरी अभ्यर्थना की जिससे मैं सहज हो गया।

बातचीत शुरू हो गयी। मैने सब बाते विस्तार में समझने की इच्छा जाहिर की- यानि उनकी क्रमिक योजना जो शनैः शनैः विदेशी साम्राज्य तंत्र से शक्ति छीनने में सफल होगी। फिर एक के बाद एक प्रश्नों की झड़ी लगा दी। महात्मा स्वाभाविक धैर्य के साथ उत्तर देते रहे।[2] बातचीत एक घंटे तक चली। समग्रतः सुभाष को प्रश्नों के उत्तर में सक्रिय योजना के स्थान पर अंहिसा, विद्रोह विरोध की जगह ब्रिटिश सरकार के हृदयगत परिर्वतन की प्रत्याशा हसिल हुई। बातचीत पूरी होने के बाद कुछ मामलो में सुभाष गांधीजी से सहमत लगे और कुछ बातो में असहमत। अहिंसा मूलक आन्दोलन उनके गले ठीक से नहीं उतर पाया।[3]

परम निराशा की स्थिति में बोस वहां से लौट आये। उन्होंने लिखा है कि,-'महात्मा बड़े प्रतिभापूर्ण ढंग से आन्दोलन शुरू करते है और निभ्रन्ति क्षमता के साथ उसे आगे

(1) एम.पी. कमल- नेताजी सुभाष चन्द्र बोस (भारत के वीर सपूत) - पृष्ठ 18

(2) Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-66-67

3- एम.पी. कमल- नेताजी सुभाष चन्द्र बोस (भारत के वीर सपूत) - पृष्ठ 19

बढाते है। हर कदम पर सफल होते जाते है जब तक कि आन्दोलन चरम सीमा तक न पहुॅच जाये। उसके बाद उनका हौसला पस्त होने लगता है, कदम लड़खड़ाने लगते है।"[1]

सुभाष बोस कैम्ब्रिज में तत्कालीन योरूप के इतिहास विस्मार्क की आत्मकथा, मैटर्निख की जीवनी तथा कैवूर के पत्रों के गहरे अध्ययन से, अर्न्तराष्ट्रीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि हैम्पडन और कामवैल के आदर्शो के अनुकरण द्वारा भारत की आजादी हासिल हो सकती हैं अतः इन्हें लगा कि गाँधी जी की क्रियात्मक योजना द्वारा शत्रु पक्ष को सुधारने की कामना अपने को धोखा देना है। कारण कि अपना हित देखे बिना दूसरे का उपकार करने को कभी कोई तैयार नहीं होता। राजनीति में तो कदापि सम्भव नहीं।[2]

बोस ने अपने सुहृदय मित्र दिलीपकुमार रॉय को लिखा भी था कि 'मीर जाफर ने भी इस उम्मीद पर क्लाइव की सहायता की थी कि उसे राजगद्दी मिल जाएगी'।सुभाष बोस की प्रकृति में राजनेता की धूर्त राजनीति कभी भी नहीं थी, बल्कि एक त्यागी नेता का व्यक्तित्व प्रकट होता था। उनकी प्रकृति में एक वौद्धितकता तथा आवेग का सन्तुलन देखने को मिलता था।

सुभाष बोस छात्र वर्ग को राजनीति से तटस्थ रखने के हक में बिल्कुल न थे। उंनका कहना था कि गुलाम देश के पास राजनीति के अतिरिक्त और है ही क्या। एक बार बोस ने कहा था कि , "मैं जानता हूँ कि इस देश में ऐसे लोग हैं – यहाँ तक कि प्रसिद्व व्यक्ति भी – जो यह सोचते हैं कि गुलाम जाति की कोई राजनीत नहीं होती और यह कि विशेष रूप से विघार्थियों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए। परन्तु मेरा अपना विचार यह है कि एक गुलाम जाति के पास राजनीति के अतिरिक्त कुछ होता ही नहीं है। एक पराधीन देश में प्रत्येक़ समस्या जो आप सोच सकते हैं, उचित प्रकार से विश्लेषित किये जाने पर मूलतः एक राजनीतिक समस्या सिद्व होगी। जैसा कि स्व0 देश बन्धु चितरंजन दास कहा करते थें 'जीवन एक पूर्ण इकाई' हैं और इसलिए आप राजनीति को शिक्षा से अलग नहीं कर सकते। मानव जीवन को विभागोंमें नहीं बाँटा जा सकता।[3]

राजनीति में भाग लेना चरित्र निर्माण एवं पौरूष के लिए आवश्यक है। विश्वविद्द

---

1. Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-69-70
2. Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages-93
3. स्टूडेन्ट कांन्फ्रेस में सुभाष बोस का अध्यक्षीय भाषण (19.10.1929)

ालयों को किताबी कीड़े स्वर्ण पदक लेने वाले तथा ऑफिस क्लर्क बनाने की नहीं बल्कि ऐसे चरित्रवान मनुष्य बनाने की कामना करनी चाहिए जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कर्मो द्वारा देश को महान बनायें।[1]

आन्दोलन शुरू करने का सही मौका सोच सुभाष चन्द्र बोस मई 1928 को गाँधी जी से 'सावरमती आश्रम' मिलने गये और अनुरोध किया कि वे अपनी निवृत्ति से बाहर आकर आन्दोलन प्रारम्भ कराने का आव्हान दें। किन्तु गाँधी जी ने साफ इन्कार कर दिया कि उन्हें अन्तस् में कोई कारण नहीं दिखाई पड़रहा है।

1- Selected speeches of Subhas Chandra Bose : 121

१-कांग्रेस का युवा आन्दोलन

युवक आन्दोलन अपने दृष्टिकोण में संशोधनवादी नहीं क्रान्तिकारी होते हैं। किसी भी युवक आन्दोलन को प्रारम्भ करने से पहले वर्तमान व्यवस्था के प्रति व्यग्रता और अधीरता की भावना अस्तित्व में आनी चाहिए।

-अखिल भारतीय युवक सम्मेलन कलकत्ता में भाषण-

(25.12.1928)

सन् 1919 की कांग्रेस ने नई शासन सुधार योजना को स्वीकार कर लिया था और उसे क्रियान्वित करने के लिए सहमत हो गयी थी, परन्तु सन् 1920 में प्रमुख राजनीतिज्ञों के सामने मुख्य प्रश्न सरकार से सहयोग का नहीं, वरन् असहयोग का था। इस असहयोग की शुरूआत सन् 1919 में ही हो गयी थी, उस सवाल के मध्य में कुछ प्रमुख मुसलमानों ने इस आशंका से कि कही पारजित टर्की शन्ति सन्धि की असम्मानपूर्ण शर्तो से न बाँध दिया जाय, खिलाफत कान्फ्रेंस की स्थापना कर ली थी और लोगों से 27 अक्टूबर को खिलाफंत दिवस मनाने के लिए कहा था। उन्होंने खिलाफत के प्रश्न पर विचार करने के लिए 23 नवम्बर को दिल्ली में मुसलमानों और हिन्दुओं की एक संयुक्त कान्फ्रेन्स बुलाई। युद्ध काल में हिन्दुओं और मुसलमानों ने पूर्ण एकता का प्रदर्शन किया था।

मुस्लिम इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी गाँधी जी को खिलाफत कान्फ्रेंस की अध्यक्षता के लिए आमंत्रित करना।[1]

इस पृष्ठभूमि में, गाँधी जी के सामने सन् 1919 में जो घटनाएं घटी, उनमें उन्हें अपने जीवन का मिशन पूरा करने का एक स्वर्णिम अवसर दिखाई पड़ा। पहली खिलाफत कान्फ्रेंस में मुसलमानों और हिन्दुओं को सम्बोधित करते हुए कहा : 'मुसलमान भाइयों ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण निश्चय किया है। ईश्वर न करें , पर यदि कहीं सुलह की शर्ते उनके खिलाफ जायें, तो वे सरकार को सहयोग देना बन्द कर देगें। मेरे विचार से यह जनता का अधिकार हैं सरकारी उपाधियाँ धारण करने अथवा सरकारी नौकरियाँ करने

1— रामगोपाल वर्मा, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, असहयोग आन्दोलन 1920–22, पृष्ठ 307

के लिए हम बंधे हुए नहीं हैं जब सरकार के हाथों खिलाफत जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण ध धार्मिक प्रश्न के सम्बन्ध में हमें नुकसान पहुँचता है, तब हम असहयोग के सिवाय और क्या कर सकते हैं।''[1]

गाँधी जी के कथित असहयोग आन्दोलन के लिए रंगमंच पूरी तरह तैयार हो चुका था। 10 मार्च 1920 को गाँधी जी ने अपने असहयोग कार्यक्रम की घोषणा कर दी :-इग्लैण्ड हमसे यह आशा नही रख सकता कि हम उन अधिकारों का हनन चुपचाप सह लेगें जो मुसलमानों के जीवन-मरण का प्रश्न है। इसलिए हमें ऊपर चोटी से नीचे जड़ से, दोनों तरफ से काम शुरू करना चाहिए। जिन लोगों को सरकारी उपाधियाँ और सम्मान मिलें हैं, उन्हें उनको त्याग देना चाहिए। जो लोग सरकारी नौकरियों में सबसे निचले दर्जे पर हैं, उन्हें भी अपनी नौकरियाँ त्याग देनी चाहिए।''[2]

शान्ति सन्धि की शर्ते अन्तोगत्वा 14 मई को घोषित कर दी गई और भारत में प्रतीक्षा की घड़ियों का अन्त हो गया। अब एक मात्र प्रश्न रह गया कि आन्दोलन कैसे और कब शुरू किया जाय। भारतीय राजनीति की एक जटिल गुत्थी अब सुलक्ष गयी। अभी तक कांग्रेस जन आन्दोलन को प्रोत्साहन नहीं देती थी। अब जो असहयोग आन्दोलन चलाया जाने वालाथा वह कांग्रेस के तत्वाधान में चलाया जाने वालाथा। अब भारतीय जनता का तथा कथित रूप से प्रतिनिधित्व करने वाला संगठन तथा जागरूक जनता की आकांक्षााओं में कोई वेषम्य नहीं रह गया था। कांग्रेस को असहयोग आन्दोलन में खीचने की शुरूआत प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों को इस विषय में अपना अभिमत प्रकट करने के आमंत्रण से हुई। कुछ प्रान्तीय कमेटियों ने असहयोग आन्दोलन शुरू करने के पक्ष में मत प्रकट किया और कुछ ने विपक्ष में।

अतएव यह प्रश्न सितम्बर में कलकत्ता में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के सम्मुख प्रस्तुत किया गया । अधिवेशन में उपस्थित किये गए मुख्य प्रस्ताव में [illegible] [illegible] के अन्यायों का संक्षिप्त उल्लेख करने के बाद कहा गया। [illegible] [illegible] भारत में तव तक शान्ति नहीं हो सकती जब तक उन [illegible] [illegible] नहीं किया जाता। राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा तथा भविष्य में इस [illegible]

1- [illegible] गांधी ने [illegible] पृष्ठ [illegible]
2- [illegible] आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ [illegible]

की पुनरावृत्ति रोकने का एक मात्र प्रभावशाली मार्ग स्वराज्य की स्थापना है। इस कांग्रेस का यह भी मत है कि जब तक उक्त अन्यायों का प्रतिकार न हो जाय तथा स्वराज्य की स्थापना न हो जाय, तब तक भारतवासियों के सामने इसके सिवाय और कोई मार्ग नहीं है कि वे महात्मा गाँधी द्वारा सांचालित असहयोग नीति को स्वीकार करें और अपनायें।''[1]

उस साल के वार्षिक अधिवेशन में जो सितम्बर में नागपुर में हुआ एक कदम और आगे बढ़कर निम्न प्रस्ताव स्वीकार किया गयाः और क्योंकि इसका आरम्भ उन लोगों से ही करना चाहिए जिन्होने अब तक लोकमत को बनाया है और उसका प्रतिनिधित्व किया है,क्योंकि सकरार अपनी शक्तियों का संगठन लोगों को दी गई उपाधियों का सम्मान से, सरकार द्वारा नियंत्रित स्कूलों से तथा अदालतों और कौंसिलों द्वारा करती हैं, क्योंकि आन्दोलन को चलाने में यह वांछनीय है कि कम से कम खतरा मोल लिया जाय और अभिष्ट उद्देश्य की सिद्धि के लिऐ कम से कम त्याग कराया जाय, अतएव यह कांग्रेस आग्रेहपूर्वक परामर्श देती है :

➢ सरकारी उपाधियों और अवैतनिक पदों को छोड़ दिया जाय तथा म्युनिसिपल बोर्डो तथा अन्य स्थानिक संस्थाओं में जो लोग मनोनीत किये गये हैं, वे अपने पदों से त्याग पत्र दे दें ,

➢ सरकारी दरबारों,स्वागत समारोहों तथा सरकारी अफसरों द्वारा आयोजित अथवा उनके सम्मान में किये गये सरकारी अथवा अर्द्ध–सरकारी उत्सवों में भाग लेने से इन्कार कर दिया जाय,

➢ सरकार से सहायता प्राप्त अथवा सरकार द्वारा नियंत्रित स्कूलों तथा कॉलेजो से बालकों को कमिक रीति से निकाल लिया जाय और ऐसे स्कूलों तथा कॉलेजो के स्थान पर विविधप्रान्तो में राष्ट्रीय स्कूलो की स्थापना की जाय।

➢ ब्रिटिश अदालतो का वकीलों और मुवक्किलों द्वारा कमिक रीति से वहिष्कार किया जाय, आपसी झगड़ों को तय करने के लिए पंचायती अदालतों की स्थापना हों,

➢ फौज के लोग और क्लर्को तथा मजदूरी करने वाले लोग मेसोपोटापिया में सेवा के लिए भर्ती होने से इन्कार कर दें ,

1- Pattabhi Sitaramayya, History of the Indian National Congress, Page.224

➤नई कौंसिलों के लिए खड़े हुए उम्मीदवार अपना नाम उम्मेदवारी से वापस ले लें और यदि कांग्रेस की सलाह के विरूद्ध कोई उम्मेदवार चुनाव के लिए खड़ा हो तो मतदाता उसे बोट देने से इन्कार कर दें,

➤विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया जाय।

प्रस्ताव की अन्तिम धारा को व्यवहारिक बनाने के लिए लोगों को सलाह दी गई कि वे बड़ें पैमाने पर स्वदेशी वस्त्रों को अपनायें और हर एक घर में हाथ की कताई को फिर से गुरू करके बड़े पैमाने पर हाथ के बुने वस्त्रों के उत्पादन को तत्काल बढ़ाया जाय।[1]

कांग्रेस को लड़ाई के लिए तैयार करना गाँधी जी का मुख्य कार्य था। हालांकि गरम दल वाले इसके लिए जमीन पहले ही तैयार कर चुके थे। जो वर्ग गाँधी जी के असहयोग विषयक प्रस्ताव के विरूद्ध था, वह काफी प्रभावशाली और शक्तिशाली था। इनमें से प्रमुख थे लाला लाजपतराँय कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के अध्यक्ष तथा चितरंजनदास बंगाल के एक बड़े वकील , दास गाँधी जी के प्रस्ताव को अस्वीकृत करा देने के लिए अपने खर्च से पूर्वी बंगाल तथा आसाम से 250 प्रतिनिधियों का दल लाये थें,परन्तु अधिवेशन में गाँध ी जी ने उन्हें पूरी तरह से अपने विचारों के पक्ष में कर लिया और उनके साथ उनके अनुयायी भी गाँधी जी के समर्थक बन गये।

समाचार-पत्रों में असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव के प्रकाशन का सबसे पहले असर नई कौंसिलों के चुनाव पर पड़ा, जो शीघ्र ही होने वाले थें। कौंसिलों के प्रति देशवासियों का दृष्टिकोण एकदम बदल गया। सभी राष्ट्रीयतावादी उम्मीदवारों ने, जिन्होंने अपनी उम्मीदवारी की घोषणा कर दी थी और जो अपना चुनाव प्रचार कर रहे थे, अपने को चुनाव मैदान से हटा लिया लगभग 80 प्रतिशत मतदाताओं ने भाग नहीं लिया [2]

खिलाफत कांग्रेस मुस्लिम लीग तथा 'जमीयत-उल-उलेमा' ने भी कांग्रेस से मिलते जुलते प्रस्ताव पास किये थे। देश के लगभग एक हजार मुसलमान उलेमा ने एक फतवा निकालकर मुसलमानों से चुनाव का बहिष्कार करने के लिए कहा था। अतएव मुस्लिम मतदाताओं ने चुनाव का उसी उत्साह से बहिष्कार किया था, जिस उत्साह से हिन्दु मतदाताओं

1— राम गोपाल वर्मा, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास (असहयोग आन्दोलन 1920—22) पृष्ठ 311

2— विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष पृष्ठ 177

ने।

देश में स्वाधीनता आन्दोलन वास्ताव में विविध रूपों में फूट पड़ा था। रौलट विरोधी आन्दोलन के फलस्वरूप गांधी जी का नाम घर-घर में प्रचारित हो गया था। सारे देश में अधिकारियों के हाथ-पैर फूल गये थे। लोगो में अंग्रेजी राज के विरूद्ध इतना गुस्सा भर गया था कि उन्हे आभास होने लगा था कि किसी भी समय कोई भी घटना घट सकती है। नेहरू ने मेरी कहानी में इसका सुन्दर उदाहरण दिया है-एक दिन मेरे एक वैरिस्टर मित्र ने बताया कि बहुत से अंग्रेज लोग काफी घबड़ाये हुए है और उन्हें डर है कि नगर में कोई अचानक विप्लव होने वाला है। वे लोग अपने हिन्दुस्तानी नौकरो तक पर भरोसा नहीं करते और अपनी जेवो में हर समय पिस्तौल लेकर चलते है। यहा तक बताया जा रहा है कि इलाहाबाद के किले में पूरा इन्तजाम कर लिया गया है कि आवश्यकता पड़ने पर सब अंग्रेजो को वहा हटा कर रख दिया जाय।

यहां तक कहा जा रहा था कि 10 मई को, जिस दिन संयोगवस मेरी बहन की शादी की तारीख तय हुई थी, सन् 1857 में मेरठ मे गदर की शुरूआत की वर्षगांठ मनाने की तैयारिया की जा रही थी।"[1]

असहयोग आन्दोलन में भाग लेने वाली विविध संस्थाओं ने जो प्रस्ताव पास किये थे वे वास्तव मे सरकार के लिए वेचेनी पैदाकरने वाले थे। 8 जुलाई 1921 को अखिल भारतीय खिलाफत कांफ्रेस ने घोषणा की कि 'इस समय धार्मिक दृष्टि से मुसलमानो के लिए ब्रिटिश सरकार की नौकरी करना, सेना में भरती होना या दूसरों की सेवा में भर्ती होने के लिए प्रेरित करना सब प्रकार से अवैध है और सामान्य रूप से प्रत्येक मुसलमान का ध्यान इन धार्मिक आदेशों की ओर आकर्षित करे।'[2]

कान्फ्रेंस ने निश्चिय किया कि यदि ब्रिटिश सरकार टर्की की सरकार से युद्व करेगी और उसे नीचा दिखायेगी तो भारत के मुसलमान भारत की स्वाधीनता की घोषणा कर देगें और कांग्रेस के अगले अधिवेशन में भारतीय गणतन्त्र का झण्डा फहरायेगें। मोहम्मद अली ने जिन्होंने कांग्रेस की अध्यक्षता की थी, एक बहुत ही जोशीला भाषण दिया, जिसे अधिकारियों ने राजद्रोहात्मक बताया और जिसके आधर पर सरकार ने बाद में उन पर

1— जवाहर लाल नेहरू, आटोवायोग्राफी (मेरी कहानी) पृष्ठ 50

2— रामगोपाल वर्मा, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास (असहयोग–आन्दोलन 1920–22) पृष्ठ 312–13

मुकद्दमा चलाया।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने, जिसकी बैठक जुलाई के अन्तिम सप्ताह में बम्बई में हुई खिलाफत कांग्रेस की नीति का समर्थन किया और सभी कांग्रेसजनों ने आगामी 1 अगस्त से विदेशी कपडो का व्यवहार त्याग देने की अपील की। कहीं सरकार बेखबर बैठी न रह जाय और कांग्रेस तथा खिलाफत के नेता गम्भीर उपद्रव न शुरू कर दे, इसलिए अधिकारियों ने सभी प्रमुख राजनीतिक कार्यकर्ताओं को गिरफ्तर कर लेने का निश्चिय किया। कुछ नेताओं की गतबिधियों पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। कुछ को बिना मुकद्दमा चलाये नजर बन्द कर दिया गया और कुछ पर मुकद्दमा चला दिया गया।[1]

सितम्बर में एक नया दौर शुरू हुआ। अली बन्धुओं तथा पांच अन्य व्यक्तियों को जुलाई में कराची मे हुई अखिल भारतीय खिलाफत कांफ्रेस में राजद्रोहात्मक भाषण देने तथा उसी रीति का प्रस्ताव पास करने के लिए गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तार हाने वाले अन्य पांच व्यक्ति थे : डॉ. किचलू ,(शरदा पीठ के) जगदगुरू शंकराचार्य, निसार अहमद, पीर गुलाम मुजदीद तथा हुसैन अहमद। सबको दो साल की सजा दी गयी।

मुहम्मद अली ने अपने भाषणों की सफाई देते हुए कहा–'इस मुकद्दमे को चलाने का अर्थ क्या है? हम हिन्दुस्तान के मुसलमान और हिन्दू किसके निर्देश से परिचालित होगे। एक मुसलमान की हैसियत से में कह सकता हूं कि अगर मेरे बारे मे कोई कहता है कि मे सही रास्ते से हट गया हूं तो मुझे मेरी गलती का एहसास सिर्फ कुरान का हवाला देकर ही कराया जा सकता है।''[2]

अली बन्धुओं पर करांची में मुकद्दमा चलाये जाने के समय गांधी जी त्रिचनापल्ली में थे। जब उन्हे मालूम हुआ कि मुहम्मद अली द्वारा खिलाफत कान्फ्रेसं में दिये गये भाषण के विरूद्ध मुकद्दमा चलाया जा रहा है तो उन्होंने स्वयं एक सार्वजनिक सभा में उस भाषण को दोहराया। 16 अक्टूबर को बड़े जोश–खरोश के वातावरण में सार्वजनिक सभाओं में उक्त प्रस्ताव पर वहस की गयी और उसे पास किया गया।

वर्किगं कमेटी के प्रस्ताव में, जिसे उसकी अधीनस्थ कमेटियों तथा सार्वजनिक सभाओं में दोहराया गया था, कहा गया था कि, किसी भी भारतीय का किसी भी हैसियत में,

1– विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष ; पृष्ठ 179
2- W.C. Smith, Modern Islma in India, page.235

ऐसी सरकार की नौकरी करना, जिसने जनता की न्यायोचित आकांक्षाओं को कुचलने के लिए सैनिकों तथा पुलिस का उपयोग किया है, जैसा कि रौलट एक्ट आन्दोलन के समय किया गया, जिसने मिस्र वासियों, तुर्की अरबों तथा अन्य कौमो की राष्ट्रीय भावना को कुचलने के लिए सैनिकों का उपयोग किया है, राष्ट्रीय मर्यादा तथा राष्ट्रीय हित के विरूद्ध है। वर्किंग कमेटी ने अपने प्रस्ताव में आगे कहा कि वह सरकारी नौकरी छोड़ने वालों की जीवका का प्रबन्ध करने में असमर्थ है, अतएव उसने उन लोगो का जो सरकारी नौकरी छोड़कर अपना भरण-पोषण करने में समर्थ है, नौकरी छोड़ने के लिए आवाहन किया।''[1]

देश में दो साल से गहरी अशान्ति, असन्तोष तथा अवज्ञा का वातावरण व्याप्त था, फिर भी यह एक विचित्र बात थी कि गांधी जी के विचारानुसार सत्याग्रह आन्दोलन की विधिवत घोषणा किया जाना अभी तक शेष था। स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है। ऐसा क्यों सोचा जाय कि अभी विधिवत घोषणा होना शेष था जबकि जो कुछ हो रहा था, वह सरकारी को दमन चक्र आन्दोलन की आग में घी डालने का कार्य कर रहा था।

नवम्बर के मध्य में युवराज बम्बई पधारे। वर्किंग कमेंटी ने युवराज की भारत यात्रा पर बिचार किया और लोगो को उनका बहिष्कार करने की सलाह दी। बम्बई में लोगों ने बड़े जोश के साथ बहिष्कार आन्दोलन में भाग लिया।

युवराज की यात्रा के फलस्वरूप देश भर में स्वयंसेवक दल संगठित करने की प्रेरणा मिली। कलकत्ता में युवराज 25 दिसम्बर को पहुचने वाले थे। उससे पहले ही स्वयं सेवक दल को गैरकानूनी करार दे दिया गया और प्रान्त भर में हजारो नौजावानों को गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस ने चितरंजन दास की धर्मपत्नी , बहन और अन्य महिलाओं को भी नहीं छोड़ा, उन्हे भी गिरफ्तार कर लिया। जिससे जनता भड़क उठी और अधिकारियों की अवज्ञा करना एक सामान्य दृश्य बन गया देश भर में 20,000 व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये गये। उनमें लाजपत रॉय, मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास और जवाहर लाल नहरू तथा सुभाषचन्द्र बोस थे। जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में, 'अनुमान लगाया जाता है कि दिसम्बर 1921 तथा जनवरी 1922 में लगभग 30,000 आदमी गिरफ्तार कर जेलो में ठूंस दिये गये।''[2] गांधीजी अभी तक जेल के बाहर थे।

1— रामगोपाल, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, पृष्ठ 317

2— जवाहर लाल नेहरू–ऑटोवायोग्राफी (मेरी बहिन) पृष्ठ–56

चाहे किसी योजनाबद्ध रीति से ऐसा हुआ हो और चाहे संयोगवश, फिर भी यह सच था कि सन 1919 में नयी शासन सुधार योजना को स्वीकार करने के समय कांग्रेस में जो भावना व्याप्त थी।, वह अब नयी परिस्थितियों से मेल नहीं खाती थी। देश में राष्ट्रीयता की जो नयी भावना फैल गयी थी उसके फलस्वरूप अब कोई नयी शासन सुधार योजना पर दृष्टिपात तक करने को तैयार नहीं था, सब ओर से यही आवाज उठ रही थी कि अब हमें अंग्रेजी राज नहीं चाहिए।

इस समय भारत के सामने अनेक सम्राट, राजे, महाराजे नवाब हो चुके थे–एक मुख्य प्रश्न यह थाः अंग्रेजों का स्थान कौन ग्रहण करेगें? इसका स्पष्ट रीति से यही उत्तर मिलता था, वही नेता जो इस समय जेलों में भर रहे थे। फलस्वरूप जनता की मनोभावना में एक भारी परिवर्तन होने लगा था। और उसके स्थान पर जनता में नेताओं के प्रति सम्मान तथा श्रद्धा का भाव बढ़ने लगा था। अंग्रेज विजेता है और इसलिए उन्हे भारत का शासन करने का अधिकार है, यह पुरानी भावना अब जड़ से हिल चुकी थी। अब लोग आपस में कहते थे अंग्रेज विदेशी है और उन्हे भारत पर शासन करने का कोई अधिकार नही, उन्हे यहां से चले जाना चाहिए। भारत में भारतीयों को ही शासन करना चाहिए।

एक साम्राज्यवादी सत्ता, जिसके सम्राज्य का विस्तार सारे संसार में हो, किसी जन आन्दोलन को, वह चाहे कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, सरलता से कुचल सकती है। परन्तु कांग्रेस के युवा आन्दोलन (सत्याग्रह) ने जो लोक चेतना जाग्रत कर दी थी, उसे किसी भी शक्ति से कुचला नहीं जा सकता था। उसकी सफलता इस बात में भी थी कि उसने करोड़ो पुरुषों, स्त्रियों और वालकों को अंग्रेजी राज का कट्टर विरोधी बना दिया था।

२. सुभाष का असहयोगवाद

असहयोग आन्दोलन में सम्बन्ध में देश में तीन प्रकार की मनोधाराएं प्रवाहित हो रही थी। एक मनोधारा उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती थी, जिसने सन 1920 की कांग्रेस में गांधी जी के असहयोग कार्यक्रम का पूरे हृदय से समर्थन किया था। दूसरी मनोधारा मुसलमानो का प्रतिनिधित्व करती थी। जिन्होंने असहयोग आन्दोलन में इसलिए योग दिया था क्योंकि वह खिलाफत आन्दोलन के विरूद्व एक जोरदार आवाज बुलन्द करता था। और तीसरी मनोधारा उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती थी, जिसे असहयोग कार्यक्रम पसन्द नहीं था, फिर भी उसने उसे अपना समर्थन प्रदान किया था, क्योकि बहुमत के निर्णय से वह अपने को भी बाध्य मानता था।

अन्तिम दो वर्गो के लिए असहयोग आन्दोलन विफल सिद्व हुआ था। आन्दोलन के फलस्वरुप जो महती लोक चेतना जाग्रत हुई थी उसे वे कोई सन्तोषजनक परिणाम नहीं मानते थे। क्योंकि असहयोग आन्दोलन अपने-अपमें अंग्रेजी राज को समाप्त नहीं कर सकता था।

सुभाष बोस उस तीसरी मनोधारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे। सुभाष लिखते है-'महात्माजी ने असहयोग की जो नीति रखी उसका विरोध बुद्धिजीवियों की ओर से हुआ, पर उन्होंने अहिंसा का जो सिद्धन्त रखा, उसका विरोध क्रान्तिकारी दल की ओर से हुआ। प्रथम महायुद्ध के दौरान हजारों क्रान्तिकारियों को कारागार में रहने का मौका मिला था। उनमें से बहुतेरे 1919 में एक आम माफी के फलस्वरूप छोड़ दिये गये थे। इनमें से बहुत से अप्रतिशोध के सिद्धान्त को नही मानते थे और उनको यह भय था कि यदि यह सिद्धान्त मान लिया गया, तो इससे जनता नपुसंक हो जाएगी और उनके प्रतिरोध ा की शक्ति कमजोर पड़ जाएगी। यह भय था कि इस प्रकार भूतपूर्व क्रान्तिकारियों का सारा वर्ग विचारधारा सम्बन्धी मतभेद के कारण कांग्रेस के विरूद्ध हो जाएगा।

......सच बात तो यह है कि उनमें से एक तबके ने बंगाल के अन्दर असहयोग आन्दोलन के विरूद्ध प्रचार कार्य शुरू कर दिया था। और एक बात यह है कि ब्रिटिस समाज ने इसके लिए पैसे "नागरिक संरक्षण संघ" के नाम से दिए गए।

............देशबन्धु चितरंजनदास यह चाहते थे कि भूतपूर्व क्रान्तिकारियों की शत्रुता से छुट्टी पायी जाय और यदि संभव हो तो कांग्रेस कार्यक्रम के लिए उनका सक्रिय सहयोग भी प्राप्त किया जाए।इसलिए उन्होंने महात्मा जी और क्रान्तिकारियों के बीच सितम्बर में एक सम्मेलन बुलाया, जिसमें वह स्वंय भी उपस्थित थे। भूतपूर्व क्रान्किारियों ने महात्माजी के साथ बहुत हार्दिक बातचीत की। महात्माजी और देशबन्धु ने यह समझाने की कोशिश की कि अंहिसात्मक असहयोग से जनता दुर्लब या पतित हो जाने के बजाय उनमें असरदार प्रतिरोध की शक्ति बढ़ेगी। कुछ क्रान्तिकारियों ने कांग्रेस के अन्दर उसके सक्रिय सदस्यों के रूप में आना स्वीकार किया।[1]

इस प्रकार जो सम्मेलन हुआ था, वह सितम्बर 1921 में बन्द दरवाजों के अन्दर हुआ था और यह उस समय की बात है जबकि महात्माजी और कार्य समिति के सदस्य देशबन्धु के अतिथि के रूप में थे। इससें इतिहास के एक बहुत अन्धकारमय कोने पर प्रकाश पड़ता है।

सुभाष स्वंय महात्माजी के भक्त बन गए पर उन्होने अपनी आखें बन्द नहीं की कयोंकि खिलाफत आन्दोलन के सम्बन्ध में महात्मा गॉधी ने जो नीति अपनाई थी उस पर उनका बहुत मतभेद था। सुभाष बोस के शब्दों में, मेरे मतानुसार वास्तविक गलती यह नही थी कि राष्ट्रीय समस्याओ के साथ खिलाफत के मामले को जोड दिया जाय,बल्कि असली गलती यह थी कि सारे देश भर मे खिलाफत कमेटी को ऐक स्वतंत्र संगठन के रूप मे पनपा दिया गया और उसका असितत्व भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस से बिल्कुल अलग रखा गया।यदि कोई अलग खिलाफत समितियां नही बनती और खिलाफती मुसलमानों को अलग कांग्रेस में भर्ती कर लिया जाता तो जब इस प्रकार खिलाफत समस्या का अन्त हुआ तो ये बच्चे खुचे लोग कांग्रेस के अन्दर आ जाते।[(1)]

सुभाष बोस बडे स्पष्टवादी थे। वे गॉधी जी का बहुत सम्मान करते थे किन्तु भारत की आजादी के लिये गॉधी जी ने जो कार्य विधि एंव नीति अपना रखी थी उससे बिल्कुल सहमत न थे ।[(2)]

1921 के पूरे वर्ष असहयोग आन्दोलन बडे. पैमाने पर जारी रहा। नवम्बर 1921मे

1– संकलन, वचनेश त्रिपाठी–खिलाफत और सुभाष –पृष्ठ 54

2- N.G. Jog ; In Indian pilgrim : A Beacon Across Asia : page-40

सुभाष बोस कांग्रेस के सदस्य बन चुके थे । चित्तरंजनदास ने उन्हे आन्दोलन जारी रखने का भार सौप दिया।ब्रिटिश सरकार ने बंगाल प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी को अवैध घोषितकर दिया। चित्तरंजन दास ने सुभाष बोस को नैशनल कॉलेज का प्रिंसिपल नियुक्त कर दिया । कुछ लोगों ने आपत्ति की कि एक अनुभव हीन व्यक्ति को इतने सारे दायित्व सौपना ठीक नही।

इस पर चितरंजन दास ने कहा कि, मैं व्यक्तियों को आर-पर देख सकता हूं। बोस मेरी प्रत्याशाओं को कभी मिथ्या नहीं होने देगे। इन कामो के लिए सुभाष सबसे अनुकूल व्यक्ति है।[1] और बोस ने भी कांग्रेस के प्रचार के ऐसे अनोखे तरीके अपनाये कि सरकार बौखला उठी। कलकत्ता के एंग्लो इण्डियन समाचार पत्र 'स्टेट्समैन'' ने टिप्पड़ी दी –'कांग्रेस को एक योग्य व्यक्ति मिल गया और सरकार ने एक लायक अफसर गवॉ दिया।'' [2]

'असहयोग आन्दोलन' की अभूतपूर्व सफलता ने वॉयसराय लार्ड रीडिंग तथा ब्रिटिश सरकार दोनों को परेशानी में डाल दिया। वॉयसराय समझौते के लिए आगे आये। चित्तरंजन दास और पं0 मदनमोहन मालमीय द्वारा सन्देश भेजा गया कि यदि कंग्रेस प्रिंस ऑफ वेल्स के 24 दिसम्बर 1921 को कलकत्ता आने का प्रस्तावित वायॅकाट वापिस ले ले तो सरकार सब राजनीतिक कैदियें को रिहा कर देगी और काग्रेसं एवं सरकारी प्रतिनिधियों की गोलमेज कांफ्रेस बुलाकर प्रस्तावित सुधारों पर विचार विमर्श करेगी।

सुभाष बोस तथा अन्य युवाओं को आपत्ति के बावजूद चित्तरंजदास तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद ने सरकार का प्रस्ताव मंजूर कर लिया। गाँधी एक वर्ष के अन्दर स्वराज्य प्राप्ति की घोषणा कर चुके थे।

दास का ख्याल था कि कांग्रेस की मान-मर्यादा के लिये कुछ न कुछ तो करना ही होगा। यदि '' गोलमेज-कान्फ्रेंस' असफल हो गई तो कांग्रेस उस विफलता का लाभ उठाकर दुगने उत्साह से असहयोग आन्दोलन के लिये क्रियाशील हो सकेगी गाँधी जी ने अन्य राजनीतिक कैदियों के साथ अली बन्धुओं को रिहा कराने का आग्रह किया और कहाकि सरकार प्रस्तावित गोलमेज कान्फ्रेन्स की तारीखें घोषित करे इस कार्यवाही के दौरान वायसराय

1- N.G. Jog ; In Freedom's Quest :42

2- Reported the Stateman : November 1921; Calcutta

समझौते की बातचीत करने के मूड में नहीं रहा और बात वहीं खत्म हो गई। चित्तरंजनदास ने क्रोध और विरक्ति से कहा 'जीवन का एक सुनहरा मौका हाथ से निकल गया'

जेल भरो प्रोग्राम के तहत देश भर में हजारों लोग गिरफ्तार हो रहे थे सरकार ने बन्दियों का आजाद करने का आदेश जारी कर दिया। किन्तु जेल से निकलने को कोई तैयार न था। चित्तरंजनदास कराह उठे और बोले, 'मुझे अपनी कलाइयों में हथकड़ी और शरीर पर लोहे का बोझ महसूस होता है। यह गुलामी की विवशता है''[1] 10 दिसम्बर 1921 को गैर कानूनी परेड के जुर्म में बोस को छह महीने की सजा सुना दी गई। बोस ने मजिस्टैंट से हँसकर पूछा, 'केवल छह महीने। ''' मैंने क्या चूजे (मुर्गी के बच्चे) चुराये हैं।'' [2] बोस की यह पहली कैद थी। कांग्रेस के और भी बहुत से नेता कारारुद्ध थे।

दुर्भाग्य से 4 फरवरी 1922 को चोरी-चोरा'' (उत्तर प्रदेश) में असहयोगियों के एक दल ने थाना घेर लिया। एक सबइन्सपेक्टर तथा पुलिस के 21 सिपाही जिन्दा जला दिये गये। चारों तरफ हिंसा फैल गई। स्थिति बाहर होती देख गाँधी जी ने 'असहयोग आन्दोलन' निलम्बित कर दिया। 13 मार्च 1922 को वे गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हें छह वर्ष की सजा सुना दी गई। राष्ट्रवादियों में फूट पड़ गई। वे असन्तुष्ट और हतोत्साहित हो उठे। अनेक राष्ट्रवादी सदस्यों के मन में गाँधीवादी नीति पर अब पूरी तरह निर्भर रहने की अक्लमन्दी पर प्रश्न चिन्ह लग गया। सारा देश घोर निराशा के अन्धकार में डूब गया। गाँधीवादियों को छोड़कर कांग्रेस के अन्य सब प्रमुख नेताओं ने गाँधी के इस फैसले की निन्दा की।

मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु चित्तरंजनदास, जवाहरलाल नेहरू सब विस्मित एवं खिन्न थे। मोतीलाल नेहरू ने पूछा, 'हिमालय की तराई में स्थित किसी शहर को इसलिये दण्ड देना कि कन्या कुमारी का कोई गाँव अहिंसा का पालन नहीं कर सका।'' [3] जवाहर लाल नेहरू ने कहा कि आन्दोलन निलम्बित करने के कारण देश नैतिक स्खलन का शिकार हो गया है। दमित हिंसा निष्कासन का मार्ग ढूंढ रही थी, जो आगामी वर्षों में सम्प्रदायिक झगड़ों के रूप में फलित हुआ।'' [4]

1- Huge Toye : The springing Tiger : 29
2- Huge Toye : The Springing Tiger : 29
3- N.G. Jog; In Freedom's Quest : 45
4- Jawahar lal Nehru : Autobiography : 86

रोमॉरोला ने लिखा, " राष्ट्र की सारी शक्ति एकत्र करके निर्धारित समय से पूर्व हाँफते हुए राष्ट्र को रोक लेना बहुत खतरनाक होता है। अन्तिम आदेश देने के लिये हाथ उठाना और यंत्र जैसे ही गतिशील होने लगे तीन बार हाथ गिराकर रोकने का आदेश दिया जाये तो ब्रेक खराब होने एवं यंत्र गति भंग होने का डर होता है।" [1] और ज्यॉफरे ऐश के अनुसार 'उनकी गाँधी धर्मनिष्ठ वार्णी और मिथ्याभिमान का संस्पर्श क्षोभ कारक हो सकता था। कभी-कभी वे ग्लैडस्टन की तरह हो जाते थे जो न केवल अपने कन्ध ों पर सर्वश्रेष्ठता का चिन्ह धारण कर लेता था बल्कि आग्रह पूर्वक कहता था कि खुदा ने ही वहां उसे सजाया है। गाँधी में यह दोष सबसे अधिक दृष्टिगत होता जब वे अपनी 'अन्तरात्मा की आवाज को इस परिवर्तन की वजह बताते। खुलकर अपनी गलती स्वीकार न करते।"[2]

सुभाष बोस उन दिनों चित्तरंजनदास के साथ जेल की सजा भुगत रहे थे। दोनों दो महीने तक प्रेसिडेन्सी जेल में बराबर वाली कोठरियों में रहे। फिर छह महीने अलीपुर सेन्ट्रल जेलमें दूर-दूर रखे गये। जेल की सूची में देशबन्धु के रसोइये का नाम सुभाषचन्द्र तथा सेवक का हेमन्त कुमार सरकार दर्ज था। एक दिन जेल के कार्य भारी सदस्य सर अब्दुर्रहीम जेलके दौरे पर आ निकले। दास से बोले, " सी.आर.! आप बड़े महंगे कैदी हैं। इण्डियन- सिविल का एक अफसर आपका रसोइया हैऔर विश्वविद्यालय का प्राध्यापक आपका सेवक।"[3]

आन्दोलन निलम्बन की सूचना जेल की चहार दीवारी तोड़कर सुभाष बोस तक पहुँची। उन्होंने बड़ी कड़वाहट के साथ कहा, " उस समय तो "डिक्टेटर" के आदेश का पालन कर लिया गया परन्तु कांग्रेस कैम्प में नियमित विद्रोह हो गया। निलम्बन का हुकुम उस समय देना जब जनता का उत्साह उबल पड़ने की सीमा तक पहुँच चुका था। राष्ट्रीय दुर्घटना (नैशनल क्लैमिटी) से कम नहीं था।"[4]

आन्दोलन निलम्बन ने जनता के उत्साह एवं धैर्य पर गहरा आघात किया था। आर. पामे दत्त के शब्दों में, " बारदौली के आघात से राष्ट्रीय आन्दोलन आधे दशाब्द तक परास्त रहा था।" [5] इस बीच सरकार ने अपनी स्थिति फिर से मजबूत करली तथा नेता लोगों

1- Romain Rolland : Mahatma Gandhi ; (1942) page 132
2- Geoffrey Ashe; Gandhi-A Study in Revolution Page 300 (London 1968)
3- सतीशचन्द्र माइकोप ; वहिमान नेताजी
4- Subhas Chandra Bose; The Indian Struggle-1920-42 : Page 72
5- R.Palme Dutt; India Today : 353

को समझ नहीं आ रहा था कि दूसरा संघर्ष कब और कैसे शुरू किया जाये।

कांग्रेस के विशिष्ट कार्यकर्ता होने पर भी सुभाष को विप्लवियों के समान ही विना विचारे बन्द कर दिया जाता था। इससे जनता यथेष्ट क्षुब्ध होती थी। देशबन्धु कलकत्ता के मेयर थे और सुभाष बोस उनके प्रधान कार्यकर्ता जिस समय सुभाष कार्पोरेशन के कार्यो को तल्लीन होकर कर रहे थे, उसी समय उन्हें बन्दी बनाकर मांडले जेल भेज दिया गया। उसका कारण – एक जर्मन ने पहले देश बन्धु से भेंट की। उसने कांग्रेस के ब्रिटिश विरोधी संग्राम की प्रशंसा करते हुए प्रस्ताव रखा कि वह उन्हें कुछ अस्त्र दे सकता है। देशबन्धु बोले, इन बातों में मैं नहीं हूँ, तुम सुभाष चन्द्र और सत्येन्द्र मित्र से मुलाकात कर सकते हो। सुभाष ने देशबन्धु को बताया कि यह जर्मन अंग्रेजों का गुप्तचर है। जबकि देशबन्धु ने सोचा था कि वह आदमी अन्तर्राष्ट्रीय शस्त्र तस्कर (इण्टर नेश्नल आर्म्स स्मगलर) है। शायद बोस के काम के लायक हाथ लग जाये। बहुत बड़ी भूल हो गई थी।'' (1)

सुभाष की गिरफ्तारी के समय देशबन्धु शिलांग में थे गिरफ्तारी का समाचार सुनते ही उन्हें पश्चाताप हुआ कि उनके द्वारा प्रेषित गुप्तचर की बातें सुनकर सरकार ने विशेष रुप से तत्पर होकर सुभाष को गिरफ्तार किया है। देशबन्धु ने कार्पोरेशन की सभा में विक्षुब्ध- चित्त से सिंहनाद किया,यदि देश प्रेम अपराध है तो मैं अपराधी हूँ। यदि कार्पोरेशन का मुख्य प्रशासक (सुभाष बोस)एक अपराधी हैं तो मैं एक अपराधी हूँ। तो मैं घोषणा करता हूँ कि मेयर (मैं स्वयं) अपराधी हूँ।'' (2)

सुभाष बोस बड़े स्पष्ट वादी थे। वे गॉधीजी का बहुत सम्मान करते थे किन्तु भारत की आजादी के लिये गॉधी जी ने जो कार्य विधि अपना रखी थी उससे बोस बिल्कुल सहमत न थे। दूसरी गोलमेज कान्फ्रेन्स में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों तथा ब्रिटिश जनता पर गॉँधीजी ने जो प्रभाव छोड़ा था, उसकी बड़ी कड़वाहट से चर्चा करते हुए बोस ने कहा, ''गॉँधी की साधुता, उनकी स्पष्टवादिता, उनकी विनम्रता, विरोधी पक्ष के प्रति हार्दिकता, जॉन बुलको प्रभावित तो नहीं कर सकी बल्कि इनकी आन्तरिक दुर्बलता समझी गई। सारे पत्ते मेज पर सामने खोल देना भारत या भारतवासियों के लिये तो ठीक था किन्तु ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की दृष्टि में उनकी प्रतिष्ठा को हानि पहुँची। सत्यवादी अनुसंधाता दर्शन–

1– नलिनी किशोर गुप्त (क्रान्तिकारी और लेखक)–एक जीवन दर्शन; कुछ संस्मरण, पृष्ठ 83

2- Huge toye : The Springing Tiger : Page 21

शस्त्रियों की बैठक में अर्थ और कानून के बारे में उनकी अज्ञता प्रकट करना तो ठीक था किन्तु उस ब्रिटिश जनता की दृष्टि में उनकी मान-हानि हुई जो अपने नेताओं को चाहे वे न भी हों-अपने से कहीं अधिक बुद्धिमान समझने की आदी थी।

गोलमेज कान्फ्रेस में गांधी का बार-बार हार्दिक सहयोग देने के प्रस्ताव ने बड़ी दयनीय स्थिति पैदा कर दी थी। यदि वे स्टालिन या भुसोलिनी या हिटलर की तानाशाीी भाषा में बात करते तो जान बुल की समझ में आता और श्रद्धा से मत हो जाता [1]

बोस के शब्दों में वस्तुस्थिति तो यह थी कि कांग्रेस के वर्तमान कर्णधार असहयोग से हटकर उस प्रशासनिक व्यवस्था और सरकार के साथ सहयोग करने लगे है, जिसे कल तक उन्होने 'शैतान' की संज्ञा प्रदान की थी किन्तु उनका और हमारा दुर्भाग्य यह कि उनमें न तो इतनी बुद्धिमता है और न इतना साहस है कि वे इस दुर्बलता को स्वीकार कर सकें।वर्तमान में उन्होनें देश को एक अनावश्यक संघर्ष में ढ़केल दिया है और वे इस पर आनन्द का अनुभव कर रहे हैं।[2]

अंग्रेजी सरकार ने आन्दोलन स्थगन का इस बात का प्रमाण बताया कि आन्दोलन कारी गलती पर थे और उन्होनें कानून अपने हाथ में लिया था।मोती लाल नेहरु तथा देशबन्धु चित्तरंजन दास ने गाँधी जी की कटु आलोचना की। जवाहर लाल नहेरु ने गांध [illegible] देश की नैतिकता के साथ [illegible] करने का सीधा आ[illegible]

[illegible] जी प्रायः यह कहा करते थे कि वे जो भी निर्णय क[illegible] के पीछे उनकी आत्मा की आवाज होती है चौरीचोरा काण्ड [illegible] से सुभाष चन्द्र बोस बहुत [illegible] हुए। पशिचमी [illegible] की आत्मा की आवाज और अहिंसा की जिद [illegible]

[illegible] कहा जा सकता है कि गांधी जी का चरम बिन्दु पर [illegible] करना एक बचकाना कदम [illegible] इस बिन्दु पर कांग्रेस में [illegible] बोस को एक असहयोगी के रूप में उपस्थित होना पड़ा [illegible] कष्ट उठाने वाले राष्ट्रवादी कराह उठे। उन्होने गांधी जी [illegible] घोर निराशा के अन्धकार में डूब गया।

[illegible] चन्द्र बोस गांधी जी के इस कदम से बौखला गये। [illegible] आया कि 52 वर्षीय गांधी जी ने अपने जीवन के तमाम अनुभवों तथा शीर्ष राजनैतिक ऊचांइयों को गर्त में क्यों फेंक दिया। पूरे देश को नैतिक पराजय का एहसास क्यो कराया गया।

1- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle-1920-42 page 229

2– सरदार शार्दूल सिंह कवीश्वर ; सुभाष बाबू के विरूद्ध कांग्रेसी कार्यवाही

3– एम0पी0कमल, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस (भारत के वीर सपूत) "देशबन्धु चित्तरंजनदास और सुभाष"–पृष्ठ 23–24.

३. स्वराज्यवादी विचार

अपने देश में राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभात से ही हमने स्वतत्रंता की व्याख्या पूर्ण स्वराज्य के रूप में की है। उपनिवेशीय राज्य के रूप में हमने इसका अर्थ कभी नहीं लगाया। हमने स्वतंत्रता को पूर्ण स्वराज्य के रूप में ही समझा है। उपनिवेशीय राज्य की बातें हमारे देशवासियों को तनिक-सा भी प्रभावित नहीं कर सकती, यहां तक कि तरूण पीढ़ी को भी नही, जो कि अभी विकसित हो रही है।

–कलकत्ता अधिवेशन में भाषण (1828)

असहयोग आन्दोलन के अचानक स्थगित हो जाने से कांग्रेस के शीर्ष नेताओं के बीच गहरे मतभेद उभर आये। इनमें से एक विचार के प्रतिनिधि चितरंजन दास तथा मोतीलाल नेहरू थे जिन्होने बदली हुयी परिस्थितियों में एक नये प्रकार की राजनीतिक गतिविधि का सुझाव दिया। उनका कहना था कि, 'राष्ट्रवादियों को विधान मण्डलों का बहिष्कार समाप्त करके उनमें भाग लेना चाहिए, सरकारी योजनाओं के अनुसार उनके चलने में बाधा डालनी चाहिए, उनकी कमजोरियों को सामने लाना चाहिए।''[1]

इसके विपरीत दूसरी विधारधारा के प्रतिनिधि बल्लभ भाई पटेल, डा0 अंसारी, राजेन्द्र प्रसाद ने विधानमण्डलों में जाने का विरोध किया। उन्होने चेतावनी दी कि संसदीय राजनीति में भाग लेने से जनता के बीच काम की उपेक्षा होगी। इसलिए ये लोग चरखा, चरित्र-निर्माण, मुस्लिम एकता, छुआछूत का खात्मा तथा गांवों में और गरीबों के बीच निचले स्तरों पर कार्य जैसे रचनात्मक कार्यो पर जोर देते रहे। उनका कहना था कि इससे देश धीरे-धीरे जन संघर्ष के लिए तैयार होगा।[2]

सुभाष चन्द्र बोस भी पहली विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते थे, चूंकि बोस चितरंजनदास के अनन्य शिष्य थे इसलिए बोस के अन्दर स्वराज्यवादी विचार चितरंजनदास की छत्रछाया में प्रस्फुटित हुए। सुभाष बोस के अनुसार, 'मैं यह भलीभांति समझता हूं कि मेरा जीवन एक निश्चित लक्ष्य के लिए है। उस लक्ष्य-सिद्धि के लिए ही मेरा जन्म हुआ है। अन्य लोगों [illegible] जीवन के प्रति विशिष्ट मापदण्ड मुझे प्रभावित नहीं करता। मैं [illegible]

[illegible], भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृष्ठ 177

[illegible] 177,178

लोग मेरे बारे में भला-बुरा कहेंगे; किन्तु यह तो संसार की रीति है। परन्तु मेरी उत्कृष्ट आत्म चेतना प्रेरित करती है और मैं प्रेरित नही होता यदि संसार की प्रतिक्रिया से मेरे भाव परिवर्तित हो जाएं, मैं दुखी और निराश हो जाऊं, तो मैं यह समझूंगा कि यह मेरी दुर्बलता है। मुझे अपनी आत्म-चेतना को गर्व के साथ एक ही विचार के गाढ़े-रंग में रंगना पड़ेगा। उद्देश्य की महानता समस्त कड़वाहटों को धो देती है और भविष्य का सूर्य अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रकट होता है। और यह महान उद्देश्य है 'पूर्ण स्वराज्य' की प्राप्ति। मुझे असंगतियों के मध्य से होकर जाना पड़ेगा ताकि जीवन की पूर्णता प्राप्त कर सकूं।''[1]

सुभाष का किशोर मस्तिष्क 'विपिन चन्द्र पाल' के इस लेख का विश्लेषण करने में लगा रहा-

''कोई किसी को स्वराज्य नहीं दे सकता। यदि आज अंग्रेज मुझसे कहें कि स्वराज्य ले लो, तो मैं उसे ठुकरा दूंगा। क्योंकि जिस चीज को मै स्वयं उपार्जित नहीं कर सकता, उसको लेने का अधिकारी भी मैं नहीं हूं। हम अपनी सारी शक्ति को इस तरह से लगायेगे जिससे विरोधी शक्ति को अपने मत पर ला सकें। इसके लिए हमें रचात्मक कार्य करने होगे।''[2]

उधर आन्दोलन-निलम्बन ने जनता के उत्साह एवं धैर्य पर गहरा आघात किया था। आर०पामे दत्त के शब्दों में, ''बारदोली के आघात से राष्ट्रीय आन्दोलन आधे दशाल्द तक पस्त रहा था।''[3] इस बीच सरकार ने अपनी स्थिति फिर से मजबूत कर ली तथा नेता लोगों को समझ नहीं आ रहा था कि दूसरा संघर्ष कब और कैसे शुरू किया जाय।

अलीपुर सैंट्रल जेल में चितरंजनदास और सुभाष बोस के साथ मौलाना अबुलकलाम आजाद भी थे। विधान मण्डलों का बायकाट असफल रहा था क्योंकि राजभक्त, उदारपंथी तथा उनके विचारों के पोषक अन्य व्यक्तियों ने उत्साह सहित कुर्सियां संभाल रखी थी। बोस के शब्दों में, 'ये लोग देश के आन्दोलन में सहायता पहुंचाने की बजाय सरकार को सहयोग दे रहे थे। इस सहयोग के कारण ब्रिटिश सरकार विश्व के समक्ष यह प्रभावित करने में समर्थ हो गयी कि दमन-नीति मे विधान-मण्डल के निर्वाचित सदस्यों का समर्थन है।''[4] चितरंजनदास ने जब राजनीतिक कैदियों के साथ आगामी क्रान्तिकारी संघर्ष के बारे

1- सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा; भाग-1 पृष्ठ-205

2- वही, 76,

3- R.Palme Dutt; India Today-Page-353

4- Subhas Chand Bose The Indian strulggle : 1920-42 Page 72

में विचार-विमर्श शुरू किया। दास का मन्तव्य था कि' संघर्ष की अवधि में शत्रु पक्ष को किसी भी प्रकार की सुविधा नहीं मिलनी चाहिए। अतः विधान मण्डल की अधिकाधिक सीटे-नगरपालिका, जिला बोर्ड आदि सार्वजनिक संस्थाओं को-कांग्रेस स्वायत्त करें तथा 'अबाध ा' और चिर विरोध की नियमित नीति का अनुपालन करे। इससे सरकार तथा दूसरे एजेन्टो को शैतानी का मौका नहीं मिलेगा। सीटें काबू में करने के बाद निर्वाचित सदस्य रचनात्मक कार्य के लिए तैयार रहें।'

दास ने स्पष्टीकरण दिया कि 'इसका अभिप्राय यह नही कि सदस्य-वर्ग कांग्रेस के कार्यक्रम को त्याग देगा।'(1)

4 अगस्त 1922 को सुभाष बोस कारा मुक्त हुए और चितरंजन दास उनके पांच दिन बाद। दिसम्बर 1922 को चितरंजन दास की अध्यक्षता में कांग्रेस-कमेटी की बैठक गया में हुई। इस बैठक में उन्हें पुनः अध्यक्ष चुन लिया गया। देशबन्धु ने जो सोचा था वही अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रस्तुत कर दिया। गांधी जी जेल में होने के कारण इस अधि विशन में नही थे। देशबन्धु के इस प्रस्ताव पर कांग्रेस दो गुटों में बंट गई-एक सहयोगवादी और दूसरा असहयोगवादी। राजगोपालाचारी अपरिवर्तन वादी गुट का नेतृत्व संभाले हुए थे। उनका कहना था-'हमें अपने पहले के कार्यक्रमों पर डटे रहना चाहिए, क्योंकि उन कार्यक्रमों में दम है, वे निर्जीव नही हो गए है।''(2)

जबकि चितरंजनदास का मानना था कि ''व्यवस्थापिका सभा में भाग लेने में क्या बुराई है ? हमारे पास जब जनमत है तो हम सभाओं से बाहर क्यों बैठे रहे? क्या हम बाहर बैठे-बैठे देखते रहे कि अंग्रेज और उनके चाटुकार इन धारासभाओं का दुरूपयोग करते रहे।''

'आप तुर्की की ओर नजर डालिए। उदीयमान राष्ट्र का हमें अभिनंदन करना चाहिए। कमालपाशा की सफलताओं और उनकी कर्मपद्धति का हमें स्वागत करना चाहिए, उनकी कर्मपद्धति और प्रणाली हमें अपनाकर आगे बढ़ना चाहिए और एशियाई संघ बनाने का प्रयास करना चाहिए। मैं कौंसिलों के बॉयकाट का हमेशा विरोधी रहा हूं। इसके पीछे मेरा यह विचार भी रहा हैं कि हमें अपने स्वतंत्र होने का पूर्वाभास कर कौसिलों में भाग लेकर

1— आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक (भारत-पथिक 1921-33) पृष्ठ 30-31

2— सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा ; भाग-1 पृष्ठ-224

अनुभव प्राप्त करना चाहिए।''

'परिवर्तन-विरोधी' वर्ग ने आपत्ति की। प्रस्ताव पारित नही हो सका। चितरंजन दास ने अध्यक्ष के पद से ही नही कांग्रेस की सदस्यता से भी इस्तीफा दे दिया।[1]

परिवर्तन-समर्थकों ने चितरंजनदास एवं मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में 'स्वराज्य-पार्टी' का गठन कर लिया। सुभाष बोस भी इस पार्टी में शामिल हो गए। एक तो चितरंजन दास के विचारों, आदर्शो से उनका मानसिक सामंजस था, दूसरे जैसा, कि एम0 तय्यबुल्ला ने संकेत दिया है, 'गांधी के अस्पष्ट दर्शन, धार्मिक विश्वासों, आदर्शवादी सुन्दर स्वप्न में बोस को राजनीति कहीं नही दिखाई पड़ती थी।''[2]

सभी प्रान्तों में कांग्रेस दो भागों में बंट गयी। बंगाल में भी यह दो टुकड़ों में काम करने लगी। सुभाष एक बार फिर स्वराज पार्टी के प्रचार प्रसार में जुट गये। 1923 की कार्य-योजना निर्धारित करने के लिये कांग्रेस बैठक में 'स्वराज्य पार्टी' की घोषणा। मोतीलाल नेहरू ने की थी। और दास ने इसका समर्थन किया था।[3]

इसके साथ ही स्वराज्य पार्टी ने बंगला दैनिक 'बंगलार कथा' प्रकाशित करना शुरू कर दिया। इसके सम्पादक का भार सुभाष ने उठाना स्वीकार कर लिया। अपनी योग्यता और क्षमता से उसने स्वराज्य पार्टी को कांग्रेस के दूसरे धड़े की उपेक्षा कहीं आगे कर दिया। स्वराज्य पार्टी की विचारधारा को कांग्रेस के अन्दर और बाहर समर्थन मिला और इतना मिला कि अपरिवर्तनवादियों को अपने अस्तित्व का खतरा हो गया।[4]

1 जनवरी 1923 को अखिल भारतीय 'स्वराज्य पार्टी' औपचारिक रूप से गया में स्थापित कर दी गयी। चितरंजन दास 'अध्यक्ष' और मोतीलाल नेहरू 'जनरल सैक्रेटरी' बने तथा प्रमुख सदस्यों में सुभाष बोस, विट्ठल भाई पटेल रंगा स्वामी अंयगर तथा एन0सी0 केलकर थे।[2] मार्च 1923 को इलाहाबाद में इसके संविधान का प्रारूप तैयार हो गया पार्टी का लक्ष्य था-भारत के लिए औपनिवेशिक स्वशासन की मांग।

स्वराज्य पार्टी ने कार्यक्रम तो पूर्ण रूप से कांग्रेस का ही अंगीकार किया था किन्तु विधान-मण्डल के आगामी चुनावें में हिस्सा लेने की घोषणा कर दी और यह भी कि मण्डल में प्रवेश के बाद 'स्वराज्य' की मांग भी प्रस्तुत की जाएगी। यदि सरकार ने सुनवाई न

1- आशा गुप्त, सुभाष चन्द्र बोस (भारत-पथिक 1921-33) पृष्ठ-31
2- Hari Har Das, Subhas Chandra Bose and the Indian National Movement, P. 101.
3- आशा गुप्त, सुभाष चन्द्र बोस (भारत-पथिक 1921-33) पृष्ठ-31
4- सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा - भाग -1,पृष्ठ 225
5- आशा गुप्त, सुभाष चन्द्र बोस (भारत-पथिंक 1921-33) पृष्ठ-32

की तो पार्टी अपने निर्वाचित सदस्यों की सहायता से विधान-मण्डल के काम में अबाध, सतत एवं संगत व्यवधान पैदा करती रहेगी जिससे सरकारी कामकाज ठप रहे, जिससे विधानमण्डल कमजोर पड़ता चला जाये और हर मुद्दे पर तालाबन्दी रहे। इस प्रकार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान-मण्डल राजनीतिक संघर्ष का मंच बन जायेंगे।[1] बी० पट्टाभि सीतारमैय्या के शब्दों में, 'पलक झपकते ही किसी वस्तु के अपने स्थान से गिर जाने या करंट न रहने पर रोशनी की जगह अंधेरा छा जाने से भी ज्यादा जल्दी आन्दोलन का स्थान विधान-मण्डल प्रवेश ने ले लिया।''[2] परिवर्तन समर्थन' तथा परिवर्तन-विरोधी दलों में संघर्ष बढ़ता देख राष्ट्रवादी संत्रस्त हो उठे। भय था कि 1907 वाले मनमुटाव का सामना करना पड़ेगा। अतः कांग्रेस के प्रमुख सदस्यों पर दबाब डाला गया कि आपसी झगड़े को खत्म कर दिया जाये।

चुनावों में स्वराज्य पार्टी को प्रशंसनीय सफलता मिली। केन्द्रीय विधान-मण्डल में पार्टी के सदस्यों ने पर्याप्त मात्रा में सीटें स्वायत्त कर ली। प्रान्तीय विधान-मण्डलों में भी उनका प्रतिनिधित्व कायम हो गया। सुभाष बोस स्वंय इस चुनाव में भाग नहीं ले सके थे क्योंकि चुनाव सारणी में उनका नाम दर्ज नहीं था। 'स्वराज्य-पार्टी' की सफलता का अभिनन्दन करते ही उन्होने कहा था,

'भाग्य सदा वीरों का साथ देता है..............धूमिल भविष्य के बाबजूद पार्टी को अभूतपूर्व सफलता मिली है। चुनाव का परिणाम मध्य प्रदेश में विशेष प्रशंसनीय रहा। अब स्पष्ट हो गया है कि स्वराज्यवादी स्थानीय विधान-मण्डल का काम अवरुद्ध करने में सफल होंगे।''[3]

इस दौरान गांधी जी को स्वास्थ हानि के कारण रिहा किया जा चुका था। वे उन दिनों जुहू में थे। चितरंजनदास तथा मोलीलाल नेहरू दोनों विधानमण्डल में प्रवेश की सफलता पर उनसे आर्शीवाद लेने गये। गांधी जी ने विधान-मण्डल के अन्दर से अवरोध उपस्थित करने की योजना को महत्वहीन कहा। सुभाष बोस का कहना था कि, "गांधी जी सिद्धान्ततः स्वराज्यवादियों के विधान-मण्डल प्रवेश के कट्टर विरोधी थे। हां, उन्होने प्रतिकूल वृत्ति नही अपनायी, कदाचित, इसीलिए कि स्वराज्यवादियों की स्थिति इतनी मजबूत हो चुकी थी कि उन्हें उखाड़ फेंकना अब सम्भव न था। इसलिए वे अनिवार्यता के समक्ष नत हो गये थे

1- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-32

2- B. Pattabhi Sitaramagya : The History of the Congress - 961

3- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-87

अथवा उन्होने सोचा हो कि देश की बदलती हुई परिस्थिति की यही मांग थी कि कार्य प्रणाली को बदल डाला जाय।''[1]

जुलाई 1923 में तुर्की राष्ट्र स्वतंत्र हो गया। कमालपाशा वहां का इतिहास पुरूष बनकर उभरा। सुल्तान भाग खड़ा हुआ और तुर्की को गणतंत्र घोषित कर दिया गया। स्वराजियों ने तुर्की की जीत का स्वागत किया और कसम खाई कि वे शीघ्र ही अपने देश को अंग्रेजों से मुक्त करवाऐंगे।[2]

कांग्रेस पर इसकी प्रतिक्रिया भी लाजिमी थी। सितम्बर 1923 को, दिल्ली में कांग्रेस की विशेष बैठक में अध्यक्षीय पद से मौलाना अबुल कलाम आजाद ने बताया कि वे स्वंय इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके है कि विधान-मण्डल प्रवेश का वायकाट निरर्थक है। वर्तमान स्थिति में अधिकाधिक सीटें स्वायत्त करना लाभदायक होगा। तदनुसार प्रस्ताव पेश किया गया कि विधान-मण्डल प्रवेश में जिन कांग्रेस सदस्यों को धार्मिक या विवेक की दृष्टि से कोई आपत्ति नहीं है वे आगामी चुनावों में खड़े हो सकते है। तथा मताधिकार का उपयोग कर सकते है। अतः कांग्रेस विधान-मण्डल प्रवेश के विरूद्ध सारा प्रचार स्थगित करती हैं।[3]

चुनाव सारणी में नाम न होने के कारण विधान-मण्डल-प्रवेश में सुभाष बोस की कोई भूमिका तो थी नहीं, बाहर रहकर स्वराज्य पार्टी की कार्यकारिता का अध्ययन करने का उन्हें अवसर अवश्य मिल गया। कांग्रेस की नरम नीति की, अपेक्षा स्वराज्य पार्टी की प्रगतिशील एवं आक्रामक नीति के लिए आजादी की प्राप्ति उन्हें अधिक लाभप्रद लगी। सुभाष बोस ने युवाओं को संगठित करने के लिए 'अखिल बंगाल युवा लींग' की स्थापना कर दी।[4] दिसम्बर माह में कलकत्ता में तरूणों का सम्मेलन हुआ। उन्होने इच्छा प्रकट की कि उनका एक पृथक संगठन होना चाहिए ताकि वे लोग अपने ढंग से आन्दोलन चला सकें। लेकिन कांग्रेस ने उन लोगो की यह मांग ठुकरा दी। सुभाष ने अपने पक्ष को तोला, सर्मथकों की शक्ति को परखा और युवाओं को दिलासा दी-

"पुरानी विचारधारा के लोग कभी भी नई विचारधारा में बहना पसंद नहीं करेगे क्योंकि वहां कष्ट, चुनौतियां, बलिदान के सिवाय और है क्या ? नये रास्तों की तलाश करना जीवट का काम है। हम तलाशेगे इन रास्तों को। हम यहां अल्पमत में है पर कोई परवाह

1- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-102
2- सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 225–226
3- B. Pattabhi Sitaramagya : The History of the Congress - 459
4- आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 33

नही। हम दृढ़ निश्चयी है, अनुशासित हैं। हम अपने ही बलबूते पर अपने संगठन के लिए चन्दा एकत्रित करेगे। हम कांग्रेस का विरोध नहीं कर रहे है, स्वराजियों को अपने विचारों के अनुकूल पाकर उनका पक्ष ले रहे है।''

इस असीमित उत्साह ने चुनावी युद्ध में नये प्राण फूंक दिये। देशबन्धु अपने अनुयायियों से बोले-'1920 में कांग्रेस की कौंसिलों के बहिष्कारों का निर्णय लिया था। इससे कौंसिलों का अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ, अपितु वहां पूंजीपति, जमींदार, ताल्लुकेदार, वकील और प्रतिक्रियावादी तत्व घुस गये। ये लोग सरकार के चाटुकार है और उसके सहायको की भूमिका निभा रहे हैं। हमें अपनी तटस्थता की कीमत यह चुकानी पड़ी कि इन सहायकों ने पचासों दमनपूर्ण कानूनों को हम पर लदवा दिया है। हमने कौसिलों के चुनाव में भाग लेने की बात इसी कारण की है। लेकिन हमारे ही भाई आज बड़ी उत्सुकता से हमारी पराजय की बाट जोह रहे है ताकि वे कह सकें कि हमारा निर्णय गलत था।''[1]

स्वराजियों ने कौंसिलों में जीत का पूरा मानस बनाया हुआ था। देशबन्धु की प्रेरक शक्ति तथा उनके सहयोगी सुभाष की योग्यता, संगठन शक्ति, त्याग, कठिन परिश्रम, आकर्षक व्यक्तित्व और अप्रतिम राजनीतिक सूझबूझ से स्वराज्य पार्टी की सर्वत्र विजय हुई। अब सुभाष का लक्ष्य कलकत्ता कारपोरेशन के चुनाव में स्वराज्य पार्टी को अधिपत्य स्थापित करना था। सुभाष और अधिक परिश्रम में जुट गये। अब वे लोगों के लिए अनजान नहीं थे।

जिसके गुणों के हम कायल हों, उसे चाहेंगे कि वह ऊँचे से ऊँचे पद पर पहुचे। उसके ऋण उतारने का और तरीका भी क्या हैं? जिसके साथ जन-साधारण की उत्तम भावनाएं होगी, वह सार्वजनिक क्षेत्र में कभी पराजित नहीं हो सकता। सुभाष भी ऐसे ही व्यक्तियों में से थे। छल-छदम से दूर, वे वास्तविकता पर निर्भर जीवन जीते थे। उनके विरोधियों ने उन्हें टटोला, उनकी कमजोरियों को पकड़ने के लिए जाल विछाए, उनकी एक-एक हरकत पर दृष्टि रखी। पार वहां कुछ नहीं मिला। सुभाष का जीवन तो खुली किताब था।

मार्च 1924 में, कलकत्ता के चुनाव हुए। स्वराजवादियों ने कलकत्ता कॉरपोरेशन पर भी अपना बहुमत स्थापित कर लिया। कांग्रेस के सतत विरोध के बाबजूद स्वराजियों ने

1- सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 229

पालिका के 75 में से 55 स्थानों पर कब्जा कर लिया।[1] कॉरपोरेशन पर इस पार्टी का पूर्ण अधिकार हो गया। सुभाष बोस भवानीपुर वार्ड नं0 22 से अविरोध निर्वाचित हो गये। देशबन्धु के पास जब यह सूचना पहुंची तो उनके मुंह से शब्द निकले–

"मेरा गांधीजी से समझौता ही यही हुआ था कि वे स्वराज्य पार्टी को स्वतंत्रता से कार्य करने दें। गांधी जी ने अनिवार्यता को पहचाना और हमारी बात को स्वीकार किया। हमारे मन में गांधी जी के प्रति दुर्भावना नहीं थी और न है। वे पूज्यनीय है। उन्होने हमारी इच्छा का आदर भले ही विवशता में किया हो, लेकिन इस कदम से हमारा उत्तरदायित्व बढ़ा और हमने दिखा दिया कि हमारी राजनीतिक जिजीविषा प्रबल और सटीक है। हमें चुप होकर नहीं बैठना है। कॉरपोरेशन की जीत ने हमारी जिम्मेदारियों को और भी अधिक बढ़ा दिया है। मैं चाहता हूं कि सुभाष कौंसिल के ऐग्जिक्यूटिव ऑफिसर का पद संभाले।"[2]

'मेरा निर्णय कभी गलत नहीं होता। मैं जो कदम उठाता हूं उस पर छीटा-कशी की संभावना नहीं रखता। तुम लोगों ने मेरा स्वभाव देखा-परखा है। हमारी कार्यवाही, हमारा वक्तव्य न्यायपूर्ण एवं संगतयुक्त होना चाहिए। दूसरे इसके विषय में क्या सोचते है, इसकी ज्यादा चिन्ता नही करनी चाहिए। जनवरी महीने में गोपनाथ साहा ने धोखे से अंग्रेज अफसर अर्नेस डे की हत्या कर दी थी। वह हत्या करना चाहता था कुख्यात पुलिस ऑफिसर टेगर्ट की। इसके कुछ दिन बाद सिराजगंज में प्रादेशिक सम्मेलन हुआ था। इस राजनीतिक सम्मेलन मे वक्ताओं ने गोपीनाथ साहा के कार्य की निन्दा की किन्तु कुछ कार्यकर्ता ने उसके शहीद हो जाने पर दुःख प्रकट किया और उसकी देशभक्ति तथा साहस की प्रशंसा भी की। मेरी दृष्टि से इसमें कुछ अनुचित नहीं था। हमें हिंसा का विरोध करना है पर उसके पीछे छिपे हुए तथ्य को भी देखना जरूरी है। साहा क्या देशभक्त नहीं था ? क्या उसने जो हत्या की, उसके पीछे उसकी व्यक्तिगत रंजिश थी ? क्रान्तिकारी जो कुछ कर रहे हैं, क्या वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए कर रहे है यदि हम किसी व्यक्ति के बुरे कामों की निन्दा करते हैं तो हमें उसकी अच्छाइयों की भी प्रंशसा करने का हक है। फांसी के बाद ही एक अंग्रेज सार्जेन्ट ने गोपनाथ साहा के बारे में कहा था–

1– विपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृष्ठ 177

2- सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 231

'He played like fawn

And at the dawn

Was slain on the lawn."

गांधी जी ने साहा की प्रशंसा की निन्दा की है। मैने उन्हें उत्तर दिया है। वे संभवतः इस पर नाराज है। जून में अहमदाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस की कमेटी होने जा रही है। उसमें निर्णय होगा। मैं अपने बचन पर अडिग हूं क्योंकि मैं जानता हूं कि मैं गलत नहीं हूं।[1]

कौंसिलरों की पहली बैठक में चित्तरंजन दास को महापौर तथा सुहरावर्दी को उपमहापौर बना दिया गया। सुभाष बोस मुख्य कार्यकारी अफसर नियुक्त हो गये।[2] यह पद अभी तक अंग्रेज के कब्जे में रहता था। सरकार परेशान थी। वह नहीं चाहती थी कि इतने महत्वपूर्ण पद पर सुभाष आए। लेकिन देशबन्धु महानगरपालिका के मेयर थे सो उनकी सिफारिश के नाम को टाल नही जा सकता था। अस्तु, लगभग एक महीने के बाद सरकार को स्वीकृति देनी ही पड़ी। दास को इनकी योग्यता पर पूरा भरोसा था। वे उन्हें 'ए यंग ओल्डमैन' कहा करते थे।[3] सरकार विरोधी पार्टियों की सत्ता मजबूत होती चली गयी।

1923-1924 में कांग्रेस-सदस्यों ने कई स्थानीय समितियों तथा नगर-निगम पर भी अधिकार जमा लिया था। विट्ठल भाई पटेल बम्बई कॉरपोरेशन, बल्लभ भाई पटेल अहमदाबाद नगर-निगम, राजेन्द्रप्रसाद पटना नगर-निगम तथा जवाहर लाल नेहरू इलाहाबाद नगर-निगम के अध्यक्ष निर्वाचित हो चुके थे। स्वराजवादियों ने रचनात्मक कार्यो द्वारा कलकत्ता कॉरपोरेशन के प्रशासकीय ढांचे को नया रूप मिला। सुभाष बोस के अनुसार जनता से पहली बार नगर-निगम को अपनी समिति के रूप में अंगीकार किया था।[4] ह्यूग टोइ के अनुसार 'आयु की दृष्टि से सत्ताईस वर्षीय सुभाष कही अधिक दायित्वपूर्ण पद के अधिकारी हो चुके थे जो उन्हें इंडियन सिविल सर्विस में इतनी जल्दी प्राप्त नही हो सकता था।''[5]

कलकत्ता कॉरपोरेशन में स्वराज्यवादियों का सफल प्रशासन ब्रिटिश सरकार को भयग्रस्त कर रहा था। इसकी अपनी सत्ता नगण्य प्राय हो चुकी थीं। प्रशासन की सफलता ने जनता मे सरकार के प्रति क्षोभ बढ़ा दिया था। उधर क्रान्तिकारी आतंकवादियों की आक्रामक नीति

1– सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 232
2- आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 33
3- B. Pattabhi Sitaramagya : The History of the Congress - 459
4- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-95
5- Huge Toye : The Springing Tiger, Page 30-31

से भी सरकार परेशान थी। सरकार स्वराज्य पार्टी की सत्ता को आमूल नष्ट करने का अवसर तलाश रही थी। जो गोपनाथ साहा द्वारा एक योरोपीयन की हत्या ने प्रदान कर दिया। जनवरी 1924 की बात है, गोपीनाथ साहा चार्ल्स टेगार्ट नामक पुलिस कमिश्नर की हत्या करना चाहता था। गलती से मिस्टर डे नामक व्यक्ति मारा गया। जनता की घोर आपत्ति के बाबजूद सरकार ने उसे फांसी चढ़ा दिया। फांसी पर जाने से पूर्व साहा ने कहां, 'मेरे खून की बूंद-बूंद भारत के हर घर में आजादी का बीज बो दें।''[1] साहा के इन शब्दों ने देशवासियों के हृदय में श्रद्धा, प्रशंसा और देशभक्ति की भावना को और गहरा कर दिया।

सुभाष बोस और चितरंजनदास दोनो आतंकवाद के घोर विरोधी थे। किन्तु इस दल की निडरता, लक्ष्य के प्रति समर्पण-भाव एवं आत्म-त्याग के कायल भी थे। देशबन्धु सुभाष के कार्यो से सन्तुष्ट थे। नगर की जनता को पहली वार अनुभव हो रहा था कि कोई भारतीय भी इतना दबंग और कुशल प्रशासक हो सकता हैं। अंग्रेजों ने सुभाष के इन क्रान्तिकारी सुधारों को क्रान्तिकारी विचारधारा कहना शुरू कर दिया।

साहा-काण्ड के बाद अंग्रेजी गवर्नर लार्ड लिटन ने 'बंगाल ऑर्डीनेंस एक्ट' की घोषणा कर दी।[2] 1818 के अधिनियम के अनुसार बहुत से कांग्रेसी हिरासत में ले लिये गये। सरकार को सुभाष बोस सबसे 'खतरनाक' व्यक्ति लग रहे थे, जबकि उन दिनों वे राजनीति से प्रायः तटस्थ हो गये थे। 25 अक्टूबर, 1924 की प्रातः सुभाष को इस कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया गया।[3] उन्हें गिरफ्तार करके अलीपुर जेल में पहुंचा दिया गया। उधर कलकत्ता के 'द इंगलिश मैन' तथा 'द स्टेट्समैन' दो ऐंग्लो इंडियन पत्रों ने आरोप लगाया कि क्रान्तिकारी आतंकवादियों द्वारा ब्रिटिश सरकार को उखाड़ फेंकने की चेष्टा के पीछे सुभाष बोस का मस्तिष्क क्रियाशील है।[4] सरकार ने दोनों पत्रों से प्रमाण प्रस्तुत करने का आदेश दिया। किन्तु बोस की क्रान्तिकारी षड्यंत्रता का कोई सबूत हाथ न लगा। 'इंडिया ऑफिस के किसी एजेंट ने पत्र भेजा कि कुछ लोगों की जबानी साक्षी पर बोस को पकड़ लिया गया था। इधर स्वराज पार्टी को, कलकत्ता से लन्दन भेजा गया यह पत्र हाथ लग गया जिसे उसने 'फारवर्ड' पत्रिका में प्रकाशित भी कर दिया। इस पत्र के प्रकाशन ने सरकार

1– Huge Toye : The Springing Tiger, Page 30-31
2- सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 235
3- आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 35
4- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-106

को और भी संकट डाल दिया।[1]

सुभाष बोस की गिरफ्तारी पर चित्तरंजन दास के क्षोभ का कोई अन्त न था। उन्होने कहा, 'सुभाष बोस मुझसे अधिक क्रान्तिकारी नही हैं। मुझे क्यों नही कैद किया गया। यदि देश-प्रेम अपराध है तो मैं भी अपराधी हूं। यदि सुभाष बोस गुनाहगार हैं तो मैं कॉरपोरेशन का मुख्य-कार्यकारी-अफसर ही नहीं महापौर भी बराबर का गुनाहगार है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि ये अध्यादेश एक कानूनी संगठन को नष्ट करने के लिए लागू किये गये हैं।''[2] ह्यूग टोइ के शब्दों में 'बोस पर कोई आरोप नहीं लगाया गया था। उनकी मनमानी काराबन्दी पर इतना हंगामा हुआ कि यदि सम्भव होता तो अधिकारी इन पर मुकदमा दायर करके सजा देने से बाज न आते।'[3]

सरकार चाहती थी कि सुभाष का सम्पर्क राजनीतिक गतिविधियों से टूट जाए तथा वह नगरपालिका से जो सम्बन्ध बनाए हुए हैं, वह भंग हो जाए क्योंकि उसकी गिरफ्तारी से कुछ सीमा तक स्वराज्य पार्टी की गति में कमी तो आई ही थी। दिसम्बर 1924 में सम्पन्न हुए बेलगांव के कांग्रेस अधिवेशन की रिपोर्ट सुभाष को मिल चुकी थी, यह सम्मेलन गांधीजी के सभापतित्व में हुआ था। देशबन्धु ने इसकी विस्तृत रपट में लिखा था-

'तुम्हें मालूम हैं कांग्रेस के सिराजगंज सम्मेलन में गोपीनाथ साहा के सम्बन्ध में मेरी झपड़ हुई थी। मैने जून के अहमदाबाद के सम्मेलन में भी अपना वही रूख रखा, जैसा कि मैं पहले ही तय कर चुका था। गांधी जी ने इस सम्मेलन में सिराजगंज वाले प्रस्ताव के विरूद्ध एक प्रस्ताव रखा। फलस्वरूप मैने गांधी जी के प्रस्ताव पर एक संशोधन रख दिया और मैं हार गया। खैर! हार और जीत चलती रहती है। अगर हम सही हैं और सच्चे मन से कुछ कर रहे हैं तो हार की क्या विसात कि हमें विचलित कर दें। दिसम्बर 1924 में गांधीजी के सभापतित्व में बेलगांव में कांग्रेस का सम्मेलन हुआ है। इसमें गांधी जी ने अपने भाषण में सम्पूर्ण रूप से हिंसा और त्याग पर जोर दिया है और कांग्रेस के अन्दर सह-अस्तित्व को प्रात्सोहन देने की बात की है। उनकी बात से किसे इन्कार हो सकता है ? स्वराज्य पार्टी के विलय की बात भी आई, पर मेरा कहना था ऐसा क्यों ? पंडित मोतीलाल नेहरू हमारे केन्द्रीय धारासभा के सदस्य है। वे प्रयास

1— Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-106

2- Huge Toye : The Springing Tiger, Page 21

3- Ibid; 31-32

कर रहे है कि औपनिवेशिक स्वराज्य के ढाचे पर शासन विधान बनाने के लिए गोलमेज सम्मेलन बुलाया जाए।

हम जो कुछ कर रहे है कांग्रेस के अन्दर रहकर ही कर रहे है, फिर स्वराज्य पार्टी पर टेढ़ी दृष्टि क्यों ? मेरा विचार है हमें हटना नहीं चाहिए अपितु अपने विचारों पर डटे रहना चाहिए। हां, इस अधिवेशन ने यह जरूर हुआ है कि गांधी जी ने हमारी पार्टी को व्यवस्थापिका सभाओं के चुनावों तथा तत्सम्बन्धी अन्य कार्यो के लिए जिम्मेदार बना दिया है। यह भी हमारी जीत ही तो है।''[1]

25 जनवरी 1925 को सुभाष बोस कलकत्ता लाये गये रास्ते में पता चला कि उन्हें मांडले जेल वर्मा भेजा जा रहा है। इस पर बोस ने अंग्रेज पुलिस अधिकारी को ध न्यवाद देते हुए कहा कि-'आपकी सरकार ने मुझे इस लायक समझा है। लेकिन मैं तो इसे भारत की आजादी चाहने वालों का तीर्थ मानता हूं। मेरी इच्छा इसके दर्शन करने की थी। मेरा सौभाग्य है कि जिस स्थली को तिलक, लाला लालपत रॉय, सरदार अजीतसिंह और अन्य क्रान्तिकारियों ने अपने चरणों से पवित्र किया है, वहां मैं शीश झुकाने आया हूं।''[2]

मांडले जेल में लोकमान्य तिलक लगभग छह वर्ष तथा लाला लालपत रॉय एक वर्ष तक कारारुद्ध रहे थे, इसलिए बोस को विशेष गौरव की अनुभूति हो रही थी। यह जेल भारतीय जेलों से पृथक थी। बोस के शब्दों में, 'यह बिल्डिंग किसी सरकस या चिड़ियाघर का पिंजरा-सी लगती थी और बाहर से, विशेषकर रात के समय, सलाखों में बन्द कैदी पशुओं जैसे प्रतीत होते।'[3] इग्लैण्ड के जेल-कमिश्नर मिस्टर पैटर्सन ने बोस को भारत के 'सबसे खतरनक' आठ कैदियों में से एक कहकर अभिनन्दित किया था।[4]

16 जून 1925 को देशबन्धु चितरंजनदास का देहावसान हुआ। बोस ने दिलीप कुमार रॉय, को लिखा-

'अपने को निराश्रित और असहाय अनुभव कर रहा हूं। इस महान विभूति के साथ स्मृति-संसार द्वारा इतनी निकटता की अनुभूति हो रही है कि इस समय कुछ भी लिख पाना संभव नही है।''[5] दिन भर सुभाष विचलित रहा। अब सुभाष ने बासन्तीदेवी जी को

1- सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा - भाग -1,पृष्ठ 238-239
2- वही
3- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle (1920-1942) - Pages-131
4- आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 36-37
5- Dilip Kumar Roy : Netaji-The Man ; 178-179

संवेदना पत्र लिखा–

मांडले सेन्ट्र जेल

जुलाई 1925

श्री चरणेषु मां,

आज आपकी इस घोर विपत्ति के दिन हम प्रवासी बंगाली आपके पास सात्वना सदेश भेज रहे है। जैसी विपत्ति आप पर पड़ रही है उससे महान विपदा किसी महिला के जीवन में नहीं आ सकती।

जो चले गए है वह हमारे भी आत्मीय थे। आज समस्त भारतवासी उनके शोक से रूदन कर रहे हैं, परन्तु सबसे अधिक रो रहा है बंगाल का तरूण समाज। देशबन्ध ु चले गए। सिद्धिदाता के उस वरद पुत्र ने विजय–मुकुट पहनकर ही भारत के विशाल कर्मक्षेत्र से दिव्यलोक की यात्रा की। आज हमारे चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार हैं, और हृदय में शून्यता है। अन्धकार की प्राचीर में आलोक–किरण के प्रवेश के लिए तिल भर भी स्थान नही है।

इसी कारण निवेदन है कि आप इन विपदा के दिनों में हमें सांत्वना दे। जिस अरमान से आपने एक दिन बंगालियों की नस–नस में नव जीवन का संचार किया था।, उसी से अब आप बंगालियों को जागृत करें। बंगाल का सम्पूर्ण तरूण समाज आपके चरणों में भक्ति–अर्ध्य देगा। आपका आर्शीवाद प्राप्त करके कर्मक्षेत्र में विजयी होगा और अर्जित विजयभाल से आपको विभूषित करता रहेगा।[1]

वन्दे मातरम्!इति।

आपके सेवक

नवम्बर 1926 में बंगाल प्रान्तीय विधान–मण्डल के चुनाव होने को थे। बंगाल कांग्रेस पार्टी ने एस0सी0 मित्रा को एक निर्वाचन क्षेत्र और सुभाष बोस को कलकत्ता निर्वाचन क्षेत्र दिया था। राजनीतिक बन्दियों को जेल से चुनाव लड़ने की अनुमति देना अपने आपमें बड़ा विचित्र व्यापार था। बोस को बड़ी संख्या में वोट मिले। उनका कहना है कि 'मतदाताओं

1- A Bunch of old Letters ; London, Oxford University, Letter No. 162

का ख्याल था कि मेरी सफलता जनता का मुझमें विश्वास का सूचक होगी और सरकार या तो मुझे आजाद करने पर बाध्य हो जायेगी अथवा अभियोग लगाकर भारत बुला लेगी।[1] किन्तु सरकार टस से मस न हुई।[2]

देशबन्धु के निधन के बाद मोतीलाल नेहरू स्वराज पार्टी के लीडर हो गये थे। पं० मदनमोहन मालवीय तथा लाला लालपत रॉय के नेतृत्व में 'राष्ट्रवादी पार्टी' स्वराज पार्टी' को सहयोग दे रही थी। खिलाफत आन्दोलन के दौरान हिन्दू-मुसलमानों का अल्पकालिक सहयोग खत्म हो चुका था।

नवम्बर 1926 में स्वराज पार्टी ने विधान-मण्डल के चुनावों में हिस्सा लिया। इस पार्टी में अब पहले बाला दम खम नहीं रहा था। उसे एक तरफ सरकार, राज-भक्तों तथा अपनी पार्टी के दल-बदलू लोगों का मुकाबला करना था और दूसरी तरफ साम्प्रदायिक भेदभाव से ग्रस्त हिन्दू-मुसलमानों था। केन्द्रीय विधानमण्डल में उसे कुल चालीस सीटें मिलीं और मद्रास में आधी। शेष प्रान्तों में विशेषकर उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश और पंजाब मे स्वराज पार्टी को मुंह की खानी पड़ी। फिर भी लगातार स्थगन द्वारा उसने सरकार के कई अधि ानियम पारित नही होने दिये थे, उदाहरणार्थ, सरकार का 'जन-सुरक्षा-अधिनियम' (पब्लिक सेफ्टी-बिल) 1928 में पारित नहीं हो सका।[3]

16 मई 1927 को सुभाष बोस बीमारी की हालत में मांडले जेल से आजाद किये गये थे। डॉक्टरों ने उन्हें पूरी तरह आराय की सलाह दी थी किन्तु देशबन्धु चित्तरंजन दास के निधन के कारण बोस को तुरन्त काम संभालना पड़ा। बंगाल प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी के सदस्य तथा बंगाल का युवा-वर्ग उनकी वापसी पर बड़ा प्रसन्न था। जे०एम० सेन गुप्ता की जगह बोस बंगाल प्रादेशिक कांग्रेस के अध्यक्ष चुन लिये गये।[4] दोनों लीडरों में गलत फहमियां पैदा होने लगीं। 'युगान्तर' और 'अनुशीलन' दोनों के सदस्य इस विरोध को हवा देते रहे। यों देशबन्धु के जीवन-काल में स्वराज-पार्टी के पदों को लेकर इन दोनों में मत वैषम्य हो जाता था। देशबन्धु की मृत्यु के बाद इसे रोका नहीं जा सका।[5]

हरिहरदास ने लियोनार्ड पी०गार्डन के 'बंगाल द नेशनलिस्ट मूवमैण्ट' 1876-1940 (240) के हवाले से इस टकराव के लिए गांधीवादी हाई कमाण्ड तथा बंगाल कांग्रेस के

1- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-139
2- आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 40
3— वही, 41
4— एम०पी०कमल, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस (भारत के वीर सपूत) पृष्ठ 30—31
5- Subhas Chandra Bose: Correspondence, 1924-32 (Cal. 1967) 299-390

बोस बन्धुओं के प्रभुत्व को जिम्मदार ठहराया है। गार्डन ने बंगाल की राजनीति को शिफ्टिंग अलायंस (दल-बदलू) का उलझा हुआ जाल कहा था।[1]

उधर लार्ड वर्किनहैड चुनौती दिये जा रहे थे कि संविधान का सर्व सम्मत मसविदा तैयार करने में भारत कभी सफल नही हो सकेगा। इस चुनौती के फलस्वरुप फरवरी, मई और अगस्त 1928 में सर्वदलीय सम्मेलनों की बैठके हुई। मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में अगस्त 1928 में एक उपसमिति गठित की गई, जिसने भारतीय संविधान की रुपरेखा तैयार की। इसे नेहरू रिपोर्ट के नाम से जारी किया गया। राजनीतिक मुद्दों तथा सामान्य समस्याओं के हल पर 'रिपोर्ट' लगभग सहमत थी। रिपोर्ट में 'औपनिवेशिक स्वशासन' की मांग पर मत-विरोध हो गया क्योंकि अल्पसंख्यक वर्ग संविधान का मूलभूत आधार 'पूर्ण स्वतंत्रता' की मांग चाहता था।[2] कार्फ्रेंस द्वारा प्रस्तुत जमीदारों का सम्पत्ति पर हक कायम रखने पर भी युवा सदस्यों को रिपोर्ट स्वीकार नहीं थी। सुभाष बोस तथा नेहरू दोनो ने इन मुद्दों का विरोध किया। नेहरू और बोस दोनों ने जनरल सैक्रटरी के पद से इस्तीफा देने की पेशकश थी जिससे इंडिपैडेन्स ऑफ इंडिया लीग (भारत स्वतंत्रता संघ) बनाकर 'पूर्ण स्वराज्य' की मांग का सक्रिय प्रचार किया जा सके। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने कहा कि मद्रास वाला कांग्रेस का प्रस्ताव 'पूर्ण स्वराज्य' के हक में पारित हुआ था। अतः नेहरू और बोस संघ (लीग) संगठित कर सकते हैं। कांग्रेस की नीति से इसका विरोध नहीं है। इस्तीफा देने की कोई आवश्यकता नहीं।[3]

देश की परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में सुभाष बोस ने 'नेहरु रिपोर्ट' की 'औपनिवेशिक' स्वशासन की मांग का समर्थन तो कर दिया। किन्तु उनका भारत के लिए 'पूर्ण-स्वराज्य' में अटूट विश्वास था। उनका कहना था कि "भारत को ब्रिटेन के साथ सारे सम्बन्ध सभी तौर पर तोड़ देने चाहिए।" 3 मई 1928 को पूना की महाराष्ट्र प्रादेशिक कान्फ्रेंस के अध्यक्षीय मंच से उन्होने साफ बताया कि वे स्वतंत्र फैडरल रिपब्लिक के पक्ष में है। भारत को अपना भाग्य निर्माण स्वयं करना होगा। देश औपनिवेशिक स्वशासन से कभी सन्तुष्ट नहीं रह सकता। उन्होने श्रोताओं से कहा था, 'हम ब्रिटिश साम्राज्य के साथ क्यों रहे? भारत मानवीय और भौतिक साधनों में समृद्ध और सम्पन्न है। वह उस शैशवावस्था से

1- Hari Har Das, Subhas Chandra Bose and the Indian National Movement, :117
2- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle 1920-1942 - Pages-150
3- आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 49-50

बाहर निकल चुका है जिसे विदेशी सत्ता उस पर लादती आ रही है....................भारतीय प्राच्य है, सवर्ण जाति है...............भारत और ब्रिटेन में कुछ भी तात्विक समानता नहीं है जिससे यह माना जाए कि ब्रिटिश साम्राज्य से जुड़े रहकर भारत को औपनिवेशिक स्वशासन काम्य हो सकता है। बल्कि साम्राज्य से सम्पृक्त रहने पर हानि की सम्भावना है।

दीर्घ अवधि तक ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के अधीन रहकर भारत हीन, भावना से कभी उबर नहीं पायेगा। जब तक यह देश ब्रिटिश साम्राज्य का अंश बना रहेगा, ब्रिटिश स्वार्थ का प्रतिरोध उसके लिए कठिन होगा भारत की दुर्बलताओं का अचूक उपचार 'स्वराज्य' केवल 'स्वराज्य' है। और स्वराज्य के योग बनने के लिए आजादी हासिल करने की लगन जरूरी है।''(1)

'नहेरू रिपोर्ट' के कुछ मुद्दे लखनऊ में अनिश्चित रह गये थे। रिपोर्ट मे गांधी द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर नेहरू और बोस दोनो ने संशोधन पेश किया।(2) गांधी यों भी व्यक्तिगत तौर पर साइमन-आयोग के स्पष्टीकरण से सन्तुष्ट थें। किन्तु नेहरू बोस' तथा अन्य युवाओं का विरोध देख गांधी जी ने सुझाव दिया कि फिलहाल औपनिवेशिक स्वशासन' मान लिया जाय और ब्रिटेन को पूरी 'नेहरू रिपोर्ट' यथावत स्वीकार करने की निश्चित अवधि दे दी जाय। यदि ब्रिटेन 1929 के अन्त तक 'नेहरू रिपोर्ट' को नहीं मानता या रद्द कर देता है तो कांग्रेस को 'अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन' प्रारम्भ करने का पूरा अधिकार होगा। गांधी जी की समझौते की यह योजना सुभाष बोस को सन्तुष्ट न कर सकी। उन्होने पुनः संशोधन पेश किया कि कांग्रेस 'पूर्ण स्वराज्य' के अलावा किसी तरह राजी नही होगी, जिसका मतलब है ब्रिटिश साम्राज्य से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद। जवाहर लाल नेहरू ने भी इसका समर्थन किया। गांधी का प्रस्ताव वोट के लिए सामने आया। जवाहरलाल गैरहाजिर थे। प्रस्ताव में स्वतंत्रता का कही उल्लेख तक न था।(3)

नेहरू-बोस वाला संशोधन-प्रस्ताव पारित नही हुआ। सुभाष बोस गांधी-प्रस्ताव के वोट को न्याय नहीं मानते थे। उनके विचार में गांधीवादियों के समक्ष महात्मा के प्रति अविश्वास का खतरा आड़े आ रहा था। यदि गांधी का प्रस्ताव पारित न होता, निश्चय ही वे कांग्रेस से निवृत्ति ले लेते। अतः अनेक सदस्यों ने, अपने आन्तरिक विश्वास के कारण नही बल्कि

1- Selected speeches of subhas chandra Bose: 34-37

2- S. Gopal : The viceroyalty of Lord Jrwin : 1926 - 31,35

3- Ibid : 36

गांधी–प्रस्ताव के पक्ष में इसलिए वोट डाला कि वे किसी भी कीमत पर गांधी को कांग्रेस से अलग होने देना नहीं चाहते थे।[1]

सुभाष बोस ने आने वाले वक्त की तस्वीर बापू के सामने प्रस्तुत करते हुए कहा था कि–

–''महात्माजी, मुझे लग रहा है कि अगर किसी राजनीतिक समझौते के द्वारा भारत को स्वराज्य प्राप्त हुआ तो भारत अखण्ड नहीं रहेगा।''[2]

ऐतिहासिक साक्ष्य पर कहा जाता है कि केन्द्रीय–विधान–मण्डल में मुसलमानों का अलग प्रतिनिधित्व न होने की बजय से उन लोगो ने नेहरू रिपोर्ट का कड़ा विरोध किया था और कलकत्ता कांग्रेस–अधिवेशन ने मुस्लिम राजनीतिज्ञों के साथ समझौते की सब उम्मीदें खत्म कर दी थीं।[3] यही नहीं इस अधिवेशन ने ही जिन्नाह का रास्ता अलग कर दिया। वह आगे बढता गया और भारत का विभाजन करवाकर अलग इस्लामी देश बनाकर ही दम लिया।[3]

कलकत्ता कांग्रेस की विराम–प्रवृत्ति तथा विधान मण्डल में स्वराजवादियों के हथकण्डों ने देश के युवा–वर्ग को अपने कर्तव्यों के प्रति पर्याप्त सचेत कर दिया था। 1929 में पूरे बंगाल प्रदेश में युवा और छात्र–वर्ग ने एसोसियेशनें बना ली थीं जिनकी शाखाएं देश के अन्य भागों में फैल गयी थीं। पूना में महाराष्ट्र युवा कॉन्फ्रेन्स की अध्यक्षता जवाहर लाल नेहरू ने की। अक्टूबर 1929 में कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने बम्बई प्रेसिडेन्सी (अहमदाबाद) युवा कॉन्फ्रेन्स में अध्यक्षता की। सितम्बर में पंजाब छात्र कॉन्फ्रेन्स लाहौर में हुई जिसके अध्यक्ष सुभाष बोस थे।[4] नवम्बर में मध्यप्रदेश नागपुर की युवा कॉन्फ्रेन्स और दिसम्बर में अमरावती बरार छात्र कॉन्फ्रेन्स में भी बोस ने अध्यक्षीय भाषण दिये।

1929 के अन्त में अखिल भारतीय छात्र कॉन्फ्रेन्स लाहौर में हुई जिसके सभापति बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति पं0 मदनमोहन मालवीय बने। देश का महिला वर्ग भी पीछे न रहा। देशबन्धु चित्तरंजन दास ने 1921 में नारियों को राष्ट्रीय सेवा का प्रशिक्षण देने के लिए 'नारी कर्म मन्दिर' शुरू किया था जो उनके निधन के उपरान्त बन्द हो गया था। 1928 मे सुभाष बोस ने कलकत्ता में 'महिला राष्ट्रीय संघ' नाम से संगठन

1- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle 1920-1942 - Pages-150
2- सत्य शकुन– मैं तुम्हें आजादी दूंगा भाग 1 : पृष्ठ 85–86
3- S. Gopal : The viceroyalty of Lord Jrwin : 1926 - 16
4- आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 49–50

शुरू किया। इसकी देखा-देखी देश के अन्य भागों में भी संस्थाएं शुरू हो गयीं।[1]

मई 1929 में ब्रिटेन में लेवर गवर्नमेण्ट सत्ता में आ चुकी थी। लार्ड इरविन ने प्रधानमंत्री रेमजे मैल्डोनल्ड और सर जॉन साइमन से सलाह करके 31 अक्टूबर 1929 को भारत को 'औपनिवेशिक स्वशासन' देने की घोषणा कर दी।[2] इरविन के कौशलापूर्ण शब्दों में लिपटी घोषणा के परिप्रेक्ष्य में कांग्रेसी नेताओ की एक बैठक दिल्ली में हुई। सबकी सहमति से सरकार को एक घोषणा पत्र भेजा गया जिस पर गांधी, मोतीलाल नेहरु,डा0 आंसारी,मदन मोहन मालवीय, तेजबहादुर सप्रु, डा0 मुंजे एनी वेसेन्ट तथा अन्य कई सदस्यों के हस्ताक्षर थे।

सुभाष चन्द्र बोस, डा0 क्लिचू तथा अब्दुल बारी ने वायसराय की शर्तो के विरुद्ध अलग वक्तव्य दिया।सुभाष चन्द्र बोस के अनुसार 'वायसराय के ज्ञापन -पत्र पर गहराई से वियार करने पर भी ऐसा कुछ नजर नहीं आया जिस पर हम उत्साहित हो सकते'[3]

31 दिसम्बर 1929 की मध्य रात्रि को जवाहर लाल नेहरु ने 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारों के बीच स्वतत्रता का झण्डा फहराया। स्वाधीनता की घोषणा सुभाष चन्द्र बोस के समझ में नहीं आई। बोस आश्चर्य चकित थे क्योंकि उददेश्य -पूर्ति के लिये कांग्रेस के पास कोई ठोस नीति या कार्यक्रम नहीं था अतः बोस ने काग्रेस के वामपंथी दल की ओर से प्रस्ताव पेश किया कि कांग्रेस एक समानान्तर सरकार स्थापित करके उसके संरक्षण में श्रमिक,किसान,हरिजन युवा एवं छात्रों का संगठन करे। इसके बिना 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' सफल नहीं हो सकेगा। उन्होने कहा, 'यदि मेरी योजना लागू कर दी जाय तो वह पर्याप्त प्रभावपूर्ण रहेगी। वह हमें आजादी के रास्ते पर आगे ले जायेगी'[1] किन्तु प्रस्ताव की कोई सुनवाई नहीं हुई। असहमति के कारण सुभाष बोस कांग्रेस से हटा हटा दिये गये।

2 जनवरी 1930 को सुभाष बोस ने अविलम्ब कांग्रेस डैमोक्रेटिक पार्टी का संगठन कर डाला। अंग्रेजों से लड़कर आजादी लेने की पक्षधर इस पार्टी के ध्वज के नीचे सारे वामपंथी एकजुट हो गये नयी पार्टी बनाकर सुभाष बोस ने आर्शीवाद के लिये देशबन्धु की विधवा पत्नी बसन्ती देवी को तार भेजा "परिस्थितियों तथा बहुमत की कठोरता से विवश हो हमने, गया वाली घटना की तरह, अलग पार्टी संगठित कर ली है ईश्वर से प्रार्थना

1- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle 1920-1942 - Pages-150
2- Reva Chatterji : Neta ji Subhas Bose Bengal revolution and independence : 80
3- Jagat S. Bright (ed) Important speeches and writing of subhas Chandra Bose : 82
4- Selected speeches of subhas chandra Bose: 61

है कि देशबन्धु की आत्मा हमारा संदर्शन करे और आपका आर्शीवाद हमें प्रेरणा दे।''[1]

उसी दिन कांग्रेस कमेटी ने 26 जनवरी को 'स्वतंत्रता दिवस' मनाने का एलान भी कर दिया। प्रथम स्वतत्रंता दिवस (26जनवरी 1930) के तीन दिन पूर्व सुभाष बोस,23 जनवरी यानी अपने जन्म - दिवस के दिन गिरफ्तार कर लिये गये। सुभाष बोस राजनीतिक मंच से हटा दिये गये।

26जनवरी 1930 को देश भर में स्वतत्रंता दिवस बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। गांधी के घोषणा पत्र में फ्रांसीसी तथा अमरीकन विद्रोह वाली सब विशेषताएं विद्यमान थीं, यथा निरंकुश तथा अत्याचारी सरकार के विरुद्ध मानवीय अधिकारों का उपयोग। इसलिये देश ने बड़े हर्षोल्लास एवं दृढ़ निश्चय के साथ उसे अंगीकार कर लिया था। गांधी जी को सब तरफ से अभूतपूर्व सहयोग प्राप्त था किन्तु तुरन्त ही वे मानसिक तनाव से आक्रान्त हो गये। उन दिनों रविन्द्र नाथ ठाकुर सावरमती आये हुये थे। उन्होनें पूछा कि भारत का भविष्य क्या रहेगा। गांधी जी ने कहा, ''चारों तरफ से घिरे अन्धकार में मुझे कोई रोश्नी नजर नहीं आ रही है।''[2]

सुभाष बोस के शब्दों में,''तब तक गांधी के अन्तस का व्यावहारिक राजनीतिज्ञ आग्रहशील हो उठा था। 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' प्रारम्भ करने के साथ साथ वे (ब्रिटिश सरकार से) समझौते का रास्ता भी खुला रखना चाहते थे और पूर्ण स्वराज्य की मांग से इसमें व्यवधान उपस्थित हो सकता था साथ ही उनके धनवान समर्थक भारतीय पूंजीपति लाहौर कांग्रेस प्रस्ताव से घबरा उठे थे। उन्हें शान्त करने के लिये कुछ वक्तव्य आवश्यक था''[3] गांधी जी ने 30 जनवरी के 'यंग इण्डिया' में लिखा था कि उन्हें स्वतंत्रता का सार मर्म (सब्सटैन्स आफ इडिपैण्डेन्स) से सन्तोष हो जायेगा। इसकी व्याख्या के लिये उन्होंने ग्यारह प्वांइट प्रस्तुत किये।[4] गांधी जी का यह वक्तव्य आन्दोलन प्रारम्भ होने के तुरन्त पहले प्रकाशित हुआ। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस के 'पूर्ण स्वराज्य' की मांग को 'सौदेवाजी' कहा।[5]

उधर जेल की सलाखों के पीछे सुभाष बोस की गिरती हुई सेहत से परेशान ब्रिटिश सरकार समस्या का निदान तलाश रही थी इस 'खतरनाक' व्यक्ति को किसी भी कीमत पर आजाद नहीं किया जा सकता था। उन्हें भुवाली सैनिटोरियम भेज दिया गया। किन्तु

1- B. Pattabhi Sitaramagya - The History the Congress: 611
2- Kriplani : Gandhi - His life and thought : 128
3- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle 1920-1942 - Pages-150
4- Mahatma Gandhi - Young India - 30 January
5- Reva Chatterji : Neta ji Subhas Bose Bengal revolution and independence : 77

स्वास्थ में कोई सुधार न हुआ। मेडिकल बोर्ड फिर बैठा। आव हवा बदलने के लिये यूरोप भेजने का प्रस्ताव रखा गया। भारत सरकार बोस को इस शर्त पर आजाद करने को तैयार हो गयी कि वे अपने खर्चे पर सीधे यूरोप चले जायें। उन्हें माता-पिता से भेंट की भी इजाजत नहीं मिली। पुलिस की हिफाजत में जबलपुर से बम्बई पहुंचाये गयेऔर 23 फरवीर 1933 को उन्हें 'एस.एस.गैंज' जहाज पर चढ़ा दिया गया। सुभाष चन्द्र बोस देश निर्वासित हो गये।

24 फरवरी 1933 को डेली हैरेल्ड नेसूचना प्रकाशित की -

''गांधी के लैफ्टिनेन्ट का स्ट्रेचर पर देश-निर्वासिन। पुलिस ने उसे समुद्र तक पहंचाया। कलकत्ता का भूतपूर्व मेयर यूरोप की तरफ।''[1]

''भारत अधिकारी गांधी के कांग्रेस - आन्दोलन के पीछे जिस व्यक्ति का मस्तिष्क क्रियाशील समझते है आज भारत से इटैलियन स्टीमर द्वारा यूरोप चला गया यह व्यक्ति जिससे अधिकारी इतने भयभीत है बंगाल कांग्रेस का नेता और कलकत्ता का मेयर सुभाष बोस है वह बहुत कमजोर है पिछले चन्द महीनों में चौसंठ पौंड वजन कम चुका है फिर भी सरकार को लगता है कि कलकत्ता में इसका प्रभाव इतना ज्यादा है कि यूरोप रवाना होने से पहले मृत्यु -शैयया पर पड़ी माता से भेंट तक की अनुमति नहीं दी [2]

अर्थात देश के हित को सही परिवेश में देखने वाला देश का भावी नेता जलावतन कर दिया गया।

1- Quoted in the Harald - 24 February 1933

2- सतीश चन्द्र माइकोप : वह्निमान नेता जी सुभाष चन्द्र : 52-53

४. राष्ट्रवाद एवं स्वतंत्रता पर बोस के बिचार

स्वतन्त्र हो जाने पर यदि हम एक राष्ट्र के रूप में संगठित होना चाहते है, तो यथार्थ में हमें कठोर परिश्रम करना होगा। राष्ट्रीय एकता और संगठन को विकसित करने के लिये अनेक बातों की आवश्यकता है, यथा – एक सामान्य भाषा एक सामान्य वेशभूषा, एक सामान्य आहार इत्यादि।............ मेरे विचार से एकता की समस्या व्यापक रूप से एक मनोवैज्ञानिक समस्या है लोगों को यह अनुभव कराने के लिये कि वे एक राष्ट्र के हैं, शिक्षित करना होगा और लोगों को अभ्यास कराना होगा।

– क्रास रोडस,पृष्ठ54

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की भूमिका निस्सन्देह एक अदम्य साहसी एवं अद्वितीय बीर योद्वा की थी। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन मातृभूमि के लिए अर्पित कर दिया था। राष्ट्रीय आन्दोलन में सुभाष त्याग और समर्पण के मूर्त रूप थे, उनकी भाषा बलिदान और संघर्ष की थी। देश हित के समाने उनके लिए अन्य सुख महत्वहीन थे और देश की स्वतंत्रता के लिए जीवन भर कष्ट सहने में ही उन्हे परम सन्तोष मिला। सत्य तो यह है कि कठिनाइयां सहने मे, त्याग और बलिदान में स्वतंत्रता संग्राम के किसी अन्य सेनानी को उनके समकक्ष नहीं रखा जा सकता।[1]

सुभाष चन्द्र बोस राष्ट्रवाद के प्रेणता एवं स्वतंत्रता के जिज्ञासु थे। बोस का बिचार था कि स्वतंत्रता एक मानसिक चिंतन की अपेक्षा राष्ट्रीय धर्म है। वह भौतिक और अभौतिक उपलब्धियों के लिए आवश्यक है। उन्होंने स्वतंत्र रहने की आकांक्षा में ब्रिटिश सरकार की नौकरी स्वीकार नहीं की, क्योंकि उनका मन राष्ट्रवाद की भावना तथा स्वतंत्रता की इच्छा से अनुप्रेरित था। उन्होंने इस सम्बन्ध में लिखा था कि, 'मैने सन् 1920 में आई0 सी0 एस0 परीक्षा को इग्लैण्ड मे पास किया। लेकिन यह सोचते हुए कि एक ही समय में दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता–ब्रिटिश शासन तथा मेरा देश–मैने मई 1921 में

1– डा0 जयश्री–स्वतंत्रता संग्राम के अप्रतिम नायक : नेताजी सुभाष, अभिनव ज्योति, 1998–स्वर्ण जयंती अंक।

इस पद से त्याग-पत्र दे दिया। मै शीघ्र ही स्वदेश लौट आया, जिससे मैं स्वतंत्रता के संग्राम में जो अव अपने पूर्ण यौवन पर था, हिस्सा ले सकूं।"[1]

1930 में कांग्रेस ने जिस आन्दोलन का प्रारम्भ किया, उसका लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्य से अधिक सुबिधायें अधिक अधिकार प्राप्त करना था। ब्रिटिश शासन भारतीयों को अधिकारों से बंचित कर रहा था।

सुभाष बोस के अनुसार, देश की आजादी भारत के लिए एक ज्वलंत मुद्दा और सम्मान पूर्ण सोच बनी चुकी थी। उनके लिए भारत माता एक भौगोलिक आकृति ही नहीं बल्कि एक जीवित व्यक्ति थी, जबकि विदेशी शक्तिया इसको शक्तिहीन करके बेड़ी डालकर अपना प्रभाव जमाने की सोच रखती थी।[2]

1921 में उन्होंने अपनी मॉ को लिखे पत्र में वर्णन किया था,-'भारत ईश्वर की प्रिय धरती है।" वह इस महान धरती पर जन्म ले चुका है। जिसनें प्रत्येक युग मे लोगों का रक्षक के रूप में ज्ञानवर्धन किया है, यह भूमि प्रत्येक भारतीय के दिल में सच्चाई और धार्मिक सत्यनिष्ठता स्थापित कर पाप से मुक्ति दिलाती है। वह इसमें प्राणी के रूप में आ चुका है और अब मानव के रूप में दूसरे देश में जन्म लेना नहीं चाहिता। वह क्यों है?

मै कहता हूं, 'भारत हमारी मातृभूमि है, और ईश्वर की प्रिय धरती है" ....'प्रत्येक वस्तु प्रभावशाली और आनन्ददायक है आँखो के लिये जैसा कि दिमाग के लिए भी। लेकिन ओह! आज कहाँ है वो स्थिति। अन्यथा हम खो चुके होगे अपना धर्म और प्रत्येक चीज..........अपना राष्ट्रीय जीवन भी।

अब हम कमजोर दासवत, अधार्मिक और अभिशप्त राष्ट्र है।"[3]

अपनी मॉ को लिखे दूसरे पत्र में उन्होंने कहा-'हम और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकते-और अधिक सो नही सकते-हमें अपनी जड़ता (मूर्च्छा) को जड़ से हिलना चाहिए और आलस्य को कार्य में डुवो देना चाहिए। लेकिन, होह! इस स्वार्थी युग में कितनी माताओं ने निःस्वार्थी पुत्र तैयार किये है। जो पूर्णरूप से अपनी व्यक्तिगत रूचियाँ त्याग दे और मातृभूमि में डूब जाएं।"[4]

1- सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा - भाग -1,पृष्ठ 54.

2- Reva Chatterjee, Bengal Revolition and Independence, page.80

3- Subhas Bose, The Indian Struggle (1920-42) Sisir K. Bose and Sujata Bose (ed) Oxford OUP 1997

4- Reva Chatterjee, Netaji Subhas Bose : Bengal Revolution and Independence (Netaji and the Congress)page178

सुभाष बोस देश में जागृति उत्पन्न करने वाले महान देश भक्त थे।

सन्1926 को सर्दियों में माण्डले जेल मे बोस पर ब्रॉन्को-निमोनिया का आक्रमण हो गया ज्वर किसी तरह न टूटा। तव ब्रिटिश सरकार बोस को उनके अपने खर्चे पर स्विट्जरलैण्ड भेजने को राजी हो गयी। पर बोस ने नामंजूर कर दिया। उन्होंने अपने भाई शरतचन्द्र बोस को यह लिखा था कि,-'मै अपनी मातृभूमि से ऐच्छिक निर्वासन नहीं चहता।''(1)

उनका तर्क था कि वे सिद्वान्त के आश्रित संघर्ष कर रहे है। हाट-बाजार में मूल्य की अवधारणा अलग ढंग से होती है। जीवन में सफलता या विफलता शारीरिक अथवा भौतिक दृष्टि से नहीं मापी जा सकती। शरीर नष्ट भी हो जाय पर स्थायी विश्वास को कोई नहीं तोड़ सकता। अन्ततः जीत उसी की होती है। यह तो भाग्य-विधाता ही बता सकता है कि हमारे सब प्रयत्नों तथा परिश्रमो के प्रतिफल का साक्षी कौन होगा। जहा तक मेरा प्रश्न है, मै अपने जीवन से सन्तुष्ट हूं। शेष भाग्य पर छोड़ दिया है।(2)

अन्यत्र उन्होंने यह भी लिखा है कि जेल से मुक्ति की सम्भावना बहुत क्षीण है। इसके लिए किसी को खेद नहीं करना चाहिए। माता-पिता को अवश्य कष्ट होगा जिन्हें अपना पुत्र प्रिय है.........मुझे ऐसा लगता है कि राष्ट्र के पिछले पापों का मै विनीत भाव से प्रायश्चित कर रहा हूं। उसके परिशोधन पर मुझे प्रसन्नता होगी। क्योकि विचार कभी नहीं मरते। राष्ट्र के स्मृति-कक्ष में आदर्श घूमिल नहीं पड़ेगे.........गौरव का पथ समाधि ा की ओर ले जाता है।''(3)

सुभाष चन्द्रबोस के समक्ष स्पष्ट हो चुका था कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए संघर्षशील व्यक्ति को कितना कुछ मूल्य चुकाना पड़ता है। उन्होंने दिलीप कुमार रॉव को एक पत्र में लिखा था, 'तुम पूर्ण विकसित गुलाब की सुगन्ध चाहते हो?......... तो कॉटों को स्वीकार करना होगा। तुम प्रातः काल की मीठी हंसी चाहते हो?...........तो उसका मूल्य चुकाना होगा। मुक्ति का आनन्द पीडा़ और त्याग में निहित है।''(4)

मई1928 को महाराष्ट्र प्रादेशिक कांग्रेस मंच पूना के कांग्रेसी युवको से मातृभूमि की स्वतंत्रता के निमित्त सुभाष बोस ने कहा कि युवा शक्ति संगठित करके उनमें राजनीतिक चेतना भरनी होगी ,जो केवल काम ही नहीं करेगे, स्वप्न भी देखेगे। जहां वे विफल होगे,

1- N.G. Jog : In Freedom's Ouest : 61
2- Subhas Chandra Bose : Correspondence : 1924-32 page. 345
3- Ibid; 343
4- Dilip Kumar Roy : Netaji-The Man : 175-176

युवा आन्दोलन सफल होगा। आप लोगों के लिए नया भारत-स्वतंत्रत भारत का निर्माण करेगें। जो विफलताओं पुनर्प्रयत्नों तथा अतीत के अनुभव पर टिका होगा।''(1)

सुभाष बोस ने यह भी कहा कि, 'देश के तरूण वर्ग आज अपने वयस्क नेताओं को सारे दायित्व सौपकर खुद हाथ वाधकर बैठने या मूक वाधित पशु की तरह अनुसरण करने के लिए कदापि तैयार नहीं है। उन्हे भारत का निर्माण करना है-स्वतंत्रत महान और शक्तिशाली भारत का। वे यह दायित्व ले चुके है और परिणाम के लिए पूरी तरह तैयार हो चुके है।''(2)

सुभाष बोस ने यह भी कहा कि, 'राष्ट्र की मूलभूत समस्याओं का हल खोजने के लिए हमे अपनी चिन्तन को मीलो आगे ले जाना होगा।..........बन्धु बान्धव-हीन एकाकी खड़े होने का साहस बटोरकर संघर्ष करना होगा।..........अपने स्वार्थहीन कार्यो के लिए दूसरो के अपशब्द और निन्दा सहने के लिए तैयार रहना होगा। अपने निकटतम बन्धुओं के आवांछित, अनावश्यक बैर के लिए प्रस्तुत रहना होगा।''(3)

सुभाष बोस अरबिन्द के इस विचार से सहमत थे कि 'राष्ट्रीयता को कोई नहीं रोक सकता क्यों कि ईश्वर ने इसे नियन्त्रित किया है। केवल राष्ट्रीयता शिक्षा प्रवर्तित कर या वायकाट का कार्यक्रम अपनाकर इस देश का उद्धार संभव नहीं है। स्वदेशी से कुछ आर्थिक लाभ हो सकता है पर इसकी तड़क भड़क में भूलकर और इसको अपनाने में असली उददेश्य के नष्ट हो जाने की सम्भावना बहुत अधिक है। दृश्यमान शक्तियों से स्वदेश की शक्तियां दूसरी तरह की हैं। देशमाता की शक्ति अपनी है इसकी पुष्टि के लिये तुम्हारी जरुरत है,न मेरी, दूसरे किसी की आवश्यकता नहीं है'(4)

सुभाष चन्द्र बोस का विचार था क्या हमारे नेता अपने क्षुद्र विचारों से ऊपर उठकर यह नहीं सोच सकते कि जो माँ वेड़ियों में अवश है, वह सबकी माँ है पूरे भारत की माँ है।

सुभाष का मानना था कि मनुष्य आध्यात्मिकता की ओर उसी स्थिति में झुक सकता है जब उसका मन मस्तिष्क शांत हो। देश परतत्रंता में पड़ा सिसक रहा हो, जनता अगाध I कष्ट सह रही हो ऐसे में आध्यात्मिकता की बात मन में कैसे उठ सकती है?

1- Jagat S. Bright (Ed.) Important Speeches and writings of Subhas Bose : Page 44
2- Ibid; 56-57
3- Selected speeches of Subhas Chandra Bose : 46-47
4- सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 75

सुभाष का राष्ट्रवाद उनकी स्वतत्रंता की आकक्षां का प्रतिफल है वह देश के बाहर रहकर भी स्वतत्रंता का किसी से समझौता नही करते। सुभाष जब जर्मनी में थे तब उनके समक्ष हेमवर्ग की नाजी पार्टी के मंत्री ने पार्टी की सभा में भाग लेने का आग्रह किया, तब उनका यह स्पष्ट उत्तर उनके राष्ट्रवाद की झलक देता है। कि 'मैं किसी की तरफ से भाषण नहीं दे सकता फिर भी मुझे जर्मनी के समक्ष भारत के हालात रखने है, लेकिन मैं आपकी पार्टी में हिस्सा नहीं ले सकता'[1]

जापान पहुंचकर उन्होनें यही भावनायें जापानी सरकार के सामने प्रस्तुत की थी वह स्वतंत्रता की पूजा करते थे। हेमवर्ग में नागरिक अभिनन्दन का उत्तर देते हुये उन्होनें स्वतंत्रता की चिर अभिलाषा को अभिव्यक्त करते हुये कहा था कि ' वर्षो पहले नहीं बल्कि कई जन्मों से,वियना में ही नही बल्कि हर जगह मैं आजादी का एक सिपाही रहा हूं। अब भी वही हूं न इससे कम न इससे अधिक।'[2]

सुभाष चन्द्र बोस का मानना था कि राष्ट्र-निर्माण के काम में भारी कष्ट सहने पड़ते है और त्याग करना पड़ता है। ब्रोस न दृढ़ता से घोषणा की थी कि उपयोगता अथवा कार्यसाधकता के आधार पर राष्ट्र निर्मित नहीं किया जा सकता।[3] बोस का कहना था कि राष्ट्र के पुनर्निर्माण का वास्तविक कार्य तभी सम्पन्न हो सकता है जब लोगो में 'हैम्पडन और क्रॉमवेल जैसा अविचल आदर्शवाद हो।' [4]उन्होंने विवेकानन्द के इस कथन को दोहराया कि बिना त्याग के साक्षात्कार नहीं हो सकता। उनकी दृढ़ धारणा थी कि राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए घोरतम कष्ट उठाने पड़ेगे। बोस यह भी मानते है कि स्वाधीनता प्राप्ति के लिए महान नैतिक तैयारियों की आवश्कता है। इस प्रकार यद्यपि विदेशी नौकरशाही के विरूद्ध संघर्ष के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण यथार्थवादी था। किन्तु वे मानते थे कि भारतीय जनता को आत्म-त्याग तथा कष्ट सहन के बिना सफलता नहीं मिल सकती।

बोस को कोरी राजनीतिक स्वतंत्रता संतुष्ट नहीं कर सकती थी। इसमें सन्देह नहीं कि वे देश की राजनीतिक स्वतंत्रता की तात्कालिक आवश्यकता को स्वीकार करते थे, किन्तु यथार्थवादी होने के नाते वे इस बात को भली-भॉति समझते थे कि जमीदारो तथा किसानों, पूंजीपतियों, तथा मजदूरों, अमीरों तथा गरीबो के 'आन्तरिक, सामाजिक संघर्ष को स्थगित

1— अनन्त, अशफाक अहमद, क्रान्ति का देवता : सुभाष चन्द्र बोस, पृष्ठ 60
2— वही
3- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-320
4- Ibid; 409

नही किया जा सकता। उनका यह भी विचार था कि भारतीय समाज के धनी वर्ग ब्रिटिश सरकार के पक्ष में सम्मिलित हो जायेंगे। उन्होंने लिखा था, 'इसलिए इतिहास का न्याय अनिवार्यतः अपने मार्ग का अनुसरण करेगा, राजनीतिक संघर्ष तथा सामाजिक संघर्ष साथ-साथ चलना पड़ेगा। जो दल भारत के लिए राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करेगा वही दल जनता को सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता भी दिलायेगा।[1]

सुभाष का राष्ट्रवाद उन्हें बलिदान और संघर्ष की प्रेरणा देता था। वे याचना और पत्रो की राजनीति को कई दशक पूर्व की राजनीति मानते थे, इसलिए वे ऐसे किसी विचार के समर्थक नहीं थे, जो उन्हें संघर्ष से समझौते की राजनीति का रास्ता दिखाये। बर्लिन रेडियो से अपना भाषण उनके स्वतंत्रता विषयक चिंतन का स्पष्ट प्रमाण है,'ब्रिटिश प्रचार के बाद भी समस्त समझदार भारतीय पर यह स्पष्ट हो चुका होगा कि इस विशाल संसार में भारत का एक ही शत्रु है जो एक शताब्दी से उसका खून चूस रहा है, और वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद। ब्रिटिश प्रचारक मुझे शत्रु एजेण्ट बताते है, परन्तु अपने देश वासियों के सामने भाषण देते हुए मुझे अपनी सफाई पेश करने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। मै जीवन भर भारत और केवल भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ता रहूंगा। अपने जीवन की अन्तिम सांस तक में मातृभूमि की सेवा तथा उसके हितो के लिए बड़े से बडा बलिदान करने से न झिझकूँगा। मुझे केवल भारत का हित प्रिय है। चाहे मैं संसार के किसी भी भाग में पहुंच जाऊँ भारत के हितो की ओर से मैं कभी उपेक्षा की दृष्टि नहीं अपना सकता।'

सुभाष चन्द्र बोस ने रंगून के प्रसिद्ध हॉल जुबली में स्वतंत्रता सम्बन्धी अपनी ओजस्वी वाणी मुखरित की,-'स्वतंत्रता आपसे बलिदान मांग रही है। उसके लिए हमे सब कुछ देना है-सब कुछ! अपना धन, बुद्धि, प्राण अपना सर्वस्त्र। तुमने अभी तक बहुत कुछ दिया है। स्वर्ण के कोष, फड़कते हुए भुजदंड, धड़कते हुए दिल! मगर आजादी की प्यास इतने से नही बुझती। स्वतंत्रता की देवी को आज अपना शीश-पुष्प चढा देने वाले पागल पुजारियों की आवश्यकता है। आजादी की लडाई में विजय की शर्त खून की बूदो में लिखी जाती

1- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-413

है। 'तुम मुछे खून दो और मै तुम्हे आजादी दूंगा।'' [1]

नेताजी के इस वक्तव्य से लोग जैसे पागल हो गये। सबसे पहले सत्रह कुमारियों ने हांकनी (वर्मी चाकू) से अपनी उँगलिया चीरकर शपथ-पत्र पर दस्तखत किये और फिर सभी लोगों ने अपनी उगलियां चीरकर रक्त की बूदों को एक प्लेट में एकत्रित किया और फिर उस रक्त से हस्ताक्षर किये। यह देखकर सुभाष बोस बोले-विश्व में हलचल हो रही है और मुझे खुशी है कि भारत माँ के लाल सोये हुए नहीं है।[2]

आशावादी सुभाष के लिए 'परतंत्रता एक महानतम अभिशाप था। वह अन्याय और अनैतिकता से समझौता करना पाप मानते थे। इसलिए वे कहते थे असमानता को मिटाने के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहो। भले ही उसकी कितनी महान कीमत देनी पड़े।''[3]

अपने पराक्रम और शौर्य से उन्होंने विदेशो में रहकर भारतीय स्वतंत्रता के लिए आजाद हिन्द फौज का गठन किया। उनके पास संघर्ष करने की भावना और साहस था, लेकिन हथियारों के रूप में भौतिक शक्ति और साधन नहीं थे। इसलिए वह विदेश में रहकर भारतीय स्वतंत्रता को सरकार नही देख सके। वह स्वतंत्रता के अर्थ राष्ट्र-मुक्ति से लेते थे। इस मुक्ति के बाद ही नऐ भारत में नागरिको को सुखी जीवन की आशा सम्भव हो सकती थी। वह आर्थिक स्वतंत्रता के पहले स्वाधीनता को आवश्यक मानते थे। यही कारण है कि उन्होंने विचार के रूप में एक आन्दोलन दिया जो राष्ट्र की मुक्ति और स्वतंत्रता की भावना से सम्बद्ध रहा। उनकी वाणी से स्वतंत्रता शब्द को अमरता प्राप्त हो गई[4]

सुभाष चन्द्र बोस का दृढ़ विश्वास था कि स्वतत्रंता बच्चों के हाथ में कोई खिलौना नहीं जो कि सिर्फ मांगने से मिल जाये। इसके लिये लड़ना पड़ता है। और कीमत चुकानी पड़ती है[5]

स्वतत्रंता प्राप्ति को लेकर सुभाष बोस के विचार गांधी जी से अलग थे सुभाष अहिंसा में विश्वास नहीं रखते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने जापान में एक प्रेस वक्तव्य प्रसारित किया

''पिछले महायुद्ध में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने भारतीय नेताओं को धोखा दिया, यही कारण था कि हमने आज से बीस वर्ष पूर्व यह शपथ ली थी कि हम आगे कभी भी

1— सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 146–147

2— वही 136

3— मथाई एस0–टोर्च वियरर्स ऑफ इण्डियन फीडम, पृष्ठ 93

4— डा0 वीरेन्द्र शर्मा, क्रान्ति का देवता! सुभाष चन्द्र बोस – पृष्ठ – 525

5— Reva Chatterjee, Netaji Subhas Bose : Bengal Revolition and Independence, pages. 80

अंग्रेजों की बातों का विश्वास करके धोखा नहीं खायेगे। मेरी पीढ़ी ने बहुत लम्बे वर्षो तक स्वतत्रंता के लिये संघर्ष किया है और वे अत्यन्त उत्सुकता से उस समय की बाट जोह रहे थे जो आया है। आज का समय भारत की स्वतंत्रता के सूर्योदय का क्षण है हम जानते है कि ऐसा स्वर्ण अवसर दूसरे सौ वर्षो तक भी आने वाला नहीं है हम उसका लाभ उठाने के लिये कृतसंकल्प है अंगेजी शासन के फल स्वरुप भारत को नैतिक पतन, आर्थिक निर्धनता, सांस्कृतिक विनाश और राजनीतिक दासता प्राप्त हुई है। अतः हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपनी स्वतत्रंता के लिये अपना रुधिर दें। हम जब अपनी स्वतत्रंता को अपने त्याग और परिश्रम से प्राप्त करेगे तो उससे उत्पन्न होने वाली राष्ट्रीय शक्ति से उसकी रक्षा भी कर सकेगें। शत्रु ने हमें तलवार से गुलाम बनाया है हमें उससे तलवार से ही युद्ध करना होगा।सत्याग्रह को हमें शस्त्र युद्ध में बदलना होगा और जब भारतीय बड़े पैमाने पर स्वातत्रय युद्ध की पवित्र अग्नि से दीक्षित होगे तभी वे अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के योग्य बनगे।" (1)

दुर्भाग्यवश हमारे पुर्वजो ने आरम्भ में इस बात को अनुभव नहीं किया कि अंग्रेज समस्त भारत देश के लिए एक भयंकर खतरा है अतएव उन्होंने देश के शत्रु का एक जुट होकर विरोध नहीं किया। अन्त में जब भारतीय वास्तविक स्थिति से अवगत हो गये तब खोई हुई स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए सभी संभावित उपाय काम में लिए-आन्दोलन प्रचार, ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार, आतंकवाद और तोड़फोड़ तथा अन्त में सशस्त्र क्रान्ति। परन्तु कुछ समय के लिए ये सभी प्रयत्न असफल हुए। अन्ततः 1920 में जब भारतीय जन असफलताओं से निराश होकर किसी नवीन उपाय की खोज में थे। तब महात्मा गांधी सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा असहयोग का एक नया सशस्त्र लेकर देश के समक्ष आये।

'द्वितीय विश्व युद्ध के आरम्भ होने के समय भारत की स्वतंत्रता के लिए अन्तिम संघर्ष करने की स्थिति उपस्थित हो गयी। इस युद्ध में जर्मनी ने अपने मित्रो की सहायता से यूरोप में भारत के शत्रु पर चकनाचूर कर देने वाले भीषण प्रहार किये। परिस्थितियों के सुखद संयोग से भारतीयों के सामने स्वतंत्रता प्राप्त करने का सुअवसर उपस्थित हो गया।

मैं तुम्हें आजादी दूंगा --

भारतीयो को लूटकर उन्हें भूखा रहने और मरने पर विवश करके तथा अपने फरेब और धोखे से उन्हे निराश करके भारत में ब्रिटिश शासन ने भारतीयों की सदभवना एकदम खो दी थी और आज उसकी स्थिति डमाडोल हो गयी थी। इस दुर्भाग्यपूर्ण शासन के अन्तिम चिन्ह को समप्त कर देने के लिए अब केवल एक चिंगारी की आवश्यकता थी। उस ज्वाला को प्रज्ज्वलित करने का कार्य सुभष चन्द्र बोस ने आजाद हिंद सेना (फौज) के माध्यम से किया।[1]

आजाद हिन्द सरकार की ओर से सपथ लेते समय उन्होंने कहा था कि-'भारत और मेरे अड़तीस करोड़ भारतवासियों को स्वतंत्र कराने के लिए सुभाषचन्द्र बोस स्वतंत्रता के पवित्र युद्ध को अपनी अन्तिम श्वास तक चलाता रहूगां।

'मैं सदैव भारत का सेवक रहूगा और भारत के अड़तीस करोण भाई-बहनो के हितो और उनके कल्याण की देखभाल करना मेरा परम कर्तव्य होगा।

"स्वतंत्रता प्राप्त करलेने के पश्चात भी में भारत की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए मैं अपने रक्त की अन्तिम बूंद भी बहाने के लिए तैयार रहूँगा।

इसके अलावा देश वासियों के लिए एक मर्मस्पर्शी विज्ञप्ति प्रकाशित की-

भूलों मत की दासता से बढ़कर दूसरा अभिशाप और कोई नहीं। यह भी मत भूलो की अन्याय और दुर्नीति से समझौता करने से बड़ा कोई अपराध नहीं। जीवन को पूर्णरूप से पाने के लिए जीवन दे देना पड़ता है। यह भी याद रखो की हर क्षति के विरुद्ध लड़ते रहना है। चाहे इसके लिए कितनी भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े।[2]

-जो डरपोक होते है, वे ही समुद्र की लहरे देख कर नाव डुवा देते है। जो महावीर होते है वे कही कुछ देखते है?

इसी सिलसिले में 1927 माण्डले जेल से लिखी, सुभाष की कुछ लाइने उनकी राष्ट्रवाद एवं स्वतंत्रता में दृढ आस्था व्यक्त करती है जो इस प्रकार है........'अपने जीवन को पूर्णरूप से विकसित कर भारत माता के चरणों में समर्पित करूगां और इस आत्मोसर्ग द्वारा पूर्णता प्राप्त करूगा, मै इसी आदर्श को मानकर चला था.........मेरे इस छोटे से परन्तु घटनाओं से भरपूर जीवन पर से कितने तूफान गुजर चुके है। विध्न-बाधाओं के उस पत्थर के जरिये

1- Reva Chatterjee, Netaji Subhas Bose : Bengal Revolition and Independence, pages. 178

2– सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –2,पृष्ठ 151

मैने अपने को बारीकी से पहचानने और समझने का अवसर पाया है।

'मैने अपने प्राणों और समस्त जीवन की शिक्षा को निचोड़ कर यह सत्य पाया है कि पराधीन राष्ट्र में सब व्यर्थ है-क्या शिक्षा-दीक्षा, कार्य-सब व्यर्थ है अगर स्वाधीनता प्राप्त करने में ये सहायक नहीं हुए। इसीलिये आज मेरे हृदय की गहराई से यही आवाज निकलकर कानों में गूज रही है-'स्वाधीनता रहित हो कर कौन जीना चाहता है, कौन चाहता है जीना ?'[1]

नागपुर सम्मेलन में उन्होने अन्तिम बार अपनी इच्छा व्यक्त की। "All power to the Indian people'. भारत पर शासन करने का अधिकार सिर्फ भारतवासियों को ही है। हमारा एक ही लक्ष्य है स्वाधीनता। कोई दल नही, सम्प्रदाय नहीं, व्यक्ति विशेष नहीं, हिन्दू-मुसलमानों के त्याग के माध्यम से बहुआंकाक्षित स्वाधीनता प्राप्त करनी है। भारत सबका है किसी एक का नहीं एक जाति का नहीं। मै हृदय से विश्वास करता हूं कि हिन्दू-मुसलमान समस्या का हल करना कठिन नही है।

यही थे सुभाष, जिनके वक्तत्य के कोई बात अस्पष्ट न थी। स्पष्ट था उनके अनुसार, जैसे भी हो, किसी भी रास्ते से, अपने देश को स्वाधीन करना। देश के दुःखी रखकर पृथ्वी भर के दर्द से व्यथित होने में उनका विश्वास नहीं था।[2]

राष्ट्रवाद के प्रणेता, स्वतंत्रता के जिज्ञासु, मातृ-भूमि के रक्षक, एवं भारत-माता के वीर-सपूत-सुभाष चन्द्र बोस! यही था उनका असली रूप। जीवन भर जिसका स्वप्न देखा था, उस स्वतंत्रता का सुख भोगे बिना ही इस दुनिया से विदा हो गये। रह गयी उनकी ओजस्वी वाणी! उनकी शंखध्वनि! जिसे सुनकर स्थिर रहना क्या सम्भव था ? उसी स्वाधीनता को प्राप्त करने का मौका आं गया था।

सुभाष बोस केवल राजनीतिक जीवन का ही नही-पूरे जीवन का आलोड़न करने के उपरान्त इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि उनकी 'पद' या 'सत्ता' स्वायत्त करने की कभी इच्छा नहीं रही। उनका एक मात्र लक्ष्य था-भारत की स्वतंत्रता। समग्र समाज के लिए स्वाधीनता का अर्थ था नारी और पुरुष दोनों की स्वतंत्रता जबकि सुभाष बोस के स्वतंत्रता का अर्थ केवल व्यक्ति ही नही सम्पूर्ण समाज की हर दृष्टि से मुक्ति था।

1- Quoted in the Anand Bazar Patrika, 1927

2- शैलेश डे; अनुवाद (ममता खरे)-मैं सुभाष बोल रहा हूं, (खण्ड दो) पृष्ठ 61

केवल ऊँचे वर्गो की ही नहीं अनुन्नत वर्गो की भी स्वाधीनता। धनी, गरीब, युवा, बृद्ध सभी सम्प्रदाय, अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक समाज एवं सभी वर्गो और सभी व्यक्तियों को स्वाधीन करना उनका ध्येय था। इस तरह बिचारने पर लगता है, स्वाधीनता का अर्थ है साम्य और साम्य का मतलब है भ्रातृत्व।

सम्पूर्ण रूप से मुक्त भारतवर्ष का रूप-स्वरूप ही सुभाष बोस के हृदय में बसा था। बोस समाज को बन्धनमुक्त करने के लिए सामाजिक प्राणालियों तथा विधि-संगत विषयों में महिलाओं को सामान्य अधिकार देने के पक्ष में थे। जिस सामाजिक विधान के द्वारा निम्नवंश में जन्म ग्रहण करने मात्र से किसी-किसी व्यक्ति को और श्रेणी को छोटा बनाकर रखा गया उस विधान को निर्ममतापूर्वक नष्ट करने के पक्ष में थे। धनी और दरिद्र में जो मर्यादागत भेद है, सुभाष बोस उसको मिटाना चाहते थे।

स्वतंत्रता का नाम सुनते ही बहुत से लोग डर जाते है। राष्ट्रीयता स्वाधीनता की बाते सोच कर बहुत से लोग सपना देखने लगते है, खून की नदी का और फाँसी के तख्ते और सामाजिक स्वतंत्रता की बात कहने पर बहुत को उच्छृंखलता की विभीषिका के दर्सन होने लगते है। मगर सुभाष बोस उच्छृंखलता से भयभीत नहीं थे। मनुष्यों में यदि मानवता का निवास है, यदि मनुष्य सत्य है, तो मानव सदा पथ भ्रष्ट और भ्रान्त नहीं रह सकता। स्वाधीनता रुपी आसव पी कर अगर कुछ समय के लिए हमारे कदम डगमगाते नजर आते तो इसका अर्थ यह नहीं कि हम कभी स्थिर नहीं रह सकते।

जिस दिन से भारत गुलाम हुआ, उसी दिन से वह समष्टिगत (कलेक्टिव) साधना भूलकर व्यक्तित्व विकास में ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाता रहा। परिणामस्वरूप कितने ही महापुरुषो का आर्विभाव सम्भव हुआ और कितनी सोचनीय अवस्था में हमारा यह देश पड़ गया। सुभाष बोस अपनी मानवता के प्रति विश्वासी होकर मनुष्यत्व प्राप्ति की चेष्टा में सदा लगे रहे तथा राष्ट्र को बचाने के लिए साधना को दूसरी तरफ मोड़ा। क्योंकि बोस जानते थे कि राष्ट्र से अलग व्यक्तित्व की सर्थकता नहीं है।

सुभाष बोस ने स्वाधीनता के मन्त्र- प्रचार के निमित्त भारतीयों तक यह सन्देश पहुंचाया कि- जिस भारत की प्रतिष्ठा हम प्राप्त करना चाहते है- वहां जाति-पांति के परे

है सभी का समान अधिकार, सभी के लिए समान अवसर और सुविधा। जिस दिन सम्पूर्ण देश इस सत्य को समझ लेगा उस दिन समाज स्वतंत्रता के लिए आधीर और उन्मत्त हो उठेगा।

राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति जिन प्रक्रियाओं से हो सके वे सभी स्वतंत्रता का अंश होती है। लेकिन कुछ लोग स्वतंत्रता का एक खास अर्थ लगाते है। स्वतंत्रता की इस सकीर्ण संज्ञा को बदले अर्थ में अभिहित करने में सुभाष बोस को अनेकानेक वर्ष लगे। क्योंकि बोस मानते थे कि स्वार्थ बिना साधे हम स्वतंत्रता के लिए ही मात्र स्वतंत्रता को चाहे तो अब वह समय आ गया है कि स्वतंत्रता का अर्थ केवल व्यक्ति ही नहीं सम्पूर्ण समाज की हर दृष्टि से मुक्ति है। बोस स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए स्वतंत्र व्यक्ति की ही तरह सब कुछ अनुभव करना चाहते थे। देश-माता के चरणो में अपने को न्योछावर कर देना-एक मात्र यही थी उनकी साधना। देश की आलादी के आजीवन संघर्ष-रत नेताजी सुभाष चन्द्र बोस उसकी प्राप्ति से दो वर्ष पूर्ण इतिहास के पन्नो में खो गये।

चतुर्थ अध्याय
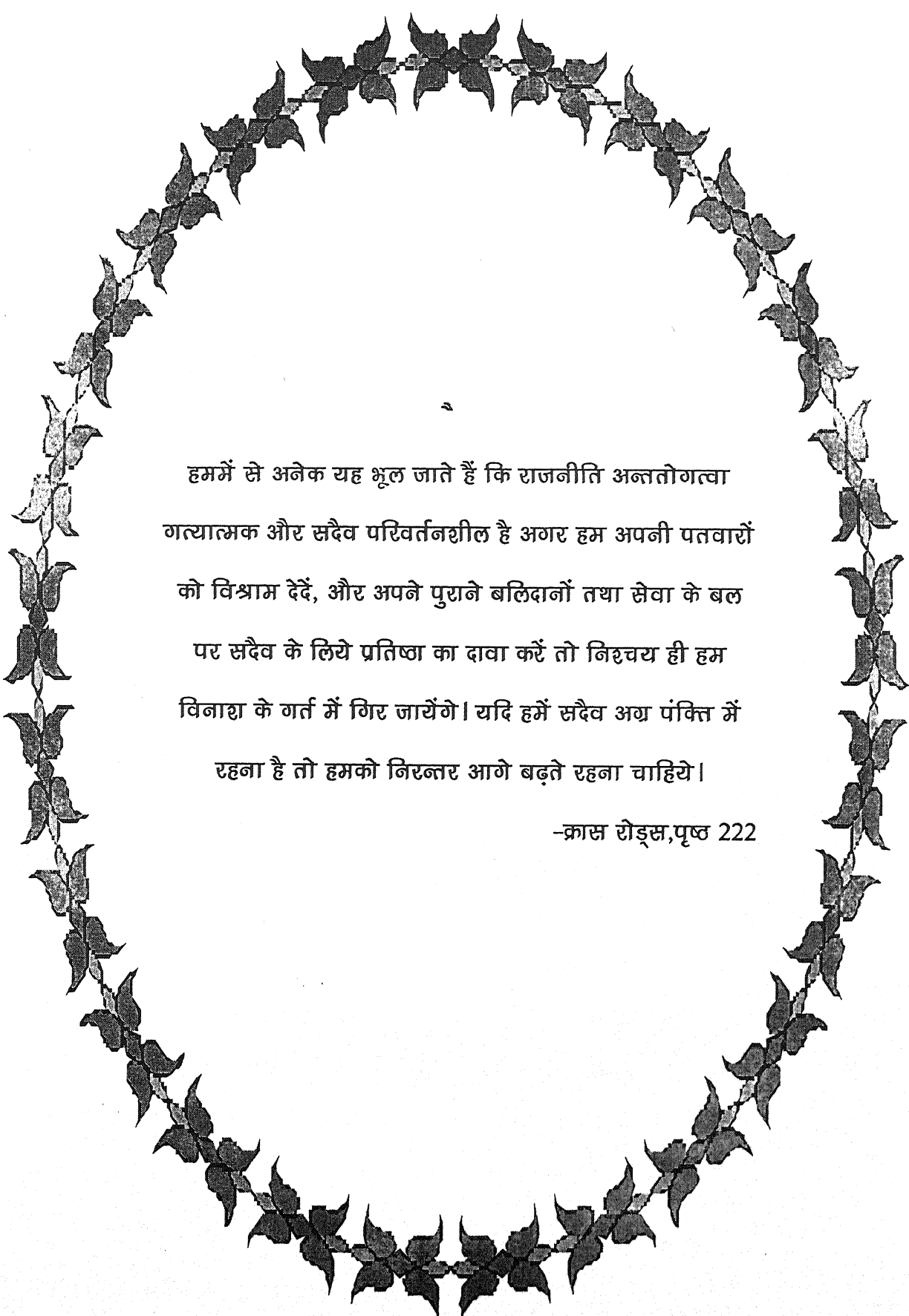
सुभाष चन्द्र बोस के

राजनैतिक यथार्थवादी विचार

POLITICAL VIEWS ON REALISM

OF

SUBHASH

1- प्रगतिशील वामपंथी विचारधारा - कांग्रेस में विद्रोह

2- अग्रगामी दल (फारवर्ड ब्लाक) का संगठन एवं उद्देश्य

3- सुभाष बोस के समाजवादी, आर्थिक, राजनीति एवं नैतिकता पर विचार-राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण पर

4- गांधीवाद एवं बोस

हममें से अनेक यह भूल जाते हैं कि राजनीति अन्ततोगत्वा गत्यात्मक और सदैव परिवर्तनशील है अगर हम अपनी पतवारों को विश्राम देदें, और अपने पुराने बलिदानों तथा सेवा के बल पर सदैव के लिये प्रतिष्ठा का दावा करें तो निश्चय ही हम विनाश के गर्त में गिर जायेंगे। यदि हमें सदैव अग्र पंक्ति में रहना है तो हमको निरन्तर आगे बढ़ते रहना चाहिये।

-क्रास रोड्स,पृष्ठ 222

प्रगति शील वाम पन्थी विचार धारा --कांग्रेस में विद्रोह

विधानवादी तरीके से लड़े गये स्वतंत्रता युद्ध को दो भागों में विभाजित किया जाता है। एक दल में आते है-गोखले, गांधी और नेहरू। दूसरे दल में आते है-तिलक, मालवीय और सुभाष। जबकि पहले दल के दृष्टिकोण पर पश्चिम या ठीक-ठीक अंग्रेजियत का अत्याधिक प्रभाव पड़ा था, दूसरे दल की विचारधारा विशुद्ध भारतीय थी। वे वास्तविक अर्थो में हमारी धरती के पुत्र थे।

कांग्रेस की स्थापना एक अंग्रेजी आई. सी. एस. स्वर्गीय श्री ए. ओ. ह्यूम साहब ने सरकार विरोधी दल के रूप में की थी और इस दिसा में उसने ईमानदारी से अपना कार्य पूरा किया। जितना सत्य यह है उतना ही सत्य यह भी है कि तिलक, मालवीय, सुभाष और अन्त में राजर्षि टंडन जी जैसे देश-भक्तो को कभी न कभी कांग्रेस से निकलना ही पड़ा और वे उसमे अन्त तक बने नहीं रह सके।

नेताजी भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में प्रगतिशील वामपंथी विचारधारा के प्रतीक बन चुके थे किन्तु सुभाष का रास्ता आसान न था। चाहे छात्र जीवन हो, चाहे उनके आई. सी. एस. पदवी का त्याग, चाहे उनके देशबन्धु चितरंजनदास का शिष्य हो जाना हो और फिर काफी समय उनका माण्डले जेल में हो क्योंकि ये सब चीजे कोई ढ़की छिपी बाते नहीं है। 1928 से ही बोस के बिरुद्ध अन्याय होने लगा, जब कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हुआ तो बोस ने बंगाल वालेण्टियर्स बड़े जोश और मेहनत के साथ तैयार की। सुभाष और उनके परिश्रम से तैयार वालेण्टियर्स वाहनी को देखकर गांधी जी ने स्वयं व्यंगात्मक शब्दों में कहा,-'ये पार्क सर्कस में एक सर्कस है।'(1) गांधी जी के इस हतोत्साहित व्यंग में बहुत से नेता भी शामिल हो गयें।

उन दिनों सुभाष के विरुद्ध व्यंग और कटूक्ति से मुखरित हो उठे थे कुछ अखवार भी जो इस प्रकार है-

'सलाम नेहरू को ,

Reva Chatterjee, Netaji Subhas Bose Bengal Revolition and Independence, (Netaji and the congress) pages.77

खिसक लो बेटा ,

सलाम बृद्ध गांधी को।

हॉफ पैन्ट में नहीं है कच्छा

फिर भी कमर-बन्ध है

सीने में शक्ति है तो आओं

साथ, स्वाधीनता ही काम्य है।'

(शनिवार की चिट्ठी)[1]

युवा सुभाष इन कटुक्तियों को झेलते रहे परन्तु अपने मार्ग पर दृढ़ और अडिग बने रहे जैसा कि उनके स्वभाव में था। रचनात्मक कार्यो में अपने युवा साथियों के साथ लगे रहें।

कुछ समाचार पत्र और साप्ताहिक पत्रों ने तो यहां तक कहा कि यह एक डाकुओं का गैंग है जिसको कि एक अधमरा लेफ्टीनेंट चला रहा है। शायद इन बातों का सुभाष पर मानसिक प्रभाव यह हुआ कि बोस शारीरिक रूप से बीमार पड़ गए और डॉक्टरों ने टी०वी० (क्षय रोग) घोषित कर दिया। [2]

कलकता कांग्रेस अधिवेशन की तैयारी में उन्होंने राष्ट्रीय सिपाहियों के लिए 8 हजार जोड़ी जूते, खादी हाफ पैन्ट और शर्ट तथा खादी टोपियां और ऐसी पेटियां तैयार करवायी जिसमें पिस्टल भी रखी जा सकें। पूरा कलकत्ता विगुल, सीटी और राष्ट्रीय गान की आवाज से गूंज उठा। इसके कमाण्डर इन चीफ सुभाषचन्द्र बोस थे। उन्होंने इस कार्य में इतनी मेहनत की कि वे अपने फेफड़े की बीमारी को भी भूल गये। और उन्होने श्रीमती लतिका (भाभी) के नेतृत्व में महिला वालेण्टियर्स की भर्ती की जो कि बड़ों घरों के की छत पर ट्रेनिंग (मार्च) लेती थी। जब बडा दिन आया और राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पहुंचे तब उनका बंगाल वालेण्टियर्स के द्वारा बड़ा स्वागत समारोह किया गया।

इस सम्बन्ध में एक महान इतिहासकार 'सोनी' वियरर' ने लिखा है कि 'ऐसा स्वागत सात दशक पहले भी नहीं हुआ जब मुगलों ने बंगाल में प्रवेश किया। मुझे याद है कि

---

1. शैलेश डे, (अनुवाद – ममता खरे), मैं सुभाष बोल रहा हूं (खण्ड एक) पृष्ठ 240
2- Reva Chatterjee, Bengal Revolition and Independence, (Netaji and the congress) pages.77

जब प्लासी के बहादुर विजेताओं का ऐसा भव्य स्वागत नहीं हुआ था।[1]

सुभाष बोस अपनी इस राष्ट्रीय नीति को अर्थवत्ता देने के लिए कांग्रेस को सुध ारात्मक नीति तथा तदनरूप योजना में प्रवृत्त करना चाहते थे। वयस्क सदस्यों को डगमगति देख उनका विरोध करते।[2] दिसम्बर 1928 के कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में गांधी बोस के विचार-चिन्तन तथा कार्य प्रणाली में प्रभेद खुलकर सामने आया। अहिंसावादी गांधी को बांलरियरों के बूटों की धप-धप, सैल्यूट आदि कुछ भी पसन्द न आया।[3]

कांग्रेस के अन्दर इस समय कुछ ऐसे लोगों का उद्‌भव हो चुका था जो औपनिवेशिक स्वराज्य को अपना ध्येय नहीं मानते थे। वे पूर्ण स्वतंत्रता के हामी थे। इन लोगो के नेता थे- जवाहर लाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस। सुभाषचन्द्र बोस खुश थे कि इस वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में आयोजित किया जाएगा। इस अवसर के लिए सुभाष को स्वयं सेवकों का प्रधान सेनापति तय किया जा चुका था। इस समय तक सुभाष महाराष्ट्र में भी लोकप्रियता हासिल कर चुके थे। 3 मई 1928 को महाराष्ट्र प्रदेश के छठे अधि ावेशन का उसको सभापति बनाया गया। यहीं सुभाष को पता लग गया कि कलकत्ता अधि ावेशन के सभापति के लिए पं0 मोतीलाल नेहरू को खड़ा किया जा रहा है किन्तु वे कुछ कारणों से अपनी असहमति जतला रहें हैं। सुभाष बोस जानते थे कि पंडित जी के सभापति बनने से उनके कई प्रस्ताव अधिवेशन में पास हो सकते हैं [4]

बोस ने पंडित जी को पत्र लिखकर निवेदन किया कि किसी कारण से कांग्रेस के सभापति पद के लिए आपने खड़ा होने के लिए मना कर दिया तो न जाने सारे बंगाल में कितनी निराशा फैल जाएगी। आज देश की स्थिति ऐसी है कि आने वाला समय हमारे देश के इतिहास में इतना महत्वपूर्ण होगा कि ऐसी स्थति में आपके अतिरिक्त शायद ही अन्य कोई व्यक्ति इस भार को संभालने योग्य सिद्ध हो। ऐसे समय में जब हम इतनी गम्भीर परिस्थिति से गुजर रहे हैं, क्या आप राष्ट्र के आह्वान को ठुकराएंगे ?''[5]

सुभाष को पूरा विश्वास था कि पंडित जी उसके अनुरोध को नही ठुकराएंगे। पंडितजी भी उसकी बात नहीं टाल सके। गांधी जी भी इस सम्मेलन में आए हुए थे। जवाहर लाल नेहरू और सुभाष बाबू ने उनके रखे गए प्रस्तावों पर कई संशोधन प्रस्तुत किए। [6] अन्त

1- Reva Chatterjee - Netaji and the Congress : pages 77-78
2- Nirad Chauduri : The Continent of circe Londan 103-104
3- आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 50-51
4. सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा - भाग -2,पृष्ठ 56
5. सुभाष चन्द्र का पत्र मोती लाल नेहरु के नाम, 1 बुडबर्न पार्क, कलकत्ता- 18-7-1928
6. S Gopal: The Viceroyalty of Lard Irwin : 1926-31 Page 35

में गांधी जी ने अपने रखे प्रस्ताव पर कुछ परिवर्तन स्वीकार कर लिये लेकिन सुभाष को इतने से सब्र कहां था। उसने संशोधित प्रस्ताव पर एक अन्य संशोधन प्रस्तुत करते हुए कहा–

''मुझे दुःख है कि मैं महात्मा गांधी द्वार प्रस्तुत प्रस्ताव में संशोधन कर रहा हूं, और जिसे कई अधिक अनुभवी नेताओं का भी समर्थन प्राप्त है।

हम अनुभव करते है कि हम अपने स्वतंत्रता ध्वज को एक दिन के लिये झुकने के लिये तैयार नही है। जहां तक युवा पीढ़ी का सम्बन्ध है वह भारत को स्वतंत्र कराने का उत्तरदायित्व स्वीकार कर चुकी है। हम अपने नेताओं को चाहते हैं, प्यार करते हैं, उनका आदर करते है, लेकिन हम चाहते है कि वे भी हमारे साथ चलें। यदि हमारे नेता नवयुवकों से समन्वय नहीं रखेगे, तो नये और पुरानों के बीच दरार पैदा हो जाएगी। देश के युवा वर्ग को एक नयी विचार शक्ति प्राप्त हुई है, और वे अन्धानुकरण नहीं कर सकेगे। वे समझ चुके है कि भविष्य के उत्तराधिकारी वही है। उनको ही अपने देश को स्वतंत्र कराना है। इस नयी चेतना के साथ ही वह युवा पीढ़ी किसी भी कठिन परिस्थिति से जूझने के लिए तैयार है। निष्कर्ष रूप में मैं अन्तिम निवेदन करता हूं यदि हम यह संशोधन स्वीकर कर ले तो इसमें हमारे नेताओं का तनिक भी अपमान नही है। अपने नेताओं का आदर व प्यार, उनकी श्लाधा और आराधना एक बात है– किन्तु सिद्धान्तों का आदर भिन्न है मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करें और तरूण पीढ़ी को नवीन चेतना से अनुप्राणित करें।

सुभाष द्वारा इस संशोधन को प्रस्तुत करते ही नेतागण विरोधी और पक्षधारक के रूप में सामने आये। लेकिन कोई भी सुभाष द्वारा प्रस्तुत किये तथ्यों को नहीं नकार सका। वह सत्य था–ऐसा सत्य जो कइयों के गले नही उतर रहा था। इसलिए संशोधन प्रस्ताव 1350 के मुकाबले 973 मतों से गिर गया प्रस्ताव गिर जरूर गया पर 1929 के लिये एक संदेश दे गया है।[1] जवाहर लाल नेहरू ने इस संशोधन का समर्थन किया था। इन युवकों के प्रयास से गांधी जी बिगड़ गये और बोले–

'तुम लोग जिस तरह मुसलमान अल्लाह का नाम लेते हैं, और हिन्दू राम तथा

(1) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1, पृष्ठ 57–58

कृष्ण का, उसी तरह स्वतंत्रता-स्वतंत्रता रट रहे हो। पर इससे कुछ न होगा यदि इसके पीछे सम्मान न हो। यदि तुम लोग अपने वचन पर डटे नही रह सकते तो स्वतंत्रता कहां से आएगी ? स्वतंत्रता इससे कठिन वस्तु की बनी हैं, बातों के जमा खर्च में स्वतंत्रता नहीं आ जाती।''[1]

अन्त में यह प्रस्ताव किया गया कि यदि ब्रटिश संसद 31 दिसम्बर 1929 तक इस सम्मेलन की मागो को नही मानती तो कांग्रेस अंहिसात्मक आन्दोलन, टैक्सबन्दी तथा अन्य उपायो का प्रयोग करेगी। किन्तु कांग्रेस का यह वामपंथी वर्ग उसे मानने को तैयार नहीं था। सुभाष गांधी जी के औपनिवेशिक स्वराज्य के प्रस्ताव से सहमत नहीं हो पाया किन्तु उसे सन्तोष था कि कम से कम इस मंच से पूर्ण स्वतंत्रता की आवाज तो उठी।[2] उसकी आवाज तो गूंजी। सुभाष ने अपनी आशंका भी सम्मेलन में व्यक्त की...............
....

''हमारी असफलताएं और कमजोर प्रस्ताव देश में क्रान्तिकारी गतबिधियों को पनपने का अवसर देगें।'[3]

उनका अनुमान अनुमान नहीं था बल्कि वर्तमान परिस्थितियों के विश्लेषण पर की गयी भविष्यवाणी थी। आने वाले समय में असेम्बली में धाड़ाका हुआ। इसका श्रेय भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्य को था। यह धाड़ाका ब्रिटिश सरकार को चेतावनी थी। कि वह मजदूरों के दमन-हेतु गलत बिल पास करवाने का प्रयास न करे। इसी वर्ष लाहौर में यतीन्द्रनाथ राजनैतिक कैदियों के लिए विशेष व्यवहार की माग करते हुए 62 दिन के अनशन के बाद शहीद हो गये। लाहौर से इनका शव कलकत्ता लाया गया। भारतवासियों ने अपने इस महान पुत्र के शव का प्रत्येक स्टेशन पर इतने जोश-खरोश के साथ स्वागत किया कि अंग्रेजी सरकार विचलित हो गई।

मातृभूमि के लिए यतीन्द्रनाथ के शहीद होने पर सारा देश दहल उठा किन्तु गांध ी जी ने एक शब्द भी नहीं कहा। सुभष बोष ने बड़े क्षोभ से कहा था कि, 'यंग इंण्डिया' के पन्ने प्रायः सब प्रकार की राजनीतिक घटनाओं तथा स्वास्थ्य आदि सूचनाओं तक से भरे रहते है किन्तु इस घटना का उल्लेख तक नहीं किया गया।[4] यतीन्द्रनाथ के सुहृद

1. Nehru Jawahar Lal, A bunch of old letters, Landan 1988
6. S Gopal: The Viceroyalty of Lard Irwin : 1926-31 Page 36
3- सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –2,पृष्ठ 58
4. आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 108

बन्धु गांधी भक्त ने उनसे लिखकर पूछा कि इस दुर्घटना के बारे में उनके पास कुछ भी कहने को क्यों नहीं था। महात्मा ने उत्तर भेजा कि उन्होंने जानबूझकर उसका उल्लेख नहीं किया। यदि वे करते तो उसके प्रतिकूल जाता।[1]

इस सन्दर्भ में बोस ने यह भी लिखा है कि कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन से एक सप्ताह पूर्व वायसराय, लेडी इरविन पर बम फेका गया था वे सुरक्षित बच गये थे।

'कांग्रेस ने स्वतंत्रता प्रस्ताव के साथ वायसराय, लेडी इरविन तथा उनके सेवकों के बचने पर बधाई का संदेश भी संयुक्त कर दिया था। बोस का कहना है कि कांग्रेस सदस्य राजनीति प्रस्ताव के साथ इसे जोड़ना अनावश्यक समझ रहे थे। किन्तु माहात्मा के आग्रह पर वैसा करना पड़ा। बोस का अनुमान था कि 'महात्मा, वायसराय लार्ड इरविन को शान्त करके, भावी समझौते की भूमि हमवार करना चाहते थे।[2]

बोस को लगा जो भी हो निवचिन ने स्पष्ट कर दिया कि वामंमथी दल सशक्त और प्रभावशाली हो चुका है।[3]

लाहैर में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कई दृष्टि से ऐतिहासिक माना जाता है। इस अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू अध्यक्ष चुने गये थे। उनको भारत के लिए पूर्ण स्वराज्य की घोषणा का अवसर मिला। कहते है कि जन आन्दोलन के सम्भावित संकट के कारण गांधीजी ने नेहरू को अध्यक्ष बनाने का निर्णय लिया था जबकि अठारह प्रादेशिक कांग्रेस कमेटियो में से केवल तीन इनके पक्ष में थी। हमेशा की तरह गांधीजी अपने निर्णय पर अटल रहे। शतरंज के मोहरों की सुचिन्तित चाल द्वारा क्रान्तकारी नेहरू को दक्षिण वामपंथियों के बीच ला बैठाया।[4] सुभाष बोस को जनरल सैक्रेटरी के पद से ही नहीं हटाया, बल्कि कार्यकारिणी समिति से भी निष्काशित कर दिया। सुभाष बोस को इस तरह कांग्रेस के आन्तरिक केन्द्रों से पूरी तरह काट दिया गया। व्यस्क नेताओं के विरोध के कारण इंडिपैडेन्स लीग के प्रगतिशील कार्यो में पहले ही रूकावटे आ रही थी, नेहरू के निकल जाने से काम और भी दुष्कर हो गया।

31 अक्टूबर 1929 को लार्ड इरविन ने घोषणा की कि भारत के लिए एक शासन विधान बनाया जाय और इसके लिए एक गोलमेज कान्फ्रेन्स बुलाने की बात भी उन्होंने

1. Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle: 1920-42 - Pages-163
2- Ibid: 174
3- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle :1920-42 - Pages-158
4. आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 54

की। इरविन के कौशलापूर्ण शब्दों में लिपटी घोषणा के परिप्रेक्ष्य में कांग्रेसी नेताओं की एक बैठक दिल्ली में हुई। जिसमें एक प्रस्ताव पास किया गया। प्रस्ताव था-'सरकार यह बताये कि वह स्वराज्य का निधान बनाने के लिए कांग्रेस कब बुला रही है या नहीं बुला रही है।''[1]

सुभाष बोस के अनुसार, 'वायसराय के ज्ञापन-पत्र पर गहराई से विचार करने पर भी ऐसा कुछ नजर नहीं आया जिस पर हम उत्साहित हो सकते''[2] सुभाष को कांग्रेस के इस प्रस्ताव पर अति ग्लानि हुई। वह बोले-'यह तो अपनी दयनीयता दिखाने की बात है। में इस बात का विरोध करता हूं।'' सुभाष के इस वक्तव्य पर कांग्रेसी नेताओं की तीखी प्रतिक्रियाएं प्रकट हुई। कांग्रेस कार्यसमिति ने एक बार पुनः अनुमोदन किया, फलस्वरूप सुभाष ने कार्यसमिति से इस्तीफा दे दिया। परिणामतः 'बंगाल प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी,' गांध ीवादी जे. एम. सेन गुप्ता तथा सुभाष बोस दो हिस्से में बट गयी।

नवयुवक दल इन सभी बातो से उत्तेजित था। सुभाष नवयुवको की इस उत्तेजना को नियंत्रित करके सही दिशा देने के प्रयास कर रहे थे।

इसका प्रभाव यह पड़ा कि 31 दिसम्बर 1929 की मध्य रात्रि को जवाहर लाल नहरु ने 'इन्कलाव जिन्दावाद' के नारों के बीच स्वतंत्रता का झण्डा फहराया। गांधी जी ने लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य के प्रस्ताव द्वारा वामपंथियों को किसी हद तक अपनी तरफ कर लिया था। बोस आश्चर्यचकित थे क्योंकि उद्देश्य पूर्ति के लिए कांग्रेस के पास कोई ठोस नीति या कार्यक्रम नहीं था। अतः बोस ने वामपंथी दल की ओर से प्रस्ताव पेश किया कि कांग्रेस एक समानान्तर सरकार स्थापित करके उसके संरक्षण में श्रमिक, किसान , हरिजन, युवा एवं छात्रों का संगठन करे। इसके बिना 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन सफल नहीं हो सकेगा। उन्होंने कहा, ''यदि मेरी योजना लागू कर दी जाय तो वह पर्याप्त प्रभावपूर्ण रहेगी। वह हमे आजादी के रास्ते पर आगे ले जायेगी।''[3]

किन्तु प्रस्ताव पर कोई सुनवाई नहीं हुई। बोस सहित पूरा वामपंथी वर्ग कांग्रेस से हटा दिया गया। महात्मा जी में विश्वास का प्रश्न एक बार फिर सदस्यों के सामने आ खड़ा हुआ। अतः सुभाष बोस कांग्रेस से हटा दिये गये। अब वामपंथ और दक्षिणपंथ की

1. सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूगा – भाग –2,पृष्ठ 60
2. Jagat S. Bright (ed) Important speeches and writing of Subhas Chandra Bose : 61
3. Selected speeches of Subhas Chandra Bose : 61

खाई और भी चौड़ी हो गयी।[1]

सुभाष चन्द्र बोस वामपंथी शक्तियों के माने हुए नेता थे। उनके वामपंथ के दो पहलु थे। तृतीय दशक के अन्तिम बर्षो में उनके वामवाद (वामपंथ) का अभिप्राय औपनिवेशिक स्वराज्य की माग का विरोध करना था।[2] अन्य नेताओं के साथ मिलकर बोस ने पूर्ण स्वतंन्त्रता का समर्थन किया। चतुर्थ दशक में तथा उसके बाद बोस के बामबाद ने स्पष्टतः आर्थिक रूप धारण कर लिया। 19 मार्च 1904 में रामगढ़ में हुये अखिल भारतीय समझौता विरोधी सम्मेलन में भाषण देते हुये बोस ने कहा था,-''यहाँ पर यह समझाने के लिये कि वामवाद से हमारा अभिप्रायः क्या है, दो शब्द कहना आवश्यक है। वर्तमान युग हमारे आन्दोलन की साम्राज्य वाद विरोधी अवस्था है। इस युग में हमारा मुख्य काम साम्राज्यवाद का अन्त करना तथा भारतीय जनता के लिये राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करना है। जब स्वतंत्रता मिल जायेगी तो राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण का युग प्रारम्भ होगा, और वह हमारे आन्दोलन की समाजवादी अवस्था होगी।[3] बोस का मानना था कि वर्तमान अवस्था में वामवादी वे कहलायेगें जो साम्राज्यवाद के विरूद्व बिना किसी प्रकार का समझौता किये संघर्ष जारी रखेगें। जो साम्राज्यवाद के विरूद्व संघर्ष में डगमगाते और हिचकिचाते हैं, उन्हें किसी भी रूप में वामवादी नहीं कहा जा सकता। हमारे आन्दोलन की अगली अवस्था में वामवाद समाजवाद का पर्यायवाची होगी -किन्तु वर्तमान अवस्था में ''वामवादी'' और 'साम्राज्यवाद- विरोधी' का एक ही अर्थ है। सुभाष अपनी प्रखर वाक शक्ति के बल पर नित नई ऊँचाईयों पर पहुँचते जा रहे थे। दिल्ली, मध्य प्रदेश, पंजाब आदि के लोगों ने उसे अपूर्व स्नेह दिया। जवाहर लाल नहरू और उनमें जो जुड़ाव होना शुरू हुआ था वह अब कुछ कम होना शुरू हो गया था। इसका कारण गाँधी जी का प्रभाव था। नेहरू जी गाँधी जी के प्रभाव में थे। गाँध ी जी के आभा-मण्डल से स्वयं को मुक्त कर पाना बहुत कठिन था। यही कारण था कि नहरू जी ने स्वतंत्र-चिंतन को दरकिनार कर दिया था। लेकिन सुभाष ने किसी के पीछे चलने की कभी जरूरत ही नही समझी। उनका अपना विवेक और सटीक सोच उनके मार्ग दर्शक थे। यही कारण था कि वे काग्रेंस में लकीरों के फकीरों से जूझ रहे थे।

अंग्रेज भी सुभाष बोस के बढ़ते प्रभाव को अनदेखा नहीं कर सकते थे। अंग्रेज सरकार

1. आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 56
2. B. Pattabhi Sitaramagya : The History of the Indian National Congress - 330-31
3- The Indian Annual register 1938 page 340

को अहसास हो गया कि कांग्रेस का नरम दल और गाँधी जी इस आंधी को नहीं रोक सकते थे। उन्हें इस बात की अत्यधिक चिन्ताथी कि सुभाष की वाणी नवयुवकों,मजदूरों और किसानों आदि को संगठित किए जा रही है। अंग्रेज अधिकारियों के पास बोस के लाहौर अधिवेशन में दिए गए वक्तव्य के अंश बतौर प्रमाण के थे कि वह राजद्रोह पर उतरा हुआ है।[1] 1930 के कांग्रेश के करांची अधिवेशन के उपरान्त ही अंग्रेज सरकार ने सुभाष को कैद करने की सोच ली।

23 जनवरी 1930 को उसे बन्दी बना लिया गया। आरोप था –देश द्रोह। तुरन्त सुभाष को एक वर्ष के कारागार की सजा सुना दी गई। सुभाष बोस ने कोई प्रतिरोध नहीं किया अपितु कहा –

''सरकार मेरे शरीर को ही कैद कर सकती है, परन्तु अर्न्तात्मा की अग्नि तो अवसर पाकर धधकेगी ही। मैं पूर्ण प्रसन्नता के साथ राज मन्दिर की ओर विजय–यात्रा करूँगा।[2]

सवतंत्रता की भावना को कुचलने का सकरार के पास एक ही उपाय था–दमन,अत्याचार। इस बार भी लोगों पर जितना अत्याचार हो सकता था, किया गया।

जानकीनाथ जी ने सरकार से 1912 में प्राप्त 'रायबहादुर' की पदवी त्याग दी।[3] सुभाष बोस को जब यह समाचार मिला तो वे बहुत खुश हुये और उन्होंने पिताजी को बधाई दी।

प्रस्तावित गोलमेज कांग्रेस का पहला अधिवेशन 12 नवम्बर 1930 को प्रधान मंत्री रैम्जे मैक्डोनल्ड की अध्यक्षता में लन्दन में हुआ। 89 सदस्यों में से 16 भारत–रियासत के, 16 ब्रिटिश दलो के तथा 57 ब्रिटिश भारत के थे। कांग्रेस का प्रतिनिधि कही नही था। ब्रिटिश पत्रकार ब्रेल्सफोर्ड ने कांग्रेस की अनुपस्थिति पर टिप्पणी दी,–''सैंट जैम्स पैलेस में राजकुमार अछूत, सिख, मुसलमान, हिन्दु, ईसाई, जमीदारों के नुमाइन्दे, व्यापार संघ चेम्बर ऑफ कॉमर्स सबको इकट्ठा किया गया था। किन्तु मदर इण्डिया कहीं नहीं थी।''[4] कांग्रेस को प्राथमिक बैठक के उपरान्त समस्याओं पर विचार–विमर्श के लिए कई उप समितियाँ बनी। नतीजा कुछ हाथ न लगा। सुभाष बोस के शब्दों में, ''पहली गोलमेज कांफ्रेन्स ने भारत को दो कड़वी गोलियां दी–सुरक्षा तथा फैडरेशन। इन गोलियों को 'दायितव' की चीनी में

1- सुभाष रचनावली III : 29
1- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - 1920-42 page 203.
3- सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –2,पृष्ठ 62
4. V.S. Patil : Subhas Chandra Bose, His Contribution to Indian Nationalism.

लपेट कर मीठी बना दिया गया।जब 19 जनवरी 1931 को प्रधानमंत्री ने भाषण समाप्त करते हुए कहा कि भारत को, केन्द्र में संरक्षणों सहित उत्तरदायीअधिकार दिया जाएगा, यदि वह संरक्षण(सेफगार्ड्स)तथा संघीय ढ़ाँचा (फैडरेशन) स्वीकार कर लें, इस पर उदारपंथी राजनीतिज्ञा काफी संतुष्ट हो गये। उन्होंने एक बार रुक कर यह भी नहीं पूछा कि संरक्षण और फैडरेशन संघीय ढ़ाँचे की शर्ते स्वीकार करने के उपरान्त वास्तविक दायित्व रह ही क्या जाएगा। –वास्तविकाता यह भी थी कि समुद्र पार से यह उदार – पंथी राजनीतिज्ञ प्रधान मंत्री का मात्र यह आश्वासन प्राप्त करके लौट आये थे कि जनता का जो वर्ग अभी तक कांफ्रेंस से तटस्थ रहा था, उसकी सहयोग–सूची तैयार की जाएगी''[1]

सुभाष चन्द्र बोस जब तक जेल से छूटकर आए तब तक राजनीतिक जगत में काफी बदलाव आ चुका था। 1931 चल रहा था। गाँधी –इरविन पैक्ट हो चुका था। बाम–पंथी दल को 'गाँधी इरबिन पैक्ट' बिल्कुल रुचिकर नहीं लगा। हाँ कांग्रेस ने इस पर कोई आपित्ति नहीं उठाई।इस घटना का ऐतिहासिक घटना के रूप में बखान किया जा रहा था। लेकिन सुभाष बोस की दुष्टि में अंग्रेजों ने इस समझौते के द्वारा पुनः एक बार भारतीय नेताओं को मूर्ख बना दिया था। उनके वियार में यह समझौता भारतीयों को सुविधा देने के लिए, उनके सम्मान में हुआ लगता था, लेकिन यह बाह्य दृष्टि मात्र थी।[2]

समझौते के बाद नौकरशाही नग्न नृत्य करने लगी थी। इस समझौते के अन्तर्गत अनके राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया गया था किन्तु अफसरों को किसी भी प्रकार का कहर ढाने की स्वतंत्रता थी। यह सब कर्तव्य की आड़ में में किया जा रहा था।[3]

सुभाष बोस को कांग्रेस के समझौता वादी सिद्वान्तों के प्रति अरुचि होती जा रही थी।

बोस के अनुसार ,''महात्मा का अन्धानुकरण करने वालों तक ने कहा था कि कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि महात्मा इन शर्तो पर तैयार हो जायेगें।'' पर वास्तव में पैक्ट होकर रहा । महात्मा वास्तविकाता से अनभिज्ञ न थे।गाँधी ने प्रेस वक्तव्य में कहा भी था कि ''दोनों में से कोई भी पार्टी यह न समझे कि समझौते से उसकी जीत हुई है।'' सुभाष बोस ने पैक्ट को आर्शीवाद नहीं बल्कि ''अभिशाप'' माना। उन्होंने कहा,''इस

1- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - 1920-42 : 196 . 197

2- सुभाष रचनावली III : 51

3. सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –2,पृष्ठ 63

तरह से समझौते के लिये कोई सुअवसर नहीं था। संघर्ष कुछ समय और चलना चाहिए था। पैक्ट में कुछ भी तत्व पूर्ण नहीं हैं।"[1]

नेताओं की दृष्टि में गाँधी जी ने इतना बड़ा समझौता किया था कि उसकी जितनी ही प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है। लेकिन सुभाष की अर्न्तदृष्टि सोच रही थी कि भगत सिंह , राजगुरू और सुखदेव जैसे महामानवों के लिये भी इस समझौते के अन्तर्गत बहुत कुछ किया जा सकता था पर उन्हें शून्य के रूप में छोड़ दिया गया। वह अंहिसा में विश्वास करते थे किन्तु अगर कोई गलत पथ का राही बना हुआ है तो उसे समझा-बुझा कर लौटाया जा सकता है-"भाई मेरे साथ आओ, मुझे भी वहीं जाना है जहाँ तुम पहुँचना चाहते हो। दोनों साथ चलेंगें तुम मुझे रास्ता बताते जाना और मैं तुम्हें।" उसका विश्वास था कि फाँसी देकर सुधार के रास्ते नहीं पकड़े जा सकते।

इतिहासज्ञों का कहना है कि,'नेहरू ने इस क्रान्तिकारियों को उग्र राष्ट्रिक वृत्ति का कहकर गलत ब्यान दिया था।"[2] गाँधी जी ने भी इस संबंध में बायसराँय से लम्बी बातचीत की किन्तु वायसरॉय ने कोई वायदा नहीं किया। सुभाष बोस का ख्याल था कि,"गाँधी को 'सिनफेन' पार्टी वाला रवैया अपनाना चाहिए था जिसने फाँसी के दण्डित राजनीतिक कैदियों को आजद करा लिया था।"[3]

इस वर्ष (1931) कांग्रेस का अधिवेशन सरदार पटेल की अध्यक्षता में करांची में सम्पन्न होना तय हुआ था। सुभाष बोस ने क्षुब्ध मन से इसमें भाग लिया था। क्योंकि सरदार पटेल गाँधी जी के सबल समर्थको में से थे। इसके अतिरिक्त निर्वाचन गैर कानूनी था क्योंकि प्रतिनिधियों ने नहीं बल्कि कार्यकारिणी ने उन्हें चुन लिया था।[4] जवाहर लाल नेहरू ने इस अधिवेशन में गाँधी-इरविन समझौते का प्रस्ताव रखा था। इसके साथ ही भगत सिंह तथा उनके साथियों पर भी एक प्रस्ताव रखा गया । इस प्रस्ताव पर काफी झड़प हुई। जनता में आक्रोश था और इधर मंच पर नेता गढ़ उल्झे हुये थे कि प्रस्ताव में-

"कांग्रेस किसी भी रूप में राजनीतिक बल-प्रयोग से अपने को अलग रखती है तथा उसे न पसन्द करती है।"-शब्दों को रखा जाय या हटा दिया जाय।अन्ततः प्रस्ताव इन्हीं शब्दों के साथ पास कर दिया गया।[5]

1- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-196.
2- Gupta : They lived dangerously : 321
3- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - 1920-42 : Pages-204
4- Hari Har Das : Subhas Chandra Bose and Indian National Movement : 139
5. सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा - भाग -2,पृष्ठ 63-64

सुभाष बोस अपने को संयमित रखे हुए थे क्योंकि बात राष्ट्रकीय एकता दिखाने की थी। उनके मस्तिष्क में कौंध रहा था-"ये लोग अंहिसा की बांसुरी बजाए जा रहे हैं पर सारे देश में हिंसा की लपटे मानवता को लीले जा रही हैं। अंहिसा की प्रतिमूर्ति चंदन सिंह गढ़वाली की रिहाई की बात पे अंहिसा के पुजारी क्यों नहीं मर रहे हैं? इस बहादुर सैनिक ने निहत्थे आन्दोलनकारियों पर गोलियां दागने से इन्कार कर दिया था। अंग्रेज अफसर का आदेश टालना विशेषकर फौज में मृत्यु को निमंत्रण देना था। लेकिन यह साहस इस सैनिक ने दिखाया और अंहिसा को शब्द मात्र नहीं रहने दिया।[1] अंग्रेज सरकार ने उसे जेल में डाल दिया और नाना प्रकार से प्रताड़ित किया जा रहा था। लेकिन कांग्रेस को इसकी कोई सुध नहीं थी।

सुभाष बोस 'नवजवान भारत सभा' के अध्या चुन लिये गये। उन्होंने अपने ध्ययक्षीय भाषण में 'गाँधी-इरविन' पैक्ट की खुलकर निन्दा की। 27 मार्च 1931 को सुभाष बोस ने अध्यक्षीय मंच से कहा-

"जहाँ तक गाँधी-इरविन सन्धि का प्रश्न है, वह अत्यन्त असन्तोषजनक और अत्याधि ाक निराशाजनक है। यह विचार मुझे और अधिक पीड़ा पहुँचाता है कि जब यह समझौता तैयार किया गया था, उस समय हम वास्तव में गोरों से कहीं अधिक शक्तिशाली थे, जैसा कि इस समझौते की शब्दावली से प्रकट होता है। इस समझौते में अर्न्तनिहित कमजोरी है........

......परन्तु अब यह समझौता हो गया है तो हमारे सामने प्रश्न यह है कि इस स्थिति में क्या किया जाए? मैं एक क्षण के लिए भी उन लोगों की देश भक्ति पर सन्देह नहीं करता जो इस जो इस संधि की शर्तो के लिए उत्तरदायी हैं। अतएव सर्वोत्तम मार्ग यह है कि हम कुछ ठोस कार्य करें जिससे कि राष्ट्र शक्तिशाली बने और स्वतंत्रता की मांग प्रबल हो। इसके लिए ही मैंने अपने कार्यक्रम की रूपरेख तय की है जिसे हमारे क्रान्तिकारी बन्धु स्वीकार करें और कार्यक्रम में परिणत करें तो और अच्छा हो। इससे कांग्रेस के नेतृत्व में अनावश्यक विग्रह से हम बच जाएंगे अन्यथा यह इस समय हमारे जनबल को कमजोर करेगा और सरकार को मजबूत बनाएगा।[2]

1- सुभाष रचनावली III : 82-83

2. Selected speeches of Subhas Chandra Bose : 62

सुभाष अपने विचारों और कार्यो से नवयुवकों के सर्वमान्य नेता बन गए। अंग्रेज सरकार उनके इस प्रभाव को आंक रही थी। कांग्रेस के स्थापित नेता भी उनकी इस लोकप्रियता से कुछ ज्यादा खुश नहीं थें। सरकार के कुछ बड़े अधिकारी सोच रहे थें कि सुभाष को अगर मांडले जेल से छोड़ा न जाता तो शायद परिस्थिति कुछ और ही होती।

लेकिन सच्चाई यह है कि राजनीति आज की नहीं, सदियों की कीचड़में सनी हुई हैं शीर्षस्थ व्यक्तियों की नीतियों का समर्थक न होने का अर्थ था, राजनीतिक और सार्वजनिक मौत। उस समय यह तो कल्पना ही नहीं की जा सकती थी कि कोई महात्मा गाँधी के विचारों का विरोध कर सकता है। कांग्रेसी गाँधी ,पूजा में लगे हुए थे ताकि उनका उद्धार हो सकें।(1)

सुभाष बोस यह नहीं कर सकें। बोस की प्रकृति ही स्वविवेक से काम करने की रही थी। इसलिए कांग्रेस ने इतने वर्षो तक छिटकाए रखा। लेकिन जानते कांग्रेसी भी थे कि अधिक देर तक बोस को दूर नहीं रखा जा सकता था। सूर्य दिन व दिन प्रखरत होता जा रहा था। यूरोप के अपने प्रवासकाल में बोस ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का जो गहन अध्ययन किया था और जिस प्रकार से सुदूर देशों से मैत्रीपूर्ण संबंध कायम कर लिये थें, वह अपने आपमें एक अभूतपूर्व व्यक्तिगत उपलब्धि थी जिसका भारत में कोई सानी न था। कांग्रेसी नेताओं में भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर इतनी गहरी पकड़ और किसी की न थी। अधिकांश नेताओं ने अन्तराष्ट्रीय घटनाओं का मूल्यांकन करने के लिए इग्लैण्ड को माध्यम बना रखा था। इसलिए इन इग्लैण्ड के मानस-पुत्रों और सुभाष के विचारों और दृष्टिकोण में इतना बड़ा अन्तराल था।(2)

सुभाष बोस ने फरवरी 1938 में हरिपुरा कांग्रेस के सभापतित्व में कहा था, अपनी संस्था के अन्दर अनुशासन रखने के लिए हम लोगों को एक ऐसी समस्या पर विचार करना है, जिसे लेकर विवाद हो चुका है। मेरा मतलब ट्रेड यूनियन कांग्रेस और किसान सभा जैसी संस्थाओं से और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से उनके सम्बन्ध को लेकर है। इस प्रश्न पर दो विचारधाराएं है- एक दृष्टिकोण कांग्रेस से अलग अन्य सभी संस्थाओं को घातक समझता है, और दूसरा स्वतंत्र संस्थाओं का समर्थन करता है। मेरा विचार है कि हम उन

(1) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –2,पृष्ठ 83.

2. Hari Har Das : Subhas Chandra Bose and Indian National Movement : 139

संस्थाओं की निन्दा व उपेक्षा करके उन्हें तोड़ नहीं सकते, उनका अस्तित्व प्रत्यक्ष है, उनकी सत्ता कायम हो गई है, और उनके खत्म होने का कोई चिन्ह नहीं दिखाई पड़ता। इससे स्पष्ट है कि उनके पीछे ऐतिहासिक शक्ति है। ऐसी संस्थाऐं अन्य देशों में भी पाई जाती है। हम चाहें या नहीं चाहें, उनका अस्तित्व हमें मानना ही पडेगा। (1)

अब प्रश्न इस बात का है कि कांग्रेस उनसे किस प्रकार का व्यवहार करें ? साफ बात यह है कि हमें देखना है कि ऐसी संस्थाएं राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में चलने वाले भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम की विरोधी न बनें। इसलिए इन संस्थाओं को कांग्रेस के आदर्शों और तरीकों से प्रभावित कर और मिलकर चलना चाहिए। इसके लिए कांग्रेस कार्यकर्ताओं को अधिक-से-अधिक संख्या में किसान और मजदूर सभाओं में भाग लेना चाहिए। कांग्रेस तथा इन संस्थाओं का कार्य बड़ा सरल हो जाएगा। कांग्रेस उन सब लोगों को शक्तिदायी संस्था समझें, जो देश की परतन्त्रता की बेड़ियों को काटना चाहता है।(2)

मित्रों आज हम चिंताजनक परिस्थितियों का मुकाबला कर रहे है। कांग्रेस के भीतर दक्षिण और वामपंथी दलों में बहुत से मतभेद है, जिनकी उपेक्षा करना ठीक नहीं है। आज ब्रिटिश साम्राज्यवाद हमें चुनौती दे रहा है। ऐसी विपत्ति में हमारा कर्तव्य क्या है, यह कहने की आवश्यकता नहीं हैं। हमें दृढ़ता के साथ खड़े होकर इस तूफान का सामना करना चाहिए और अपने निर्दयी शासकों की दुर्नीति को असफल बनाते रहना चाहिए। स्वतंत्रता युद्ध के लिए आज कांग्रेस ही सर्वाधिक उपयुक्त अस्त्र है। उसमें उग्रपंथी हो सकते है और अहिंसावादी भी, परन्तु दोनों को कांग्रेस की छत्रछाया में खड़े होकर साम्राज्य-विरोधी शक्तियों का संगठन करना चाहिए।(3)

अन्त में, मैं यह कहकर आपके भावों को वाणी दूंगा कि महात्मा गांधी दीर्घजीवी हों; और हमारा देश बहुत दिनों तक उनके नेतृत्व में आगे बढ़ता रहे-यही समस्त भारत की हार्दिक कामना है......................भारत महात्मा गांधी को खोना नहीं चाहता है, विशेषकर ऐसे समय में जबकि सब लोगों में ऐक्य स्थापित करने की आवश्यकता है। हम अपने स्वतन्त्रता-युद्ध को घृणा और कटुता से बचाए रखने के लिए उन्हें चाहते है। हमें मानवता के लिए उनकी आवश्यकता है। हमारा युद्ध केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद से नहीं है वरन् विश्व

1- Ibid : Appendix I for full text : 345-347

2- Hari Har Das : Subhas Chandra Bose and Indian National Movement : 345

3- Jagat S. Bright (ed) Important speeches and writing of Subhas Chandra Bose : 62

साम्राज्यवाद से है। अतः हम भारत के लिए ही नहीं, वरन मानव मात्र के लिए लड़ रहे है।''[1]

हरिपुरा अधिवेशन के वाद सुभाष ने कुशलतापूर्वक और पूर्ण मनोयोग से स्वाधीनता संग्राम का संचालन किया। उन्होंने अपने दायित्व को चाहे कितनी ही कुशलता से क्यों न निभाया हो, कांग्रेस के दक्षिणपंथी इस वामपंथी सभापति के विवेक, कुशलता और संगठन-शक्ति से खुश नहीं थे। बोस ने अपने अध्यक्षताकाल में जो सबसे उत्तम कार्य किया, वह था राष्ट्रीय योजना कमेटी का गठन। इसके संयोजक तो बोस खुद थें किन्तु कमेटी के अध यक्ष उन्होने जवाहर लाल नेहरू को बनाया। जहां तक हो सका बोस ने दक्षिणपंथियों से बचने की कोशिश की क्योंकि वे जानते थे कि उनके पास इन झगड़ों की उपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्य हैं।[2]

अधिकांश नेता बोस के दृष्टिकोण से सहमत थे पर गांधी जी के प्रभाव-क्षेत्र में होने के कारण खुलकर सामने नहीं आना चाहते थे।

इन्हीं परिस्थितियों में कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन के लिए अध्यक्ष के चुनाव के प्रश्न पर विचार किया गया। अधिकांश प्रान्तों में सुभाष बाबू का समर्थन किया गया। लेकिन सरदार पटेल का कहना था इस पद पर एक व्यक्ति को 2 बार न चुना जाए तो ठीक रहेगा। और गांधी ने मौलाना आजाद का नाम प्रस्तावित किया। बहरे और गूंगों की तरह सभी ने गांधी जी के इस प्रस्ताव का समर्थन कर दिया। लेकिन मौलाना आजाद ने अपनी असहमति प्रकट की। जबकि गांधी जी के प्रिय पट्टाभि सीतारमैय्या ने प्रान्तवाद का प्रश्न उठाया।[3]

नेताओं की संकीर्ण भावना को देखते हुए बोस ने इस सम्बन्ध में 27 जनवरी1939 को एक वक्तव्य प्रसारित किया।

'डॉक्टर पट्टाभि सीतारमैय्या और सरदार पटैल के वक्तव्यों के कारण मुछे पुनः इस वाद-विवाद में पड़ना पड़ रहा है। डॉ. सीतारमैय्या का कहना है कि दक्षिण भारत और विशेषकर आन्ध्र प्रदेश के लोगों की यह सर्वसम्मत इच्छा है कि कांग्रेस का अगला अध यक्ष आन्ध्र प्रदेश का हो। यह विश्वास करना कठिन है कि भारत के किसी भी हिस्से में

1- Jagat S. Bright (Ed.) Important Speeches and writing of Subhas Chandra Bose : 62.

2- सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –2,पृष्ठ 85

3. Reva Chatterjee, Bengal Revolition and Independence, (Netaji and the congress pages. 79-80

कांग्रेसजन प्रान्तवाद के सन्दर्भ में इस राष्ट्रीय प्रश्न को सोचते हो।

सरदार पटेल के वक्तव्य में स्वीकारोक्ति है जो उनकी प्रतिष्ठा को नहीं बढ़ाती। स्पष्ट है कि सरदार पटेल ऐसा कांगेस अध्यक्ष चाहते है जो नाममात्र का अध्यक्ष और वर्किंग कमेटी की कटपुतली हो।[1]

यद्यपि कांग्रेस प्रस्तावित संघीय योजना को सर्वथा अस्वीकार करता है और उसका विरोध करता है फिर भी तथ्य यह है कि कुछ प्रभावशाली कांग्रेसी नेता निजी बातचीत तथा सार्वजनिक रूप से संघीय योजना को कुछ शर्तो के साथ स्वीकार करने की सिफारिश करते है।

ऐसी परिस्थिति में यह स्वाभाविक है कि कांग्रेस का वाम और क्रान्तिकारी पक्ष संघीय योजना के बारे में विशेष रूप से चिन्तित हो और चाहे कि अध्यक्ष पद पर शुद्ध संघ योजना विरोधी व्यक्ति चुना जाय।[2]

सुभाष बोस एक खुली किताब थे। उनके इस खुलेपन और स्पष्टवादिता के कारण ही तो कांग्रेस के नेता बोस से क्षुब्ध थे। किसी भी प्रकार का छद्म रूप धारण करना तथा दोहरे व्यक्तित्व को जीना उनकी प्रकृति नही थी। सुभाष बोस के बक्तव्य से पूरा देश ही उनके पक्ष में हो गया।

अंग्रेज सरकार भी कांग्रेस की इस आंन्तरिक स्थिति पर नजर रखे हुये थी। सरकार चाहती थी कि 1935 बाले पैक्ट में कुछ उलट-फेर करके भारतीय उसे स्वीकार कर ले। अंग्रेजो ने अपनी इस चाल को संघ योजना का नाम दिया था। लेकिन सुभाष ने इस षड़यंत्र को अपने वक्तव्यों में व्यक्त किया,"यदि कांग्रेस संघ योजना ग्रहण करती है तो वह अध्यक्ष पद स्तीफा दे देगे और इसके विरूद्ध मोर्चा लेगे"।[3]

इस कारण भी गांधीवादी चाहते थे कि सुभाष को त्रिपुरी कांग्रेस का अध्यक्ष नहीं बनाया जाय। चुनाव हुये बोस एक बार फिर अध्यक्ष चुन लिये गये। सभी अवाक् थे। गांधी जी दुख के स्वर में बोले-

"सुभाष बाबू ने अपने प्रतिपक्षी डॉ0 सीता रमैय्या पर निर्णायक विजय प्राप्त की है। मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि आरंम्भ में ही मैं सुभाष बाबू के पुनः चुने जाने

1- Reva Chatterjee : Bengal Revolution and Independence (Netaji and Congress) : 83

2- [illegible], मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –2 पृष्ठ 88

3- [illegible] Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-198

का विरोधी था, यद्यपि उसके कारणो में जाने की आवश्यकता नहीं है उन्होंने अपने चुनाव घोषणा पत्र में जो तथ्य और तर्क दिये है, मैं उनको ठीक नही मानता। मेरा मानना है कि उन्होने अपने सहयोगियों के बारे में जो चर्चा अपने वक्तव्यों में उठाई है वह अनुचित और अशोभिनीय थी। मैं उनकी विजय से प्रसन्न हूं। और क्योकि मैने ही डॉ0 सीता रमैय्या को अपना नाम बापस लेने से मना किया था और उन्हें चुनाव लड़ने के लिये तैयार किया था। अस्तु, यह पराजय जितनी उनकी है, उससे ज्यादा मेरी है।''[1]

गांधी जी के इस वक्तव्य से कांग्रेसी विचलित हो गये। देश का दुर्भाग्य था कि गांधी जी जैसे सर्वमान्य नेता, सुभाष जैसे प्रखर और सब कुछ त्याग कर सकने वाली भावना लिये देशभक्त युवक को स्वीकार नही कर सकें। सम्भवतः इसके पीछे यही भावना रही कि उन पर किसी का प्रभुत्व न हो सके। दूसरे की श्रेष्ठता को स्वीकार कर लेना असाध्य सा ही है।[2]

सुभाष जिस समय त्रिपुरी कांग्रेस अधिवेशन के लिये अध्यक्ष चुने गये उस समय देश की राजनीतिक स्थिति बहुत तनाव पूर्ण बनी हुयी थी।

इसी तनावपूर्ण माहौल में 10,11,12, मार्च 1939 को त्रिपुरी कांग्रेस का अधिवेशन होना तय हुआ। सुभाष बोस इसमें भाग लेने की तैयारी कर रहे थे कि एकाएक वे गम्भीर रूप से बीमार हो गये। कांग्रेस के दक्षिणपंथी नेताओं ने दुर्भावनापूर्ण बात फैला दी की सुभाष चंद्र बोस लोगों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये बीमारी की बहाना बना रहे है। इस अधिवेशन में बोस अपना भाषण देने में समर्थ नही थे। अस्तु, उनके लिखित भाषण का किसी ने वाचन किया–

''वह समय आ गया है जब हमें ब्रिटिश सरकार को अन्तिम चुनौती दे देनी चाहिए कि वह एक निश्चित समय के अन्तर्गत भारत की स्वतंत्रता की घोषणा करे। हम किसी भी दशा में संघीय योजना को अपने ऊपर थोपने नहीं दे सकते। आज ब्रिटिश की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बहुत कमजोर है और मेरी दृढ़ मान्यता है कि छः महीने में ही यूरोप में महायुद्ध छिड़ जायेगा। अस्तु, मेरा सुझाव है किं हमें ब्रिटिश सरकार को अन्तिम चुनौती दे देनी चाहिए और एक अवधि निश्चित कर देनी चाहिये। यदि ब्रिटिश सरकार उस अवधि के अर्न्तगत

1. Reported the Anand Bazar patrika (Reva Chatterjee,Netaji and the congress pages. 89
2. सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –2,पृष्ठ 90–91

देश को आजादी प्रदान नही करती तो हमें देश व्यापी सत्याग्रह आन्दोलन प्राप्त कर देना चाहिए।

.......मेरा विश्वास है कि ब्रिटेन आज देश–व्यापी सत्याग्रह आन्दोलन का सामना करने के लिये तैयार नही है मुझे यह देखकर दुख होता है कि आज कांग्रेस में ऐसे व्यक्ति भी है जो इतने निराशावादी है कि वे मानते है कि ब्रिटिश सम्राज्यवाद पर अन्तिम प्रहार करने का समय अभी नही आया है। परन्तु परिस्थिति को एक यथार्थवादी की भांति देखने पर मुझे निराश होने क़ा कोई कारण प्रतीत नही होता।

आठ प्रान्तों में शासन कांग्रेस के हाथो में है। ब्रिटिश–भारत में जन आन्दोलन बहुत सशक्त बन गया है।

................भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये इससे अधिक उपयुक्त अवसर और कौन सा हो सकता है ? विशेषकर जबकि अर्न्तराष्ट्रीय स्थिति हमारे अनुकूल हो। एक कठोर यथार्थवादी के नाते मैं कह सकता हूं कि आज की स्थिति हमारे लिये इतनी अनुकूल है कि हमको अधिकतम आशावान होना चाहिए हम यदि केवल अपने मतभेदों को समाप्त कर दें और सभी साधनों को लेकर राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े तो निश्चय ही ब्रिटिश सम्राज्य हमारे प्रहार को सहन नहीं कर पायेगा।.............क्या हममें वह राजनीतिक दूर दर्शिता होगी कि हम अपनी इस अत्यन्त अनुकूल स्थिति का लाभ उठाये, अन्यथा हम इस अवसर को खो देगे। एक राष्ट्र के जीवन काल में यह अलभ्य अवसर कभी–कभी ही आता है।[1]

मित्रों आज कांग्रेस में फूट के बादल मड़रा रहे है इस कारण हमारे बहुत से मित्र निराश हो रहे है। मुझे अपने देशवासियों की देशभक्ति पर विश्वास है और मुझे आशा है कि हम वर्तमान कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करके शीघ्र ही एकता स्थापित कर लेगे। गया कांग्रेस के अवसर पर ऐसी ही परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी जबकि देशबंधु तथा श्रद्धेय मोतीलाल नहेरू ने स्वराज्य पार्टी का निर्माण किया था। मेरे राजनीतिक गुरू देशबन्ध ु,श्रद्धेय मोतीलाल नेहरू तथा भारत के अन्य महान पुत्रों की आत्मा हमें वर्तमान संकट के समय प्रेरणा प्रदान करें और महात्मा गांधी जो आज भी राष्ट्र का मार्गदर्शन करने के लिये हमारे बीच है, कांग्रेस को वर्तमान संकट में से निकालने के लिये सहायक हों, यही

(1) सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –2,पृष्ठ 92

मेरी भगवान से प्रार्थना है।''[1]

सुभाष की यह अपील बेकार गई। जो गांधीवादी ब्रिटिश सम्राज्यवाद से समझौता करके सत्ता सुख भोगना चाहते थे वे भला सुभाष की इस क्रान्तिकारी योजना से कैसे सहमत होते ? वे पुनः संघर्ष के लिये तैयार नही थे उनके सम्मुख सबसे बड़ी आड़ गांधी जी की थी सो एकजुट होकर वे इस प्रयास पर जुटे हुए थे कि सुभाष को विवश कर दिया जाये ताकि वे अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दें।

कांग्रेस के प्रमुख गोविन्द बल्लभ पंत ने प्रस्ताव रखा कि अध्यक्ष महोदय को गांधी जी की इच्छा से ही वर्किंग कमेटी नियुक्त करनी होगी। बोस जानते थे कि वैद्यानिक रूप से कांग्रेस अध्यक्ष ही वर्किंग कमेटी की नियुक्ति करता है। लेकिन वे उदारतावश चुप रहे और प्रस्ताव रखने दिया।

सुभाष बोस ने गांधी जी को पत्र लिखा-''आप वर्किंग कमेटी बना दीजिए मैं उसको स्वीकार कर लूंगा।'' लेकिन गांधी जी ने वर्किंक कमेटी बनाने से इनकार कर दिया।

सुभाष बोस का प्रयास था कि गांधी जी अंग्रेजो के प्रभाव में आ गये क्योंकि अंग्रेज नही चाहते थे कि उनका परम शत्रु कांग्रेस से जुड़ा रहे जय प्रकाश नारायण ने तो पंत-प्रस्ताव पर तटस्थ रहकर यह सिद्ध कर दिया कि सुभाष अपने मुद्दे पर सही है। जय प्रकाश नारायण यदि इस मुद्दे पर तटस्थ नही रहते तो शायद पंत-प्रस्ताव पास ही न होता।[2]

उस समय अनेक कांग्रेसी कार्यकर्ताओं का यह विचार था कि गांधी जी की बजह से सुभाष बोस कांग्रेस से वहिष्कृत थे। जबकि गांधी जी के वोट पर नही, जन साधारण का वोट पाकर सुभाष दुबारा कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए थे। फिर भी गांधी जी ही तो सर्वोसर्वा है-उनकी इच्छा-अनिच्छा ही सब है। सुभाष बोस के शब्दों में,-The entire intellect of the congress has been mortgaged to one man,"[3] अर्थात् कांग्रेस की सारी समझ एक व्यक्ति के पास बन्धक रखी जा रही है।

इसी बात को और भी स्पष्ट शब्दों में कहा था त्रिपुरा कांग्रेस की अभ्यर्थना कमेटी के सभापति गांधीवादी नेता सेठ गोविन्ददास ने। भाषण देते समय गर्व से कहा था उन्होने-'फासिस्टों में मुसोलिनी, नात्सियों में हिटलर और कम्युनिस्टों में स्टालिन की जो

1- Reva Chatterjee, Bengal Revolition and Independence, (Netaji and the congress) pages. 84
2. सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –2,पृष्ठ 93.
3. शैलेश डे (अनुवाद ममता खरे) मैं सुभाष चन्द्र बोल रहा हूं खण्ड दो पृ.31

जगह है, कांग्रेस सेवकों में महात्मा गांधी की भी वही जगह है।'[1]

सुभाष जनता द्वारा निर्वाचित सभापति थे, फिर भी गांधी को यह बात पसन्द नहीं थी। इसलिए वही हुआ जो होना था। इस स्थिति में सुभाष के पास कोई रास्ता नहीं बचा सिवाए त्याग-पत्र देने के, सो उन्होने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। उससे भी काम नहीं चला-उनका कांग्रेस से वहिष्कार कर दिया गया। अपराध था अनुशासन भंग करना।[2]

विदेशी लेखक माइकेल एडवर्ड्स ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक The Last years of British India में लिखा है-

"गांधी जी का अब असहयोग ब्रिटिश के विरूद्ध नहीं कांग्रेस के अपने सभापति के विरूद्ध ही था। फलस्वरूप बोस पदत्याग करने को बाध्य हुए।"[3]

माइकेल एडवर्ड्स ने आगे भी कहा-"भारत तथा भारत के लोगों का विश्वास था कि गांधी जी प्रकाश और माधुर्य के सम्मिश्रण से बने हैं, लेकिन देखने में यह आया कि अपने नेतृत्व के वास्तविक प्रतिद्वन्दी को हटाने के लिए उन्होंने अपनी मर्यादा और कूटनीति का सहारा लिया।"[4]

सुभाष कांग्रेस से वहिष्कृत हो चुके थे। दो-दो बार सभापति रहकर भी आज वे कांग्रेस के कोई नहीं थे। इसमें किसका कसूर हैं ? गांधी जी का ? सुभाष का ? कांग्रेस का ?

दोष किसी का नहीं है। ये तो होना ही था। उनके अर्न्तमन में तो चौबीसों घंटे एक ही बात कौधंती रहती थी-मुक्ति चाहिए-देश की, मनुष्य की मुक्ति। कौन शक्ति नहीं थी जो उन्हें रोक सकती।

इसी सिलसिले में 1927 मे माण्डले जेल से लिखी सुभाष की कुछ पंक्तियां उल्लेखनीय है जो कि इस प्रकार है-

'अपने जीवन को पूर्णरूप से विकसित कर भारत माता के चरणो में समर्पित करूंगा और इस आत्मोत्सर्ग द्वारा पूर्णता प्राप्त करूंगा, मैं इसी आदर्श को मानकर चला था.... ....मेरे इस छोटे से परन्तु घटनाओं से भरपूर जीवन पर से कितने तूफान गुजर चुके

1- Quoted in the Anand Bazar Partika : 11 March 1939
2. शैलेश डे (अनुवाद ममता खरे) मैं सुभाष चन्द्र बोल रहा हूं; खण्ड दो पृ.31
3. Michael edwards - The last year of British India Page 78
4- Michael edwards - The last year of British India Page 78

हैं। विघ्न बाधाओं के उस पत्थर के जरिये मैंने अपने को बारीकी से पहचानने और समझने का अवसर पाया है।

'इस घनिष्ठ परिचय के कारण मैंने तय किया है कि यौवन काल में जिस कांटों से भरे रास्ते पर मैंने यात्रा शुरू की है उस पर अन्त तक चलता जाऊंगा अनजाने भविष्य की कल्पना कर जिस व्रत को शुरू किया है उसे पूरा करके रहूंगा।''[1]

यही थे प्रगतिशील वामपंथी विचारधारा के सुभाष। यही था उनका असली रूप। उन्होने जीवन भर जिसका स्वप्न देखा था उसी स्वाधीनता को प्राप्त करने के लिए अपना सर्वस्त्र न्यौछावर कर दिया।

इस तरह से पुरानी पीढ़ी और नवीन पीढ़ी के बीच खाई पड़ गई।

---

1. शैलेश डे (अनुवाद ममता खरे) मैं सुभाष चन्द्र बोल रहा हूं खण्ड दो पृ.31

अग्रगामी दल (फारवर्ड ब्लाक) का संगठन एवं उद्देश्य

देश के कुछ लोगों को अन्देशा था कि कांग्रेस अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने के वाद सुभाष बोस का राजनीतिक जीवन अब समाप्त प्राय है। इस धक्के से वे सँभल नहीं पायेंगे किन्तु अध्यक्षीय पद-त्याग ने उन्हें चट्टान की तरह ठोस बना दिया। तीनदिन के अन्दर फारवर्ड ब्लाक की घोषणा ने देशवासियों को चकित कर दिया। फासिस्ट मनोवृत्ति से बचे रहकर बोस ने कांग्रेस से अपना नाता तोड़कर फारवर्ड ब्लाक का निर्माण किया था।[1] सुभाष पूणरुपेण संघर्ष में आस्था रखते थे , समझौता करके वह साम्राज्यवाद का समर्थन नहीं करना चाहते थे। फारवर्ड ब्लाक सुभाष की परिकल्पनाओं पर आधारित एक राजनैतिक संगठन था जो मूलरुप से स्वतंत्रता को चाहता था, उसके लिये कांग्रेस की तरह अहिंसा न धर्म थी और न नीति।

सुभाष पूर्ण रुपेण संगठित आधुनिक समाजवादी समाज की रचना करना चाहते थे। यह उनकी राजनीति का आधार था। यह संगठन साम्राज्यवाद का बिरोध शक्ति से करने के लिए निर्मित किया गया था। गांधी यदि लघु उधोगो और खादी से देश के आर्थिक पुर्नगनिर्माण की कल्पना करते थे। तब तक यह दल वैज्ञानिक आधार पर उत्पादन को संगठित करने का समर्थक था। यह दल व्यक्तिगत निष्ठा के आधार पर धार्मिक विषयो में पूर्ण स्वतंत्रता का सर्मथन है। प्रत्येक नागरिक के समान राजनैतिक अधिकारों की व्यवस्था करने वाला यह राजनैतिक दल उत्पादन और वितरण पर सामाजिक नियन्त्रण का समर्थक था। अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक तथा भाषा सम्बन्धी हितों की रक्षा करना चाहता है।

18 मई 1939 को कानपुर प्रेस कान्फ्रेन्स में सुभाष बोस ने बताया कि कांग्रेस की वर्तमान कार्य-नीति में प्राण-शक्ति का संचार करने के लिए फारकर्ड ब्लाक का गठन किया गया है। इसको मूर्त रूप देने के लिए स्वेच्छा सेवा-वाहिनी, किसान सभा, व्यापार-संघ कांग्रेस, युवा-संघ तथा छात्र-वर्ग जैसे साम्राज्यवादी-विरोधी संगठनों से सम्पर्क स्थापित किया जाएगा। 5 जून 1939 को ढाका के सदर घाट पार्क में जितेन्द्र नाथ कुशारी के सभापतित्व

---

(1) आशा गुप्ता, सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक (भारतीय नैशनल कांग्रेस) पृ0 102

में आयोजित भाषण मंच से बोस ने स्पष्ट किया 'मैं स्वार्थहीन भाषा में बोलना चाहता हूं कि सभापति के पद छोड़ने में फारवर्ड ब्लाक का उद्भव नही है। पिछले 12 महीनों से इसके लिए प्रयास किया जाता रहा है।''[1]

सुभाष बोस को आशा थी कि भारत में बामवादी दल की शक्ति बढ़ेगी, क्योंकि गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस एक ऐसा संगठन है जो सामाजिक दृष्टि से भिन्न बल्कि परस्पर-विरोधी तत्वों को किसी न किसी प्रकार एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न कर रहा है। इसलिए उन्होने नये दल के लिए जिससे उन्हें आशा थी, निम्नलिखित कार्यक्रम तैयार किया जिसमें एक दृष्टि से उनके राजनीतिक विचारों का सार निहित है:

★ दल जनता के अर्थात किसानों और मजदूरों के हितों का समर्थन करेगा, न कि जमीदरारों, पूंजीपतियों और साहूकारी वर्गो के निहित स्वार्थो का।

★ वह भारतीय जनता की पूर्ण राजनीति तथा आर्थिक मुक्ति के लिए कार्य करेगा।

★ वह अन्तिम उद्देश्य के रूप में संघात्मक शासन का समर्थन करेगा, किन्तु आगामी कुछ वर्षो तक वह अधिनायकवादी शक्तियों से सम्पन्न एक मजबूत केन्द्रीय सरकार में विश्वास करेगा जिससे भारत अपने पैरो पर खड़ा हो सके।[2]

★ देश के खेतिहार तथा औद्योगिक जीवन का पुनर्संगठन करने के लिए उसे राजकीय नियोजन की सुदृढ़ तथा समुचित व्यवस्था में विश्वास होगा।

★ वह नयी सामाजिक व्यवस्था का उन पुराने गांव समाजों के आधार पर निर्माण करने का प्रयत्न करेगा जिनमें गांव-पंच शासन करते थे। इसके अतिरिक्त वह जाति जैसी वर्तमान सामाजिक दीवारो को ध्वस्त करने की भी चेष्टा करेगा।

★ वह आधुनिक संसार में प्रचलित सिद्धान्तों तथा प्रयोगो को ध्यान में रखते हुए एक नयी युग-व्यवस्था की स्थापना करने का प्रयत्न करेगा।

★ वह जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करने तथा सम्पूर्ण भारत में एक सी भूमि-व्यवस्था कायम करने की कोशिश करेगा।

वह उस प्रकार के लोकतन्त्र का समर्थन नही करेगा जैसा कि विक्टोरिया के शासन काल के मध्य में इग्लैण्ड में प्रचलित था वह एक ऐसे शक्तिशाली दल के शासन में विश्वास

1— ढाका के सदरघाट में आयोजित मंच से सुभाष बोस का भाषण— 5 जून 1939

2— यह कार्यक्रम जिसमें अधिनायकतन्त्री शक्तियों से सम्पन्न शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार पर बल दिया गया था, जिसके कारण बोस के विरोधियों ने उनके विचारों को फासीवादी मनोवृत्ति का घोतक माना।

करेगा जो सैनिक अनुशासन के द्वारा परस्पर आबद्ध होगा। जब भारतवासी स्वतंत्र हो जायेगे और उन्हें पूर्णतः अपने साधनों पर ही निर्भर रहना होगा उस समय देश की एकता को कायम रखने तथा अराजकता को रोकने का यही एक मात्र साधन होगा।

★ भारत की स्वतंत्रता के पक्ष को मजबूत करने के लिए वह अपने आन्दोलन को भारत के भीतर तक सीमित ही नहीं रखेगा, वल्कि अर्न्तराष्ट्रीय प्रचार का भी सहारा लेना और उसके लिए विद्यमान अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का प्रयोग करने का प्रयत्न करेगा।

★ वह सब उग्रवादी संगठनों को एक राष्ट्रीय कार्यपालिका के अन्तर्गत संगठित करने का प्रयत्न करेगा जिससे जब कभी कोई कार्यवाही की जाय तो अनेक मोर्चा पर एक साथ कार्य किया जा सके।[1]

फारवर्ड ब्लाक को शक्ति सम्पन्न करने के लिए उन्होंने देश का दौरा शुरू किया। पंजाब और उत्तर-पश्चिमी सरहद के पठानों का समर्थन प्राप्त किया। 21 जून को बम्बई की सार्वजनिक सभा में उन्होंने पार्टी के तीन उद्देश्यों पर प्रकाश डाला- 1- वामपंथ में ऐजेण्डा का क्रियान्वयन एकता, 2- संहति के माध्यम से कांग्रेस में अखण्ड एकता की सृष्टि तथा, 3- परिस्थिति के अनुकूल होते ही 'पूर्ण स्वराज्य' के लिए अभियान प्रारम्भ। अगले दिन यानी 22 जून को अखिल भारतीय फारवर्ड ब्लाक का प्रथम अधिवेशन बम्बई में हुआ। बोस ने कहां, 'राजनीति को धर्म से बिल्कुल अलग रखना चाहिए, क्योकि धर्म व्यक्तिगत भाव है। इस पार्टी की क्रिया विधि-योजना में केवल स्वतंत्रता संघर्ष ही नहीं अपितु युद्धोत्तर पुरर्रचनात्मकता का दायित्व भी होगा। उसका लक्ष्य नयी रियासतों का संदर्शन, नियन्त्रण तथा विकास होगा। योजना में आकस्मिकता का कोई अवकाश नहीं होगा।"[2]

उन्होने पुनर्रचनात्मकता योजना के महत्व का ज्ञापन करते हुए कहा कि 'यदि लीडरों को इसका समुचित प्रशिक्षण नहीं दिया गया तो 18 वी शती के फ्रासीसी विद्रोह की तरह भारत भी अराजकता का शिकार ही जायेगा।' बोस के अनुसार 'जब तक नयी पीढ़ी का युवा-वर्ग एवं युवतियों का शिक्षण-प्रशिक्षण समाप्त नहीं हो जायेगा और वे अपने देश के मामलों का पूर्ण दायित्व ग्रहण करने के योग्य नहीं बन जायेंगे, नेताओं, लीडरों का कर्तव्य पूरा नहीं समझा जाएगा। भारतीय-विद्रोह का प्रथम चरण ग्रेट ब्रिटेन के विरूद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन

1- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle, Page. 428-29

2– आशा गुप्त, सुभाष चन्द्र बोस : भारतीय नेशनल कांग्रेस अध्यक्ष : पथान्तर :103

तथा दूसरा चरण पार्टी के नेतृत्व में अर्न्तदलीय संघर्ष होगा। संघर्ष के उस चरण के सारे अधिकार, भेद-भाव तथा स्वार्थो का उन्मूलन करके देश में पूर्ण सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समानता स्थापित करना होगा।"[1]

सुभाष बोस जर्मनी की नैशनल सोशलिस्ट डैमोक्रेटिक पार्टी, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी तथा मुसोलिनी के नेतृत्व में विकसित इट्ली के प्रशंसक तो थे किन्तु अपने देश के समाजवाद के लिए किसी अन्य देश का अनुकरण उन्हें मान्य न था। उनका विचार था कि भारत अन्य राष्ट्रों के अनुभव और सफलता से शिक्षा तो ले सकता है किन्तु देश की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के परिप्रक्ष्य में उसे कार्य-प्रणाली का चयन करना होगा, अन्यथा विफलता निश्चित है।[2]

अखिल भारतीय कांगेस-कमेटी की बैठक उक्त फॉरवर्ड ब्लाक के अधिवेशन के तुरन्त बाद हुई। वाम-पंथी (कान्सॉलिडेशन) कमेटी इस बैठक में अनुपस्थित रही। किन्तु दक्षिण-पंथी वर्ग पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। बल्कि अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी ने, वामपंथ की चुनौती से संघर्ष करने के निमित्त, दो प्रस्ताव भी पारित कर दिये। सुभाष बोस ने इन दोनों प्रस्तावों तथा कांग्रेस सदस्यों के खर्चे पर अपना मत-वैषम्य प्रकट करने तथा लोकतंत्रात्मक अधिकारों की मांग के लिए 9 जुलाई 1939 को विरोध दिवस मनाने की घोषणा कर दी। कांग्रेस अध्यक्ष की चेतावनी के बाबजूद अनेक स्थलों पर सभाएं तथा प्रदर्शन किये गये। बोस से स्पष्टीकरण मांगा गया। उनके उत्तर ने कांग्रेसी नेताओं को और भड़का दिया। गांधी ने कांग्रेसी-कार्यकारिणी-समिति की तरफ से तुरन्त एक प्रस्ताव की रूपरेखा तैयार की और बोस बंगाल प्रादेशिक कांग्रेस-कमेटी की अध्यक्षता से हटा दिये गये। यही नहीं, अगस्त 1939 से तीन वर्ष तक वे किसी भी निर्वाचन सापेक्ष कमेटी के सदस्य नही हो सकते थे। गांधी ने कांग्रेस द्वारा लागू इस दण्ड को सबसे मामूली कहा था। जोग का कहना है कि गांधी तथा कांग्रेस के अन्य प्रवर नेताओं को सुभाष बोस को अध्यक्षनीय पद से हटा कर चैन नही आया था।[3]

कांग्रेस मण्डल को अहसार था कि सुभाष बोस का कांग्रेस में रहना ही खतरनाक है। पर इनके इस व्यवहार ने अधिकतर सदस्यों के चरित्र और आचरण उजागर कर दिये

1- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle 1920-42 : 371-372
2- Selected Speeches of Subhas Chandra Bose : 63
3- N.G. Jog' "An Alternative Leadership," A Beacon Across Asia.

थे। उधर बोस ने फिर भी वाम-पंथी वर्ग को शान्त रहने का परामर्श दिया और फारवर्ड ब्लाक में सदस्य संख्या बढ़ाने की हिदायत दी। इस तरह कांग्रेस ब्लाक के दृष्टिकोण से सहमत होने को बाध्य हो जायेगी तथा आजादी के लिए आन्दोलन प्रारम्भ करने को प्रस्तुत हो जायेगी।[1]

बोस त्रिपुरि कांग्रेस में दूसरे विश्व-युद्ध की सम्भावना के बारे में भविष्य-वाणी कर चुके थे। जर्मनी द्वारा पोलैण्ड पर आक्रमण ने महायुद्ध छेड़ दिया। गर्वनर जनरल ने विशेष अध्यादेश द्वारा, भारत को इस युद्ध में घसीट लिया। भारतीय नेताओं से सम्मति लेना तक आवश्यक नही समझा गया। कांग्रेस भारतीय साधनों का युद्ध में उपयोग के प्रतिरोध का प्रस्ताव पारित करके वचन-बद्ध हो चुकी थी, अब ब्रिटिश सरकार ने युद्ध और शान्ति के लक्ष्य पर प्रश्न करके, भारत की उसमें भूमिका का स्पष्टीकरण मांगकर, इति कर दी। इध ार कार्यकारिणी समिति ने, अप्रत्याशित रूप में, सुभाष को बैठक में शामिल होने के लिए आमंन्त्रित कर लिया। उन्होंने कांग्रेस प्रबन्धक-कमेटी से पूछा कि महायुद्ध को लेकर कांग्रेस का क्या रवैया रहेगा ?

-निष्क्रिय प्रतिरोध ? इस बार घोर आपतित करते हुए उन्होने परामर्श दिया कि ब्रिटिश सरकार को अन्तिम निर्णय भेज दिया जाय। उन्हेंाने कांग्रेस पर दबाब डालने के लिए अक्टूबर में साम्राज्यवाद-विरोधी कॉन्फ्रेंस नागपुर ने बुलायी। उन्हेंाने यही दोहराया कि ब्रिटेन की वर्तमान संकटापन्न स्थिति से लाभ उठाकर कांग्रेस आन्दोलन प्रारम्भ कर दें। किन्तु कांग्रेस अपने फैसलें से डिगी नहीं।

सुभाष बोस ने नयी पार्टी के नाम पर 'फारवर्ड-ब्लाक' नामक साप्ताहिक शुरू कर दिया। 19 अगस्त 1939 के सम्पादकीय स्तम्भ से 'ब्लाक' की निन्दा एवं कुत्सित प्रचार की संकेत देकर 'फारवर्ड ब्लाक' के तीनों उद्देश्यों का पुनराख्यान किया-वामपंथी ऐजेण्डा का क्रियान्वयन, कांग्रेस को ब्लाक के मतानुरूप ढालने का प्रयत्न तथा कांग्रेस की सम्मिलित शक्ति की सहायता से आन्दोलन का प्रारम्भ![2]

27 अगस्त 1939 को बांकीपुर (पटना) सार्वजनिक सभा में सशक्त शब्दों में कहा, 'मैं कांग्रेस के खिलाफ विद्रोही नहीं हूं या मैं कांग्रेस का शत्रु नहीं हूं। मेरे खिलाफ जो

1— सत्य शकुन, मैं तुम्हे आजादी दूंगा – भाग 2 पृष्ठ 94–95

2— आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस – (भारतीय नेशनल कांग्रेस–अध्यक्षः पथान्तर) पृ0 104

भी सजा के लिए निर्णय क्यों न लिया गया हो मैं और भी निष्ठा के साथ इसकी सेवा करूंगा यहां तक कि अगर कांग्रेस मुझे वाहर भी निकाल देती है तो भी मैं इसे अपना ही समझता रहूंगा; सामान्य कटुता, सामान्य कुण्ठा को छोड़कर मैं एक कुत्ते की भांति ६ ौर्य और विश्वास के साथ कांग्रेस का अनुसरण करूंगा। कांग्रेस स्वतंत्रता संग्राम का फिर से आरम्भ करें। मैं या और कोई वामपंथी कांग्रेस के खिलाफ विद्रोही है या नहीं इसका अन्तिम प्रमाण तभी सामने आएगा।[1]

इस प्रकार सुभाष विभिन्न प्रान्तों का दौरा करते रहे। अपने शब्द–तरकस के हर वाण का प्रयोग किया आक्रमण अनुनय–विनय, प्रबोध और व्यंजक। जब ब्रिटिश सरकार के संरक्षण में भारत के लिए नया संविधान बनाने के लिए उप–विधान–मण्डल बुलाया गया, बोस ने कांग्रेस नेताओं को सावधान किया। उन्होने स्पष्ट कहा कि वास्तविक उप–विधान–मण्डल तो स्वायत्त शासन के उपरान्त स्थापित किया जा सकता है। केवल अस्थायी राष्ट्रीय सरकार संविधान बनाने के निमित्त उप–विधान मण्डल बुलाने की हकदार है।[2]

यही वे बार–बार पत्रिका के स्तम्भों से दोहराते रहे। सुभाष बोस को प्रान्तीय दौरों में पर्याप्त सफलता मिली, कांग्रेस उनसे सर्वथा विमुख रही। बोस के गौ–माता, चर्खे और शराब–बन्दी आदि पर आक्षेपों से वह तिलमिला उठी थी। बोस का कहना था कि इन बातों का महत्व जो भी हो, इन्हें राजनीतिक संघर्ष का हथियार नही बनाया जा सकता। परन्तु गांधी जी को इन हथियारों पर पूरा विश्वास था गांधी जी ब्रिटेन के साथ समझौते के पद्वा में थे। वे 'हरिजन' के सम्पादकीय में कह चुके थे कि चर्खा प्रतिष्ठित रहेगा।[3]

सुभाष बोस ने 19 मार्च 1940 को रामगढ़ (विहार) 'समझौता विरोधी–कॉन्फ्रन्स' के अध्यक्षीय पद से पटना कांग्रेस कार्यकारिणी–कमैटी के समझौता–मुक्त नीति' (अनकॅम्प्रोमाइजिंग पॉलिसी) सम्बन्धी पारित प्रस्ताव का हवाला देते हुए गांधी और कांग्रेस पर तीखा प्रहार किया। उन्होंने कहा कमेटी ने जैसे ही यह प्रस्ताव पास किया, गांधी यह वक्तव्य लेकर सामने आ गये कि सन्धि के लिए भविष्य में वार्तालाप के द्वार बन्द नहीं किये गये है. ....वस्तुतः पिछले डेढ़ वर्षो में हमें सबसे अधिक क्षोभ तथा आश्चर्य इस बात का हुआ है कि एक तरफ तो कांग्रेस कार्यकारिणी सदस्य गरमा- गरम जोशीले प्रस्ताव पारित

1– सुभाष रचनावली V: 209-219

2- A Beacon Across Asia : 96

3- A Beacon Across Asia : 96

करते रहे,वक्तव्य देते रहे, और उसी अवधी में साथ-साथ गांधी तथा अन्य दक्षिण पंथी नेता, ऐसे वक्तव्य और मत स्थापन करते रहे जो सामान्य मस्तिष्क पर सर्वथा भिन्न प्रभाव की सृष्टि करते है....................साम्राज्यवाद के साथ समझौता करने का अर्थ होगा कि साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रीय आन्दोलन बहुत जल्द गृह-युद्ध में परिणत हो जाएगें। यह किसी भी दृष्टि से मान्य हो सकता है ?

हर व्यक्ति को यह अनुभव हो रहा है कि यदि कांग्रेस कार्यकारिणी समिति राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ करने का आह्न नहीं देती तो यह काम दूसरे को करना पड़ेगा।''[1]

सितम्बर 1939 में गांधी ने ग्रेट ब्रिटेन को युद्ध में निरनुबन्ध सहायता देने की वकालत की थी। नवम्बर 1940 में उन्होंने युद्ध विरोधी प्रचार-अभियान के लिए स्वतंत्र अधि ाकारो का संकेत दिया। जवाहर लाल नेहरू ने भी गांधी जी की इस मानसिक अस्थिरता की खुलकर आलोचना की थी।[2]

सुभाष ने संयुक्त राष्ट्रीय मार्चा वनाने के लिए मुस्लिम लीग नेता मिस्टर जिन्नाह और हिन्दु महा सभा के अध्यक्ष वीर सावरकर से भी सम्पर्क स्थापित किया। उन दिनों जिन्नाह पाकिस्तान की योजना बना रहे थे, इसलिए कांग्रेस के साथ आन्दोलन में शामिल होने के इच्छुक नहीं थे। बोस ने उन्हे आश्वास दिया कि सर्वदलीय संयुक्त मोर्चे की सफलता से यदि आजादी प्राप्त हो गयी तो वे भारत के पहले प्रधानमंत्री होगें।

उधर सावरकर का ध्यान केवल हिन्दु जाति को सैन्य- प्रसिक्षण देने पर केन्द्रित था। इस दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति उनके लिए महत्वहीन थी। सतीश चन्द्र माइकोप सुभाष सावरकर भेंट को इसलिए महत्व देते है कि उनके विचार में बोस के भारत निष्क्रमण तथा वहिभरित से राष्ट्रीय सैन्य-वाहिनी-गठन एवं युद्ध की परिकल्पना में वीर सावरकर का समर्थक भाव निहित था। सावरकर ने बोस से कहा था, तुम्हारे जैसे साहसी उद्यमी नवयुवको को भारत से खिसक जाना चाहिए और ब्रिटिश के शत्रु-पक्ष की सहायता लेकर भारत पर सशस्त्र आक्रमण द्वारा शासको को निकाल बाहर करना चाहिए।''[3]

कांग्रेस से हटाये जाने के वावजूद सुभाष बोस के संरक्षण में बंगाल प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी काम कर रही थी। कारण कि कमेटी ने प्रस्ताव पास कर दिया था कि कार्यकारिणी

1- The Ramgarh : Adress : 1940

2- Jawahar Lal Nehru : The Discovery of India : 137-139

3- सतीशचन्द्र माइकोप : बुद्धिमान नेताजी सुमाष : 93-94

समिति का अन्तिम निर्णय प्राप्त होने तक अध्यक्ष का पद खाली रहेगा। अतः वह सुभाष बोस के सहयोग से काम चला रही थी। अंग्रेज कार्यकारिणी समिति ने प्रादेशिक कमेटी को प्रस्ताव वापिस लेने का आदेश दिया। साथ ही बंगाल प्रदेश की कांग्रेस कमेटी को निलंम्बित करके सारे अधिकार तदर्थ कमेटी को सौपें दिये। इसका संचालन मौलाना अबुलकलाम आजाद के हाथों में था।[1]

कांग्रेस के इस घटिया व्यवहार से फॉरवर्ड ब्लाक' की सक्रियता मे कोई प्रतिरोध नही हुआ। गर्वनर जनरल के विशेष अध्यादेश के अधीन सार्वजनिक सभाओं पर पाबन्दी थी। 31 जनवरी 1940 को सुभाष बोस ने अध्यादेश-भंग के निमित्त कलकत्ता के श्रद्धानन्द पार्क में सभा बुलायी। सरकार ने इसकी उपेक्षा कर दी। जनता लापरवाह हो गयी। रामगढ़ में गांधी पर लगाये अभियोग तथा ब्रिटिश सरकार को अन्तिम चेतावनी पर वक्तव्य , 'फारवर्ड ब्लाक' के कार्य नियोजन में मील का पत्थर साबित हुए। उसके बाद ब्लाक स्वनिर्भर यानि स्वतन्त्र हो गया। दुर्भाग्य से बामपंथी 'समेकन कमेटी' के सदस्यों में फूट पड़ने लगी उनके रास्ते अलग होने लगे सुधारवादी लोकतंत्रात्मक दल पहले ही अलग हो चुका था। उसके बाद कांग्रेस समाजवादी दल और राष्ट्रीय फ्रंट (साम्यवादी दल) तो ब्लॉक के शत्रु ही बन गये।[2]

युद्ध में भारत को जबरदस्ती घसीटने के मसले पर रामगढ़ कॉन्फ्रेन्स ने 6 अप्रैल को सारे देश में सत्याग्रह आन्दोलन शुरू करने का फैसला किया। 25 मई 1940 को ढाका में बंगाल प्रादेशिक कॉन्फ्रेन्स का विशेष अधिवेशन हुआ। विशेष अध्यादेश की पाबंदी के बाबजूद सार्वजनिक सभा में जनता भारी संख्या में उपस्थित थी। इस कॉन्फ्रेन्स में उन सब ब्रिटिश स्मारकों को गिराने का प्रस्ताव पास हुआ था। जिनका अस्तित्व राष्ट्रीय चेतना के लिये घातक समझा गया। सरकार ने अबिलम्ब 'फारवर्ड-ब्लाक' के सब नेताओं तथा कार्यकारिणी के नौ सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया। बोस आजाद रहे उन्होने जून 1940 को नागपुर में 'फारवर्ड ब्लाक' की दूसरी कॉन्फ्रेस बुलायी और प्रस्ताव पेश किया कि फारवर्ड ब्लाक अपने लक्ष्य के अनुसार भारतीय जनता के सहयोग से राजनीतिक शक्ति को यथाशीघ्र पुष्ट करे तथा भारत की राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था को समाजवादी भित्ति पर पुर्नगठित करें।[3]

1— आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक ; पृष्ठ 106

2— सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगां—भाग 2, पृ0 95—96

3- A Beacon Across Asia : 97.

नागपुर में फारवर्ड ब्लाक' का नया नारा था ---"भारत वासियों को सब अधिकार अभी और इसी वक्त।"[1]

जून 1940 विश्वयुद्ध के लिये बड़ा संकट पूर्ण मास था। हिटलर बैलजियम पर विजय प्राप्त करता हुआ पैरिस तक पहुंच गया था। 16 जून को मुसोलिनी युद्ध में शामिल हो गया बोस को ब्रिटिश की पराजय का पूरा विश्वास था। (चर्चिल के नेतृत्व में यह मिथ्या हो गया) बोस कलकत्ता लौटने से पहले गांधी जी से सेवा ग्राम मिलने पहुचे और अपील की कि इस सुनहरे अवसर का लाभ उठाकर स्वतंत्रता आन्दोलन का नेतृत्व संभाल ले किन्तु गांधी ने तर्क दिया कि 'इग्लैण्ड के हारने या जीतने से क्या अन्तर पड़ता है। वह कमजोर तो पड़ ही जायेगा। उसमें इतनी शक्ति ही नही रहेगी कि देश की प्रशासन बागडोर सभाले रहे भारतीयों के नगण्य प्रयास से ही देश को आजादी देने के अलावा उसके पास कोई विकल्प नही रह जायेगा।"[2]

उन्होने राजनीतिक और नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में आन्दोलन आरंम्भ करने से इंकार कर दिया इस पर बोस ने गांधी जी से स्वयं आन्दोलन शुरू करने की अनुज्ञा और आर्शीवाद चाहा। गाधी जी ने उनके इस आग्रह को राजनीतिक दृष्टि से सर्वथा बेमौके तथा नैतिक विचार से अन्यायपूर्ण संकेतित करते हुए कहा 'यदि तुम्हारा अन्तःकरण गबाही देता है कि आक्रमण का यह सबसे अच्छा अवसर है तो आगे बढ़ो और यथाशक्ति कर डालो। यदि तुम सफल हुये तो बधाई देने वाल सबसे पहला व्यक्ति मैं होउगा।"[3] गांधी और सुभाष की यह अंतिम भेंट सिद्ध हुयी।

बंगाल के अंतिम स्वतंत्र शासक सिराजुद्दौला के सम्मान में 3 जुलाई 1940 को सिराजुद्दौला दिवस मनाने का फैसला हुआ उस दिन हालवेल स्मारक तोड़कर अभियान शुरू होना था, यद्यपि बंगाल के मुख्यमंत्री ने घोषणा की थी कि हालवेल स्मारक भूमिसाथ करना सरकार के विचाराधीन भी है सुभाष बोस को इस घोषणा में ईमानदारी नजर नही आ रही थी। अतः निश्चय हुआ कि 3 जुलाई को वे बालटियरों के एक जत्थे को साथ ले जाकर स्मारक खण्डित करेगे। किन्तु 2 जुलाई को भारत सुरक्षा अधिनियम की धारा 129 के आधीन सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया।[4] यह बोस की ग्यारहवीं गिरफ्तारी थी।

1- The Nagpur conference : June 1940
2- सुभाष रचनावली- III
3- A Beacon Across Asia : 98
4- आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 108

कारावास के दौरान बोस को केन्द्रीय विधान मण्डल का सदस्य चुन लिया गया था। और सरकार ने उनकी गिरफ्तारी धारा 129 से बदलकर धारा 26 के तहत कर दी थी-----तदनुसार आजीवन कारा-दण्ड के स्थान पर अस्थायी कैद ! 'भारत सुरक्षा अधिनियम की धारा 38 के अधीन बोस को फरवरी 1940 अप्रैल 1940 तथा 'फारवर्ड ब्लाक' के एक लेख के लिये गिरफ्तार किया गया। पत्रिका के पांच सौ रूपये जप्त कर लिये गये थे। और दो हजार की राशि जुर्माने के तौर पर भरनी पड़ी थी।[1]

ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के सदस्य विधान सभा के अधिवेशन के दौरान गिरफ्तारी या कारावास से मुक्त कर दिये जाते थे। यह बोस को विदित था। उन्होने बर्मी-विधान-सभा के किसी दण्डित कैदी का हवाला देते हुए विधान मण्डल में उपस्थित रहने की मांग की थी। भारत सरकार ने मांग रदद् कर दी। बोस किसी अदालती कार्यवाही के बिना कारा-रूद्ध कर दिये गये। सरकार ने अपने मूल आदेश में, बोस के विरूद्ध, धारा 38 भी जोड़ दिया था। आरोप था कि उन्होने कुछ महीने पूर्व आपत्तिजनक भाषण दिये थे। अलग-अलग दफाओं के अधीन दो मैजिस्ट्रेटो की अदालत में केस दायर थे। 'भारत-सुरक्षा-अधिनियम' की एक दफा के अन्तर्गत उन्हे आजीवन कारादण्ड दिया गया था। दूसरी दफा के अनुसार भी नियम तो वही था किन्तु अदावते अलग थीं। एक केस में जब उनकी जमानत मंजूर हुई तो मैजिस्ट्रेट ने स्पष्ट किया कि जमानत पर रिहा करने से कोई लाभ नहीं क्योकि धारा 26 के अर्न्तगत भी मुकदमा चल रहा है। यानी कानूनी न्याय मजाक की हदें पार कर गया था। सरकार के इस वैर-भाव तथा मनमानी गिरफ्तारी की देश भर में निन्दा और तिरस्कार किया गया। किन्तु कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति अथवा गांधी जी ने उस सम्बन्ध में एक शब्द भी न कहा।[2] तर्क था कि बोस ने कमेटी से अध्यादेश-भंग करने की अनुमति नहीं ली थी।

कलकत्ता प्रेसिडेन्सी जेल में बोस का मानसिक तनाव बढ़ने लगा। ब्रिटिश सरकार और तथाकथित 'जनप्रिय' बंगाल मंत्रालय के विरूद्ध उनका मन पहले ही कड़वा हो चुका था, अब कांग्रेस हाईकमाण्ड के घटिया व्यवहार से और भी तृस्कृत हो उठा। 31 अक्टूबर को उन्होने अपने भाई शरतचन्द्र को लिखा, 'कांग्रेस राजनीति के बारे में जितना सोचता

1- The stateman- 1940

2- एम0पी0 कमल, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस (भारत के वीर सपूत) पृ0 49-50

हूं यकीन उतना ही बढ़ता है कि भविष्य में हमें अपनी अधिक कार्य-शक्ति और समय हाईकमाण्ड से संघर्ष में लगानी चाहिए। स्वराज्य प्राप्ति के बाद यदि अधिकार ऐसे नीच, प्रतिकारी और अविवेकी लोगो के हाथ में चले गये तो देश का क्या होगा ?''[1]

बोस का, भारत की समस्या को लेकर, चिन्ताग्रस्त होना सहज स्वाभाविक था क्योंकि उन्हे जेल से शीघ्र मुक्त होने की सम्भावना नही दिखाई पड़ रही थी। कम से कम युद्ध समाप्ति से पूर्व तो आशा ही नहीं थी जा कसती थीं। वस इतना आश्वासन था कि 'फारवर्ड ब्लाक' अपना काम बड़ी मुस्तैदी से चला रहा था।[2] कुछ प्रदेशों में काग्रेसी भी 'निष्क्रिय प्रतिरोध' पर उतारू हो गये थे। इससे गांधीवादी नेता विचलित हो उठे थे। इनमें से कुछ ने गांधी पर आन्दोलन प्रारम्भ करने के लिए दबाब भी डाला कि अन्यथा वे देश पर अपना प्रभाव और सम्मान खो बैठेगे। कुछ ऐसे भी थे जो गांधी के आदेश की प्रतीक्षा किये बिना संघर्ष की तरफ कदम बढ़ा रहे थे।

अन्त में गांधी जी बाध्य हो गये। 15 सितम्बर को कांग्रेस ने सरकार को सहयोग देने का प्रस्ताव वापिस ले लिया और गांधी जी से कांग्रेस का नेतृत्व संभालने का अनुरोध किया। नवम्बर 1940 में गांधी द्वारा आन्दोलन शुरू हो गया।[3] थोड़े अरसे बाद ही आठो प्रान्तों के कांग्रेसी मंत्री, अन्य अनेक प्रमुख नेताओं सहित कैद कर लिये गये।1940-1941 का आन्दोलन गांधी ने 1930-1932 वाले आन्दोलन की तरह उग्रता एवं उत्साहपूर्वक नहीं चलाया यद्यपि, बोस के शब्दों में, देश पहले भी क्रान्ति के लिए अधिक पुष्ट एवं परिपक्व था।''[4] स्पष्ट था कि गांधी समझौते का मार्ग अभी भी खुला रखना चाहते थे। जो भी हो, आन्दोलन प्रारम्भ होने से 'फारवर्ड ब्लाक' बहुत प्रसन्न था।[5]

'फारवर्ड ब्लाक' के प्रचार कार्य ने कांग्रेस और गांधी को 1927 तथा 1938 वाली संघर्ष-नीति पर लौटने को बाध्य कर दिया था।[6] बोस के अनुसार 'ब्लाक' ने कांग्रेस के बौद्धिक तथा आदर्शमूलक दृष्टिकोण मे हलचल पैदा कर दी थी। युद्ध कालीन संकट तथा राष्ट्रीय संघर्ष के महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर 'फारवर्ड ब्लाक' 'चौकीदार' की तरह तैनात रहा था। काग्रेस और देश के हर आदमी या पार्टी को प्रत्यावर्तन से रोकता रहा। उन्हें सावधान करता रहा। 'फारवर्ड-ब्लाक' का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यही था।''[7]

1- A Beacon Across Asia : 100
2- Subhas Chandra Bose; The Indian Struggle : 1920-42 page 344
3- Reva Chatterjee, Netaji Subhas Bose (Bengal. Revolution and Independence) :77
4- Subhas Chandra Bose : The Indian Struggle : 1920-42 page 344
5- Ibid : 345
6- Bose, Fundemental Questions of Indian Revolution : 60
7- Subhas Chandra Bose : The Indian Struggle : 1920-42 : 345

हूं यकीन उतना ही बढ़ता है कि भविष्य में हमें अपनी अधिक कार्य-शक्ति और समय हाईकमाण्ड से संघर्ष में लगानी चाहिए। स्वराज्य प्राप्ति के बाद यदि अधिकार ऐसे नीच, प्रतिकारी और अविवेकी लोगो के हाथ में चले गये तो देश का क्या होगा ?''[1]

बोस का, भारत की समस्या को लेकर, चिन्ताग्रस्त होना सहज स्वाभाविक था क्योंकि उन्हे जेल से शीघ्र मुक्त होने की सम्भावना नही दिखाई पड़ रही थी। कम से कम युद्ध समाप्ति से पूर्व तो आशा ही नहीं थी जा कसती थीं। वस इतना आश्वासन था कि 'फारवर्ड ब्लाक' अपना काम बड़ी मुस्तैदी से चला रहा था।[2] कुछ प्रदेशों में काग्रेसी भी 'निष्क्रिय प्रतिरोध' पर उतारू हो गये थे। इससे गांधीवादी नेता विचलित हो उठे थे। इनमें से कुछ ने गांधी पर आन्दोलन प्रारम्भ करने के लिए दबाब भी डाला कि अन्यथा वे देश पर अपना प्रभाव और सम्मान खो बैठेगे। कुछ ऐसे भी थे जो गांधी के आदेश की प्रतीक्षा किये बिना संघर्ष की तरफ कदम बढ़ा रहे थे।

अन्त में गांधी जी बाध्य हो गये। 15 सितम्बर को कांग्रेस ने सरकार को सहयोग देने का प्रस्ताव वापिस ले लिया और गांधी जी से कांग्रेस का नेतृत्व संभालने का अनुरोध किया। नवम्बर 1940 में गांधी द्वारा आन्दोलन शुरू हो गया।[3] थोड़े अरसे बाद ही आठो प्रान्तों के कांग्रेसी मंत्री, अन्य अनेक प्रमुख नेताओं सहित कैद कर लिये गये।1940-1941 का आन्दोलन गांधी ने 1930-1932 वाले आन्दोलन की तरह उग्रता एवं उत्साहपूर्वक नहीं चलाया यद्यपि, बोस के शब्दों में, देश पहले भी क्रान्ति के लिए अधिक पुष्ट एवं परिपक्व था।''[4] स्पष्ट था कि गांधी समझौते का मार्ग अभी भी खुला रखना चाहते थे। जो भी हो, आन्दोलन प्रारम्भ होने से 'फारवर्ड ब्लाक' बहुत प्रसन्न था।[5]

'फारवर्ड ब्लाक' के प्रचार कार्य ने कांग्रेस और गांधी को 1927 तथा 1938 वाली संघर्ष-नीति पर लौटने को बाध्य कर दिया था।[6] बोस के अनुसार 'ब्लाक' ने कांग्रेस के बौद्धिक तथा आदर्शमूलक दृष्टिकोण मे हलचल पैदा कर दी थी। युद्ध कालीन संकट तथा राष्ट्रीय संघर्ष के महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर 'फारवर्ड ब्लाक' 'चौकीदार' की तरह तैनात रहा था। काग्रेस और देश के हर आदमी या पार्टी को प्रत्यावर्तन से रोकता रहा। उन्हें सावधान करता रहा। 'फारवर्ड-ब्लाक' का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यही था।''[7]

1- A Beacon Across Asia : 100
2- Subhas Chandra Bose; The Indian Struggle : 1920-42 page 344
3- Reva Chatterjee, Netaji Subhas Bose (Bengal. Revolution and Independence) :77
4- Subhas Chandra Bose : The Indian Struggle : 1920-42 page 344
5- Ibid : 345
6- Bose, Fundemental Questions of Indian Revolution : 60
7- Subhas Chandra Bose : The Indian Struggle : 1920-42 : 345

सुभाष बोस ने 30 अक्टूबर 1940 को कलकत्ता प्रेसिडेन्सी के जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट द्वारा बंगाल सरकार के मुख्य मंत्री को पत्र द्वारा शिकायत भेजी कि भारत सुरक्षा अधिनियम की जिस धारा के अधीन अदालत अभी तक फैसला नहीं कर पायी है, इन्हे चार मास से बन्दीगृह में क्यों डाला हुआ है। इसके अतिरिक्त दो मास वे 'विचाराधीन' कारारूद्ध भी है। 'विचाराधीन केस पर मैजिस्ट्रेट ने जमानत स्वीकार कर ली थी किन्तु सरकारी वकील ने शायद सरकारी आदेश के कारण आपत्ति उठा दी। जमानत नामंजूर हो गयी। दूसरे अर्थो में कानूनी मामलों में भी सरकार हस्तक्षेप कर रही है।''[1]

बोस ने कहा था, ''मुझे अभियुक्त बनाकर मामला चलाते समय इस प्रकार मुझे कारागार में बन्द रखना अंसगत, अन्याय एवं अवैध है। डिफेन्स ऑस इण्डिया रूल्स के उल्लंघन के आरोप पर मुझे एक बार जबरदस्ती अदालत में उपस्थित किया जा चुका है। तब कानून को अपने अनुसार चलने देना चाहिए। एक ही डिफेन्स ऑफ इण्डिया रूल्स के अनुसार मुझे किस प्रकार फिर से बन्द रखा जा सकता है। मेरे स्वास्थ्य की वर्तमान दशा में मुझे निरन्तर बन्द रखना सरकार की प्रतिहिंसामूलक नीति का परिचायक है एवं ये मेरे लिए सम्पूर्णतया अवोध्य है।[2]

उसी तारीख का दूसरा पत्र जेल-अधिकारी के नाम था जिसमें उन्होने अविलम्ब फैसले का अनुरोध किया अन्यथा वे आमरण अनशन करेगे। उन्होने लिखा, ''मुझमें यदि कुछ मूल्यवान नहीं है तो मेरी मृत्यु से मेरा देश था मानवता क्षतिग्रस्त नहीं होगी। इसके विपरीत अगर ईश्वर चाहे तो वे लोग उच्चतर नैतिक स्तर पर उन्नीत (विकसित) हो सकते है क्योंकि आखिरकार दूसरो का जीवन न लेकर अपने जीवन का स्वेच्छापूर्ण विसर्जन ही किसी के लिए सर्वोच्च आत्म त्याग है..............मैं फिर से कहता हूं कि काली पूजा के पवित्र दिन में लिखित इस पत्र को मेरा चरम पत्र के रूप में न गिना जाए।''[3]

उन्होने 14 नवम्बर 1940 को जेलर को एक और पत्र में संकेत दिया कि समर्थक वृन्द का दाबा है कि बंगाल सरकार 'जन-प्रिय' मंत्री द्वारा परिचालित है.......डिफेन्स ऑफ इण्डिया रूल्स् भारत प्रतिरक्षा के लिए है अथवा इस प्रकार के अन्यायपूर्ण एवं अवैध आचरण की प्रतिरक्षा के लिए बनाया गया है...............मैं 30 अक्टूबर को लिख चुका हूं कि बहुत

1- Subhas Chandra Bose, Letter by presidency Jail, 30.10.1040

2– सुभाष रचनावली VI : 40-41

3– वही, पृष्ठ 43

जल्द अनशन प्राप्त करूंगा। इस सम्बन्ध में तिथि की सूचना यथानियम दी जायेगी....... ....।[1] 26 नवम्बर को बंगाल गर्वनर, मुख्यमंत्री तथा मंत्री मण्डल के सदस्यों को विस्तृत पत्र में बोस ने सावधान किया कि उनका अनशन बरबस तोडने का यत्न न किया जाय। उन्हे शान्तिपूर्वक मृत्यु-वरण करने दिया जाय। यह भी कहा गया कि अनशन की अवधि मे वे केवल नमक का पानी पियेंगे, आवश्कता पड़ने पर उसे भी छोड़ा जा सकता है वे कारागार में अनिश्चित अवधि तक निष्क्रिय पड़े रहना अनुचित समझते है। विशेषकर जब ब्रिटेन जीवन और मृत्यु से संघर्ष कर रहा हो और अवसर भारत के द्वार पर दस्तक दे रहा हो। क्या उसका लाभ नहीं उठाना चाहिए ? जेल की चहरदीवारी में समाधिस्थ होने की अपेक्षा अवसर का सदुपयोग नही करना चाहिए ? युद्ध को लेकर नेहरू तथा गांधी के निष्क्रिय आदर्शवादी व्यवहार ने उन्हे उदासीन कर दिया था।[2] वे जेल की सलाखे तोड़कर बाहर निकलने को कटिबद्ध थे।?

जेल से निकलकर बोस ने सबसे पहले विनम्र किन्तु तिरस्कारपूर्ण, पत्र गांधी जी को भेजा गांधी जी ने बोस को क्षमा-याचना करने को कहा था अन्यथा अनुशासनिक प्रतिबन्ध नहीं हटाया जा सकता था। उन्होने पत्र में लिखा, 'मैने स्कूल में स्विट्जरलैण्ड के बहादुर विलियम टैल की कविता पढ़ी थी-

'My Knees shall bend, he calmly said,

To God and God alone;

My life is the Austrian's Land,

My conscience is my own."

मुझे नही लगता कि मैने अपने राजनीतिक जीवन में कोई गलती की है।[3] वे बंगाल-कांग्रेस-कमेटी के कार्य व्यवहार पर प्रहार करने से भी नहीं चूके। उन दिनों मौलाना आजाद प्रादेशिक सभापति थे। इन्होने लिखा, "मुझे अन्तिम मुगल बादशाह का स्मरण याद आ गया जो राजकीय शानो शौकत से घिरे बैठे रहे। यह भी नहीं देखा कि उनके अपने पांव के नीचे की धरती खिसक रही है। उन्हें यह भी अहसास न हुआ कि साम्राज्य उनके हाथो से निकल चुका है। कार्यकारिणी-समिति ने अपने सारे अधिकार महात्मा गांधी को

1- सुभाष रचनावली- VI : 43 (Presidency Jail)

2- Subhas Bose, The Indian Struggle (1920-42), Sisir K.Bose and Sujate Bose.

3- N.G.Jog : An Alternative Leadership : A Beacon Across Asia : 101.

सौंप द्रिये है। कमेटी के अधिकांश सदस्य जेल में है मौलाना आजाद के हाथ में कोई अधिकार शेष नहीं है। फिर भी वे महान फ्रांसीसी सम्राट की तरह यह सोचे बैठे है कि मैं ही राष्ट्र हूं।' पर आज यदि कांग्रेस की तरफ से किसी व्यक्ति को कुछ कहने का अधिकार है तो वे गांधी है...............मौलाना आजाद नहीं।''[1]

बोस ने एक बार फिर गांधी से आन्दोलन प्रारम्भ करने की निरर्थक अपील की। उत्तर कोई नही मिला। बी0 भट्टाभि सीतारमैया ने संकेत दिया है कि बोस स्वतन्त्रता प्राप्ति की पद्धति से गांधी जी से सहमत नही थे जबकि गांधी जी का दृष्टिकोण कांग्रेस का दृष्टिकोण बन चुका था।[2] सुभाष बोस के विरूद्ध मुकदमों की कार्यवाही शुरू हो चुकी थी। बोस के वकील ने अदालत में बोस की बीमारी के कारण केस स्थगित करने की अपील की। अदालत ने पूछ कि यदि वे इतने बीमार है तो इतने लोगो से कैसे मुलाकात करते है। वकील ने कहा''सर! इंटरव्यू मना कर दिया जाय तो उनका स्वास्थय कैसे सुधरेगा ! मेल–मुलाकात उनके अस्तित्व की जीवन शक्ति है। विचारों के आदान–प्रदान से वंचित करने से बड़ी सजा राजनीतिज्ञ के लिए कोई नहीं।''[3] केस स्थगित कर दिया गया।

बम्बई के प्रथम अधिवेशन की पूर्ण संध्या को बोस ने 'फारवर्ड–ब्लाक' के लक्ष्य उद्देश्य पर प्रकाश डाला था। 1 जनवरी,1941 को बोस ने फारवर्ड–ब्लाक के मुख्य सिद्धान्तो का सार इस प्रकार व्यक्त किया।

★ पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा उसको प्राप्त करने के लिए अविचल साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष।

★ एक पूर्णतः आधुनिक ढंग का सामाजवादी राज्य।

★ देश के आर्थिक पुनरूत्थान के लिए बैज्ञानिक ढंग से बड़े पैमाने पर उत्पादन।

★ उत्पादन तथा वितरण देनो का सामाजिक स्वामित्व तथा तियन्त्रण।

★ व्यक्ति को धार्मिक पूजा–पाठ में स्वतंत्रता।

★ हर व्यक्ति के लिए समान अधिकार।

★ भारतीय समाज के हर वर्ग को भाषा विषयक तथा सांस्कृतिक स्वतंत्रता।

---

(1) सुभाष रचनावली– VI : 54

(2) B. Pattabhi Sitaramayya : The History of the Congress - 779

(3) आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 113

नवीन स्वतंत्र भारत के निर्माण में समानता तथा सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों को लागू करना। उन्हें उस समय उत्साह बर्धक सहयोग मिला था उन्होने अपील की थी कि देश के सब बामपंथी दल अपना पृथक अस्तित्व मिटाकर पार्टी में शामिल हो जाये। किन्तु इसके लिये कोई पार्टी तैयार नही हुयी। कारण कि विभिन्न बामपंथी दलो में आपसी वैर-भाव एवं अविश्वास इतना फैल चुका था कि किसी सदस्य को व्यक्तिगत तौर पर भी नयी पार्टी का सदस्य नही बनने दिया! फलतः 'फारवर्ड ब्लाक' सुगठित पार्टी की जगह खुला मंच बनकर रह गया।[1] बोस ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया था। फारवर्ड ब्लाक के समब्द्ध दलों के अलावा यद्यपि कांग्रेस-समाजवादी पार्टी, एम0एन0 रॉय की रॉडिकल डैमोक्रैटिक पार्टी तथा साम्यवादी या नेशनल फ्रन्ट, कई दल क्रियाशील रहे ! सब दलो की प्रतिष्ठा एवं स्तर समान रहा। परन्तु कोई दल स्पष्ट रूप से सहयोग देने के लिए तैयार नहीं था। इसलिये 'फारवर्ड ब्लाक' सर्व-सम्मति प्राप्त करने के बाद कोई काम कर सकता था। इन परिस्थितियों में जब मार्च 1940 में रामगढ़ में अखिल भारतीय समझौता विरोधी कान्फ्रेसं आयोजित किया गया तब रॉयिस्ट, कांग्रेस-समाजवादी और नेशनल-फ्रंटर्स, कान्फेन्स का बॉयकाट करके गांधीवादियों से जा मिले। ऐसे में 'फारवर्ड ब्लाक' के संस्थापक सुभाष बोस को जबरदस्त धक्का पहुंचा। उनकी धारणा थी कि इन दलों को खतरा था कि वे कांग्रेस से निर्वासित कर दिये जायेगे। कांग्रेस से निकाले जाने पर उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।।[2]

बोस की दृष्टि में किसी भी दल का आदर्श संगठन बहुदलीय प्रतिनिधित्व होना था। किन्तु उससे जो खतरा पैदा हो सकता है 'फारवर्ड ब्लाक' उसका शिकार हो गया। सीतारमैया के अनुसार, 'फारवर्ड ब्लाक' में केवल समाजवादी या केवल साम्यवादी या किसान रॉयिस्ट ही नही थे.........किसी एक वर्ग की दूसरे मित्र वर्ग या निकटवर्ती वर्ग तक के साथ सहानुभूति नहीं थी। हर दल अलग खड़ा था। कांग्रेस कार्यकारिणी का मुकाबला करने या आक्रमण करने के वक्त अवश्य संयुक्त मोर्चा बांध लिया जाता था वरना थे वे आकारहीन।''[3] वस्तुतः गांधीवादी तथा अन्य कांग्रेसियों को ब्लाक के गठन के प्रथम चरण से ही दुश्मनी हो गयी थी। 'फारवर्ड ब्लाक' को एक तरफ गांधीवादियों का मुकाबला करना पड़ता और दूसरी तरफ ब्रिटिश सरकार का। उसकी राजनीतिक विचारधारा और क्रिया-पद्धति क्योंकि अधिक मारात्मक

(1) Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Sisirk Bose and Sujata Bose
(2) Selected speeches of Subhas Chandra Bose : 121
(3) B. Pattabhi Sitaramayya : The History of the Congress - 122

थी इसलिए अत्याचार और उत्पीड़न भी अधिक सहना पड़ा।[1]

एक कठनाई और भी थी। गांधी-पंथी कांग्रेस एक सुगठित संस्था थी। उसका ऐतिहासिक अस्तित्वलगभग आधी शताब्दी से कुछ अधिक पुराना था। उत्थान-पतन, आपसी झगड़ों तथा मतभेद-संघर्ष की आग में तप कर वह कुन्दन हो चुकी थी। वह गांधी जैसे दृढ़निश्चयी नेता की छत्र छाया में पनप रही थी। उधर 'फारवर्ड ब्लाक' ने, बोस के शब्दों में ऐतिहासिक अनिवार्यता के कारण जन्म लिया था।' वह अभी शैशवावस्था में था कि उसके जन्मदाता एवं संस्थापक सुभाष बोस कारारूद्ध कर दिये गये। वे इस वामपंथी दल को कांग्रेस का अंग रखना चाहते थे जिससे कांग्रेस की भावी प्रगति अप्रतिरोध रह सके।[2]

कालान्तर में उन्होने कहा भी था कि 'ब्लाक' ऐतिहासिक आवश्यकता का प्रतिफल है इसलिए यह नष्ट नही होगा। यदि यह भारत के उद्देश्य, मानवता.........मानव प्रगित मे सहायक हो सका तो अवश्य जीवित रहेगा। इसका विकास होगा। विश्व की कोई शक्ति इसे नष्ट नही कर सकेगी।[3] इसलिए बढ़ो....................आगे बढ़ते रहो मेरे देशवायियों ।''[4]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सुभाष चंद्र बोस ने उन शक्तियों को प्रज्जवलित करने के उद्देश्य से 'फारवर्ड ब्लाक' की स्थापना की जो भारत में ब्रिटिश शासन का विरोध करने तथा हर उपाय से तत्काल अन्त करने के सिद्धान्त को स्वीकार करती थी। वे यह नही चाहते थे कि उनका दल अहिंसा की तत्व-शास्त्रीय मीमांसा के झमेले में पड़े। उनका उद्देश्य था कि वह केवल भारतीय स्वतंत्रता को तुरन्त प्राप्त करने के काम में संलग्न रहे।

---

(1) Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-334

(2) Ibid: 334

(3) Ibid: 413

(4) Ibid: Forward Block - Its Justification" :414

३- सुभाष बोस के राजनैतिक, समाजवादी, नैतिक एवं आर्थिक विचार -राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण पर

मेरे मन में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है कि हमारी मुख्य राष्ट्रीय समस्यायें जो गरीबी, अशिक्षा और बीमारी के उन्मूलन से एवं वैज्ञानिक उत्पादन और वितरण से संबंधित है, समाजवादी आधार पर प्रभावशाली ढंग से सुलझाई जा सकती है।

-हरिपुरा कांग्रेस में अध्यक्षीय भाषण (19-2-38)

सुभाष चन्द्र बोस के जीवन तथा दर्शन के क्षेत्र में जो भी परिवर्तन हुआ वह बहुत रोचकपूर्ण है। सुभाष चन्द्र बोस ने आध्यात्मिक आदर्शवादी के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया और आखिरी में राजनीतिक यथार्थवादी बन गये।[1]

सुभाष बोस छात्र वर्ग को राजनीति से तटस्थ रखने के हक में बिल्कुल न थे। उनका मत था कि गुलाम देश के पास राजनीति के अतिरिक्त और है ही क्या ! देशबन्धु चित्तरंजनदास के विचारों को दोहराते हुए उन्होने कहा था, "गुलाम देश में तुम किसी भी समस्या को उठा लो, उसका विश्लेषण करोगे तो अतल में राजनीतिक समस्या मिलेगी। जीवन तो समग्रता में है अतः शिक्षा और राजनीति को अलग नहीं कर सकते।

मानव जीवन को श्रेणियों में नही बांटा जा सकता...................आजाद देश भी छात्रों पर राजनीति में भाग लेने पर पाबन्दी नहीं लगाते क्योंकि छात्रों में से ही राजनीतिक चिन्तक और कुशल नीतिज्ञ उभर कर आते है...............यदि भारत में छात्र ही राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लेगे, तो हम अपने राजनीतिक कर्मी कहां से लायेगे........उन्हे कहां से प्रशिक्षण देंगे ? राजनीति में भाग लेना चरित्र निर्माण एवं पौरूष के लिए आवश्यक है। विश्वविद्यालयों को किताबी कीड़े, स्वर्णपदक लेने वाले तथा आफिस क्लर्क बनाने की नहीं बल्कि ऐसे चरित्रवान मनुष्य बनाने की कामना करनी चाहिए जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कर्मो द्वारा देश को महान बनायें।"[2]

सुभाष बोस को राजनीति तथा नैतिक प्रश्नों को मिश्रित करना पसन्द नहीं था। वे

(1) प्रयाग नारायण त्रिपाठी, नेता जी सम्पूर्ण वाङ्मय,भाग –1

(2) Selected speeches of Subhas Chandra Bose : 53

गांधीवादी राजनीतिक विचारो तथा कार्यपद्धति के आलोचक थे, क्योंकि वे समझते थे कि गांधीवाद में राजनीति को उसके अपने स्तर पर समझने का प्रयत्न नही किया जाता। वे स्वयं लिखते है, "हमें सम्राट का जो देय है वह सम्राट को देना है।"(1) अभिप्राय यह कि जिस प्रकार ईसामसीह ने कहा था कि मनुष्य को ईश्वर तथा सम्राट दोनो के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए, उसी प्रकार बोस चाहते थे कि मनुष्य को अपने नैतिक और राजनीतिक दोनो ही प्रकार के दायित्वों को पूरा करना है।

इस प्रकार हम देखते है कि बोस को राजनीति के सम्बन्ध में वह नैतिक दृष्टिकोण पसन्द नहीं था जिसका सैद्धान्तिक स्तर पर प्लेटे, सिसरो और ग्रीन ने प्रतिपादन किया था और जिसका व्यवहारिक स्तर पर गोखले और गांधी ने अनुकरण किया था। वे राजनीतिक यथार्थवाद के मूल्य को समझते थे और धार्मिक तथा राजनीतिक मामलों को मिश्रित करने के पक्ष में नही थे।

यथार्थवादी होने के नाते बोस राजनीतिक सौदाकारी मे भी विश्वास करते थे। उन्होने लिखा है, राजनीतिक सौदाकारों का रहस्य यह है कि आप जितने शक्तिशाली हैं उससे अधिक शक्तिशाली जान पड़े।"(2) गांधी जी ने 1931 में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर अपनी नीति जिस नम्रता और खुले हृदय से सबके सम्मुख खोलकर रख दी थी वह बोस को पसन्द नही आयी थी। उनका विचार था कि गोलमेज सम्मेलन में गांधी जी को राजनीतिक शक्ति के स्वर में बोलना चाहिए था।

बोस ने लिखा है, 'इसके विपरीत यदि महात्माजी अधिनायक स्टालिन, ड्यूस मुसोलिनी अथवा फ्यूरर हिट्लर की भाषा में बोलते तो जॉन बुल (अंग्रेज) उनकी बात को समझता और श्रद्धा से अपना सिर झुका लेता।"(3) अतः संक्षेप में बोस राजनीतिज्ञ थे न कि नैतिकतावादी अथवा दार्शनिक। वे इस सिद्धान्त को स्वीकार करते थे कि मनुष्य को राजनीतिक परिस्थितियों की आवश्यकताओं का सामना करने के योग्य बनना चाहिए।

राष्ट्र-निर्माण के काम में भारी कष्ट सहने पड़ते हैं और त्याग करना पड़ता है। बोस ने दृढ़ता से घोषणा की थी कि उपयोगिता अथवा कार्यसाधता के आधार पर राष्ट्र निर्मित नहीं किया जा सकता। एडमण्ड वर्क तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी उपयोगिता के सिद्धान्त के अनुयायी

---

(1) Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-409

(2) Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-320

(3) Ibid: 320

थे।[1] किन्तु बोस का कहना था कि राष्ट्र के पुनर्निर्माण का वास्तविक कार्य तभी सम्पन्न हो सकता है जब लोगो में "हैम्पडन तथा क्रॉमवेल जैसा अविचल आदर्श वाद हो।"[2] बोस ने विवेकानन्द के इस कथन को दुहराया कि बिना त्याग के साक्षात्कार नहीं हो सकता। उनकी दृढ़ धारणा थी कि राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए घोरतम कष्ट उठाने पड़ेगे। बोस यह मानते थे कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए महान नैतिक तैयारियों की आवश्यकता है। इस प्रकार यद्यपि विदेशी नौकरशाही के विरूद्ध संघर्ष के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण यथार्थवादी था किन्तु वे मानते थे कि भारतीय जनता को आत्म-त्याग तथा कष्ट-सहन के बिना सफलता नहीं मिल सकती।

बोस को कोरी राजनीतिक स्वतंत्रता सन्तुष्ट नहीं कर सकती थी। इसमें सन्देह नहीं कि वे देश की राजनीतिक स्वतंत्रता की तात्कालिक आवश्यकता को स्वीकार करते थे, किन्तु यथार्थवादी होने के नाते इस बात को भली-भाति समझते थे कि जमीदारों तथा किसानों, पूर्जीपतियों तथा मजदूरों, अमीरो तथा गरीबों के आन्तरिक सामाजिक संघर्ष को स्थगित नही किया जा सकता। बोस का यह भी विचार था कि भारतीय समाज के धनी वर्ग ब्रिटिश सरकार के पक्ष में सम्मिलित हो जायेगे। उन्होने लिखा था, "इसलिए इतिहास का न्याय अनिवार्यता अपने मार्ग का अनुसरण करेगा, राजनीतिक संघर्ष तथा सामाजिक संघर्ष साथ-साथ चलाना पड़ेगा। जो दल भारत के लिये स्वतंत्रता प्राप्त करेगा वही दल जनता को सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता भी दिलायेगा।"[3]

किन्तु बोस ने समाजवादी विचारधारा का समर्थन किया। 27 मार्च 1931 को सुभाष बोस ने अध्यक्षीय मंच से कहा, "हमे सब प्रकार के सामाजिक,आर्थिक और राजनीतिक बंधनों से मुक्त होना होगा-सब तरह आजाद! मैं भारत में समाजवादी गणतंत्र चाहता हूं.. ....जब तक सुधारवादी या क्रान्तिकारी तत्वों का स्फुरण नहीं होगा, हमे स्वतंत्रता नही मिल सकेगी और क्रान्तिकारी तत्वों को तब तक जागरित नही किया जा सकेगा जब तक कि कोई नया संदेश न दे सके जो हृदय से निकलकर हृदय तक पहुचता हो।..... ....हमारे नेताओं के मस्तिष्क में प्रचुर मात्रा में अस्पष्टता तथा मानसिक प्रतिबंध है। उनके प्रोग्राम मूलभूत सिद्धान्तों पर नहीं बल्कि समायोजन पर आधारित है-मकान-मालिक और

(1) Subhas Chandra Bose- An Indian pilgrim - Pages-134.

(2) Ibid:

(3) Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - Pages-413-414

किरायेदार का समायोजन, पूंजीपति और मजदूर का समायोजन, पुरूष और महिला वर्ग में समायोजन।''[1]

उन्होने इन समस्याओं के हल के लिये कुछ कदमों का संकेत दिया, यथा किसान श्रमकों को समाजवादी आधार पर ढालना, युवा वर्ग का कठोर अनुशासित बालंटियर–सेना–संगठ्न, जाति भेद तथा सामाजिक रूढ़ियों तथा धार्मिक अंधविश्वासों का उन्मूलन, महिला वर्ग को चहरदीवारी से वाहर लाकर उनकी सस्थाओं द्वारा नये प्रोग्राम स्वीकार करना, विदेशी वस्तुओं का बॉयकॉट तथा नये विचारो, नयी भाव–व्यंजना और नये प्रोग्राम के प्रचारार्थ नव साहित्य का निर्माण ।[2]

उन्होने संदर्भ वश भगत सिंह आदि की फांसी का उल्लेख किया कि वे क्रान्ति की आत्मा के प्रतीक थे। आत्मा कभी पराजित नही होती अतः उनके द्वारा प्रज्जलित अग्नि भी कभी नही बुझेगी। अन्त में बोस ने कहा, ''यदि इस निर्धारित प्रोग्राम का अनुपालन किया जायेगा तो नेताओं में मत वैषम्य नहीं होगा। आपसी तनाव जनता को दुर्बल बनाता है और सरकार को शक्तिशाली बना सकता है। भारत देश विश्व–प्रसाद के नींव का पत्थर है। भारत आजाद होकर सारे विश्व में समाजवाद की स्थापन्ना करेगा। समय की पुकार है तैयार होकर भारत को आजाद करो जिसे मानवता सुरक्षित रह सके।''[3]

हरिपुरा कांग्रेस के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होने कहा, ''मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नही है हमारी दरिद्रता, निरक्षरता और बीमारी के उन्मूलन तथा वैज्ञानिक उत्पादन और वितरण से सम्बन्धित समस्याओं का प्रभावकारी समाधान समाजवादी मार्ग पर चलकर ही प्राप्त किया जा सकता है।[4] उनका कहना था कि दरिद्रता तथा निक्षरता का उन्नमूलन राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण के मुख्य काम है।

उन्होंने जमीदारी का उन्मूलन तथा किसानों की ऋणग्रस्तता का अन्त करने तथा देहाती क्षेत्रों में सस्ते ऋण की व्यवस्था करने का समर्थन किया। उन्हे सहकारी आन्दोलन में विश्वास था। वे कृषि में वैज्ञानिक प्रणालियो को अपनाने के पक्ष में भी थे। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि राजयकीय स्वामित्व तथा राजयकीय नियन्त्रण के अन्तर्गत औधौगिक विकास करने के लिए व्यापक योजना तैयार की जाय। हरिपुरा के अध्यक्षीय भाषण में उन्होने समाजवाद में

(1) Selected speeches of Subhas Chandra Bose : 56
(2) आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 62
(3) Hari Har Das : Subhas Chandra Bose and Indian National Movement : 345
(4) The Indian Annual Register, 1938 Page 340 पर उदघृत

अपनी आस्था स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दी थी।[1]

उन्होंने कहा, 'राज्य को योजना आयोग की सलाह से खेती तथा उधोग की व्यवस्था के उत्पादन तथा वितरण दोनो ही क्षेत्रों में धीरे-धीरे समाजीकरण करने की व्यापक योजना अपनानी पड़ेगी।[2] उन्होंने बतलाया की यद्यपि समाजवाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए तत्कालिक समस्या नही है फिर भी समाजवादी प्रचार आवश्यक है जिससे स्वतंत्रता मिलने पर देश समाजवाद के लिए तैयार हो सके।[3] बोस मजदूर वर्ग के समर्थक थे।[4] यह सत्य है कि बोस ने अपने आर्थिक विचारों की उच्च सैद्धान्तिक स्तर पर कभी व्याख्या नहीं की। किन्तु इसमे सन्देह नहीं कि वे श्रिमिक वर्गो की आकाक्षाओं तथा हितो को अधिकाधिक मान्यता देने के पक्ष में थे।

सुभाष चन्द्र बोस भारत को एक शक्तिशाली रूप में देखना चाहते थे तथा अंग्रेजी सरकार से मुक्ति दिलाना उनका उद्देश्य था। भारतीयों के बीच में आपसी भेद-भाव, ऊँच-नीच तथा जाति-पांति आदि को दूर करके वे कांग्रेस की ध्वजा के अन्तर्गत सब दलो को केन्द्रित करने .के आकांक्षी थे। बोस समाजवादी, धर्मनिपेक्ष तथा व्यवहार वादी व्यक्ति थे। सुभाषचन्द्र बोस ने देश की वृद्धिशील आवादी के बारे में कहा कि 'दरिद्रता, भुखमरी और व्याधि जिस देश की छाति में पल रहे है, उसकी आवादी बढ़ाने की हममे क्षमता नहीं है। अतः जनसंख्या को रोकना हमारा कर्तव्य होना चाहिए। ....दरिद्रता उन्मूलन के लिए जमीदारी-प्रथा की समाप्ति और भूमि व्यवस्था का आमूल संस्कार अनिवार्य है।''

.....................खेती उत्पादन में वृद्धि के लिए वैज्ञानिक प्रयोग का सहारा लेना होगा ....शिल्पोन्नयन, कुटीर उधोग, हस्तकरघा शिल्प तथा सामाजिक व्यवस्था के लिए धन की आवश्यकता होगी। अपने देश तथा अन्य देशों से इक्ट्ठा किया जा सकता है।. ....राष्ट्रीय योजना की सफलता के लिए सीमित उपकरणो वाले भारत देश के वैज्ञानिक विकास के निमित्त एक सुचिन्तित एवं क्रमवद्ध योजना जरूरी है।[5]

सुभाषचन्द्र बोस सुदृढ़ राष्ट्र-शक्ति तथा देश की अखण्ड एकता के लिए बहुभाषी तथा बहुलिपि-प्रधान भारत देश में राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रलिपि करने के पक्ष में थे।[6] सुभाष बोस ने एक और महत्वपूर्ण समस्या पर प्रकाश डाला-स्वतंत्रता-उपरान्त ग्रेट ब्रिटेन के साथ भारत

1- Bhattacharya, Buddhadeva; "Subhas Chandra Bose-The man and his vision
2- The Indian Annual Ragister, 1938 page 341
3- Ibid : 341
4- जनरल मनमोहन सिंह ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि नेताजी मार्क्सवादी क्रान्तिकारी थे। -'Netaji' Congress unmasked, ehap. 9 pages-119-38
5- आशा गुप्त, सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक, पृष्ठ-86
6- Bhattacharya, Buddhadeva; "Subhas Chandra Bose-The man and his vision.

के सम्बन्ध ! उनका कहना था कि 'ब्रिटिश शासन या सरकार से हमारी कोई दुश्मनी नहीं है। हम अपनी स्वतत्रता के लिए उनसे संघर्ष कर रहे हैं। हमें आगामी सम्बन्धों के बारे में निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता होगी। आजाद देश की तरह ब्रिटिश के साथ हम मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध क्यों नही स्थापित कर सकते।

सुभाष बोस ने दिल्ली में उद्योग मंत्रियों की बैठक में देश की आर्थिक स्थिति के सुधार पर विचार-विमर्श किया। उन्होने राष्ट्रीय योजना समिति (नैशनल प्लांनिग कमेटी) की स्थापना की। सुभाष बोस का मानना था कि कृषि उत्पादन अभिवृद्धि से भुखमरी की समस्या काफी हद तक दूर हो जायेगी। औद्योगकीकरण को बढ़ावा देने से बहुत सी जन शक्ति को इधर स्थानान्तरित करना पड़ेगा। किन्तु नयी पार्टी के समाजवादी राष्ट्रीय पुनर्गठन का आधार औद्योगिक होना चाहिए। विदेशी उद्योगो से प्रतियोगिता के लिए यह आवश्यक है। उस स्थिति में देश का रहन-सहन स्वतः उन्नत हो जाएगा।

सुभाष बोस के शब्दों में, "भारत में हम कर्मयोग चाहते हैं। कार्य के दर्शन को हम पसन्द करते है क्योंकि हमें वर्तमान में रहना है। हम विश्व से अलग-अलग अपने दरवाजों व खिड़कियों को बन्द करके नही रह सकते। जब हिन्दुस्तान अपनी आजादी पाएगा तब भारतीय अपने अस्तित्व के लिए आज के युग के दुश्मनों से मुकाबला करने के लिए जो कि नवीन हथियारों से लैंस हैं, उन्हें आर्थिक और राजनीतिक मैदान में अपने अस्तित्व को कायम रखना है क्योकि अब बैलगाड़ी का युग चला गया। स्वतंत्र भारत को अब आत्म-निर्भर होना पड़ेगा। नए-नए अस्त्रों-शस्त्रों से लैंस होना होगा और सदैव आत्म-रक्षा के लिए तैयार रहना पड़ेगा।"[1]

आधुनिकता का बड़े पैमाने पर उत्पादन और जीने का उच्चस्तरीय ढ्गा अपनी संस्कृति और रक्षा के बचाव के लिए सुभाष ने अपने विचारो का प्रतिपादन किया। उन्होने इसमे नए समाजवाद का दृष्टिकोण रखा ताकि देश में समृद्धि हो, औद्योगीकरण हो और विज्ञान की उन्नति हो। तकनीक बढ़े, वाणिज्य बढ़े और धन का न्यायोचित वितरण हो। आगे उन्होने कहा कि मैं कार्य-दर्शन चाहता हूं।[2] इस तरह पुरानी पीढ़ी और नवीन पीढ़ी के बीच तारतम्य स्थापित होगा।

1- Quoted in the Anand Bazar Patrika, (26 December 1928)

2- Reva Chatterjee, Bengal Revolition and Independence, (Netaji and the congress pages. 79-80

सुभाष चन्द्र बोस नये आदर्शो से युक्त एक नये राष्ट्र का गठन करना चाहते थे। इस सम्बन्ध में बोस के विचार थे कि, 'इसके लिए सबसे पहले राष्ट्रीय अभ्युत्थान और पतन के कारणों का अन्वेषण करना होगा। लोग यह सोच सकते है कि प्राचीन काल से जिन विभिन्न राष्ट्रों का अभ्युत्थान और पतन होता रहा है इसके पीछे विधि का कोई विध ाान नही रहा है। इस विषय में पाश्चात्य देशों से बहुत कुछ सोचा जा चुका है और कुछ वैज्ञानिकों ने इसके कारणों को ढूढ़ निकाला है, ऐसा वे मानते हैं। उनके अन्वेषण का सार मर्म यह है कि व्यक्ति-जीवन में जिस प्रकार जन्म विकास और मृत्यु का महत्व है, जैसे जीवनीशक्ति के हास से व्यक्ति मृत्यु की ओर बढ़ता है, उसी प्रकार राष्ट्र भी मृत्यु को प्राप्त होता है।[1]

जो राष्ट्र नितान्त भाग्यवान् होते है। वे मृत्यु के दरवाजे से लौटकर पुनर्जन्म प्राप्त करते हैं। कैसी अवस्था में किसी राष्ट्र के पुर्नजन्म की सम्भावना है। विभिन्न जातियों के रक्त-सम्मिश्रण के फलस्वरूप और विभिन्न संस्कृतियो के अन्तरावलम्बन की बजह से विचार-जगत में क्रान्ति आयी है। यह क्रान्ति ही किसी जाति की जागरूकता का लक्षण है। इस देश से अंग्रेजों के आने के बाद से हमारे विचार-जगत में एक भयानक आलोड़न हुआ है। यही वर्तमान के नवजागरण का सूत्रपात है। इसके बाद ही हमें हमारी अन्तदृष्टि वापस मिली, अपनी वर्तमान अवस्था का विश्लेषण करना हमने सीखा। अपनी वर्तमान अवस्था की हीनता और लांछना को अनुभव करने के साथ ही हमने गौरवमय भविष्य का स्वप्न भी देखा है। जिस भविष्य का स्वप्न हमने देखना सीखा है, वह हमारे गौरवमय अतीत से अधिक गरिमामय है। इस स्वप्न और आदर्शवाद में ही निर्माण का बीज छिपा है।[2] राष्ट्र को अगर जगाना है तो वर्तमान के प्रति तीव्र विक्षोभ उत्पन्न करना होगा और उसे एक महत् आदर्श की ओर ध्यान लगाने का अभ्यास करना होगा।

अनेक लोगों की धारणा है कि समाजवाद पाश्चात्यों की खोज है किन्तु यह विल्कुल भ्रामक है। समाजवाद प्राचीन भारत के लिए अंजाना नही था। यहां तक कि आज भी भारत के किसी-किसी प्रान्त में उसका निदर्शन मिलता है। ये सभी सिद्धान्त न प्राच्य है, न पाश्चात्य-यह विश्वमानव की सम्पत्ति है। भारत यदि आज तन-मन में समाजवाद ग्रहण करने

1— सुभाष चन्द्र बोस (हिन्दी रूपान्तर-छेदीलाल गुप्त); तरुणई के सपने-भारतीय ज्ञानपीठ-पृष्ठ 138

2— वही, 139

का संकल्प ले तो वह विदेशी संस्कार में पड़ जाएगा, यह मैं नही मानता।[1] कोई भी सिद्धान्त या वाद हम क्यों न स्वीकार करें परन्तु ऐतिहासिक क्रम-विकास और वर्तमान की प्रयोजनीयता की उपेक्षा यदि हम करेगे तो कभीं भी सार्थक और सफल कार्य नहीं कर सकेगे।

आज भारत की यह हीन अवस्था क्यों है ? सब कुछ तो मौजूद है-प्रकृति,सौन्दर्य, शारीरिक बल, शिक्षा-दीक्षा, शौर्य-वीर्य, विद्या-वुद्धि इनमें किसी का भी तो अभाव नहीं है। इन उपादानो से हम एक स्वस्थ स्वरूप की रचना कर सकते है। परन्तु प्राण-प्रतिष्ठा कैसे हो ? प्राण-प्रतिष्ठा उसी दिन होगी, जिस दिन सम्पूर्ण राष्ट्र से मुक्ति की तीव्र आकांक्षा जागरित होगी।[2] कहां है वह पुरोहित जो मृत्युसंजीवी सुधा पिलाकर मुमूर्ष राष्ट्र के अस्थिपिंजर में प्राण डाले ? जिस व्यक्ति को स्वाधीनता का स्वाद मिल चुका है, जो व्यक्ति स्वाध ीन होने और देश को स्वाधीन बनाने के लिए पागल होकर अन्य को पागल बना सकेगा। वही व्यक्ति राष्ट्रीय महायज्ञ का पुरोहित होने योग्य है।

ध्वंस अथवा निर्माण की जहां अनिवार्यता है, वहां चाहे-अनचाहे युवकों पर निर्भर करना ही होगा, उन पर आस्था रखनी ही होगी, उनके हाथों क्षमता और दायित्व सौपना ही होगा। हमारा देश हमारी जाति ध्वंस और निर्माण के मध्य से गुजर रही है। समाज या राष्ट्र की उन्नति-एक ओर व्यक्तित्व के विकास, दूसरी ओर संगठन शक्ति के ऊपर निर्भर है। अगर नये स्वाधीन भारत का हमें निर्माण करना है, तो एक ओर सही आदमी का निर्माण करना होगा एवं साथ-ही-साथ ऐसे उपाय अपनाने होगे ताकि हम विभिन्न क्षेत्रों में संगठित होकर काम करना सीखें।

भारत जिस अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में परास्त होकर अपनी स्वाधीनता खो चुका था, उसका प्रमुख कारण हमारी सामाजिक वृत्ति का अभाव था।[3] हम लोगों के समाज में कुछ समाज-संगठन-विरोधी वृत्ति घुस आयी हैं, जिसके परिणामस्वरूप हमने संगठित होकर काम करने की अपनी दक्षता और अभ्यास खो दिया था। मेरा ख्याल हैं कि स्वार्थपरता, दूसरों के प्रति उदारता और उच्छृंखलता आदि समाज-संगठन-विरोधी वृत्ति की खातिर ही हम संगठित होकर कुछ नहीं कर पाते। बिना संगठित होकर काम न कर पाने के कारण-चाहे सामाजिक

1- Reva Chatterjee, Netaji Subhas Bose, Bengal Revolution and Independence.

2- छेदीलाल गुप्त, तरूणाई के सपने – पृष्ठ 140

3- Quoted in the Anand Bazar patrika, (22 June 1929, Youth Congrence)

क्षेत्र में या व्यवसायिक क्षेत्र में, या राष्ट्रीय क्षेत्र में–हम किसी भी क्षेत्र में उन्नति नही कर पाएंगे।

प्रत्येक को राष्ट्र के आदर्श में अपने को होम करना होगा। ऐसा कर पाने पर मनुष्य के विचार तथा करनी और कथनी में एकरूपता आएगी ; उसका सम्पूर्ण जीवन एक आदर्श सूत्र में बंध जाएगा; तव वह अपने जीवन में एक नया रस, नया आनन्द नया अर्थ अनुभव करेगा, अखिल विश्व उस बिन्दु पर उसे नये प्रकाश में चमकता नजर आएगा।[1]

हममें असीम शक्ति है–नहीं है जो, वह है आत्मविश्वास और श्रद्धा। अपने ऊपर और अपने राष्ट्र के ऊपर विश्वास और श्रद्धा लौटा लाना होगा। देशवासियों को हृदय से चाहना होगा।

अपने त्याग, साधना और प्रयत्नों के बल पर हम नये स्वाधीन भारत का निर्माण करेगे। हमारी भारत माता पुनः राजेश्वरी होगी; उसके गौरव से हम पुनः गौरवान्वित होंगे। कोई भी बाधा हम नहीं मानेगे; किसी भी भय से हम भीत नही होगे। हम नूतन क सन्धान में आगे बढेगें। राष्ट्र के उद्धार का जिम्मा हम श्रद्धापूर्वक, विनय के साथ ग्रहण करेंगें। भारत को हम विश्व सभा में ससम्मान आसन दिलाएंगे।[2]

बोस का मानना था कि केवल स्वतंत्रता, स्वतःस्फूर्त कार्य, शिक्षा तथा आर्थिक विषमताओं के उन्मूलन के द्वारा ही इस देश के देशवासियों को ऐसा अवसर दिया जा सकता है कि वे अपनी पीठ सीधी कर सके। राजनीतिक मुक्ति के कार्यक्रम में उन्होने पूर्ण आर्थिक तथा सामाजिक नियोजन की मद जोड़ दी थी। अन्य नेताओं ने भी इसी मार्ग का अनुसरण किया था। किन्तु सामाजिक–आर्थिक क्रान्ति तथा क्रान्तिकारी पुर्ननिर्माण के कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने में बोस का भी महत्वपूर्ण योगदान था, और इसके लिए उन्हे श्रेय मिलना चाहिए।

1– सुभाष चन्द्र बोस (अनुवाद–छेदीलाल गुप्त); तरूणाई के सपने, पृष्ठ 143ण

2– यशोहर–खुलना युवा सम्मेलन के सभापति का अभिभाषण – 22 जून, 1929

गांधीवाद एवं बोस

गांधी कुछ अर्थो में, एक जटिल व्यक्तित्व है। गांधी के दो पक्ष हैं-गांधी एव राजनीतिक नेता के रूप में और गांधी एक दार्शनिक के रूप में। हम उनका अनुसरण एक राजनीतिक नेता की हैसियत से करते रहे हैं परन्तु हमने उनके दर्शन को स्वीकार नहीं किया है।

-टोकियों विश्वविद्यालय के छात्रों को संबोधन (नवम्बर, 1944)

गांधीजी और सुभाष। स्वाधीनता संग्राम के इतिहास के सबसे उज्जवल दो ि एक बुजुर्ग, एक युवक। एक वर्तमान, दूसरा भविष्य। कोई किसी से कम नहीं। किर देन तुच्छ नहीं। फिर भी फर्क था दोनो के विचारों में। नीति और कर्मधारा के ग के कारण बार-बार दोनों में ठन जाती।

गांधीजी असाधारण थे। खासतौर से राष्ट्रीय जन-जागरण के मामले में उनका यो आलोचना के परे था। इस जगह पर वे भारत के मुकुटविहीन सम्राट थे। पर दूसरी उतने ही उदासीन और निर्लिप्त थे। इस बीच आधुनिक विचारधारा, राजनैतिक वैज्ञा दृष्टिकोण, शिल्पकला, शिक्षा सभी कुछ बहुत आगे बढ़ चुकी है। यह जानकर भी वे थे।

इससे ठीक विपरीत थी सुभाष की विशेषता। वे हर तरह से भिज्ञ थे। पृथ्वी राजनीति, वैज्ञानिक विचारधारा को उन्होने समझ लिया था।

गांधीजी और सुभाष दोनो का लक्ष्य एक ही था-स्वाधीनता। युद्ध में गांधीजी अंग्रे की मदद करना चाहते थे और सुभाष उनका विरोध करना चाहते थे। वे स्पष्ट शब्दों कहते-हम अंग्रेजों की मदद क्यों करे ? क्या तर्क है इसका ? पहले विश्वयुद्ध में ग ी जी ने अंग्रेजों का साथ दिया था। बदले में हमने क्या पाया ? मिली जलियाबा बाग की निष्ठुर हत्या। यह बात क्या भूल जाने की है ?[1]

इसके अलावा कानूनन भारत आज लड़ाई में फंस गया है। लेकिन क्यों ? क्य बड़े लाट ने युद्ध की घोषणा करने से पहले भारतवासियों से पूछा था ? इस बार भ

1- शैलेश डे, अनुवाद-ममता खरे ; मैं सुभाष बोल रहा हूं-भाग 2 पृष्ठ 29ण

क्या उन्होने गांधीजी या अन्य नेताओं से बात की है ? तो फिर उनके अच्छे-बुरे की हम क्यों चिन्ता करे ?

'बल्कि' अब जो कुछ हुआ है यही तो हम चाहते है। यही तो हमारे लिए मौका है। घायल अंग्रेजो के हाथो से अपना देश छीन लेने का यही उपयुक्त समय है। शत्रु की कमजोरी का फायदा उठाना चाहिए। इसलिए लड़ना होगा। स्वाधीनता की अन्तिम लड़ाई।'

गांधी जी इसके पक्ष में नही। इसलिए बडे लाट लार्ड लिनलिथिंगों से मिलने के बाद उन्होने दुनिया को अपने मन की बात बता दी-

'इस युद्ध में मुझे इग्लैण्ड और फ्रांस के साथ पूर्ण सहानुभूति है। इग्लैण्ड का पार्लियामेंट भवन या वेस्ट मिनिस्टर ऐसे ध्वंस हो, यह दृश्य मैं वर्दाश्त नही कर सकता हूं। मैं इस समय भारत की स्वाधीनता की बात बिल्कुल नहीं सोच रहा हूं। इग्लैण्ड और फ्रांस की स्वाधीनता ही अगर चली गई तो भारत की स्वाधीनता किस काम की ?[1] गांधी जी ने यहां तक कहा कि मैं ब्रिटेन के विनाश में भारत की आजादी नहीं ढूढता। आश्चर्य की बात तो यह थी कि गांधी जी किस प्रकार अपने विचारों को पूर्णतया बदल चुके थे। आज लग रहा हैं उनका इरादा उस शैतान सरकार को नष्ट करने का नहीं है। बल्कि यूरोप के हाथो इन्हे ध्वंस होते देखकर उनका मन शैतान सरकार के प्रति सहानुभूतिमय हुआ जा रहा है।

1938 के अन्त तक गांधीजी और सुभाष के बीच मतभेद उभर आये थे। सुभाष चन्द्र बोस को फिर से कांग्रेस में लाने और उन्हें अध्यक्ष पद देने का निर्णय कांग्रेस की वामपंथी लॉवी तथा कांग्रेस के वरिष्ठ नेता जवाहर लाल नेहरू का था।[2] गांधी जी को सुभाषचन्द्र बोस इस अर्थ में तो प्रिय थे कि वे एक अच्छे व्यक्ति थे, देश के लिए मर मिटने वाले नौजवानों में सबसे आगे थे और उनका सही समाधान तलाशने की क्षमता रखते थे, परन्तु स्वाधीनता संग्राम में तुरंत तेजी लाने और हिंसा की हद तक देश को उकसाकर खून-खराबा कर जल्दी से जल्दी आजादी लेने की सुभाष की योजना से गांधी सहमत नहीं थे और यह तो वे किसी कीमत पर सहन करने को तैयार नहीं थे कि गांधी जी की कांग्रेस को ही अपने अनुसार इस्तेमाल कर सुभाषचन्द्र बोस अंग्रेजों से लड़ा दे और अपने

1- शैलेश डे, अनुवाद-ममता खरे, मैं सुभाष बोल रहा हूं-खण्ड 2 पृष्ठ 30

2- एम0पी0कमल, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस (भारत के वीर सपूत) पृष्ठ 50

ढंग से यथाशीघ्र स्वाधीनता प्राप्त करें।

सुभाष की समाजवादी नीतियों से तथा सर्वहारा वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति से भी गांधी जी सहमत नहीं थे। स्वाधीनता के उपरान्त देश को जिन नीतियों पर सुभाष चलाना चाहते थे, तथा उन्हें लागू करने के लिए जो प्रशासनिक ढांचा वे देश को देना चाहते थे, उससे भी गांधी जी की योजना मेल नहीं खाती थी। सुभाष का अधैर्य और 'जल्दी चलो' की नीति तो गांधी जी के परम स्थायी धैर्य को भी उखाड़ देती थी।[1].

जब गांधी जी को पता लगा कि सुभाष अगले सत्र के लिए भी अध्यक्ष बनने के इच्छुक है तो गांधीजी को यह बात पसंद नही आयी। उनके अहिंसा संचित मन में यह बात घर कर गई थी कि सुभाष कांग्रेस को अपने हिसाब से इस्तेमाल करना चाहते है और वे यदि एक साल और अध्यक्ष रह गये तो एक अहिंसक जमात के रूप में विकसित की गई कांग्रेस गांधी जी के हाथ से निकल जायेगी।[2] नेता और कार्यकर्ता विद्रोही हो जायेगे।

यह तो गांधी जी के व्यक्तित्व और गांधीवाद दोनो की हार थी, जो गांधी जी बर्दास्त नहीं कर सकते थे, अतः वे सक्रिय हो गये।

उन्होने अपने समर्थकों की मीटिंग बुलायी और अगले सत्र के लिये कांग्रेस पद हेतु दो नामों पर विचार किया–मौलाना अबुल कलाम आजाद और पट्टाभि सीता रमैया। मौलाना अबुल कलाम आजाद ने चुनाव लड़ने से इन्कार कर दिया।[3] गांधीवादी खेमा पट्टाभि सीता रमैय्या को अध्यक्ष बनाने में लगा था। कांग्रेस समिति के वरिष्ठ सदस्य सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, जमनालाल बजाज, भूला भाई देसाई, जे0वी0 कृपलानी, शंकरराव देव और जयराम दास दौलत ने सुभाषचन्द्र से आग्रह किया कि वे गांधी जी की भावना का आदर करते हुये चुनाव लड़ने का इरादा छोड़ दे परन्तु सुभाष नहीं माने। अन्त में सरदार पटेल ने कांग्रेस कार्य समिति के बहुसंख्यक संदस्यों की ओर से समाचार पत्रों में एक वक्तव्य प्रकाशित करा दिया कि कांग्रेस अध्यक्ष पद के असली उम्मीदवार पट्टाभि सीता रमैय्या है। और सुभाष चन्द्र बोस चुनाव लड़ने का इरादा छोड़ दे।[4]

सुभाष ने इसे अपने पर एक तरफा प्रहार माना और वे चुनाव मैदान में डटे रहे।

1- N.B. Khare, My Political Memoirs : 46

2– एम0पी0 कमल, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस (भारत के वीर सपूत) पृष्ठ 51

3- Reva Chatterjee, Netaji and the Congress : 84

4- Jog N.G., "An Alternative Leadeship ", in Sisir K. Bose, A Beacon Across Asia : A Biography of Subhas Chandra Bose.

29 जनवरी 1939 को चुनाव हुआ और सुभाष चंद्र बोस को दो सौ से कुछ अधिक वोट मिले। वे जीत गये। कांग्रेस के इतिहास में यह पहली घटना थी। इससे पूर्व गांध ी के निर्णय को कभी चुनौती नही दी गयी थी।

4 फरवरी 1939 को गांधीजी ने एक वक्तव्य दिया जिसमे कहा गया कि सीता रमैय्या की हार उनकी हार है, उनके सिद्धान्तों और विचारो की हार है। साथ ही यह भी संकेत दिया कि सुभाष अपनी पसंद की कार्य समिति स्वयं बना ले।[1]

उस समय गांधी जी की बजह से सुभाष कांग्रेस से बहिष्कृत थे। जबकि गांधी जी के वोट पर नहीं, जनसाधारण का वोट पाकर सुभाष दुबारा कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए थे। फिर भी गांधी जी ही तो सर्वे सर्वा थे-उनकी इच्छा-अनिच्छा ही सबकुछ थी। सुभाष के शब्दों में-"The entire intellect of the congress has been mortgaged to one man."[2]

इसी बात को और भी स्पष्ट शब्दों में कहा था त्रिपुरा कांग्रेस की अभ्यर्थना कमिटी के सभापति, गांधीवादी नेता सेठ गोविन्दास ने। भाषण देते समय उन्होने गर्व से कहा था-'फासिस्टों में मुसोलिनी, नात्सियों में हिटलर और कम्युनिस्टों में स्टालिन की जो जगह है, कांग्रेस सेवकों में महात्मा गांधी की भी वही जगह है।''[3]

22 फरवरी को कांग्रेस कार्य-समिति के सभी सदस्यों ने अपने पदों से इस्तीफा दे दिया। सुभाष बोस गांधी जी के व्यवहार से बहुत खिन्न हो गये। उन्होने कहा 'मेरा लक्ष्य-उद्देश्य यही होगा कि गांधी जी का विश्वास प्राप्त कर सकूं। यदि औरों का विश्वास जीत लिया किन्तु भारत के सबसे महान पुरूष का विश्वास न जीत सका तो बड़े दुर्भाग्य की बात होगी।''[4]

10 मार्च 1939 को त्रिपुरा में कांग्रेस का अधिवेशन भारी तनाव के बीच आरम्भ हुआ गांधी जी ने इस अधिवेशन का पूरी तरह वहिष्कार किया। सुभाष चन्द्र बोस 104 डिग्री बुखार में त्रिपुरा पहुचे। कांग्रेस की विजय समिति ने एक प्रस्ताव पारित कर दिया कि कांग्रेस की कार्य समिति का गठन गांधी जी की राय से किया जाय और नीतिया व कार्यक्रम पहले जैसे रखे जाय, उनमें छेड़छाड़ न की जाय।[5] सुभाष बोस समझ गये

1- आशा गुप्त, सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक

2- शैलेश डे, मैं सुभाष बोल रहा हूं-खण्ड दो- पृष्ठ 30-31

3- Reported in the Anand Bazar Patrika : 11 March 1939.

4- N.G. Jog : An Atternative Leadership : 1936-1941 A Beacon Across Asia : 81

5- A Beacon Across Asia : 84

कि गांधी जी को मनाना आवश्यक है। उन्होने गांधी जी को मनाने के लिये अनेक पत्र लिखें, परन्तु गांधी जी ने कोई जबाब नही दिया। नेहरू जी गांधी जी और सुभाष में सुलह चाहते थे, परन्तु उन्हें सफलता नही मिली। अन्तः अप्रैल 1939 में सुभाष ने कांग्रेस अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया।[1]

गांधी जी का असहयोग अब ब्रिटिश के विरूद्ध नहीं कांग्रेस के अपने सभापति के विरूद्ध था।[2] फलस्वरूप बोस पद त्याग करने को बाध्य हुए विदेशी लेखक माइकेल एडवर्ड ने लिखा है-'भारत तथा बाहर के अनेक लोगो का विश्वास था कि गांधी जी प्रकाश और माधुर्य के सम्मिश्रण से बने है, लेकिन देखने में यह आया कि अपने नेतृत्व के वास्तविक प्रतिद्वन्द्वी को हटाने के लिए उन्होंने अपनी मर्यादा और कूटनीति का सहारा लिया।[3]

15 सितम्बर को वर्धा में कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक हुई। इसका उद्देश्य था ब्रिटिश सरकार के साथ युद्व काल में सहयोगिता की जाय या नहीं। बहिष्कृत सुभाष भी इस कमिटी में बुलाये गये। बोस ने ब्रिटिश सरकार के साथ युद्व काल में सहयोगिता से इन्कार कर दिया। एक तरफ समस्त गांधीवादी, दूसरी तरफ अकेले सुभाष। हालाकि वे कांग्रेस से बहिष्कृत थे। लेकिन विचार किया जाय तो सुभाष बोस का कहना ठीक था। इतिहासकार डॉ रमेशचन्द्र मजुमदार लिखते है कि-'वहां केवल एक व्यक्ति था सुभाषचन्द्र बोस जो निर्भयतापूर्वक कांग्रेस नीति की रक्षा में खड़ा था।''[4]

सुभाष की दूरदर्शिता का समर्थन आगे चलकर अंग्रेजो ने भी किया था। बाद में उन्होने स्वीकार किया था कि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों की जितनी स्पष्ट धारणा सुभाष को थी, उतनी और किसी को नहीं थी। पर उस दिन कांग्रेस के इस निर्णय पर सबसे ज्यादा खुशी अंग्रेजों को ही हुई थी क्योंकि उन्हें गांधीजी से डर नहीं था बल्कि डर था सुभाष बोस से क्योंकि ब्रिटिश समझ गये थे कि गांधी जी पाश्चात्य सभ्यता के विरोधीमात्र थे।[5]

'जब तक गांधीजी कांग्रेस के कर्णधार रहेगे तब तक उन्हे विश्वास है कि उनका एक दोस्त है। जब तक उनका असहयोग आन्दोलन अहिंसात्मक रहेगा, तब तक सरकार को परेशान होने की जरूरत नही है। इस असहयोग आन्दोलन से नुकसान तो केवल भारतवासियों का है। गांधी का उद्देश्य है हिंसा को रोक रखना-सरकार भी यही चाहती

1- सुभाष रचनावली -V:65-124

2- Michael Edwords The Last years of British India - Page 78

3- Ibid : 78

4- Dr. Ramesh Chandra Majumdor, History Of Freedom Movement : Vol. III : P-597

5- Reva Chatterjee, Netaji Subhas Bose : Bengal Revolution and Independence - 85-86

थी। छोटी-मोटी हिंसक घटनाएं दबाने में कोई परेशानी नहीं है लेकिन यदि गांधी कांग्रेस से हट जाते तब यह ऐसे लोगो के हाथों में जा सकती थी जो समर्थ और हिंसात्मक आन्दोलन के पक्षपाती थे। ये अगर किसी तरह का विद्रोह करते तो इसे रोक सकना सरकार के लिए कठिन हो जाता।

इसीलिए सरकार गांधी के प्रति सम्मानजनक व्यवहार बनाये रखती और लोगो की नजरों में उनकी मूर्ति धूमिल न हो सके इसलिए समय-समय पर उन्हे जेल में डाल देती जबकि सरकार सुभाष के प्रति कहीं ज्यादा ठोस और कठोर कदम उठाती थी।'[1]

जनता चाहती थी कि सुभाष दोबारा कांग्रेस के सभापति बनें, पर गांधीजी नही चाहते थे। यह बात उन्होने स्वयं कही है-'मुझे स्वीकार करना ही पड़ेगा कि मैं शुरू से ही उनके फिर से निर्वाचित होने का विरोधी था। इसका कारण मैं आज नहीं बता सकता।'[2] गांधी जी ने यह बात साफ-साफ स्वीकार की लेकिन क्यों ? एक ही आदमी एक बार से अधिक सभापति बन चुका है। जवाहरलाल नेहरू भी तीन बार सभापति बन चुके थे। किसी ने कभी कोई एतराज नहीं किया था फिर सुभाष के समय ऐसा क्यों ?

20 मार्च 1940, सुभाष ने रामगढ़ में समझौता-विरोधी सम्मेलन का आयोजन किया। एक तरफ मौलाना आजाद के नेतृत्व में कांग्रेस का अधिवेशन, दूसरी तरफ सुभाष का समझौता विरोधी सम्मेलन। एक का कहना था-कोई समझौता नहीं। भीख मांगने से स्वाधीनता कभी नहीं मिलेगी। आवेदन-निवेदन से भी कुछ नहीं होगा, इसलिए लड़ना होगा। दूसरी तरफ कहा जा रहा था-लड़ाई नहीं। समझौता और सहयोग से सब होगा।''[3]

बी0 पट्टाभि सीता रमैय्या ने संकेत दिया है कि बोस स्वतंत्रता-प्राप्ति की पद्धति पर गांधी जी से सहमत नहीं थे जबकि गांधी का दृष्टिकोण कांग्रेस का दृष्टिकोण बन चुका था।[4] इस मत-वैषम्य, संघर्ष एवं टकराव के बाबजूद गांधी जी सुभाष बोस की लक्ष्य-निष्ठा तथा आत्म-विश्वास से अभिभूत अवश्य थे। वर्ष के प्रारम्भ में उन्होने पत्र-संवादाताओं के समक्ष कहा था 'इस नवयुवक को बांधा नहीं जा सकता। उसका अपना विवेक उसे संयमित करता है। इस दृष्टि से वह भी उतना ही सुधारवादी, उतना ही उदार है जितना कि मैं हूं। अपनी आयु के कारण मुझे इसका अहसास है और युवा होने के कारण वह अपने

1- शैलेश डे, अनुवाद ममता खरे, मैं सुभाष बोल रहा हूं, खण्ड-दो-पृ0-33
2- Dr. R.C. Majundor, History of the Freedom movement in India, 1979
3- शैलेश डे, मैं सुभाष बोल रहा हूं- खण्ड-दो पृष्ठ 34
4- B. Pattabhi Sitaramayya : The History of the Congress. Page 779.

गुणों के प्रति हत-ज्ञान है। मैं संवाददाताओं को ध्यान दिलाना चाहूंगा कि कांग्रेस से हटाये जाने पर भी यदि वह अंहिसात्मक संघर्ष का नेतृत्व करेगा तब आप मुझे उसके पीछे चलता हुआ पायेंगे। यदि मै आगे निकल गया तो वह भी मेरा अनुगमन करेगा। किन्तु क्या यह आशा रखूं कि बिना टकराव के हम लक्ष्य प्राप्त कर लेगे ?''[1]

एक बार गांधी जी ने बोस को पत्र में लिखा 'तुम स्वस्थ्य रहो या अस्वस्थ्य, हो तुम अप्रतिरोध! मुझे यह भी मालूम है कि मौलाना आजाद की अपेक्षा तुम अधिक 'जन-प्रिय' हो। तुम्हारे ब्लाक के गैर-कानूनी प्रसंग से मुझे लगता है कि मेरे तुम्हारे बीच बुनियादी अन्तर रहना सम्भव नहीं..............जब तक हम एक दूसरे का मत ग्रहण नहीं कर लेंगे तब तक हमें अलग-अलग नौकाओं पर चलना होगा, यद्यपि दोनो नौकाओं की मंजिल एक ही है।''[2]

सुभाष चन्द्र बोस के मन में गांधी जी के चरित्र तथा व्यक्तित्व के लिए गहरा सम्मान था। 6 जुलाई, 1944 को रंगून रेडियों से एक प्रसारण में उन्होने महात्माजी को 'राष्ट्रपिता' कहकर अभिनन्दन किया और उनसे भारत के स्वाधीनता संग्राम में सफलता के लिए आर्शीवाद मांगा।[3] वे गांधी जी की सत्यनिष्ठा तथा चारित्रिक पवित्रता की प्रशंसा करते थे। बोस उनकी 'अनन्य भक्ति, उनकी दुर्दमनीय इच्छाशक्ति तथा अथक क्रियाशीलता के समक्ष शीश नवाते थे।''[4] वे उनके मानवतावादी दृष्टिकोण तथा अभिद्रोह की भावना की सराहना किया करते थे।[5] उन्होने स्वीकार किया था कि कांग्रेस को सुदृढ़ बनाने तथा जनता में व्यापक जागृति उत्पन्न करने के लिए गांधी जी ने महान कार्य किया है। किन्तु वे कभी गांधीवादी नहीं बने सके। उनका कहना था कि गांधीवाद का सम्बन्ध केवल कार्यप्रणाली अर्थात् सत्याग्रह से है, उसका कोई सामाजिक दर्शन अथवा सामाजिक पुनर्निर्माण का कोई कार्यक्रम नहीं है।[6] उन्होने गांधी जी के विचारों तथा कार्यप्रणाली का पांच आधारो पर विरोध किया।[7]

राजनीतिक यथार्थवादी होने के नाते बोस गांधीजी के अतिशय नैतिक आदर्शवाद की सराहना न कर सके। उनकी भावना थी कि प्रयोजन की शुद्धता के सम्बन्ध में सूक्ष्म नैतिक छानवीन में फसने से राजनीतिक समस्याएं उलझ जाती है। उनका विश्वास था कि राजनीतिक कार्य में सफलता के लिए सौदागरों की चालों की आवश्यकता होती है और वाहय आडम्बर

1- Harijan-----------------3rd Feb, 1940.
2- गांधीजी का सुभाष बोस को पत्र........................19 दिसम्बर 1940प
3- Selected Speeches of Subhas Chandra Bose : page 120
4- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle : Page 408.
5- Ibid : 408-9
6- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle : page. 483
7- Subhas Chandra Bose, The Role of Mahatma Gandhi in Indian History, "The Indian Struggle, Chapter-6 page 906-14

बनाना पड़ता है।

बोस का कहना था कि गांधी जी दोहरी भूमिका अदा कर रहे हैं–वे भारतीय जनता के राजनीतिक नेता हैं और साथ ही साथ अहिंसा के नैतिक जगद्गुरू हैं। इससे भारी उलझन और भ्रम उत्पन्न हुआ है और महात्मा जी दोहरी भूमिका सफलतापूर्वक अदा नहीं कर सके हैं क्योंकि एक व्यक्ति के लिए दो भूमिकांए अदा करना सदैव आसान नही है।[1] चूंकि समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण तत्वतः नैतिक है, इसलिए वे ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और प्रतिक्रियावादियों की कुटिल चालो तथा षडयन्त्रों को समझने में असफल रहे हैं। महात्मा जी की शक्ति इसमें निहित है कि अपनी जनता की मनः स्थिति की भी उन्हे बुनियादी समझ है, किन्तु वे अपने विरोधियों की मनोवृत्ति को समझने में असफल रहे है।

बोस के अनुसार गांधीवाद का ज्ञानशास्त्रीय आधार 'अबुद्धिवाद' था। चूकि गांधी जी को ईश्वर के करूणामय शिवत्व में विश्वास था इसलिए वे कहा करते थे कि 'मेरे लिए एक कदम पर्याप्त है।'[2] उन्हें आशा थी कि शुद्ध साधनों से कल्याणकारी उद्देश्य अनिवार्यतः सिद्ध हो जायेगे। किन्तु बोस स्वयं राजनीतिक यथार्थवादी थे, इसलिए वे चाहते थे कि राष्ट्र के राजनीतिक उद्देश्यों का एक बुद्धिसंगत चार्ट तैयार किया जाय और उसको साक्षात्कृत करने के लिए आवश्यक साधनों को समझबूझकर निर्धारित किया जाय।

बोस गांधी जी के राजनीतिक विचारों के अन्तः प्रज्ञात्मक आधारो को समझने में असफल रहे। गांधी जी अन्तर्रात्मा की नीरव पुकार को सुनने के अभ्यस्थ थे, किन्तु बोस को कूटनीतिक माया, इन्द्रजाल और द्वैधीभाव और राजनीतिक शक्ति में विश्वास था।[3] उनकी भावना थी कि चितरंजनदास, मोतीलाल नेहरू तथा लाला लाजपत राय की मृत्यु से गांधीवादी अबुद्धिवाद के प्रभुत्व के लिए मंच खाली हो गया था।[4] बुद्धिवादी वर्ग के कुछ प्रभावशाली तत्व प्रारम्भ में गांधी जी के विरूद्ध थे किन्तु जनता में पैगम्बर के लिए जो उन्मादपूर्ण श्रद्धापूर्ण भावनांए थीं उन्होने उनके विरोध को कुचल दिया था।

बोस की भावना थी कि केवल अहिंसा के द्वारा स्वराज्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। उनका कहना था कि अहिंसात्मक सत्याग्रह में लोकमत को उभाड़ने की क्षमता होती है, किन्तु केवल उसके बलबूते पर स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती। बोस का विचार था

1- Subhas Chandra Bose, 'The Role of Mahatma Gandhi in Indian History P-322
2- A Beacon Across Asia - 82
3- Bose, The Role of Mahatma Gandhi in Indian History : 164
4- Ibid : Page 90-91, 104

कि अहिंसा के पूरक के रूप में दो अन्य कार्यप्रणालियों का प्रयोग किया जाना चाहिए–क–कूटनीति तथा ख– अन्तर्राष्ट्री प्रचार।[1]

वे अपने राजनीतिक गुरू[2] चितरंजनदास तथा मोतीलाल नेहरू की कूटनीतिक प्रणालियों तथा योग्यता की सराहना किया करते थे। गांधी जी देश में ठोस रचनात्मक कार्य करने में विश्वास करते थे। उनकी धारणा थी कि कार्य ही सबसे अच्छा प्रचार है। बोस का विचार था कि जब गांधीजी को द्वितीय गोलमेज सम्मेलन की निरर्थकता स्पष्ट हो गयी थी तो उन्हे चाहिए था कि उसी समय उसके अधिवेशनों को छोड़कर चले जाते और सम्मेलन के खोखलेपन का भण्डाफोड़ करने के लिए अमेरिका तथा यूरोपीय महाद्वीप की यात्रा पर निकल पड़ते।

गांधी जी ने सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र का प्रतिनिधत्व करने का दाबा किया था, इसलिए उन्होने विभिन्न वर्गो की पारस्परिक शत्रुता को कम करने के लिए सामाजिक सामंजस्य तथा मेल–मिलाप का समर्थन किया। वे जमीदार तथा किसान, पूंजीपति और मजदूर सभी के प्रतिनिधि बनना चाहते थे। इसके विपरीत बोस धनिकों तथा निर्धनों के बीच सामाजिक संघर्ष को अत्यावश्यक मानते थे।

उन्हें आशा थी कि एक ऐसा बामपंथी दल निश्चय ही उदित होगा जो अधिक जुझारू और उग्र तत्वों को संगठित कर सकेगा। ऐसा दल गांधीवादी नेतृत्व से बाहर रहकर देश की स्वाधीनता प्राप्त करने में सफल होगा। अपनी पुस्तक 'द इण्डियन स्ट्रगल' (भारतीय संघर्ष) के अन्त में बोस ने लिखा है 'किन्तु भारत को महात्मा गांधी के नेतृत्व में मुक्ति नहीं मिल सकती।[3] जब 1933 में गांधीजी ने आत्मशुद्धि के लिए 21 दिन उपवास किया तो उस समय बोस और बिठ्लभाई पटेल ने विएना से एक संयुक्त वक्तव्य निकाला जिसमें उन्होने कहा, 'हमारा स्पष्ट मत है कि गांधी जी एक राजनीतिक नेता के रूप में असफल हो चुके है। इसलिए वह समय आ गया है जबकि कांग्रेस का नवीन सिद्धान्तों के आध ार पर और नये तरीकों से पुनर्गठन किया जाय। उसके लिए एक नये नेता की आवश्यकता है, क्योंकि यह आशा करना अनुचित होगा कि श्री गांधी ऐसे कार्यक्रम को कार्यान्वित कर सकेगे जो उनके जीवन भर के सिद्धान्तों के प्रतिकूल है।

1– सुभाष चन्द्र बोस ने 1938 में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में इस बात का समर्थन किया था कि कांगेस को यूरोप, एशिया, अफीका तथा उत्तरी, मध्य और दक्षिणी अमेरिका में अपने विश्वनीय प्रतिनिधि भेजने चाहिए। बोस चाहते थे कि व्यापक पैमाने पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क कायम किया जाये।

2– बोस ने त्रिपुरा कांगेस के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में चिरतरंजनदास को अपना गुरू बतलाया था।

3- Subhas Chandra Bose, The Indian Struggle - page 414

बोस का विचार था कि गांधी जी ने चेतन तथा अचेतन रूप में भारतीय जनता की सामूहिक मनोवृत्ति के कुछ तत्वों को उभाड़कर अनुचित लाभ उठाया था। इसके लिए बोस गांधी जी की आलोचना किया करते थे। भारतीय जनता के मन में सन्तों तथा ऋषियों के लिए अगाध श्रद्धा है। गांधी जी ने सन्त वेशभूषा अपना ली थी। यही कारण था कि उन्हें जनता का समर्थन तथा आश्चर्यजनक लोकप्रियता मिली। बोस की भावना थी कि जनता की भावनाओं का इस प्रकार प्रयोग करने से देश में स्वतंत्र चिंतन तथा वस्तुगत विश्लेषण की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन नहीं मिला; यह तो एक बुद्धशून्य राजनीतिक प्रणाली थी।

किन्तु बोस ने हरिपुरा में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि भारत की स्वतंत्रता के लिए गांधीजी की आवश्यकता है उनका कहना था, ''भारत इस स्थिति में नहीं है कि उन्हें छोड़ सके, और इस समय तो उन्हे निश्चय ही नहीं छोड़ा जा सकता। हमें उनकी आवश्यकता इसलिए है कि हमारा संघर्ष घृणा और वैमनस्य से मुक्त रह सके। हमें भारतीय स्वतंत्रता के लिए उनकी आवश्यकता है। इससे भी अधिक हमें मानव जाति के हितों के लिए उनकी आवश्यकता है।''

भारतीय राजनीति के कुछ मिथ है जिनमें एक यह भी है कि नेताजी सुभाष महात्मा गांधी के प्रबल विरोधी थे व एक दूसरे को फूटी आंख नही सुहाते थे। जबकि वस्तुस्थिति यह थी कि सुभाष गांधी के अनन्य प्रशंसक व गांधी जी द्वारा चलाये जा रहे स्वाधीनता अभियानों के पूरक थे। इन महारथियों में दृष्टि, साम्य, धर्मनिष्ठा व देश भक्ति की अर्न्तज्वाला सतत् प्रवाहित होती रहती थी। इतिहास का यह क्रूर मजाक है कि ये दोनो हस्तियां युद्ध के बाद मिल न सकी अन्यथा देश का इतिहास कुछ और ही होता? स्वयं गांधी जी ने इसे स्वीकारा था।[1]

भारतीय राजनीति का यह निर्विवाद तथ्य है कि 1941 में सुभाष द्वारा देश छोड़ने के निर्णायक फैसले के बाद महात्मा गांधी का मन सुभाष के लिए पिघल गया था। यह सुभाष बोस के चिन्तन का ही प्रभाव था कि गांधीजी ने कांग्रेस कार्यकारिणी के अधिकांश सदस्यों के मत के विपरीत जापान पर अविश्वास व्यक्त नहीं किया, क्रिप्स प्रस्तावों को दिवालिया बैक की बाद की तारीख वाला चैक कहा और ब्रिटिश शासन के विरूद्ध भारत

1— डा0 राजेन्द्र कुमार पुरवार : सुभाष—गांधी सम्बन्ध : एक पुनर्परीक्षण, अभिनव ज्योति—1998

बोस का विचार था कि गांधी जी ने चेतन तथा अचेतन रूप में भारतीय जनता की सामूहिक मनोवृत्ति के कुछ तत्वों को उभाड़कर अनुचित लाभ उठाया था। इसके लिए बोस गांधी जी की आलोचना किया करते थे। भारतीय जनता के मन में सन्तों तथा ऋषियों के लिए अगाध श्रद्धा है। गांधी जी ने सन्त वेशभूषा अपना ली थी। यही कारण था कि उन्हें जनता का समर्थन तथा आश्चर्यजनक लोकप्रियता मिली। बोस की भावना थी कि जनता की भावनाओं का इस प्रकार प्रयोग करने से देश में स्वतंत्र चिंतन तथा वस्तुगत विश्लेषण की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन नहीं मिला; यह तो एक बुद्धशून्य राजनीतिक प्रणाली थी।

किन्तु बोस ने हरिपुरा में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि भारत की स्वतंत्रता के लिए गांधीजी की आवश्यकता है उनका कहना था, "भारत इस स्थिति में नहीं है कि उन्हें छोड़ सके, और इस समय तो उन्हे निश्चय ही नहीं छोड़ा जा सकता। हमें उनकी आवश्यकता इसलिए है कि हमारा संघर्ष घृणा और वैमनस्य से मुक्त रह सके। हमें भारतीय स्वतंत्रता के लिए उनकी आवश्यकता है। इससे भी अधिक हमें मानव जाति के हितों के लिए उनकी आवश्यकता है।"

भारतीय राजनीति के कुछ मिथ है जिनमें एक यह भी है कि नेताजी सुभाष महात्मा गांधी के प्रबल विरोधी थे व एक दूसरे को फूटी आंख नही सुहाते थे। जबकि वस्तुस्थिति यह थी कि सुभाष गांधी के अनन्य प्रशंसक व गांधी जी द्वारा चलाये जा रहे स्वाधीनता अभियानों के पूरक थे। इन महारथियों में दृष्टि, साम्य, धर्मनिष्ठा व देश भक्ति की अर्न्तज्वाला सतत् प्रवाहित होती रहती थी। इतिहास का यह क्रूर मजाक है कि ये दोनो हस्तियां युद्ध के बाद मिल न सकी अन्यथा देश का इतिहास कुछ और ही होता? स्वयं गांधी जी ने इसे स्वीकारा था।[1]

भारतीय राजनीति का यह निर्विवाद तथ्य है कि 1941 में सुभाष द्वारा देश छोड़ने के निर्णायक फैसले के बाद महात्मा गांधी का मन सुभाष के लिए पिघल गया था। यह सुभाष बोस के चिन्तन का ही प्रभाव था कि गांधीजी ने कांग्रेस कार्यकारिणी के अधिकांश सदस्यों के मत के विपरीत जापान पर अविश्वास व्यक्त नहीं किया, क्रिप्स प्रस्तावों को दिवालिया बैक की बाद की तारीख वाला चैक कहा और ब्रिटिश शासन के विरूद्ध भारत

1— डा0 राजेन्द्र कुमार पुरवार : सुभाष—गांधी सम्बन्ध : एक पुनर्परीक्षण, अभिनव ज्योति—1998

छोड़ो आन्दोलन की अप्रत्याशित घोषणा कर दी। गांधी जी के इन सभी क्रान्तिकारी निर्णयों के पीछे सुभाष की सोच व प्रयास था। उस समय गांधी जी की आवाज में सुभाष बोल रहे थे। अहिंसा के मसीहा हिंसक सुभाष के प्रति सहानुभूति रखने लगे थे। सुभाष के प्रबल शत्रु भी अब सुभाष की भूमिका से सम्मोहित हो चले थे।

भारत छोड़ों आन्दोलन की घोषणा करते समय गांधी जी की वाणी में यह व्यथा झलक ही पड़ी कि यदि मेरा बेटा सुभाष यहां होता तो मुझे किसी अन्य की जरूरत नही पड़ती।

गांधी व सुभाष साम्राज्य विरोधी संग्राम में एक दूसरे के सम्पूरक थे। यद्यपि जवाहर लाल नेहरू को गांधी जी ने उत्तराधिकारी घोषित किया पर वास्तविकता यह है कि अपनी दृष्टि से व प्रवृत्ति से सुभाष गांधी जी के अधिक नजदीक थे। दोनो ही में विचारों को तथ्यों व वास्तविकताओं में बदलने की अभूतपूर्व क्षमता थी। गांधी व सुभाष दोनो ही भारतीय जमीन से जुड़े थे। उन्हें भारत की खोज' की आवश्यकता कभी नहीं पड़ी। वे दोनो स्वाभाविक व बिना प्रयास के देशज थे। दोनो ही महान अनुशासन पालक व संगठक थे। यदि गांधीजी ने आन्दोलन को जन आन्दोलन में परिवर्तित किया तो सुभाष बोस ने विदेशी भूमि पर आजाद हिन्द फौज संगठित कर अपनी संगठन क्षमता की धाक जमाई थी।[1]

गांधी जी के प्रति सुभाष के मन में असीम श्रद्धा थी, उन्होने गांधी जी को राष्ट्र का लोकप्रिय नेता स्वीकार किया था परन्तु सुभाष कभी गांधीवादी नहीं बन सके। वे हमेशा गांधी जी के समझौतावाद, उग्र नैतिक आदर्शवाद, अहिंसा के प्रति समर्पण एवं उनकी न्यास पद्धति के प्रति शंकालु बने रहे। गांधी ने सुभाष की दृष्टि से भूले भी की और पाश्चाताप भी। गांधी की भूलों को सुभाष ने देश की स्वतंत्रता के प्रति घातक माना।

सुभाष के अनुसार राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए कठिन संघर्ष और कूटनीति की आवश्यकता थी। उन्होने हिंसक संघर्ष द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत के स्वतन्त्र अस्तित्व को अनुभव करा दिया था। यदि युद्ध के बाद गांधी और सुभाष मिले होते तो देश के भविष्य के लिए कोई नयी ही योजना बनाते। एक देश के आन्तरिक हलचलों का सेनापति था तो दूसरा वाह्य गतिविधियों का सेनापति। दोनो एक

1- Dr. Rajendra Kumar Purwar : Relationship of subhas-Gandhi-An Approisal-Abhinav-Jyoti-1998

ही लक्ष्य के पथिक थे। पृथक दृष्टि के बाद भी दोनो ही भारतीय स्वतंत्रता की आकांक्षा और उपलब्धि के प्रति समान रूप से जागरूक थे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गांधी और सुभाष दोनो आजादी चाहते थे लेकिन दोनों की नीतियां और तरीके अलग-अलग थे। आजादी के सम्बन्ध में सुभाष बोस ने अपनी पहली मुलाकात में (1921 में बम्बई में मणिभवन निवास) पर गांधी जी से विस्तृत चर्चा की थी। समग्रतः सुभाष को, प्रश्नो के उत्तर में, सक्रिय योजना के स्थान पर अहिंसा, विद्रोह-विरोध की जगह ब्रिटिश सरकार के हृदयगत परिवर्तन की प्रत्याशा हासिल हुई। परम निराशा की स्थिति में वे वहां से लौट आये थे। उन्होने लिखा था कि ''मुझे देशबन्धु के शब्द ध्यान आ गये। वे महात्मा गांधी के नेतृत्व के गुणों और असफलताओं के कारण के बारे में अक्सर कहा करते थे कि 'महात्मा बड़े प्रतिभापूर्ण ढंग से आन्दोलन शुरू करते हैं और निर्भ्रान्त क्षमता के साथ उसे आगे बढ़ाते हैं। हर कदम पर सफल होते जाते हैं जब तक कि आन्दोलन चरम-सीमा तक न पहुंच जाय। उसके बाद उनका हौसला पस्त होने लगता है, कदम लड़खड़ाने लगते है।'''[1]

सुभाष बोस कैम्ब्रिज में तत्कालीन योरुप के इतिहास, विस्मार्क की आत्मकथा, मैटर्निख की जीवनी तथा कैबूर के पत्रों के गहरे अध्ययन से, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य, में, इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि हैम्पडन और क्रॉमवैल के आदर्शो के अनुकरण द्वारा भारत की आजादी हासिल हो सकती है। अतः इन्हें लगा कि गांधी की क्रियात्मक योजना द्वारा शत्रु-पक्ष को सुधारने की कामना अपने को धोखा देना हैं। कारण कि अपना हित देखे बिना दूसरे का उपकार करने को कभी कोई तैयार नहीं होता। राजनीति में तो कदापि सम्भव नहीं।[2]

उन्होने अपने सुहृदय मित्र दिलीपकुमार रॉय को लिखा भी था 'मीर जाफर ने भी इस उम्मीद पर क्लाइव की सहायता की थी कि उसे राजगद्दी मिल जाएगी। श्री अरविन्द ने ठीक ही कहा हैं कि बाहर का कोई देश भारत की सहायता नहीं करेगा, यदि देशवासी खुद आजादी हासिल नहीं कर पायेगे तो कोई दूसरा उसे दिलाने नहीं आयेगा।''[3]

सुभाष बोस का यह भी कहना था कि 'राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए क्रान्तिकारी आन्दोलन

1- Subhas Chandra Bose : The Indian Struggle 1920-42 : 69-70

2- Subhas Chandra Bose : The Indian pilgrim : 93

3- आशा गुप्त, सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक (भारत-पथिक) पृष्ठ 24-25

आकस्मिक विस्फोट की तरह नहीं है जो चिरकाल से निर्मित बन्दीगृहों को भूमिसात कर सके। इसके लिए ईट पर ईट जमा कर शक्ति सदन तैयार करने की मेहनत जरूरी है, जिसके सहारे शासकों को चुनौती दी जा सके।''[1]

तात्पर्य यह कि सुभाष बोस और गांधी जी की चिन्तन-पद्धति तथा स्वतंत्रता-प्राप्ति के अलग-अलग रास्ते पहली ही मुलाकात में सामने आ गये। एलेक्जैण्डर बर्थ के अनुसार दोनो का लक्ष्य एक ही था-'भारत की स्वतंत्रता'। किन्तु उसे प्राप्त करने के रास्ते विपरीत दिशाओं में जाते थे। इसका एक कारण तो युद्ध-पूर्व एवं युद्धोत्तर-स्थिति था; दूसरे दोनों की आयु में एक पीढ़ी का अन्तर था।[2]

स्पष्टवादी सुभाष ने गांधी जी की नमनीय नीति को कभी पसन्द नहीं किया था। वे धर्म-दर्शन में लिपटी हुई उनकी अहिंसा के कायल न थे। इसके अतिरिक्त 'द इण्डियन स्ट्रगल' के पन्नों में विकीर्णित, लेखक की चिन्तन-पद्धति, काम्य कार्य प्रणाली, अभीष्ट पथ, सब कुछ भारत के विभिन्न दलों के समक्ष लिखित रूप से मौजूद था।

1- Ganapuley : Netaji - The man : 158-159

2- Alexander werth and walter Herbich : Netaji in Germany : (cal. 1970)
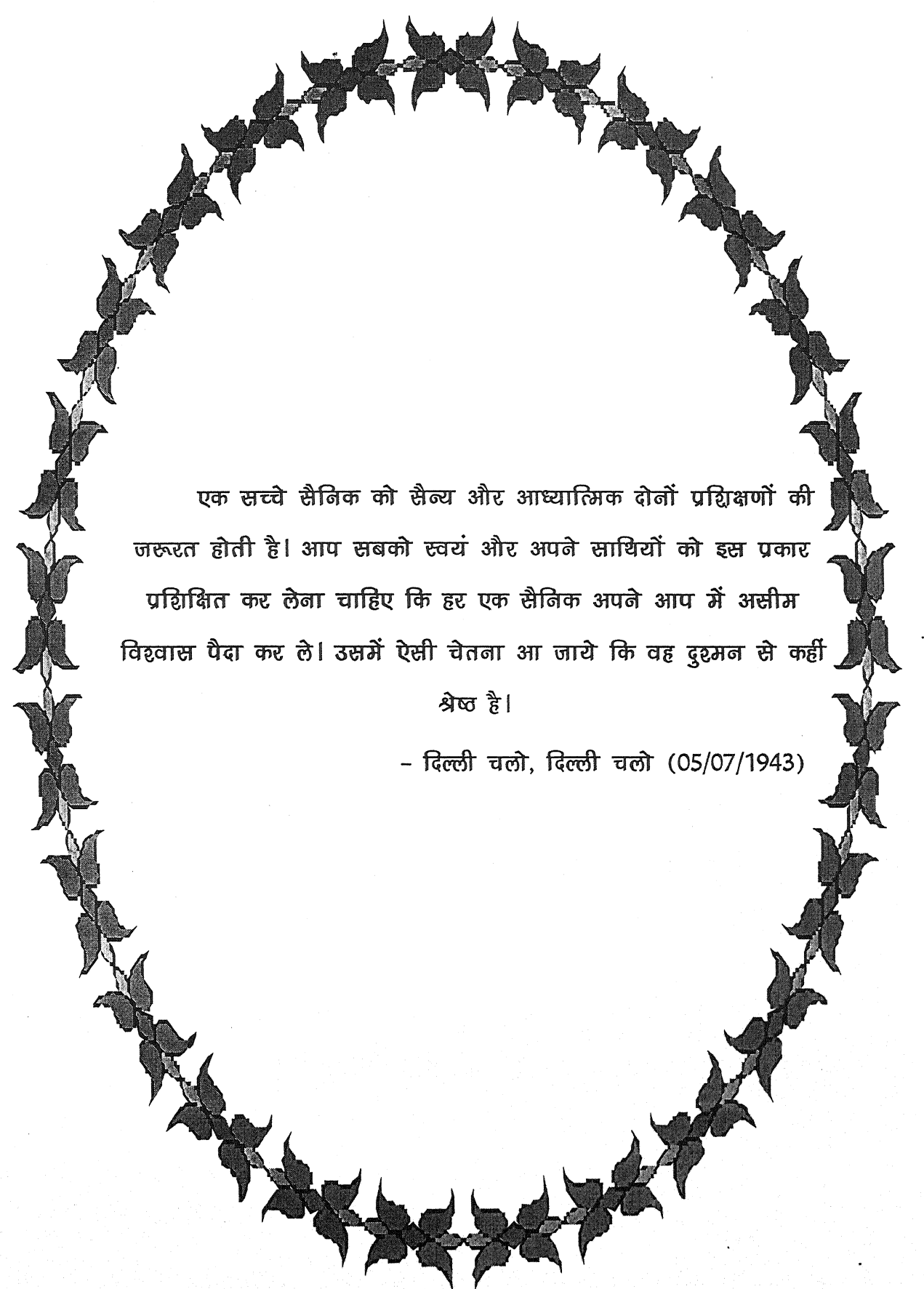
पंचम अध्याय

एक सेनानायक के रुप में सुभाष चन्द्र बोस के विचार

VIEWS OF SUBHASH CHANDR BOSE AS A COMMNANDER

1- ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति व्यवहारिक दृष्टिकोण व विदेश गमन

2- आजाद हिन्द फौज का संगठन तथा बोस का सैनिक राष्ट्रवाद

3- आजाद हिन्द फौज बनाम ब्रिटिश राज्य

4- साम्यवादी व फासीवादी विचारधारा एवं सुभाष

एक सच्चे सैनिक को सैन्य और आध्यात्मिक दोनों प्रशिक्षणों की जरूरत होती है। आप सबको स्वयं और अपने साथियों को इस प्रकार प्रशिक्षित कर लेना चाहिए कि हर एक सैनिक अपने आप में असीम विश्वास पैदा कर ले। उसमें ऐसी चेतना आ जाये कि वह दुश्मन से कहीं श्रेष्ठ है।

– दिल्ली चलो, दिल्ली चलो (05/07/1943)

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति व्यवहारिक दृष्टिकोण व विदेश गमन

मैं जानता हूँ, हममें से कुछ सोच रहे होंगे कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद अमर है। और इसका अन्त नहीं हो सकता किन्तु मैं जानता हूँ कि इतिहास की मर्जी कुछ और ही है। इतिहास ने हमें सिखाया है कि प्रत्येक साम्राज्य उसी प्रकार गिरेगा जिस प्रकार उसका उदय हुआ। इसी तरह से ब्रिटिश साम्राज्य के निष्क्रमण का समय आ चुका है।

–सिंगापुर में भाषण (12/07/1943)

सुभाष बोस का सम्पूर्ण राजनीतिक जीवन साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष करने का साक्षात इतिहास है। इस संघर्ष के लिए उन्होने जीवन के प्रारम्भ से ही तैयारी की थी। बारह वर्ष की आयु में उन्होनें जाजपुर जाकर हैजे से पीड़ित भारतीय जनता की सेवा के माध्यम से ब्रिटिश शासन की निष्क्रियता, उदासीनता, अकर्मण्ता तथा उपेक्षावृत्ति का आभास पा लिया थ। उनके प्रारम्भिक चिंतन ने उनके सम्पूर्ण जीवनऔर उसके आदर्शो को ही बदल दिया। अध्यापक द्धारा 'ब्लैक मंकी' कहे जाने पर उनका साम्राज्यवाद विरोधी चिंतन अंग्रेज अध्यापक के अपमान के लिए मुखरित हो उठा। पिता के आग्रह करने पर आई0सी0एस0 की परीक्षा तो पास कर ली किन्तु बिटिश शसन की सेवा का सहयात्री बनना उन्हें स्वीकार नहीं हुआ। इंग्लैण्ड में जब अंग्रेज उनके जूते साफ करते तब उन्हें सन्तोष होता।[1] यह सन्तोष अंग्रेज जाति द्धारा किये गये भारतीय जनता के अपमान की प्रतिक्रिया मात्र था।

साम्राज्यवाद को बोस अभिशाप के रूप में मानते थे, जो शोषण और हिंसा की अमानवीय प्रवृत्तियों को जन्म देता हैं। क्योंकि वे जानते थे कि भारत का एक मात्र शत्रु है साम्राज्यवाद और उस साम्राज्यवाद के शोषण से छुटकारा पाना ही भारत वासियों का एक मात्र लक्ष्य है।[2] ब्रिटिश शासन को साम्राज्यवाद के प्रतीक रूप में स्वीकार करने के कारण

1– सिंह, दुरलव – दि रिवैले प्रेसीडैण्ट : पृष्ठ–45

2– शैलेश डे, अनुवाद–ममता खरे ; मैं ,सुभाष बोल रहा हूं–भाग 2 : पृष्ठ 153

उन्होने उसके विरूद्ध प्राण प्रण से संघर्ष किया था।

जनरल मोहन सिंह के अनुसार, "वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ विद्रोह करने के लिए एक शक्ति के रूप में खड़ें हो गए। उनके लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समझौता करना एकदम असम्भव था।"(1)

ब्रिटिश शासन ने उन्हें जेल में रखकर यह परिणाम पा लिया था कि वह अग्निपुन्ज है। जिससे जीतना सरल नहीं हैं। द्वितीय महायुद्ध में भरत को स्वतन्त्र कराने के निमित्त उन्होने जर्मनी, जापान तथा इट्ली से जिस प्रकार सहायता माँगी, उससे उन्हें प्रायः गलत समझा गया, लेकिन वास्तविकता यह है कि वह ब्रिटिश साम्राज्य को किसी भी तरह उखाड़ फेंकना चाहते थे।(2)

बोस का मानना था कि अंग्रेजों के साथ हाथ मिलाने के अर्थ हुए साम्राज्यवाद का समर्थन करना।(3) दुर्भाग्यवश हमारे पूर्वजों ने आरम्भ में इस बात को अनुभव नहीं किया कि अंग्रेज समस्त भारत देश के लिए एक भयंकर खतरा है। अतएव उन्होने देश के शत्रु का एकजुट होकर विरोध नहीं किया। अन्त में जब भारतीय वास्तविक स्थिति से अवगत हो गए तो उठ खड़े हुए और बहादुरशाह के झण्डे के नीचे उन्होने 1857 में एक होकर अंग्रेजों से स्वतंत्र भारतीय के रूप में अन्तिम युद्ध लड़ा। इस युद्ध के आरम्भ में कई अभूतपूर्व विजय प्राप्त करके भी दुर्भाग्यवश और दोषपूर्ण नेतृत्व के कारण क्रमशः वे पराजित हुए और दास बना लिए गए।(4)

'1857 के उपरान्त ब्रिटिश सरकार ने बलपूर्वक भारतीय जनता को शस्त्र-रहित कर दिया और उन पर निर्दयतापर्वक अत्याचार किये। भारतीय कुछ समय के लिए भूशायी हो गये परन्तु 1885 में इंडियन नेशनल कांग्रेस (राष्ट्रीय कांग्रेस) के जन्म के साथ देश मे एक नयी चेतना उत्पन्न हुई। 1885 से पिछले विश्व युद्ध तक अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए - आन्दोलन, प्रचार, ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार, आतंकबाद, तोड़फोड़ और अन्त में सशस्त्र क्रान्ति जैसे उपाय काम में लिए। परन्तु कुछ समय के लिए ये सभी प्रयत्न असफल हुए।

अन्ततः 1920 में जब भारतीय जन असफलताओं से निराश होकर किसी नवीन उपाय

1– सिंह,, जनरल मोहन – कांग्रेस अनमास्वड, पृष्ठ–120
2– डा0 वीरेन्द्र शर्मा–क्रान्ति का देवता : सुभाष चन्द्र बोस : पृष्ठ 525
3– शैलेश डे,–मैं सुभाष बोल रहा हूं (खण्ड–एक) : पृष्ठ–74
4– सत्य शकुन–मैं तुम्हें आजादी दूंगा (भाग–दो) : पृष्ठ –149.

की खोज में थे, तब महात्मा गांधी सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा असहयोग का एक नया अस्त्र लेकर देश के समक्ष आये।

'द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ होने के समय भारत की स्वतन्त्रता के लिए अन्तिम संघर्ष करने की स्थिति उपस्थित हो गई। इस युद्ध में जर्मनी ने अपने मित्रों की सहायता से यूरोप में हमारे शत्रु पर भीषण प्रहार किये हैं। जबकि निपन (जापान) ने अपने मित्र राष्टों की सहायता से पूर्व एशिया में हमारे शत्रु को अपने प्रहार से धराशाही कर दिया है।[1] परिस्थितियों के सुखद संयोग से भारतीयों के सामने स्वतन्त्रता प्राप्त करने का सुअवसर उपस्थित हो गया है।

आधुनिक काल के इतिहास में प्रथम बार विदेशों में बसे भारतीयों में भी राजनैतिक चैतन्य प्रकट हुआ और वे एक संगठन में संगठित हो गए। वे केवल देश में रहने वाले देश वासियों के समान ही नहीं सोचते वरन् उनके साथ कदम मिलाकर साम्राज्यवाद को नष्ट करने के मार्ग पर अग्रसर हो रहे है। विशेष कर पूर्वी एशिया में लगभग 20 लाख भारतीय संगठित होकर एक दृढ़ सैनिक इकाई बन गए है और उनका नाम है 'समग्र तैयारी' और उनके सामने भारत की मुक्ति सेना कंधे से कंघा मिलाकर खड़ी है।

भारतीयों को लूटकर उन्हें भूखे रहने और मरने पर विवश करके तथा अपने फरेब और धोखे से उन्हें निराश करके भारत में ब्रिटिश शासन ने भारतीयों की सद्‌भावना एकदम खो दी है और आज उसकी स्थिति डवांडोल हो उठी है। इस दुर्भाग्यपूर्ण शासन की साम्राज्यवादी लिप्सा को समाप्त कर देने में अब केवल एक चिंगारी की आवश्यकता है। ब्रिटिश तथा उनके मित्रराष्ट्रों को भारत की भूमि से निकाल बाहर करने के लिए युद्ध छेड़ना होगा।[2] और यह युद्ध उस दिन तक चलेगा जब तक कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद जर्जर होकर ढह न जाए और भारत की स्वतन्त्रता का सूर्य न चमक जाए।

19 मार्च, 1904 में रामगढ़ में हुए अखिल भारतीय समझौता विरोधी सम्मेलन में भाषण देते हुए बोस ने कहा था, – "वर्तमान युग हमारे आन्दोलान की साम्रज्यवाद का अन्त करना तथा भारतीय जनता के लिए राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करना है। जब स्वतन्त्रता मिल जाएगी तो राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का युग प्रारम्भ होगा, और वह हमारे आन्दोलन की

1– सत्य शकुन, – मैं तुम्हें आजादी दूंगा (भाग–2) पृष्ठ–149–150

2– 21 अक्टूबर 1943 को नेताजी ने सिंगापुर के कैसे सिनेमागृह में उपस्थित 50 हजार लोगों के जनसमूह को सम्बोधित किया।

समाजवादी अवस्था होगी। वर्तमान अवस्था में वामवादी वे कहलायेंगें जो साम्राज्य के विरूद्ध बिना किसी प्रकार का समझौता किये संघर्ष जारी रखेंगे। जो साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष में डगमगाते और हिचकिचाते है, उन्हें किसी भी रूप में वामवादी नहीं कहा जा सकता। हमारे आन्दोलन की अगली अवस्था में वामवाद समाजवाद का पर्यायवाची होगा। – किन्तु वर्तमान अवस्था में 'वामवादी' और 'साम्राज्यवाद-विरोधी' का एक ही अर्थ है।[1]

अंग्रेज सरकार सुभाष बोस के साम्राज्य विरोधी भाषणों से इतनी भयभीत हो गई कि सन् 1942 में अखबारकें और रेडियों के माध्यम से बोस की मृत्यु की अफवाह फैला दी गई।[2]

इन अफवाहों का खण्डन करने के लिए 25 मार्च 1942 को आजाद हिन्द रेडियों ने सुभाष बोस का भाषण प्रसारित किया-

''मैं सुभाष बोस बोल रहा हूॅ। मैं अभी जीवित हूॅ और आजाद हिन्द रेडियो पर आप लोंगों से बात कर रहा हूँ। ब्रिटिश समाचार एजेंसियों ने संसार भर में यह रिपोर्ट प्रसारित कर दी कि मैं टोकियो में एक महत्वपूर्ण सम्मेलन में भाग लेने के लिए जाते समय हवाई जहाज की दूर्घटना में मारा गया। इंग्लैण्ड के समाचार पत्र मेरे बारे में अभद्र भाषा का प्रयोग करने से नहीं हिचकिचाते। अभी हाल की मेरी मृत्यु के बारे मे सूचना उन्होने प्रसाररित कीहै, वह उनकी कल्पना मात्र है। मैंकल्पना कर सकता हूँ कि भारत के इतिहास में इस संकट की घड़ी में ब्रिटिश सरकार यह अवश्य ही चाहती होगी कि मेरी मृत्यु हो जाए।

..........क्योंकि वे सब अपने साम्राज्यवादी युद्ध के लिए सहायता और समर्थन प्राप्त करने के लिए भारत को राजी करने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं[3]

मैंने ब्रिटिश सरकार के ऑफर तथा उस सम्बन्ध में क्रिप्स महोदय के भाषण का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने के उपरान्त पूर्ण विश्वास हो गया है कि अब यह नितान्त स्पष्ट है कि क्रिप्स भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की पुरानी नीति 'भेद डालो और शासन करो' को कार्यान्वित करने के लिए एक बार फिर प्रयत्न करने जा रहे है। भारत में ऐसे बहुत से लोग हैं जो क्रिप्स से यह आशा नहीं करते थे। यह काम तो मि0 ऐमरी जैसे अनुदार

1- The Indian Annual Ragister, 1904 : page-340 पर उद्घृत

2– सत्य शकुन मैं तुम्हे आजादी दूंगा ; भाग–2 पृष्ठ 130

3- The Slatesman : March 1942.

राजनीतिज्ञ के लिए ठीक था।

ब्रिटेन ने अपने साम्राज्य के अन्य भागों में उदाहरण के लिए आयरलैण्ड और पैलेस्टाइन मे लोगों मे फूट डालने के लिए धार्मिक प्रभाव उपयोग किया। भारत में उसी उद्देश्य से ब्रिटेन न केवल धार्मिक प्रश्न को ही काम में ला रहा है वरन् अन्य साम्राज्यवादी हथियार जैसे भारतीय नरेशों और दलित वर्गो का उपयोग कर रहा है। साम्राज्यवाद के इन्ही औजारों को साम्राज्य के हित में काम लाने के लिए क्रिप्स भारत आये है।

यह कम महत्वपूर्ण नहीं कि क्रिप्स पुरानी साम्राज्यवादी नीति का प्रयोग अर्थात एक वर्ग से समझौता करने और दूसरे वर्ग का दमन करने का षडयन्त्र कर रहे है। यही कारण है कि क्रिप्स जहाँ एक प्रकार के राजनीतिज्ञों से वार्तालाप कर रहे है वहाँ निडर और समझौता विरोधी स्वतन्त्रता के योद्धाओं को जेलों में बन्द कर दिया गया है। भारतीय जनता ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की इस घृणित नीति को अच्छी तरह जानती है।[1]

लन्दन के पत्र 'दैनिक टेलीग्राफ' ने जैसा लिखा है कि इन प्रस्तावों मे कोई भी नई मूल बात नहीं है। सार रूप में यह साम्राज्यन्तर्गत डोमिनियन स्टेटस है जो कि युद्ध की समाप्ति के उपरान्त ही चरितार्थ होगा।[2] परन्तु प्रस्ताव की शर्तो और क्रिप्स के भाषण तथा मैंचेस्टर गार्जियन जैसे पत्रों की टिप्पणियों से स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार की वास्तविक इच्छा भारत को अनेक राज्यों में बांट देने की है, जिस प्रकार पिछले महायुद्ध के अन्त में आयरलैण्ड को बांट दिया गया। मुझे विश्वास है कि भारत इस प्रस्ताव की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेगा। स्वभाव से ही भारतीयों में आतिथ्य गुण विद्यमान है। अस्तु, क्रिप्स यदि आतिथ्य को यह मान लें कि भारत उनके प्रस्ताव स्वीकार कर लेगा तो वे बहुत बड़ी भूल करेंगें।[3]

निष्कर्षता कहा जा सकता है कि सुभाष बोस का सम्पूर्ण जीवन ही साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष का साक्षात इतिहास है। देश को ब्रिटिश साम्राज्यवाद की श्रृंखलाओं से मुक्त कराने के आदर्श के प्रति उनकी लगभग उन्मादपूर्ण निष्ठा तथा राष्ट्र के लिए उन्होने जो घोर कष्ट सहे उनके कारण उन्हें सदैव प्रथम श्रेणी के राष्ट्रीय वीर के रूप में अभिन्नदित किया जाएगा।

1— आजाद हिन्द रेडियों पर प्रसारित सुभाष बोस का भाषण—25 मार्च 1942.

2- Reported in the Dialy Telegraph-1942, London.

3- Selected Speeches of Subhas Chandra Bose.

कारागार से मुक्त होने के बाद सुभाषचन्द्र बोस, 10 दिसम्बर से 24 दिसम्बर (1941) तक पत्राचार में ब्यस्त रहे। सवेरे के समय मित्र बन्धु वर्ग तथा अन्य परिचित अपरिचित व्यक्तियों से मिलते। डाक्टरों ने उन्हें पूरे आराम की सलाह दी थी। इस बार वे जेल में अत्याधिक मानसिक तनाव से पीड़ित रहे थे। जेल अवधि में उन्होने अपने पूरे राजनीतिक जीवन का आलोड़न अवश्य किया होगा। इन बीस वर्षो (1921–1940 में से ब्रिटिश सरकार के कोप–भाजन होने के कारण पाँच वर्ष वे योरूप मे काट आये थे। शेष पन्द्रह वर्षो में ग्यारह बार छोटी–बड़ी ग्यारह कैद भोगचुके थे[1] ब्रिटिश सत्ता उन्हें सबसे खतरनाक व्यक्ति समझती थी।

किन्तु अब ! पिछले दो वर्षो से उनके अपने देशवासी, उनके अपने नेता, गांधी द्वारा परिचालित कांग्रेस के नेता, उनके विरूद्ध खड़े हो गये थे। गांधी ही नहीं जवाहर लाल नेहरू भी !! जिन्हें वे अपना अग्रज मानते थे। उनके मस्तिष्क मे यह बात आयी कि भारत में रहकर भारत की स्वतन्त्रता के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता है। उन्हें सावरकर का परामर्श भी ध्यान आया होगा! विदेशी आन्दोलनों के इतिहास में भी उनके संदर्शक रहे हों। अब वे भारत जैसी बड़ी जेल में जाना चाहते थे। वे शत्रु के शत्रु की सहायता से संघर्ष करना चाहते थे।

दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह से सुभाष बोस ने बाहर निकलना बन्द कर दिया। दाढ़ी बढ़ा ली। उनकी सब चीजें शरतचन्द्र बोस के चहाँ पहुंचा दी गयी। डा0 एन बी खरे ने लिखा है कि जनवरी 1941 में जब वे बोस से मिलने गये, तब वे विस्तर पर पड़ें थे उन्हाने दाड़ी मूछें रख ली थी। विस्तर के सिरहाने पूजा की कुछ सामग्री पड़ी थी। पास मे गीता और कुछ धार्मिक ग्रन्थ भी थे। विस्तर पर जपमाला थी थी। रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द तथा कुछ अन्य सन्तों की आदम- कद तस्वीरें दीवारों पर लटकी हुई थी। कमरे में घुसे तो लगा राजनीतिज्ञ के कक्ष की जगह किसी साधु आश्रम में पहुंच गये है।

.........जब तक सुभाष बोस का विश्वास पात्र न हो किसी को अन्दर जाने की इजाजत नहीं थी। लगता था परिवार सदस्यों या नौकरों तक को अनुमति नहीं थी। भोजन बड़े

1– आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 115

विचित्र ढंग से पहुँचाया जाता। खिड़की के एक छोटे से रास्ते से खाने की थाली सरका दी जाती। आसानी से नतीजा निकाला जा सकता था कि कमरे का वातावरण बड़ा रहस्यपूर्ण है।[1]

शरतचन्द्र बोस के पुत्र शिशिर कुमार बोस उनके सबसे अधिक विश्वास पात्रों मतें से थे।[2] जनवरी के प्रथम सप्ताह तक भारत छोड़ने की पूरी तैयारी हो चुकी थी। पलायन की योजना सर्वथा गोपनीय रखी गई थी। परिवार के कई सदस्यों तक को इसकी जानकारी नहीं थी। शिशिर कुमार बोस ने 'महानिष्क्रमण' ग्रन्थ में लिखा है कि सारा काम बड़ी दक्षता से सम्पन्न किया जाना था। अन्य किसी व्यक्ति से एक शब्द तक कहने की अनुमति नहीं थी।[3] शिशिर कुमार ही उनके पास रात को जाते इसलिए सन्देह के लिए कोई अवकाश न था। स्वयं शरतचन्द्र अपने भाई से अन्तिम बार पूर्व सन्ध्या को मिले थे।

कलकत्ता से सुभाष बोस का निष्कासन :-

16 जनवरी 1941! रात 9 बजे शिशिर कुमार ने कार लाकर हमेशा की तरह घर की पिछली सीढ़िया के पास खड़ी कर दी। रात 1 बजे के लगभग सुभाष बोस पढानी वेश में पिछली सीढ़ियों से उतरकर कार की पिछली सीट मे जा बैठे। कार चुपचाप निकल गई। एलगिन रोड का चौराहा पार करके ग्राण्ड ट्रंक रोड पर पहुॅची। वे लोग सवेरे बरारी (धनवाद के पास) पहुँच गये। सुभाष चन्द्र बोस ने शरतचन्द्र बोस के ज्येष्ठ पुत्र डा0 अशोक नाथ बोस के बंगले पर बीमा कम्पनी के काम से आये मेहमान के रूप में दिन बिताया। इसके बाद सुभाष रात को गोमेह निकल गये। यहाँ से सुभाष बोस को उत्तर भारत के लिए रेल पकड़नी थी।शिशिर से बोले, - " मैं चला तुम अब वापिस जाओ[4]

दस दिन तक चारों ओर खामोशी रही। इसी बीच भाई के दानों पुत्र प्रचार करते रहे कि वे एकान्तवास में हैं 26 जनवरीको भोजन की अनछुई थाली द्वारा समाचार प्रकाशित कर दिया गया सुभाष बोस कुछ पोस्ट कार्ड लिखकर छोड़ गये थे जिन्हे उनके जाने के बाद डाला गया। 27 जनवरी को मुकद्दमे की पेशी थी। 26 जनवरी को समाचार सार्वजनिक हो गया। कलकत्ता भर में तरह तरह की अफवाहें फैलने लगी। अनुमानों की होड़ा हाड़ी थी। कोई कहता सरकार के किसी आदमी ने उन्हे कत्ल कर दिया है कोई कहता 'तंग

1- N.B. Khare : My political Memoirs : 46 (1959)
2– आशा गुप्त– सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 115
3- Sisir Kumar Bose and Sujata Bose - Mahanish kirman . Calcutta
4– शिशिर कुमार बसु : महानिष्क्रमण !

आकर हिमालय की तरफ चले गये होंगें'।

27 जनवरी को देश भर के समाचार पत्रों में सुभाष बोस के गायब होने की खबरें छप गयी। आनन्द बाजार पत्रिका ने लिखा, "सुभाष चन्द्र बोस ने अप्रत्याशित तरीके से घर त्याग दिया। पिछले रविवार शाम से श्रीयुत सुभाष चन्द्र बोस को उनके निवास भवन के कमरे में न देख पाने से उनके दोस्त तथा आत्मीयजनो के मध्य गहरी उत्तेजना फैल गयी है। पिछले दिसम्बर महीने के प्रथम सप्ताह को जेल से मुक्त हो जाने के बाद वे दिन रात एक ही स्थान पर रह रहे थे।[1]

इस तरह पूरे बंगाल को यह सरसनी खेज खबर मिल गयी। कहाँ गया वह विप्लवी! वह क्रान्तिकारी! ब्रिटिश सरकार किंकर्तव्य विमूढ़ थी। गांधीजी ने शरतचन्द्र को तार भेजा, "सुभाष के बारे में चौंका देने वाली खबरे मिली हैं। तार द्वारा सूचित किया जाए कि सच क्या है।" शरत बाबू ने जबाबी तार का उत्तर भेजा, "हम भी सुभाष के पते ठिकाने और उनके संकल्प के बारे में उतने ही अन्धकार में है जितनी जनता है। तीन दिन से पूरी कोशिश के बाबजूद कोई सूचना नहीं । परिस्थिति से वैराग्य संकेतित है।[2]

सुभाष बोस के राजनीतिक विचारों से अवगत कुछ लोगों को यह भी सन्देह था कि पिछले दिनों जो जापानी स्टीमर कलकत्ता बन्दरगाह से गया है। सुभाष बोस शायद उससे चले गये। युद्ध में जापान की कोई भूमिका नहीं थी, वे देश की आजादी के लिए विदेशी शक्तियों से सम्पर्क करना चाहते हो' देश को बोस की कोई सूचना नहीं मिली। रयूटर ने 28 मार्च 1942 को रिपोर्ट दी कि जापान के तट के पास बोस विमान -दुर्घटना के शिकार हो गये,[3] किन्तु न्यूज एजेन्सी ने अविलम्ब समाचार का खण्डन कर दिया था। अनुमानों के घोड़े दौड़ रहे थे। लगभग सोलह महीने तक अफवाहें उड़ती रहीं। वे यहाँ पर है ....उन्हें वहां देखा है................वे कहां है ?

31 मार्च 1941 को शरत चन्द्र बोस के बुडबर्न पार्क निवास पर सीमान्त प्रदेश से भगतराम तलवार नामक आदमी पहुंचा, शिशिर कुमार से भेंट की। उनके पिता शरतचन्द्र

1- Reported the Anand Bazar Patrika - 27 January 1941

2- Subhas Chandra Bose : The Indian Struggle (1920-42) Sisir K.Bose and Sujata Bose

3- Reported the Ruter - 28 March 1942.

बोस को तीन दस्तावेज पकड़ायें, [1] भाई के नाम बंगला में पत्र (2) फारवर्ड ब्लाक : इट्स जस्टिफिकेशन (3) ए मैसेज टू माई कन्ट्री-मैन। अगले दिन भगतराम तलवार ने उनके साथ विक्टोरिया मैमोरियल गार्डेन्स में चहल कदमी करते हुए सुभाष बोस के भारत-परित्याग की पूरी दास्तान कह सुनायी शरत बोस ने भगतराम को सत्य रंजनी बक्शी से मिलवाया। बह सुभाष बोस के विश्वास पात्रों में से थे। और गुप्त बंगाल बालंटियर सैन्य संगठन (कोर) का नेता था। सुभाष बोस ने जापान कांसुलेट द्वारा सम्पर्क स्थापित कर लिया था। यह सिलसिला नवम्बर 1941 तक चलता रहा था।

जिस समय पूरे देश विशेष कर बंगाल प्रान्त में सुभाष बोस के अदृश्य होने के सम्बन्ध में अनुमान लगाये जा रहे थे, उस समय, यानी 19 जनवरी 1941 को वे फ्न्टियर मेल से पेशावर छावनी उतरे।- मोहम्मद जियाउद्दीन!! मूक एवं बधिर! बीमा कम्पनी का एजेन्ट! लम्बी शेखानी, पठानी कुर्ता और ढीला पायजामा। स्टेशन से तांगा पकड़ा और ताजमहल होट्ल पहुंचे। बराबर बाले तांगे मे सवार अकबर शाह उनकी निगाहवानी करता रहा। अगले दिन सवेरे उन्हें किराये के मकान में पहुँचा दिया गया। कीर्ति किसान दल और उत्तर पश्चिमी सरहद के फारवर्ड ब्लाक के सदस्य भगतराम तलवार ने उनसे मिलकर आगामी काबुल यात्रा के सम्बन्ध में योजना बनायी। सुभाष बोस सात दिन पेशाबर मे रहे तथा 26 जनवरी 1941 को वे भगतराम तलवार, अबद खॉ तथा एक संदर्शक को लेकर कार से रववाना होगये। अब भगतराम था रहमत खॉ। पूरी पार्टी कवायली इलाका जो, ब्रिटिश भारत और अफगानिस्तान में मध्यवर्ती राज (वफर स्टेट) का काम करता था, वहीं पर उतर पड़ी। यहॉ से अबद खॉ को पेशावर लौटा दिया गया।

इस प्रकार चलते चलते 28 जनवरी 1941 को रात 1 बजे वे लोग अफगान सीमाओं पर पहुँच गये तथा यहॅं से संदर्शक को वापिस कर दिया गया । 28 जनवरी की राज को 10 बजे वे लोग जलालाबाद पहुँच गये। 29 जनवरी को उन्होने अड्डा-शरीफ की दरगाह मे व्यतीत की। नमाज भी पढ़ी। भगतराम यहॉ हाजी मुहम्मद अमीन नामक व्यक्ति से मिला। वह भगतराम के साथ पेशावर जेल में रह चुका था[2] उसने इन्हें आगे के सफर के बारे मे बहुत सी जानकारी और हिदायतें दी और बदखाक चैक पोस्ट पर विशेष सावध

1— आशा गुप्त, सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक पृष्ठ—117

2— सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा—भाग 2 ; पृष्ठ—105

ानी बरतने का परामर्श दिया। उन दिनों भारत-अफगानिस्तान के बीच कोई औपचारिक पार पत्र इस्तेमाल नहीं होता था।

30 जनवरी 1941 को वे लोग तांगे से काबुल के लिए चल पड़े । 31 जनवरी को सवेरे 5 बजे बदखाक आ गये और छह घण्टे बाद यानी ग्यारह बजे वे लोग काबुल में थे। बोस और भगतराम दोनों के लिए काबुल अजनवी शहर था वे लाहौरी दरवाजे के पास किसी सराय में टिक गये। 1 फरवरी 1941 से बोस और भगतराम दोनों ने काबुल मे विदेशी दूतावासों से सम्पर्क का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। सबसे पहले रूसी दूतावास तक पहुंचने की कोशिश की गयी। एक तो सोवियत रूस योरुप के रास्ते मे पड़ता था दूसरे सोवियत जर्मनी में अनाक्रमण सन्धि थी। बोस इसका लाभ उठाकर ब्रिटेन पर हमला कर सकते थे। किन्तु भारत छोड़ने से पूर्व जिन व्यक्तियों की मध्यस्थता से बोस रूस के साथ निश्चित योजना की उम्मीद कर रहे थे, वह फलीभूत नहीं हुआ।

अफगान सरकार से बोस को खतरा था इसलिए वे काबुल से यथाशीघ्र निकल जाना चाहते थे अनथक प्रयासों के बावजूद ये लोग रूसी दूतावास तक नहीं पहुंच पाये। एक दिन भगतराम ने रूसी दूतावास की कार चौराहे पर रूकते देखी तो ड्राइवर से फारसी में बोस बाबू के सम्बन्ध में बताया। बोस सड़क के किनारे जरा दूर पर खड़े थे। उत्तर मिला कि सुभाष चन्द्र बोस ही है, इसकी पहचान कैसे हो ? बात वहीं समाप्त हो गई

सराय में अफगान सरकार का एक गुप्तचर इनके पीछे लग गया। कोतवाली ले जाने की धमकी देकर उसने दो बार सिक्के वसूल किये तथा भगतराम की घड़ी तक उतरवा ली। सुभाष बोस का सराय में रूकना अब खतरे से खाली नहीं था तभी सुभाष बोस और भगतराम ने उत्तम चन्द्र के मकान में पहुँचकर शरण ली।[1]

सराय निवास के दौरान सुभाष बोस 6 फरवरी को जर्मन दूतावास अकेले ही पहुच गये और मंत्री मिस्टर पिल्गर से मिलने में भी सफल हो गये।[1] किन्तु पिल्गर ने जरूरत से ज्यादा सावधानी बरती। उसने इन्हें सलाह दी कि काबुल में साइमन्स के प्रतिनिधि टॉमस द्वारा सम्पर्क बनाये रखे। मंत्री पिल्गर ने बर्लिन से आदेश प्राप्त करने का वादा भी कर लिया। 15 फरवरी तक जर्मन दूतावास से उत्साहवर्धक कोई सूचना नहीं मिली। भगतराम

1- Pandit, H.N. - Netaji Subhas Chandra Bose : From Kabut to the Battle of Imphol.

उत्तमचन्द्र को साथ लेकर विदेशी दूतावासों और लगेशन्स का चक्कर काटते रहे। बोस ध ार से कम ही निकलते। पहचाने जाने का खतरा था। उत्तम चन्द्र के पड़ौसियों को इस बीच सन्देह हो गया। बोस को पुनः सराय में जाना पड़ा इसके अतिरिक्त किसी विदेशी से मिलकर करते भी क्या ? शिनाख्त के लिए उनके पास केवल अपना कथन था तात्पय्र यह कि रूसी दूतावास पहुँच से बाहर रहा, जर्मन दूतावास उदासीन।

टॉमस की सहायता से इटैलियन दूतावास के साथ अवश्य सम्पर्क हो पाया। उसने 23 फरवरी 1941 को सूचना दी कि इटैलियन मंत्री एल्बर्टी। कुअरोनी से निष्क्रमण के सम्बन्ध में बातचीन की जा सकती है। भगतराम ने टाम से मिलकर सुभाष बोस की भें ट की व्यवस्थ कर दी। मार्च 1941 में दोनों की भेंट हुई।[1] समालाप सारी रात चलता रहा। भारत की आजादी के बारे मे बोस की निश्चित योजना थी ही। उन्होने कुअरोनी को बताया कि भारत क्रान्ति के लिए पूरी तरह तैयार है, केवल पहला कदम उठाने का साहस नहीं बटोर पा रहा है। सक्रियता में सबसे बड़ी बाधा अपनी सामर्थ्य पर अविश्वास तथा ब्रिटिश का दबाव है। यदि 50,000 इटैलियन, जर्मन और जापानी भारत की सीमाओं पर पहुँच जाऐं तो ब्रिटिश सेना भाग खड़ी होगी। जनता में क्रान्ति का संचार हो जायेगा।

इस प्रकार यथा शीघ्र ब्रिटिश सत्ता से मुक्ति पायी जा सकेगी। उन्हाने इट्ली या जर्मनी अथवा दोनों देशों से आजाद हिन्द सरकार के लिए विशेष रेडियों प्रसारण की सुविध ा की आकांक्षा भी प्रकट की। कुअरोनी को सन्देह था कि बोस की यह क्रान्किारी योजना -बर्लिन या रोम किसी को भी रूचिकर नहीं होगी। किन्तु बोस कुअरोनी की बात से हतोत्साहित नहीं हुए। वे तो स्वदेश से सारे नाते तोड़कर देश मुक्ति के इसी लक्ष्य के निमित्त निकल पड़े थे। फिर कुअरोनी ने अपनी पत्नी के माध्यम से उत्तम चंद की दुकान तक सन्देश लाने ले जाने की व्यवस्था कर दी। 2 अप्रैल 1641 को कुअरोनी ने अपनी सरकार को बोस के साथ समालाप का संक्षिप्त विवरण रोम भेज दिया[2]

लगभग चार सप्ताह बाद सोबियत सरकार से सूचना प्राप्त हुई तीनों सरकारों की सह-स्वीकृत-योजना इस प्रकार थी - बोस इटैलियन-लोकेशन-काबुल के क्लर्क के रूप में ओलण्डिो-मजोटा नाम से इटैलियन डिप्लोमैटिक पार-पत्र पर रूस के रास्ते से जायेंगें।

1— आशा गुप्त — सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रान्तिपथिक, पृष्ठ—120

2- Subhas Chandra Bose : The Indian struggle : 1920-42 Page. 415-418

अफगान– सरकार कूरियर बीसा देगी। बोस के जाने के एक सप्ताह पूर्व मिसेज कुअरोनी दुकान पर सन्देश छोड़ गयीं कि पार पत्र के लिए, मजोटा की जगह बोस का फोटो लगाया जाए। उसकी व्यवस्था की जाय। 16 मार्च 1941 को एक इटैलियन कर्मचारी सुभाष बोस का सफरी सामान ले गया। अगले दिन वे सिनोर क्रेसिनी के निवास स्थान पर आ गये। जाने से पहले बोस ने भगतराम को तीनों दस्तावेज पकड़ा दिये।इटली दूतावास ने व्यवस्था कर दी कि भगतराम भारत काबुल के बीच सम्पर्क सूत्र बनाये रखेगा तथा इटली सरकार की सहायता से काबुल में बोस के सम्पर्क की व्यवस्था कर दी जायेगी।[1]

18 मार्च 1941 को सुभाष चनद्र बोस टोड्ट आर्गनाइजेशन के जर्मन इंजीनियर तथा दो अन्य व्यक्तियों के साथ कार से सोवियत सीमा की तरफ चल पड़े तथा समरकन्द पहुंच गये। 20 मार्च 1941 को बोस ने समरकन्द से मास्कों के लिए ट्रेन पकड़ी वहाॅ से वायुयान के माध्यम से वर्लिन पहुंच गये। कहना न होगा कि सुभाष बोस का भाग्य ने साथ दिया कि वे सोवियत भूमि के रास्ते से बर्लिन तक पहुंच सके । जुन 1941 में जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया था। इससे पूर्व यानी अगस्त 1939 से लेकर बोस के निष्क्रमण काल तक दानों देश अनाक्रमण सन्धि द्वारा आवद्ध थे। 27 जुलाई को बर्लिन के परराष्ट्र दफ्तर के उच्चतम अधिकारी बोअरमैन ने सुभाष बोस के साथ समालाप का उल्लेख करते हुए कहा था कि रूस–जर्मनी की 1939 की अनाक्रमण सन्धि भारत के पक्ष में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। जिस बुद्धिजीवी–वर्ग का रूझाान राष्ट्रीय समाज की तरफ हो गया था वह जर्मनी और इटली राष्ट्रशक्ति एवं रूस से मिलकर भारत में ब्रिटिश राज्य समाप्त करने की प्रत्याशा कर रहा था।

ओरलाण्डो मजोटा को सरहद पार सोवियत संघ मे होना चाहिए था। वह अभी काबुल में मौजूद है–यह खबर जब तक अफगानिस्तान सरकार को मिली सुभाष चन्द्र बोस सैन्ट्रल एशिया पार कर चुके थे। लक्ष्य प्राप्ति के लिए बोस को हर संकट मोल लना उनकी आत्म निष्ठा एवं साहस का परिचायक था । गांधी जैसे धीर और अनमनीय व्यक्ति को भी बोस की दुस्साहसी जानलेवा योजना ने पूरी तरह झंझोड़ डाला था। मौलाना अबुल कलाम आजाद ने इंडिया विन्स फ्रीडम' में इसका संकेत दिया था कि सुभाष बोस के इस तरह जर्मनी

1- Reva Chatterjee, Netaji Subhas Bose, Bengal Revolution and Independence.

पहुॅच जाने से गांधी जी बहुत प्रभावित थें पहले वे बोस की बहुत सी क्रिया विधि को पसन्द नही करते थे अब उनके दृष्टिकोण मे परिवर्तन दिखाई पड़ रहा था। अति सामान्य साधनों की सहायता से बोस का भारत से बच निकलना मामूली बात न थी। आजाद का कहना है कि उससे गांधी की युद्ध सम्बन्धी दृष्टि को नयी दिशा मिल गयी थी। [1]

13 फरवरी 1941 से सैंतालीस दिन तक बोस और भगतराम को आश्रय देने वाले दुस्साहसी उत्तम चन्द्र मल्होत्रा के उल्लेख बिना बात अधूरी रह जाएगी। इस घटना के ठीक एक वर्ष बाद किसी अखबार की सुर्खियों से उत्तम चन्द्र को खतरे का अन्दाज हो गया। अफगान सरकार ने 25 मई 1942 को उसे चेतावनी दी कि अड़तालीस घण्टे के अन्दर यदि काबुल न छोड़ा तो परिणाम बुरा होगा।

27 मार्च 1942 को उसे गिरफ्तार करके जलालाबाद पहुचाया गया। चार वर्ष तक उसे एक से दूसरी जेल में फेंका जाता रहा। उत्तमचन्द्र ने बोस बाबू के साथ बिताये सैंतालीस दिन का लेखा जेल मे बैठकर उर्दू में दर्ज किया। देश जब आजादी के छोर पर पहुंचा तो रिहा होकर वह देवीदास गांधी से मिला। उनकी सलाह से उत्तमचन्द्र ने यह विवरण "व्हैन बोस वॉज जिलाउद्दीन" नाम से अंग्रेजी मे कलमबन्द किया। बोस के फरार होने की घटना का यह महत्वपूर्ण दस्तावेज है[2]

सुभाष चन्द्र बोस विदेश में :-

3 अप्रैल 1941 को सुभाष बोस इटैलियन पार पत्र पर ओरलान्डो मजोटा छद्मनामा से बर्लिन पहुॅच गये। दूसरा महायुद्ध जोरो पर था। 1940 के अन्त तक जर्मनी अपनी स्थिति सशक्त कर चुका था। इटली सेना जम्रनी की ओर से युद्ध रत थी। इस कारण जर्मनी का युद्ध मोर्चा काफी विस्तृत हो गया था। सुभाष बोस के जर्मनी पहुंचने की सूचना गुप्त रखी गयी थी। उनके कुछ निजी बन्धुओं को ही जानकारी थी। गणवाले के शब्दों में , "युद्ध में फंसे हुए जर्मनी के लिए बोस का संदिग्ध व्यक्तित्व इस समय समस्यापूर्ण था जर्मनी को समझ नहीं आ रहा था कि उनका प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करें अथवा सर्वथा उपेक्षा कर दे।[3] परन्तु बोस के प्रभावशाली व्यक्तित्व की उपेक्षा जर्मनी नहीं कर सका।

युद्ध प्रारम्भ होने से पहले, जर्मन सरकार को अपने कांसुल-जनरल तथा काबुल में

1- Maulana Abul Kalam Azad : India wins Freedom.
2- Uttamchand ; 'When Bose was Ziauddin,-1946
. नेताजी रिसर्च ब्यूरो की सूचनानुसार सुभाष बोस की पेशावर-निवास अवधि में उत्तर-पश्चिमी सरहद के फारवर्ड-ब्लॉक के संरक्षक मियां अकबरशाह ने बहुत मदद की थी। दिसम्बर 1940-जनवरी 1941 के बीच वह उनसे कलकत्ता में मिला भी था और शिशिर कुमार बोस के साथ सुभाष के छद्मवेश के लिए कुछ सामान खरीदा था।
3- B.G. Ganpuley : Netaji is Germany : 27

अपने प्रतिनिधियों द्वारा बोस के सम्बन्ध में बहुत सी सूचनाऐं प्राप्त हो चुकीं थी। कि बोस ब्रिटिश–साम्राज्यवाद के कट्टर विरोधी हैं। सूचना विभाग के निदेशक डा0एडम फोन ट्राट तथा उपनिदेशक एलैक्जैण्डर वर्थ को सुभाष बोस की देख रेख का दायित्व सौंप दिया गया यह बोस का सौभाग्य था कि उन्हें बर्लिन में ट्रांट और बर्थ जैसे सहृदय एवं सहानुभूतिशील अफसरों का साथ मिल गया जिन्हें भारत तथा उसकी समस्याओं से पर्याप्त परिचय था।

सुभाष बोस ने बर्लिन मे अपने उद्देश्य की किसी को जानकारी नहीं दी थी। अतः ट्रंट और बर्थ ने सुभाष बोस को नाजी अफसरों से दूर रखने की चेष्टा की। इन दोनों तथा इनके साथियों को सुभाष बोस के भारत मुक्ति के लक्ष्य का ज्ञान हो चुका था।

हिटलर से मुलाकात :-

हिटलर को भारत के बारे में कोई जानकारी नहीं थी वह अब तक भारत को अंग्रेजों के नजरिये से देखता रहा था। बोस के लिए हिटलर के मनोभाव को परिवर्तित करना आसान न था। अपने परराष्ट्र राजनीतिज्ञों द्वारा हिटलर को केवल इतना मालूम था कि सुभाष बोस भारत के उन गिनेचुने नेताओं में से हैं जो अपने देश की आजादी के लिए संघर्षशील हैं। किन्तु जर्मनी इस समय सुभाष बोस को सैन्य शक्ति द्वारा सहसयता नहीं देना चाहता था जब तक कि इसे बदले में कुछ ठोस उपलब्धि न हो। फिर भी बोस जैसे अनाहूत, संदिग्ध राजनीतिक नेता को उसने अपने देश में शरण दे दी थी। बोस शरण लेने के विचार से तो बर्लिन नहीं आये थे। वे तो अपने देश को आजाद कराने के लिए कोई कदम –बल्कि खतरनाक हद तक कदम उठाने को तैयार थे। युद्ध मे चारों तरफ से जर्मनी की विजय के समाचार ने उन्हें उत्साहित कर दिया था कि स्वदेश की स्वतन्त्रता के लिए सर्वोत्तम अवसर है किन्तु जर्मन–सरकार की गहरी उदासीनता ने इन्हे निराश कर दिया। वे होटल में टिके हुए थे जहॉ एक तरह की नजरबन्दी में रह रहे थे। अपरिचित लोग उनकी तलाशी लेने पहुॅच जाते उनका टेलीफोन टेप होता रहता। उन्हाने अपने साथियों को आदेश दिया कि अंग्रेजी भाषा में बातचीत बन्द कर दें।[1]

बोस ने 9 अप्रैल 1941 को जर्मन सरकार को एक 'गुप्त स्मारक' पत्र द्वारा भेजी। इसमें विगत विश्व युद्ध (1914–1918) में ब्रिटिश–सत्ता द्वारा भारतीय साधनों के दुरुपयोग

1- Girija Mukherjee : This Europe : 124

की चर्चा करते हुए संकेत दिया गया कि जर्मनी द्वारा पराजित हाने पर भी ब्रिटेन ने अपना अधिकार भारत पर यथावत कायम रखा है। वर्तमान युद्धमें भी वह भारतीय साधनों की सहायता से अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता है। बोस ने संकेत दिया कि भारत देश इस युद्ध में ग्रेट ब्रिटेन को पूरी तरह पराजित एवं नष्ट देखना चाहता था जिससे वह अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके। भारत वासियों का मनोभाव इस समय अत्यधिक विद्वेषपूर्ण तथा विद्रोहात्मक है अतः वह ग्रेट ब्रिटेन को उखाड फेंकने में अन्य शक्तियों को व्यवहारिक सहायता दे सकता है। यदि उसे यह विश्वास दिला दिया जाय कि धुरी राष्ट्र की विजय उसे आजादी दिलाने में सहायक होगी, तो उसका पूरा सहयोग प्राप्त किया जा सकेगां[1]

'स्मारक-पत्र' से संलग्न विस्तृत व्याख्या नोट में 1914-1918 के विश्व युद्ध, ब्रिटिश राज्य के सम्बन्ध में भारत के विचार, ब्रिटिश राज्य में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका वत्रमान युद्ध में ब्रिटिश-राजनीति के कुछ पक्ष, विगत विश्व युद्ध की तुलना में वर्तमान युद्ध में भारतवासियों का दृष्टिकोण- परिवर्तन, भारत में वर्तमान सैन्य व्यवस्था सूदूर पूर्व जापान की विदेश नीति का भारत के लिए महत्वपूर्ण सात विन्दुओं पर स्पष्टीकरण था।

9 अप्रैल1941 वाले 'स्मारक पत्र' का कोई उत्तर न मिलने पर सुभाष बोस ने जर्मन सरकार को 3 मई 1941 को अनुपूरक-स्मारक-पत्र भेजा इसमें पांच बिन्दु विचाराध ीन थे- (1) भारत तथा अन्य अरब देशों की आजादी की यथाशीघ्र घोषणा। (2) इन देशों में ग्रेट ब्रिटेन के प्रति यथा शीघ्र विद्रोह की व्यवस्था।(3) धुरी शक्तियों द्वारा ब्रिटिश राज्य के हृदय, यानी भारत में ब्रिटिश सत्ता पर आधात। (4) भारत में ब्रिटिश राज्य पर आक्रमण के हेतु ब्रिटिश समर्थक अफगानिस्तान सरकार की कार्यकारिता में व्यवधान उत्पन्न करना तथा (5) भविष्य मे प्रयोजन हो तो ग्रेट ब्रिटेन के विरूद्ध इराक को सैन्य सहायता देना।

उक्त योजना की स्वीकृति से पहले ही यदि तुर्की या सोवियत राज्य के साथ जर्मनी का युद्ध ठन जाता है तो वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध प्राच्य देशों की युद्ध में अर्जित सहानुभूति खो बैठेगा[2]

इस 'अनुपूरक स्मारक पत्र' के दौरान बर्लिन रेडियो से प्रसारित ब्रिटेन ईरान युद्ध का हवाला देते हुए सुभाष बोस ने 'पुनश्च' के अनतर्गत दबाब डाला कि इस मनोवैज्ञानिक वातावरण के परिप्रेक्ष्य में ग्रेट ब्रिटेन के विरूद्ध अविलम्ब कोई निर्णय लेना अनिवार्य है।

1- Subhas Chandra Bose : The Indian Struggle : 1920-42 : 419-422

2- Ibid

की चर्चा करते हुए संकेत दिया गया कि जर्मनी द्वारा पराजित हाने पर भी ब्रिटेन ने अपना अधिकार भारत पर यथावत कायम रखा है। वर्तमान युद्धमें भी वह भारतीय साधनों की सहायता से अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता है। बोस ने संकेत दिया कि भारत देश इस युद्ध में ग्रेट ब्रिटेन को पूरी तरह पराजित एवं नष्ट देखना चाहता था जिससे वह अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके। भारत वासियों का मनोभाव इस समय अत्यधिक विद्वेषपूर्ण तथा विद्रोहात्मक है अतः वह ग्रेट ब्रिटेन को उखाड फेंकने में अन्य शक्तियों को व्यवहारिक सहायता दे सकता है। यदि उसे यह विश्वास दिला दिया जाय कि धुरी राष्ट्र की विजय उसे आजादी दिलाने में सहायक होगी, तो उसका पूरा सहयोग प्राप्त किया जा सकेगां[1]

'स्मारक-पत्र' से संलग्न विस्तृत व्याख्या नोट में 1914-1918 के विश्व युद्ध, ब्रिटिश राज्य के सम्बन्ध में भारत के विचार, ब्रिटिश राज्य में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका वत्रमान युद्ध में ब्रिटिश-राजनीति के कुछ पक्ष, विगत विश्व युद्ध की तुलना में वर्तमान युद्ध में भारतवासियों का दृष्टिकोण- परिवर्तन, भारत में वर्तमान सैन्य व्यवस्था सूदूर पूर्व जापान की विदेश नीति का भारत के लिए महत्वपूर्ण सात विन्दुओं पर स्पष्टीकरण था।

9 अप्रैल1941 वाले 'स्मारक पत्र' का कोई उत्तर न मिलने पर सुभाष बोस ने जर्मन सरकार को 3 मई 1941 को अनुपूरक-स्मारक-पत्र भेजा इसमें पांच बिन्दु विचाराधीन थे- (1) भारत तथा अन्य अरब देशों की आजादी की यथाशीघ्र घोषणा। (2) इन देशों में ग्रेट ब्रिटेन के प्रति यथा शीघ्र विद्रोह की व्यवस्था।(3) धुरी शक्तियों द्वारा ब्रिटिश राज्य के हृदय, यानी भारत में ब्रिटिश सत्ता पर आधात। (4) भारत में ब्रिटिश राज्य पर आक्रमण के हेतु ब्रिटिश समर्थक अफगानिस्तान सरकार की कार्यकारिता में व्यवधान उत्पन्न करना तथा (5) भविष्य मे प्रयोजन हो तो ग्रेट ब्रिटेन के विरूद्ध इराक को सैन्य सहायता देना।

उक्त योजना की स्वीकृति से पहले ही यदि तुर्की या सोवियत राज्य के साथ जर्मनी का युद्ध ठन जाता है तो वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध प्राच्य देशों की युद्ध में अर्जित सहानुभूति खो बैठेगा[2]

इस 'अनुपूरक स्मारक पत्र' के दौरान बर्लिन रेडियो से प्रसारित ब्रिटेन ईरान युद्ध का हवाला देते हुए सुभाष बोस ने 'पुनश्च' के अनतर्गत दबाब डाला कि इस मनोवैज्ञानिक वातावरण के परिप्रेक्ष्य में ग्रेट ब्रिटेन के विरूद्ध अविलम्ब कोई निर्णय लेना अनिवार्य है।

1- Subhas Chandra Bose : The Indian Struggle : 1920-42 : 419-422

2- Ibid

गणपुले का अनुमान है कि सुभाष बोस ने इन स्मारक पत्रों का मसविदा बड़ी सावधानी से तैयार किया था जिससे एक तरफ उनको अपने देश तथा देशवासियों के लिए कुछ ठोस सेवा का सन्तोष मिले और दूसरी तरफ जर्मन अधिकारियों को भी असन्तोष न हो।[1]

हिटलर ने भी सुभाष बोस की इस योजना पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया होगा क्योंकि उसे मालूम था कि बोस महत्वपूर्ण भारतीय नेता है उस देश के निवासी इनका आदेश मानते है, बड़ी संख्या में इनके अनुयायी भी हैं। यदि रेडियों-प्रसारण द्वारा भारतीयों से अपील का अवसर मिल जाये तो वे इनके अनुदेश पर विभिन्न राज्य के विरूद्ध क्रान्ति पर उतारु हो जायेंगें। ब्रिटिश सरकार भारतीय साधनों पर निर्भर हैं। देश में क्रान्ति होने पर बिटेन को करारी हार का सामना करना पड़ेगा।हिटलर यह भी जानता था कि स्वयं भारतवासी ब्रिटिश राज्य द्वारा देश के साधनों के दुरूपयोग के कट्टर विरोधी है।[2]

एम तथ्यबुल्लाह के शब्दों के, 'उसकी (भारत) इच्छा और सहमति के विरूद्ध उसे युद्ध में घसीटा गया। यह उपमहाद्वीप युद्ध मंच बन गया जो आंगल-अमरीकी पूर्वी-युद्ध मोर्चे का मुख्य आधार बना। बलपूर्वक या छल षडयंत्र द्वारा उसके देश वासियों और आर्थिक साधनों का दुरुपयोग किया गया।'[3]

20 मई 1941 को सुभाष बोस ने इटैलियन दूतावास की मारफत बर्लिन से रहमत खां को टेलीग्राफ द्वारा काबुल सन्देश भेजा कि अर्न्तराष्ट्रीय राजनीति की तरफ से ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड़ फेंकने की बहुत शीघ्र कार्यवाही की सम्भावना है। अतः पूरे विश्व, विशेषकर प्राच्य देशों में , ब्रिटेन के विरूद्ध खुले प्रचार का समय आ गया है। आगामी पन्द्रह दिनों में धुरी शक्तियों द्वारा भारतीय स्वतंत्रता की खुली घोषणा की आशा है।[4]

उधर सुभाष बोस की आशाओं के प्रतिकूल जर्मन सरकार का कार्य बड़ी मन्द गति से चल रहा था । जून 1941 को जर्मनी ने रूस पर हमला कर दिया। बोस अभी इटली में थे। इन्हें जर्मनी का यह कदम अविवेकपूर्ण लगा। उनको यह भी चिन्ता थी कि न जाने भारत वास्यिों पर इस आक्रमण की क्या प्रतिक्रिया होगी। बोस की धारणा थी कि जर्मनी रूसी युद्ध में निश्चय ही भारत की रूस के प्रति सहानुभूति रहेगी। क्योंकि जर्मनी आक्रामक था। अतः बोस ने पर-राष्ट्र-दफ्तर के सैक्रेट्री-आफ स्टेट अर्नेस बोअरमैन से आग्रह

1- Ganpuley : Netaji in Germany : 36

2- आशा गुप्त- सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति-पथिक : विदेश में -127

3- Between the symbol and the Idol al last : 112

4- Subhas Chandra Bose : The Indian Struggle : 1920-42 : 434-436

किया कि इन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय स्वतन्त्रता की घोषणा और भी आवश्यक हो गयी है।फिर भी इटली और जर्मनी दानों इस घोषणा के लिए तैयार नहीं हुए।[1]

इस बीच स्मारक पत्रों का प्रभाव यह हुआ कि हिटलर और जर्मन अधिकारी जो अब तक तटस्थ और उदासीन थे, कदाचित पुनर्विचार करने को बाध्य हो गये।

इस प्रकार सुभाष बोस भारत वासियों को एक तरफ ब्रिटिश साम्राज्य की समूल नष्ट करनके लिए उद्‌बुद्ध करते रहे और दूसरी तरफ धुरी-राष्ट्र को पूरा सहयोग देने की अपील करते रहे। उन्हाने ब्रिटिश सत्ता के समर्थक राज भक्तों को सावधान किया कि यदि भारत युद्ध में फंसा दिया गया तो वे इसके उत्तरदायी समझे जायेगें। उन्होने कहा कि –'ब्रिटेन भारत को युद्ध में सहभागी बनाकर उसके साधनों का पूरा लाभ उठाना चाहता है। ब्रिटेन को युद्ध में सहयोग देने से न केवल उसे उखाड़ फेंकने में विलम्ब होगा बल्कि भारत की आजादी हासिल करने में भी बाधायें पैदा हो जायेंगी।'[2]

बोस ने बताया कि 'अट्‌ठारह मास की योरुप-प्रवास- अवधि में उनका यह अनुभव रहा कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद से संघर्ष में जापान, जर्मनी और इटली भारत का मित्र पक्ष की तरह साथ देंगें। इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि स्वयं भारत का कोई दायित्व नहीं है। स्वतन्त्रता भारत को अपने बल पर अर्जित करनी होगी। स्वतन्त्रता का अर्थ है- ब्रिटिश और अमरीकी साम्राज्य का उन्मूलन।[3]

1– आशा गुप्त–सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति–पथिक–विदेश में –129
2- Selected Speeches of Subhas Chandra Bose : 140
3- S.N. Bhattacharya : Netaji Subhas in self-exile : His Finest Hour:46

२. आजाद हिन्द फौज का संगठन तथा बोस का सैनिक राष्ट्रवाद

आज आप भारत के राष्ट्रीय गौरव के संरक्षक हैं और भारत की आशाओं और अभिलाषाओं के सजीव रूप हैं इसलिए आप अपना व्यवहार ऐसा बनाइये कि आपके देश वासी आपको आर्शीवाद दें और भावी पीढ़ियॉ आप पर गर्व करें।

–आजाद हिंद फौज के सैनिक – निरीक्षण पर दिया गया भाषण (05/07/1943)

सुभाष चन्द्र बोस के जीवन की सबसे पहली आकांक्षा थी कि वो क्रान्ति की भिन्न–भिन्न इकाइयों को संगठित कर इंडियन नेशनल आर्मी बनायें ताकि भारत से ब्रिटिश हुकूमन को उखाड़ फेंका जा सके लेकिन भारत की विभिन्न पार्टियों ने उनेक इस कार्य को हतोत्साहित किया।[1]

सुभाष बोस के सात महीने के अनथक परिश्रम के बाद 1941 में बर्लिन में 'आजाद हिन्द संघ' कायम हो गया जो औपचारिक कार्यवाही केन्द्र था।[2] इसके अन्तर्गत रेडियों द्वारा प्रचार कार्य तथा भारतीय फौज (इण्डियन लीजन) का परिचालन था आजाद हिन्द केन्द्र कुल पैंतीस सहकर्मियों से प्रारम्भ हुआ था। एलेक्जैण्डर वर्थ के अनुसार सुभाष बोस का आकर्षक व्यक्तित्व एवं कर्मनिष्ठा सदस्यों की संख्या में अभिवृद्धि का मूल कारण थी। उनका कहना था कि सम्पूर्ण कार्य का केन्द्र स्वयं नेताजी है। वे शक्तिशाली लीडर तथा कुशल अध्यक्ष हैं। उनकी विवेचना रचनात्मक होती। वे सदस्यों के व्यक्तिगत कामों तक पर ध्यान देते। उनका मस्तिष्क नित्य नये विचारों से भरा रहता। वे स्टाफ की व्यक्तिगत समस्याओं के प्रति अंत्यन्त उदार तथा सहानुभूमि शील थे।

प्रारम्भ में केन्द्र का काम विखरा विखरा सा रहा। हर सदस्य मनमाने तरीके से काम करता। सुभाष बोस के आने के बाद इसका प्रबन्ध सुव्यवस्थित हो गया । आपसी विचार भेद के बावजूद सब सदस्य स्वदेश मुक्ति आन्दोलन को अपना कर्तव्य समझने लगे।[3]

गणपुले के अनुसार 'हिज एक्सलैंसी, सुभाष चन्द्र के व्यक्तित्व को इसका पूरा श्रेय दिया जा सकता है।[4] 1942 में बोस ने ए0जी0एन0नाम्बियार को अपना डिप्टी तथा

1- Reva Chatterjee - Netaji Subhas Bose, Bengal Revolution and Independence page 77.
2– आशा गुप्त–सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : विदेश में, पृष्ठ.129
3- Alexander werth and walter Harbich : Netaji in Germany : (cal.1970)
4- Ganpuley : Netaji in Germany : Appendix : 190-191

उत्तराधिकारी मनोनीत कर लिया था। इस तरह नाम्बियार जर्मनी के आजाद हिन्द संघ के अन्तर्गत भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की कार्य विधि के संलाचक हो गये। संघ में हबीबुर्रहमान तथा एन0जी0 स्वामी जैसे कुछेक वफादार सदस्य और भी थे जो बोस को निरन्तर सहयोग देते रहे।

आजाद हिन्द संघ का एक मात्र लक्ष्य था- हिन्द की आजादी[1] तथा आजाद हिन्द का नेता था सुभाष चन्द्र बोस! न कोई बैठक बुलायी जाती न तर्क वितर्क होते। न आपसी संघर्ष, न कोई और पदाधिकारी। था सब सदस्यों को विदेशी राजनयिक अधिकारी प्राप्त थे। समग्रतः संघ के कार्यक्रम इस प्रकार थे।

- आजाद हिन्द रेडियों, नैशनल कांग्रेस रेडियों तथा आजाद मुस्लिम रेडियों का समाचार सम्पादन।
- रेडियों प्रसारणार्थ जर्मन समाचारों का महत्व स्थापन,
- 'आजाद हिन्द' पत्रिका का सम्पादन एवं वितरण- यह पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित होने लगी थी। इसकी 5,000 प्रतियाॅ बंटती थी।
- जर्मनी के प्रवासी भारतीयों की देखभाल
- जर्मनी से बाहर आजाद हिन्द शाखाओं का संयोजन तथा
- समुद्र पार दक्षिण पूर्वी एशिया के प्रवासी भारतीयों को संगठित करके संयोजन केन्द्र स्थापित करना।

इस योजना के अन्तर्गत 2 नवम्बर 1941 को आजाद हिन्द संघ के औपचारिक उद्घाटन में कांग्रेसी तिरंगा झण्डा, लहराया गया जिस पर 'स्प्रिगिंग टाइगर' रेखांकित था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा रचित 'जन-गण-मन' का रूपान्तरण इसका राष्ट्रगान था और 'जयहिन्द' अभिवादन। रोमन लिपित 'हिन्दुस्तानी' राष्ट्रभाषा घोषित कर दी गयी। सुभाष चन्द्र बोस का सम्बोधन 'नेता जी' हो गया।[2]

भारत की आजादी का प्रचार कार्य क्योंकि सर्वाधिक महत्वपूर्ण था इसलिए रेडियों प्रसारण

1— एम0पी0कमल — नेताजी सुभाष चन्द्र बोस — पृष्ठ 66

2— आशा गुप्त — सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक—विदेश में — पृष्ठ131

में भी प्रायः इसी पर जोर दिया जाता रहा। नवम्बर 1941 में ऐसे दस कुशल व्यक्ति थे जो आजाद हिन्द रेडियों का संचालन करते थे। जर्मन इनके तकनीकि सहायक थे। हालैण्ड के हुइजन रेडियों केन्द्र से भारत देश की तरफ प्रसारण किया जाता। प्रत्येक रेडियों वार्ता, अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफ़र के निम्न शेर से प्रारम्भ होती –

गाजियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की,

तब तो लन्दन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की।

वार्ता का समापन निम्न पंक्तियों से किया जाता–

"मजा आयेगा जब हमारा राज देखेगें,

क' अपनी ही जमीं होगी, अपना आसमां होगा।

शहीदों की चिताओं पर लगेगें हर बरस मेले,

वतन पर मिटने वालों का यही नामोनिशां होगा[1]

अन्त में नारा रहता – विप्लव दीर्घजीवी हो! इन्कलाब जिन्दाबाद!

आजाद हिन्द जिन्दाबाद! विजय किंवा मृत्यु–जीत या मौत"

बोस को आशा थी कि धुरी शक्ति की जीत के बाद भारत को आजाद देखने की उनकी जीवन कामना फलीभूत होगी।

सुभाष चन्द्र बोस का प्रथम बार रेडियों से भाषण :-

19 फरवरी 1942 को सिंगापुर जापानियों के कब्जे में आ गया। सुभाष बोस ने 19 फरवरी 1942 को पहली बार स्वदेश वासियों को रेडियों द्वारा अपने जीवित होने की सूचना दी। उन्होने कहा, मैं सुभाषचन्द्र बोस आजाद हिन्द रेडियों के द्वारा आपके साथ बात कर रहा हूँ। एक वर्ष से खामोशी और सब्र के साथ घटनाओं का इन्तजार करता रहा हूँ .... विश्व के इतिहास के चौराहे पर खड़ा होकर मैं भारत और भारत से बाहर विदेशों के स्वतन्त्रता प्रेमी सब प्रवासी भरतियों की तरफ से घोषणा करता हूँ कि हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद से निरन्तर संघर्ष करते रहेंगें जब तक कि भारत स्वयं अपने भाग्य का विध ाता नहीं हो जाता। आन्दोलन अवधि तथा उसके बाद पुर्नरचनात्मकता की अवधि में हम

1– एम0पी0कमल, – नेताजी सुभाष चन्द्र बोस (भारत के वीर सपूत) पृष्ठ 66

उन सबको सहयोग देंगे जो शत्रु को उखाड़ फेंकने में हमारी सहायता करेंगें।[1]

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पवित्र संघर्ष में भारत के अधिकांश वासी हमारा साथ देंगें''

11 मार्च 1942 को उन्होने रेडियों प्रसारण में कहा कि –''सिंगापुर का पतन ब्रिटिश साम्राज्य के पतन की विशेष भूमिका है। वह एक नये युग की सूचना है। ब्रिटिश ने हमें दासता की श्रृंखलाओं में बांधकर हमारी नैतिकता और अर्थनीति को पूरी तरह विध्वस्त कर दिया है। ईश्वर ने भारत को मुक्त करने के लिए शुभ लग्न उपस्थित कर दिया है। . ... इस युग में स्वाधीनता और प्रगति का ब्रिटेन से बड़ा शत्रु कोई नहीं है।[2]

11 मार्च 1942 वाले रेडियों प्रसारण में सुभाष बोस ने संकेत दिया कि इनके (बोस के) भारत से निष्क्रमण के बाद से ब्रिटिश सरकार की संस्थायें इनकी गतिविधियों के बारें में विरोधपूर्ण विवरण देती रहीं हैं। इंग्लैझड के संवादपत्र इनके लिए अश्लील भाषा का उपयोग करने में भी कुण्ठित नहीं होते..................भारत के इतिहास की इस संकटपूर्ण घड़ी में ब्रिटिश सरकार इन्हें मृत देखकर ख़ुश ही होती।[3]

सुभाष बोस योरुप में बैठे, भारत की दिन प्रतिदिन की घटनाओं की सूचनाऐं प्राप्त करके रेडियों प्रासरण द्वारा देश वासियों का मनोबल बढ़ाते रहे।प्रसारण इस तरह किया जाता मानों देश के किसी गुप्त स्थान से हो, रहा हो, अतः और भी प्रभावपूर्ण हो जाता। आजाद हिन्द सेघ की स्थापना के बाद से ही उन्होने यह कार्य संभाल लिया था। आजाद हिन्द पत्रिका के माध्यम से अर्न्तराष्ट्रीयस्तर पर मित्र देशों के सहयोग का कृतज्ञता ज्ञापन करते थे।

25 अप्रैल 1942 को आजाद हिन्द रेडियों ने प्रसारित किया कि इस संकटपूर्ण स्थिति में ब्रिटेन के मित्र पक्ष को अपना शत्रु समझना चाहिए। ब्रिटेन के शत्रु पक्ष भारत के मित्र है। ब्रिटेन से स्वाधीनता भीख में नहीं मांगी जा सकती, मातृभूमि की वेदी पर रक्त बहाकर उसे स्वयं अर्जित करना होगा।''[4]

बर्लिन में सुभाष बोस आजाद हिन्द रेडियों से 'भारत छोड़ों' आन्दोलन जारी रखने

1- Ganapuley : Netaji in Germani : Appendix -V
2– सुभाष रचनावली – Vi :61
3- Subhas Chandra Bose : The Indian Struggle : 441-442
4– सुभाष रचनावली IV: 81–82

के लिए देश वासियों को प्रोत्साहित करते रहे। 31 अगस्त 1942 को उन्होने कहा संग्राम जारी रखना होगा। भारत को समूचे विश्वका जनमत तथा नैतिक सर्मर्थन प्राप्त है। इस मुहूर्त में फलाफल की विवेचना नहीं करनी है। यह संग्राम कौशल प्रदर्शन की घड़ी है।" 1 मार्च 1943 को उन्होने बर्लिन से फिर कहा, "धूर्त निर्विवेकी और चातुर्य सम्पन्न सरकार यदि हमें प्रलुब्ध या दुर्नीति ग्रस्त नहीं कर सकी पृथ्वी की कोई अन्य शक्ति नहीं कर सकेगी।"[1]

बी0बी0सी0 लन्दन से निरन्तर मिथ्या प्रचार हो रहा था। बोस ने उसे 'ब्लफ एण्ड ब्लास्टर कारपोरेशन' कहा।[2] भारत छोड़ों आन्दोलन को अहिंसात्मक गुरिल्ला युद्ध' की संज्ञा देते हुए उन्होने सुझाव दिया कि तदनुसार निरन्तर स्थानान्तरण भी आवश्यक होता है-

शत्रु अधिकारियों को पूर्वानुमान नहीं होना चाहिए कि हमारी अगली कार्यवाही किस स्थल से होगी। इस अंहिसात्क्क गुरिल्ला आक्रमण के दो लक्ष्य हैं- भारत में युद्ध सामग्री को नष्ट करना तथा ब्रिटिश प्रशासन को निष्क्रिय करना।[3]

प्रेस अधिनियम के कारण देश में जिस समय समाचार पत्रों पर बंदिश थी, आजाद हिन्द रेडियों इस कमी को पूरा करता रहा था। गोअबेल्स ने अपनी डायरी में लिखा है कि 'यह रेडियों प्रसारण, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, दूर दूर तक सुना जा सकता था। उचित ही हुआ कि यह गुप्त रखा गया कि सुभाष चन्द्र बोस कहॉ से प्रसारण करते है। इस कारण उनका प्रचार कार्य अधिक प्रभावोत्पादक हो जाता है। 6 अप्रैल को उसने संकेत दिया कि यहॉ से बोस के प्रचार कार्य एवं संदर्शन ने अंग्रजो के नाक में दम कर दिया। वे अपने रेडियों प्रसारण में विशेष्कर बोस की कार्य निष्ठा के लिए मुझे अपराधी ठहराते है।[4]

जर्मन सरकार की सहायता से 'आजाद हिन्द संघ' राजनयिक मिशन का स्तर प्राप्त कर चुका था। अब बोस योरुप में रहकर देश की आजादी के लिए इससे अधिक कुछ नहीं कर पा रहे थे। उन्होने 22 मई, 1942 को जर्मन सरकार को पत्र में लिखा कि जापानी फौजे भारत कीसीमाओं तक पहुंच चुकी हैं। भारत पर इसकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। देश क्रान्ति के लिए पूरी तरह तैयार है। इन परिस्थितियों में इनका कर्तव्य है कि

1— सुभाष रचनावली — 90—95
2— वही, 123—124
3- Selected Speeches of Subhas Chandra Bose : 150-also Radio relay from Germany. 31 August 1942.
4- Ganapuley : Netaji in Germany : 60

देश की क्रान्ति को सही रास्ते पर डालें अतः जर्मन सरकार इटली की सहायता से इनके वहाँ तक पहुंचने में सहायता दे।[1]

29 मई, 1942 को बोस हिटलर से साक्षात्कार प्राप्त करने में सफल हुए किन्तु समालाप आशाप्रद नहीं था। बोस ने पहला प्रश्न हिटलर से 'माइन कम्प्फ' में भारत के सम्बन्ध में अपमान जनक सम्मति के बारे में किया था। हिटलर ने इस प्रश्न की आलोचना करने से इन्कार कर दिया। फिर बोस ने पूछा जर्मन सरकार युद्धोपरान्त भारत की आजादी के बारे में घोषणा कर देगी? इस पर हिटलर ने उत्तर दिया कि "भारत अभी ढेढ़ सौ वर्ष तक स्वशासन के योग्य नहीं हो सकेगा। भारत सीमाओं से जर्मन युद्ध मोर्चा बहुत दूर है। इसलिए भारत की आजादी के सम्बन्ध में तुरन्त घोषणा करने का कोई व्यवहारिक लाभ नहीं हो सकता।" हिटलर ने फिर बोस से प्रश्न किया कि, जब परिस्थितियाँ इतनी प्रतिकूल है तो बोस भारत की आजादी के आन्दोलन के लिए क्या कदम उठाना चाहते हैं?" बोस का धैर्य जबाब दे गया। उन्हाने फोन ट्राट से कहा, "हिज एक्सलैन्सी से कह दीजिए कि मैने सारा जीवन राजनीति में व्यतीत किया है। इस सम्बन्ध में मूझे किसी पक्ष से सम्मति की आवश्यकता नहीं है।[2]

हिटलर की दोषपूर्ण युद्धनीति, भारत स्वतन्त्रता के अधिकारी की औपचारिक घोषणा में हिचक आदि से उन्हें यकीन हो गया कि भारत की आजादी की सक्रिय कार्यकारिता के लिए जर्मनी छोड़ना होगा। उमा मुखर्जी के अनुसार, गुरुत्वाकर्षण दक्षिणपूर्वी एशिया की तरफ खिच गया था...... वे अब दक्षिण एशिया की घटनाओं में सम्मिलित होने के लिए तत्पर थे।[3]

सुभाष बोस ने सितम्बर 1941 में जर्मनी और उत्तरी अफ्रीका के युद्ध बन्दियों को भरती करके हिन्द फौज (इंडियन लीजन) भी संगठित की थी। सुभाष बोस ने सशक्त शब्दों में कहा था कि "हिन्द फौज" केवल पश्चिम के विरुद्ध युद्ध करेगी।"[4]

सुभाष बोस का जर्मनी में राष्ट्रीय सेना संगठित करने का कोई इरादा नहीं था। किन्तु अन्य नेताओं की तरह बोस भी भारतीय युवक वर्ग को सैन्य प्रशिक्षण देने के सर्वदा इच्छुक रहे। उनके विचार में देश की अपनी राष्ट्रीय सेना से दोहरा लाभ था। एक तो

1- Subhas Chandra Bose : The Indian Struggle : 1920-42 Page 460
2- Ganapuley : Netaji in Germany : Appendix 192 : A Beacon Across Asia-139.
3- Uma Mukerjee : The Great Indian Revoluteonories : 156.
4- Werth and Herbich : Netaji In Germany : 17

देश गुलामी की जंजीरों से आजाद हो सकता था, दूसरे विदेशी आक्रमण से उसकी सुरक्षा की जा सकती थी। इसलिए बोस ये भाव निरन्तर पोषित करते रहे कि ''भारत की अपनी राष्ट्रीय सेना हो जो अनुशासन प्रशिक्षण तथा उपकरण में विश्व की सर्वाधिक सफल आधुनिक सेना की समकक्षता कर सके साथ ही युद्ध द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करके देश की सुरक्षा भी करती रहे।[1]

हिन्द फौज कुल बारह जवानों से शुरू हुई। उन्हें सैन्य प्रशिक्षण के लिए जर्मन सैन्य अधिकारियों के पास भेज दिया गया। जनवरी 1942 में हारविच को रैजेनवर्म कैम्प मे हिन्द फौज के बालंटियरो का प्रशिक्षण यूनिट बनाने का दायित्व दे दिया गया था। फौज बहुत शीघ्र रैजिमेंट की संख्या तक पहुंच गयी। साइफ्रिश ने एन0जी0गणपुले की पुस्तक के आमुख में लिखा है कि सुभाष बोस के लिए बालंटियर का पूर्व पद या वंश मर्यादा आदि का कोई महत्व नहीं होता था। उनकी रैजिमेंट में हिन्दू, मुसलमान, सिख पंजाबी मराठे बंगाली तथा अन्य धर्मावलम्बी समान समझे जाते थे।''

हिन्द फौज की पहली बटैलियन अब्टूबर 1942 में तैयार हो गयी, . दूसरी जनवरी में तीसरी फरवरी में बननी शुरू हो गयी।[2] फौजियों की संख्या में अभिवृद्धि के कारण जर्मन सरकार आर्थिक सहायता के लिए हिन्द फौज को सीधे वेतन दे रहीथी। इस कारण सुभाष बोस को हिट्लर के प्रति वफादारी की शपथ लनी पड़ी थी। किन्तु उनका जर्मन सरकार से समझौता था कि हिन्द फौज जर्मन सैन्य संगठन का अंश नहीं मानी जायेगी।'स्प्रिंगिंग टाइगर' प्रतीक से फौज की अलग पहचान रहेगी। आवश्यक सैन्य प्रशिक्षण तथा कुछ अन्य सुविधाओं को छोड़कर हिन्द फौज का जर्मनी के साथ कोई सरोकार नहीं होगा। हिन्द फौज को केवल भारत अथवा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों तक भेजा जा सकता है। और बोस ने पूर्वी एशिया जाने से पहले यह भी स्पष्ट कर दिया कि फौज ब्रिटिश भारतीय

1- Ganapuley : Netaji in Germani : 64

2- Ibid : 64

सेना के विरूद्ध काम में लायी जा सकेगी।[1]

आजाद हिन्द सेना कैसे बनी :-

दक्षिण पूर्वी एशिया के इतिहास मे 7 दिसम्बर 1941 का विशेष महत्व है। इसीदिन जापान ने पर्लहाबर, मलाया और डच ईस्ट इण्डीज पर एक साथ आक्रमण कर दिया था। जिसके फलस्वरूप अमरीका, ब्रटेन, चीन एवं डच सरकारों ने सम्मलित रूप से मोर्चे का निर्माण किया।[2] जिसके प्रधान सेनापति सर राबर्टब्रूक पोफम थे जिन्होने विश्व को यह विश्वास दिलाया कि उनका मोर्चा अभेद्य है। जापानी भूलकर भी आक्रमण करेंगे तो एक या दो सप्ताह में ही हार का मुंह देखना होगा। किन्तु विश्व उस समय अचम्भित रह गया जब जापानी आक्रमणकारियों के सममुख यह मोर्चा कुछ भी न कर सका तथा आक्रमण के दो माह बाद ही जब ब्रिटिश साम्राज्य का अभेद्य दुर्ग समझा जाने बाला सिंगापुर भी जापान द्वारा हथिया लिया गया। सिंगापुर पर आक्रमण के समय वहाँ, 15000 अंग्रेजी सेना, 13000 आस्ट्रेलियन, 32000 भारतीय सेना थी। यह सब जापानियों के अधिकार में आ गया था।

मलाया जो जापान के अधिकार में आ गया था। वहाॅ भी लगभग 3 लाख भारतीय थे जिन्हें जापानी सेना के प्रमुख ने बुलाया तथा उनसे कहा कि 'इस समय इंग्लैण्ड की सैनिक शक्ति क्षीण हो चुकी है। भारतीयों के लिए अपने देश को आजाद कराने का सुनहरा अवसर है तथा जापान उनकी सहायता के लिए हर प्रकार से तैयार है। मलाया के भारतीयों ने सुभाष पर विचार करके उत्तर देने का निश्चय किया तथा मलाया के सेन्ट्रल इण्डियन एसोशियेशन के समभापति श्री एन0राघवन को परामर्श के लिए आमंत्रित किया।

28 मार्च 1942 से30 मार्च तक भारत के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रास बिहारी बोस की अध्यक्षता में जापान, चीन मलाया तथा थाईलैण्ड के भारतीयों का टोकियों में सम्मलन हुआ जिसका प्रमुख उद्देश्य विदेशियों के प्रभुत्व, हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण से रहित स्वाधीनता निश्चित करना था।[3] जिस आजाद हिन्द फौज का नाम देश विदेश में गूंज रहा था वास्तव में इसके निर्माण का निश्चय भी इसी सम्मेलन में हुआ। इस सम्मेलन में यह भी निश्चय किया गया कि इसी वर्ष जून में थाइलैण्ड की राजधानी बैंकांक में पूर्व एशिया के समस्त भारतीयों की प्रतिनिधि सभा बुलाई जाये इस निश्चय के अनुसार जून 14 से 23 तक

1- Hari Har Das- Subhas Chandra Bose and the Indian National Movement : 300 Tadamoto Negishi interpreter for Bose : Attached to Hikari Kikan Japan in Haysbida's Netaji Subhas Chandra Bose : 162

2– रमाशंकर त्रिपाठी–आजाद हिन्द फौज, पृष्ठ 20

3– सत्य शकुन–मैं तुम्हें आजांदी दूंगा (भाग–2) पृ0 158

बैंकाक में भारतीयों की सभा की गयी।रास बिहारी बोस ने युद्ध को स्वतन्त्रता प्राप्ति का अच्छा अवसर समझकर भारतीय स्वतन्त्रता लीग और आजाद हिन्द सेना गठित करने की घोषणा की। इस सभा में जावा, सुमात्रा, इण्डोचीन हांगकांग, वर्मा, मलाया, जापान, मंचुको से लगभग 100 प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। सभा में भारतीय स्वतन्त्रता संघ को सरकारी तौर पर स्वीकृत किया गया तथा भारतीय स्वाधीनता का साधन एकता, विश्वास तथा बलिदान माना गया जिसकी व्याख्या निम्न प्रकार की यी –

एकता – समस्त भारतीयों का एक संस्था के अन्तर्गत संगठन

विश्वास– भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति पर तुरंत विश्वास

बलिदान– स्वतन्त्रता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आत्म बलिदान।[1] इसी समय सिंगापुर में यह खबर आग की तरह फैल गयी कि भारतीय स्वतन्त्रता संघ के आन्दोलन का नेतृत्व करने के लिए सुभाष चन्द्र बोस यूरोप से आ रहे है। इस सुअवसर पर संघ की ओर से आजाद हिन्द रेडियो की बैंकांक में स्थापना की गयी। उसी समय 20 जून 1943 को सुभाष चन्द्र बोस टोकियो पहुचें जहाँ पर उनका अभूतपूर्व स्वागत किया। श्री सुभाष चन्द्र बोस ने प्रेस को दिये गये एक बक्तब्य में कहा गत महायुद्ध में अंग्रेजों ने भारतीयों को धोखा दिया था। उसी समय देश वायिों ने निश्चिय किया कि फिर कभी इस प्रकार के धोखे में नहीं पड़ेगें। गत 20 वर्षे से जिस अवसर की हम लोग प्रतीक्षा में थे। वह समय आ गया है। यह समय भारतीय स्वतन्त्रता का समय है। हम जानते हे कि भारत को ऐसा सुयोग्य अवसर आगामी 100 वर्षो में नही मिलेगा। अतएव हमें अपना सब कुछ देकर भारत के लिए स्वतन्त्रता प्राप्त करना है और अपनी शक्ति से उसे सुरक्षित रखना हैं।शत्रु की तलवार का जवाब हमें तलवर से ही देना है। और यह तभी संभव है। जब भारतीय जनता का हृदय त्याग से प्रज्वलित होगा। अतः हम लोगों को अपनी सम्पूर्ण शक्ति और उत्साह से भारत के भीतर और बाहर भी भारतीय स्वाधीनता का युद्ध जारी रखना चाहिए।

.......हमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद के घ्वंस होने तक यह संग्राम चलाना है और इस समय साम्राज्यवाद के विध्वंस पर ही भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में प्रकट होगा। इस

1– रमाशंकर त्रिपाठी–आजाद हिन्द फौज : पृष्ठ 23

संग्राम में न पीछे लौटने की ाकेई जगह है और न ढिलाई करने की । हमें जब तक आगे और आगे बढ़ते रहना है जब तक कि विजय प्राप्त न हो जाये और स्वतन्त्रता जीत न ली जाये।

टोकियों की यात्रा के बाद सुभाष बोस 2 जुलाई 1943 को सिंगापुर पहुचे वहॉ पर भी उनका जोरदार स्वागत किया गया। सिंगापुर में सुभाष बोस ने पदाधिकारियों जो कि हांगकांग वर्मा आदि जगह से आये थे, से परामर्श किया। सिंगापुर के टाऊनहाल के सामने आजाद हिन्द संघ का जोरदार प्रदर्शन हुआ।[1] यहीं पर भाषण देते हुए सुभाष बोस ने दिल्ली चलो का नारा दिया।

आजाद हिन्द फौज में समिलित हाने वाले सदस्य को निम्न प्रतिज्ञा लेनी होती थी–

''मैं स्वेच्छा से आजाद हिन्द फौज मे अपना नाम लिखवा रहा हूॅ। मैं हृदय से अपने आपको भारत को भेंट करता हू और प्रतिज्ञा करता हूॅ कि मैं अपना जीवन भारत की स्वतन्त्रता के लिए अर्पण कर दूंगा। मौत के खतरे से भी मुझे क्यों न खेलना पड़े, भारत की सेवा तथा भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में तन मन से शरीक होने में कुछ भी कसर न उठा रखूंगा और इसमें मैं किसी व्यक्तिगत लाभ की भी आकांक्षा नहीं रखूगां। मैं प्रत्येक भारतीय को जाति व धर्म से अपना भाई बहन समझूंगा।[2]

आजाद हिन्द सेना के अफसर पद के अनुसार विभिन्न प्रकार के बिल्ले लगते थे। अफसर और सैनिक सीने पर वायी ओर तिरंगे झण्डे का बैच (तमगा)। लगाते थे और उनकी टोपियों पर आजाद हिन्द फौज का पीतल का बैच लगता था। बैच पर भारत का मानचित्र और इत्तफाक, इतिमाद और कुर्बानी ये तीन शब्द खुदे होते थे।

एक जर्मन भ्रमणकारी जिसने नेताजी को सिंगापुर और मलाया की जनसभाओं के कोलाहली दृश्य देखे थे लिखता है, कि एक दयनीय दशा के उद्यमी ने अपना बटुआ खोला तथा अपने लिए कुछ भी पूंजी को संरक्षित न छोड़कर सारा धन चन्दे में दे दिया। एक

1- Reva Chatterjee-Netaji Subhas Chandra Bose, Bengal Resolution and Independence (Netaji and the I.N.A) 156

2– रमाशंकर त्रिपाठी–आजाद हिन्द फौज : पृष्ठ 29

अन्य आश्यर्च जनक दृश्य का वह वर्णन करते है-

एक भिखारी महिला बूढ़ी तथा जिसके कपड़े फटे हुये थे – नेता जी को कुछ सिक्के प्रदान किये । ये क्षण स्तब्ध करने वाले थे। नेता जी को सिक्के लेने में संकोच हो रहा था क्योंकि यह सिक्के उस महिला के लिए अपना भोजन खरीदने का एक मात्र साधन था। लेकिन यह क्षणिक संकोच था। सभी के नेत्रों से ऑसू बहने लगे जब अस्थायी सरकार के प्रमुख नेता जी उस महिला के समुख नतमस्तक हो गये और उस बूढ़ी भिखारी महिला के से कहा- माता, मैं तुम्हारा उपहार स्वीकार करता हूँ।''[1]

आजाद हिन्द सरकार :

5 जुलाई 1943 को रास बिहारी बोस ने भारतीय स्वतन्त्रता लीग का प्रधान पद सुभाष बोस को सौपा और स्वयं केवल मुख्य परामर्शदाता रहे। 21 अक्टूबर,1943 को सुभाष बोस ने आजाद हिन्द सेना के सर्वोच्च सेनापति के रूप में स्वतन्त्र भारत की 'अस्थायी सरकार' बनायी। 1943 के अक्टूबर में इण्डिपेण्डेन्ट लीग ने एक विराट सम्मेलन का आयोजन किया। नेता जी ने हिनान में 1500 व्यक्तियों की उपस्थिति में लगभग 2 घण्टे भाषण दिया तथा आजाद हिन्द सेना की अस्थायी सरकार के निर्माण का महत्व बतलाया। सुभाष चन्द्र बोस का भाषण क्या था, एक अग्निपिण्ड था जो आग उगल रहा था। इसी अधि विेशन में सुभाष बोस ने सभी लोगों के सामने भारत शक्ति की शपथ ली और कहा मैं सुभाष चन्द्र बोस ईश्वर को साक्षी मानकर भारत और अड़तीस करोड़ भारतवासियों को मुक्त कराने की पवित्र शपथ लेता हूॅ। स्वतन्त्रता के लिए यह संग्राम मैं जीवन की अन्तिम सांस तक लडूगां.....। यह मेरा परम कर्तव्य होगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी उसे सुरक्षित रखने में अपने रक्त की अन्तिम बूँद तक बहाने को सदा प्रस्तुत रहूँगा।''[2]

इस सभा में आजाद हिन्द फौज के सदस्य, भारतीय नागरिक और कुछ जापानी अफसर शामिल थे उक्त बैठक में सुभाष चन्द्र बोस द्वारा नियुक्त मंत्रियों ने स्वतत्र भारत सरकार के प्रति ईमानदार रहने की शपथ ग्रहण की। इस बैठक में लगभग 500 व्यक्तियों ने भाग लिया जिनके सम्मुख स्थायी सरकार की घोषणा पढ़ी गयी।

घोषण में कहा गया कि हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह हमें अपनी मातृभूमि

1- Pandit H.N., Netaji Subhas Bose-From Kabul to Battle of Imphal :120
2- Selected Speech of Netaji Subhas Bose in Hinan-October 1943.

का उद्धार करने में सफलता प्रदान करें। हम अपने देश की स्वतंत्रता तथा उन्नति के लिए अपने प्राण अर्पण करते हैं। अस्थायी सरकार का कर्तव्य होगा कि वह स्वतन्त्रता संग्राम चलाये तथा अंग्रेजों और उनके मित्रों को भारत से निकाल बाहर करे। तदोपरान्त अस्थायी सरकार का कर्तव्य होगा कि वह आजाद हिन्द की स्थायी सरकार की स्थापना करे जिसे जनता का पूरा समर्थन प्रापत हो। ऐसी स्थायी सरकार स्थापित न होने तक यह अस्थायी सरकार ही भारत वासियों के नाम से देश का शासन कार्य चलायेगी।

अस्थायी सरकार की घोषणा मे यह भीकहा गया कि वह प्रत्येक भारतीय का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास करेगी। वह प्रत्येक नागरिक को धार्मिक, स्वाधीनता समान अधिकार और समान अवसर प्रदान करने का वचन देती है। हम अपना संग्राम उस समय तक जारी रखेंगें जब तक शत्रु भूमि से पूर्णतः निकाल बाहर न किया जाय।

घोषणा पत्र पर अस्थायी सरकार के इन सभी सदस्यों के हस्ताक्षर थे। सुभाषचन्द्र बोस–राज्य के प्रधानमत्री युद्ध तथा परराष्ट्रमंत्री, कप्तान लक्ष्मी सहगल– महिला संगठ्न, के0एम0ए0 अय्यर प्रचारक और प्रकाशक, लेफ्टिनेंट कर्नल आई0ए0सी0 चटर्जी अर्थ व्यवस्था , रास बिहारी वसु– प्रधान परामर्शदाता।

सुभाष चन्द्र बोस द्वारा गठित अस्थायी सरकार को 23 अक्टूबर को जापान सरकार ने मान्यता प्रदान कर दी और प्रतिज्ञा की कि प्रत्येक सम्भव सहयोग तथा समर्थन आजाद हिन्द सरकार को भारत की पूर्ण स्वाधीनता के युद्ध में दिया जाएगा। इसके तीन दिन बाद जर्मन सरकार के विदेश मंत्री रिपन ड्राप ने सरकारी तार द्वारा सूचित किया । जर्मन आजाद हिन्द सरकार को स्वीकार करती है। इसी प्रकार अनेक देशों जिनमें स्वतन्त्र वर्मा, स्वतत्र फिलीपिन्स, इटली, चीन, क्रोटिया, थइलैण्ड, मंचूरिया आदि ने भी इस सरकार को अपनी सहमति और मान्यता प्रदान कर दी।[1]

विभाग :-

आजाद हिन्द संघ का नेतृत्व संभालने के बाद सुभाष बोस ने इसका पुनगर्ठन किया। अब इसमें 12 विभाग थे– साधारण सचिवालय, प्रचार, अर्थ लेखा और लेखा परीक्षा, भर्ती और प्रशिक्षण सम्भरण, महिला , आवास एवं परिवहन, स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण शिक्षा

1- Reva Chatterjee, Netaji Subhas Bose and the I.N.A., page 154

एवं संस्कृति, प्रादेशिक एवं विदेशी विभाग। इसी नमूने पर शाखा प्रशाखाओं में भी विभाग स्थापित हो गये। प्रत्येक विभाग में कार्यभारी सहकर्मी तथाकुछ सहकारी थे।[1] संघ को एक सुव्यवस्थित सरकार की तरह प्रबन्ध करना था। सब विभागों को एक दूसरे के सहयोग से स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय सहयोग देना था। आजाद हिन्द फौज कीसंख्या बढ़ाना, सामग्री जुटाना तथा आर्थिक व्यवस्था के लिए अनुदान इकट्ठा करने का दायित्व इन पर था।

सेना सम्पर्क संगठ्न शिताकिकान के निदेशक फुजीवारा के अनुसार, 'मिस्टर बासे अपने देश के महत्तम क्रान्तिकारियों में से थे। उनमें परम राजनीतिक विलक्षणता, सैन्य अन्तदृष्टि तथा हृदयस्पर्शी मानवीयता विद्यमान थी। वे एशिया के सबसे महान नेता थे।[2] आजाद हिन्द फौजमें नयी चेतना, नई स्फूर्ति भरने के लिए चीफ आफ स्टाफ, विभागीय कमाण्ड तथा संघ का सेना विभाग भी पुनर्गठित किया गया। उनके क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के संरक्षण में आजाद हिन्द फौज बहुत कुछ नियमबद्ध सेना की तरह बन गयी थी।

फौज में उस समय कुल 13,000 सिपाही थे, जो युद्ध की दृष्टि से पर्याप्त नहीं थे।बोस इनकी संख्या 50,000तक बढ़ाना चाहते थे। किन्तु जापानी सेना के पास 30,0000 से अधिक सिपाहियों को प्रशिक्षण देंने की कोई व्यवस्था नहीं थी। उनका इरादा था कि प्रति 10,000 सिपाहियों की तीन टुकड़िया तथा 20,000की शक्ति वाली बालंटियर फौज हो। इसमें गुणात्मक अपर्याप्तता आ जाने का खतरा अवश्य था किन्तु ब्रिटिश सत्ता द्वारा मिथ्या प्रचार एवं सशक्त ब्रिटिश सेना से टक्कर लेने का यही मात्र उपाय भी था।[3]

नवम्बर के प्रथम सप्ताह में वृहत्तर पूर्व एशिया सम्मेलन जो टोकियों में हुआ था में जनरल तोजो ने घोषणा की कि जापान यह तय कर चुका है कि वह अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह अस्थायी सरकार की आजाद हिन्द सेना को सौंप देगा।[4] तोजो ने कहा कि जापान भारत को वह हर संभव सहायता प्रदान करने के लिए तैयार है जो भारत के निवासियों के स्वतन्त्रता के सवप्न को साकार कर सके। भारत के निकट भविष्य में स्वतन्त्रता की आशा को देखते हुए जापान भारत कीअस्थायी सरकार को अण्डमान और निकोबार द्वीप हस्तान्तरित करने के लिए तैयार है।

अण्डमान और निकोबार टापुओं के मिलने पर नेता जी ने हर्ष प्रकट करते हुए एक

1- Thivy : The Struggle in East Asia : 36

2- Memoirs of Mr. Subhas Chandra Bose : Hayashida : Netaji Subhas Bose : 153-154

3- Hayashida : Netaji Subhas Chandra Bose : 52

4- Reva Chatterjee-Netaji and the I.N.A. Page-160

प्रेस भेंट में कहा ' भारतीयों के लिए अण्डमान की वापसी पहला स्थान है जो ब्रिटिश जुए में स्वतन्त्र किया गया है। इस इलाके पर अधिकार कर आजाद हिन्द सरकार वास्तव में राष्ट्रीय स्वरूप की बन गयी है। ब्रिटिशों ने इन स्थानों को राजनैतिक कैदियों के कारागार रूप में बना रखा था। जहाँ ब्रिटिश सरकार को पद्च्युत करने के अपराध में उन्हें आजीवन काले पानी की सजा मिलती थी। पेरिस के वैस्टिले जेल की भांति जिसे फ्रांस की क्रान्ति से पहले मुक्त किया गया था और जहां हमारे देश भक्तों को बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी है। पहले छुड़ाया गया है। धीरे धीरे भारत के सभी स्थान स्वतन्त्र कराये जायेंगें।[1]

सुभाष बोस ने 31 दिसम्बर 1943 में भारत के प्रथम स्वतन्त्र प्रान्त में अपना कदम रखा। यह तय किया गया था। कि अण्मान और निकोबार का नाम बदलकर 'शहीद' और 'स्वराज्य' द्वीप रखा जाये '[2]

दिल्ली चलने की तैयारी :

भिन्न भिन्न देशों की स्वतन्त्र सरकारों द्वारा स्वीकृत होने के बाद आजाद हिन्द सरकार की ओर से 24 अक्टूबर 1943 में ब्रिटेन और अमेरिका के विरुद्ध मंत्रिमण्डल की सर्वसम्मति से नेताजी ने युद्ध धोषित कर दिया । यह घोषणा उन्होने पांउग की सार्वजनिक रैली में की थी। यही पर नेजाजी ने फौज को सलामी दी तथा दिल्ली चलने का नारा दोहराया था। 3 फरवरी को फौज के कूच करने से पहले सुभाष बोस ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा था ,- खून को खून पुकार रहा है! उठो समय व्यर्थ नहीं गंवाया जा सकता ....हथियार उठाओ! दिल्ली की तरफ जाने वाला पथ स्वतन्त्रता का मार्ग है.....चलो दिल्ली! चलो दिल्ली![3]

सुभाष बोस ने घोषणा की कि आजाद हिन्द फौज जब लड़ाई छेड़ेगी तब अपनी ही सरकार के नेतृत्व में छेड़ेगी और जब यह भारत की सीमा में प्रविष्ट होगी तब स्वतन्त्र किये हुए इलाकों का शासन अपने आप आजाद हिन्द सरकार के हाथ में आ जायेगा। भारत की स्वाधीनता भारतीयों के परिश्रम और बलिदान तथा हमारी सेना के ही प्रयत्नों से आयेगी।

स्वाधीनता प्राप्त किये हुए भारतीय इलाकों पर शासन करने के लिए शासक निर्माण करने हेतु एक स्कूल खुला हुआ था। विशेष रूपसे सुशिक्षित लोग ही इसमें भर्ती किये

1- सुभाष रचनावली-VIII
2- Subhas Chandra Bose-His Contribution to Indian Leftist Movement' from Kabul Subhas Bose : The man and his vision-Page 114-115
3- Selected Speeches of Subhas Chandra Bose : 219

जाते थे। इसका नाम 'आजाद हिन्द दल' रखा गया । सुभाष बोस के बढ़ते हुए प्रभाव से तथा सर्वथा राष्ट्रीय आधार पर बनी हुयी फौज से जापानी साम्राज्यवादी प्रसन्न नहीं थे। वे नेताजी तथा इस आन्दोलन को अपनी कठपुतली बनाना चाहते थे। किन्तु जब उन्हें सफलता नहीं मिली तब वे फौज की अधिक भर्ती में बाधा डालने लगे। जापानियों ने सेना में अधिक भर्ती को रोकने के लिए एक उपाय निकाला कि वे अधिक सैनिकों के लिए अस्त्र तथा युद्ध सामान नहीं दे सकेंगें।

मलाया, वर्मा, थईलैण्ड, जावा, सुमात्रा, और बोर्नियों में फौज की ट्रेनिंग के लिए सैकड़ों केन्द्र खोले गये थे। एक प्रत्यक्षदशी का कथन था कि, ''मैने फौजी शिक्षा के एक केन्द्र को देखा जहाँ लगभग 700 रंगरूट ट्रेनिंग पा रहे थे। यह कल्पना करना कठिन है कि भारतीय क्लर्क और व्यापारी जिनके पूर्वजो ने 100 वर्षो में बन्दूक को हाथ तक नहीं लगाया था, सैनिक शिक्षा में इस प्रकार योग्य सिद्ध होंगें।[1]

आजादी का युद्ध तथा सुभाष बोस का साहस :

दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में नेताजी शहीद टापू में पहुंचे और पोर्ट ब्लेयर में तिरंगा झण्डा फहराया जहाँ कि भारतीय क्रान्तिकारियों को बड़ी बड़ी विपत्तियों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । 4 जनवरी 1944 को फौज का अग्रवर्ती मुकाम रंगून पहुंच गया जिससे वह युद्ध क्षेत्र के अधिक निकट रहे। इसका एक कारण यह भी था कि जापानी सेनापति वर्मा से भारत पर शीघ्र होने वाले आक्रमण में इस फौज को सम्मिलित करने के लिए विशेष इच्छुक नहीं थे । उनका तर्क था कि आजाद हिन्द फौज के सैनिक उतनी कुशलता से प्रतिरोध करने की क्षमता नहीं रखते हैं जितनी जापानी सैनिक जिसका कड़ा प्रदर्शन उनहोने मलाया पर आक्रमण के समय किया। उनके अनुसार- बहुत सारे सैनिक ब्रिटिश आर्मी द्वारा दिये जाने वाले आराम और ऐश्वर्य के अभ्यस्त हो चुके हैं। जिसके कारण वे जापानी सेना के कड़े विरोध अभियान हेतु यथेष्ट क्षमता धारण नहीं करते।[2]

इस प्रस्ताव ने नेता जी को गहरा आघात पहुंचाया क्योंकि इसका मतलब यह था कि उनकी भूमिका केवल पांचवे स्तम्भ की हैं। नेताजी ने गर्व और आत्म सम्मान से उत्तर दिया ''किसी भी प्रकार की भारत को प्राप्त स्वतन्त्रता जोकि जापानी बलिदान से प्राप्त की

1- Selected Speeches of Subhas Chandra Bose : 220
2- Reva Chatterjee - Netaji and the I.N.A. : 158

गयी हो, उनके लिए गुलामी से भी बद्‌दतर हैं''[1] उन्हाने भारत के सम्मान के बारे में बात कही, ओर आग्रह किया कि भारतीय अपने रक्त और त्याग का अधिक से अध्धिक योगदान कर सकते हैं। बोस ने कहा कि आजाद हिन्द फौज को ओगे आने वाले आक्रमणों में प्रतिभाग का मौका दिया जाये।

फरवरी के प्रथम सप्ताह अर्थात 4 फरवरी 1944 को भारतीय स्वतंन्त्रता की लड़ाई छिड़ गई। इस प्रकार जापानियों ने आजाद हिन्द सेना द्वारा मोर्चे पर ताकत लगाने का विरोध किया फिर भी आजाद हिन्द सेना 13 मार्च को भारतीय सीमा को पार करके भीतर तक घुस गयीं। 22मार्च को जापानी दस्ता भी सीमा पर पहुॅच चुका था हायशिदा के शब्दों में , 'बड़े हर्षोल्लास के साथ ध्वजा समारोह हुआ और राष्ट्रीय गान गाया गया।[2] 31वें दस्ते तथा आजाद हिन्द फौज की टुकड़ी ने कोहिमा पर विजय प्राप्त कर ली और 21 अप्रैल को उसे अपने कब्जे में ले लिया। 25 अप्रैल से 6 मई तक गुरिल्ला रैजीमैण्ट ने अपूर्व युद्ध कौशल दिखाया। ब्रिटिश भारतीय सेना का 23वां डिवीजन पतेल के दक्षिण पूर्व में स्थिति जमा चुका था । 7 मई को उसने आजाद हिन्द फौज को खजोल से पीछे हटने को बाध्य कर दिया।

जून की लगातार वारिश में भूख, मलेरिया आदि की बजह से 15 जून तक 1000 से कम सैनिक बाकी बचे थे। जुलाई के शुरू तक आजाद हिन्द फौज की दूसरी रैजीमेन्ट में कुल 750 सैनिक रह गये जिन्हें चार टुकड़ियों में बांटना पड़ा। 18 जुलाई 1944 को सुभाष रैजिमेन्ट की दूसरी, तीसरी बटालियनों को इन परिस्थितियों में प्रत्यावर्तन करना पड़ा। जापानी सेना ओर आजाद हिन्द फौज के सम्बन्ध तेजी से बिगड़ रहे थे। कामरेड इण्डियन की जगह हिन्द फौजी उसकी दृष्टि में शेमलैस इण्डियन्स हो गये थे।

18 जुलाई 1944 को वापसी का आदेश दिया। वापसी में हिन्द सैनिक रसद की कमी के कारण भुखमरी का शिकार होने लगे। इम्फाल मोर्चे पर 6000 स्वस्थ्य सैनिक पहुँचे थे, चार सौ मारे गये थे और आठ सौ ने हथियार डाल दिये थे। पन्द्रह सौ भूरा और रोग से मर चुके थे।

14 अगस्त 1944 को सुभाष बोस ने आजाद हिन्द के प्रत्यावर्तन की अनिवार्यता का स्पष्टीकरण किया कि, 'आकमण स्थगित होने के उपरान्त हमारे सैनिकों का मोर्चे पर

1- Markandeya, Subhodh ; Subhas Chandra Bose-Netaji passage to Immortality.

2- Hayashida, Tatso-Netaji Subhas Chandra Bose : Page 84.

जमा रहाना हानिप्रद था............अब हम मौसम बदलने की प्रतीक्षा करेगें। इसी बीच दोबारा मोर्चा बन्दी के लिए पूरी तैयारी करेगें.........फिर शत्रु के विरूद्ध एक बार फिर सशक्त आक्रमण करेगें...........अफसरों तथा सैनिकों के प्रवर युद्ध कौशल, निर्भीक-शैर्य एवं कर्तव्य के प्रति स्थिरता को देखते हुए हमारी विजय निश्चित्है।[1]

आजाद हिन्द फौज के पराक्रम द्वारा भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बारे में सुभाष बोस को किंचित मात्र भी संशय नहीं था। भय था तो केवल इतना कि गाँधी जी ब्रिटिश सराकार से कोई समझौता न कर बैठे। वाइस-एडमिरल कान एड् चुदो ने सुभाष बोस से कहा यदि आप चाहें तो आपको मैं स्वयं समरकन्द या ताशकन्द तक पहुँचा सकता हूँ।"[2] अगस्त का महीना भयंकर सर्वनाश लेकर आया था। दोनों सेनाएं वापिस लौट चुकी थीं। हिन्द फौज की स्थिति दयनीय थी। जापानी सेना और आजाद हिन्द फौज के सैनिक सैकड़ों लाशों को कन्धे पर लादे घिसटते आ रहे थे।

बोस ने कर्तव्य-परायण सैनिको के लिए पुरूस्कार घोषित किये थें। 21 दिसम्बर को 'शहीद दिवस' मनाया गया।[3] इनमें 1943 के उन पैराशूटर्स के नाम शामिल थें जिन्हें भारत में फाँसी पर चढ़ा दिया गया था। 24 अक्टूबर को पन्द्रह पुरूस्कार पदोन्नति तथा मरणोपरान्त सैनिको के लिए घोषित हुए। 16 नवम्बर को तैंतीस पुरूस्कार पुनः वितरित किए गये।

सुभाष बोस का आक्रोश उन हिन्द-अफसरों पर सर्वाधिक था, जिन्होंने अपनी रैजीमेन्ट को भड़काकर आजाद-हिन्द फौज छोड़ने का परामर्श दिया था। उनकी धारणा थी कि अफसरों के भ्रष्टाचार, आराम-तलवी तथा दुराचार ने हिन्द-फौज को हतोत्साहित किया। उन्हें यह भी लगा कि सेना का उत्साह बर्धन ठीक से नहीं हो पाया। जापानियों के प्रति मन में कड़वाहट,'आजाद-हिन्द फौज' की तरफ से निराशा और अपनी कार्यक्षमता से असन्तुष्ट बोस 18 सितम्बर को वर्मा की तरफ चल पड़े। एकान्त-लक्ष्य के प्रति समपिर्तत इस नेता के लिए उनके हृदय में अपार श्रद्धा थी, भय था, संभ्रम था।

ह्यूँग टोई, इम्फाल की भीषण दुर्घटना के लिए, आजाद हिन्द फौज के केवल अफसरों को दोषी नहीं मानते।उनका कहना है कि बोस का आग्रहपूर्ण कथन कि उनके अफसरों

1- Huge Toye : The Springing Tiger : Appendix II-235
2- A Beacon Across Asia : 213-214
3- आशा गुप्त-सुभाष चन्द्र बोस : दक्षिणी-पूर्वी एशिया-पूर्ण क्रान्ति.186

का सामान्य स्तर निम्न था, किसी हद तक ठीक हो सकता है। किन्तु'इम्फाल दुर्घटना के लिए उन पर इतना संगीन जुर्म लगाना उनके वंश, प्रशिक्षण-पद्धति आदि को भुला कर सरलीकृत कर देना है।[1] फुजीवारा को भी बड़ी निराशाहुई थी। उनका कहना था कि क्रान्तिकारी सेना की दृष्टि से उसका आचरण अच्छा और अनुशासनबद्ध तो था किन्तु दाँव-पेचों का स्तर, प्रशिक्षण एवं नेतृत्व बहुत घटिया था। विशेषकर उसमें आक्रमण की पद्धति और दृढ़ता की कमी थी।फुजीवारा ने यह अवश्य स्वीकार किया कि 'आजाद हिन्द फौज' के दूसरे और तीसरे दस्ते ने पतेल मार्ग पर जापानी-सेना के जमे रहने में मदद पहुँचायी थी अन्यथा जापानी सेना बुरी तरह ढ़ेर हो जाती।'...........इसके अलावा हिन्द-फौज कारीगरों का ऐसा वर्ग था जिनकी कोई पृष्ठभूमि नहीं थी.......... सम्भरण तथा हथियारों के लिए जापान सरकार पर निर्भर रहना दूसरी गलती हुई। इसलिए हिकारी किकान के तिरस्कार और मन-मुटाव का भागीदार होना पड़ा।[2]

बोस को हिकारी किकान के नये उच्चाधिकारी जनरल इसोदा से सूचना मिली कि इरावती नदी पर 'आजाद-हिन्द-फौज' के कुछ सैनिकों ने आत्म-समर्पण कर दिया है।उनके आक्रोश का अन्त न था। उन्होंने घोषणा जारी कर दी कि प्रत्यावर्तन या आत्म-समर्पण करने वाले हर सैनिक को गोली से उड़ा दिया जाएगा।[3]माउंट पोपा पर लैं0 कर्नल पी0के0 सहगल के नेतृत्व में 'आजाद-हिन्द-फौज' की दूसरी पैदल-सेना का निरीक्षणकरने के लिए बोस मेइकटिला क्षेत्र की तरफ बढ़ने लगे तो शहनवाज खाँ ने कहा,'' नेताजी! आप स्वार्थी हो रहे हैं! व्यक्तिगत बहादुरी दिखाने के लिए अपना जीवन खतरे में डाल रहें है। अपना जीवन खतरे में डालने का आपको कोई अधिकार नहीं है। आपकी जिन्दगी आपकी अमानत नहीं है। वह भारत की अमूल्य धरोहर है जो हमारी हिफाजत में है। मैं इस धरोहर को किसी भी खतरे में नहीं पड़ने दूँगा।''[4]इस पर बोस का उत्तर था, ''मेरी सलामती की फिक्र न करो।मुझे मालूम है कि इग्लैण्ड ने अभी तक ऐसा बम नहीं बनाया है जो सुभाष चन्द्र बोस की हत्या कर सके।[5]

सेना-प्रत्यावर्तन के बाद भी सुभाष बोस निराश नहीं हुए। वापसी की सूचना पर बोस ने कहाथा,''यह जापान का आत्म-समर्पण भारत का आत्म-समर्पण तो नहीं है। जापान

1- Huge Toye : The Springing Tiger : 132
2- Hayashida : Netaji Subhas Chandra Bose : 95-96
3- Abil Hasan Safrani : The man from Imphal -3
4- Shah Nawaz Khan - My Memories of the I.N.A and its Netaji : 179
5- Ibid :

का उत्सर्जन भारत की आजादी के लिए युद्ध-रत मुक्ति सेना का आत्म-समर्पण तो नहीं है।............सच्चा क्रान्तिकारी पराजय कभी स्वीकार नहीं करता वह कभी निराश या हतोत्साहित नहीं होता।''(1)

वर्मा जाने के निश्चय् के बाद,24 अप्रैल 1945 को सुभाष बोस ने आजाद हिन्द फौज के अफसरों और सैनिको को सम्बोधित करते हुए कहा था, ''मैं बोझिल हृदय लेकर वर्मा जा रहा हूँ। हम स्वतंत्रता संग्राम के पहले दौर में पराजित हो गये हैं। संग्राम के अभी कई दौर शेष हैं। पहले दौर में पराजित होने पर भी मुझे निराशा का कोई कारण दृष्टिगत नहीं होता।..........इम्फाल के मैदानों, अराकान के पहाड़ों और जंगलों तथा वर्मा के दूसरे इलाकों में शत्रु के विरूद्ध युद्ध में, आपकी बहादुरी के कारनामें हमारे स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास में सदा अमर रहेगें।....... इस संकट की घड़ी में, मेरा केवल एक आदेश है यदि युद्ध करते हुए गिरो तो तुम्हारे हाथ में राष्ट्र का तिरंगा झण्डा ऊँचा लहरा रहा हो........ वीरो की तरह गिरो। सम्मान और अनुशासन का उच्चतम आदर्श कायम रखों। तुम्हारे इस परम-त्याग से भारत की भावी पीढ़ी, गुलाम नहीं स्वतंत्र पैदा होगी।

..........वह तुम्हारा नाम गर्व से लेगी और विश्व के सामने उद्घोष करोगी कि मणिपुर, असम और वर्मा में तुम्हारे संघर्ष एवं अल्पकालिक असफलता ने अन्ततः सफलता के दिव्य-पथ का निर्माण किया था।....... अपने मंत्रि-वर्ग तथा उच्चाधिकारियों के परामर्श पर मुझे वर्मा से जाना पड़रहा है, जिससे मुक्ति संघर्ष जारी रख सकूँ। विश्वास दिलाता हँ कि आपके कष्ट और त्याग अनर्थक नहीं जायेगें।......... जहाँ तक मेरा प्रश्न है मैं आज भी अपनी उस शपथ के प्रति समर्पित हूँ जो मैंने 21 अक्टूबर 1943 में ली थी कि अपने अड़तीस करोड़ देशवासियों के हित-साधन तथा उनकी मुक्ति के लिऐ यथा-शक्ति सेवा करूँगा। अन्त में आपसे अपील करता हूँ कि मेरी तरह आशवादी रहें.......... प्रातः काल से पूर्व सदा घोर अन्धकार होता है............ भारत मुक्त होगा......... बहुत शीघ्र।''(2)

अगले दिन, यानी 15 अगस्त 1945 को 'स्पेशल आँर्डर आँन द जापानीज सरैण्डर'' में उन्होंने अपने सहकर्मियों को पुनः सम्बोधित किया कि,''मातृ-भूमि को स्वतंत्र कराने के संघर्ष में हम ऐसे संकट में फँस गये हैं जिसको स्वप्न में भी नहीं सोचा था। आपको

1- Selected Speeches of Subhas Chandra Bose : 238

2- Hyge Toye - The springing Tiger : Appendix II 240-242

लगता हो कि भारत की मुक्ति के मिशन में आप असफल रहे। किन्तु यह असफलता सामयिक है। .... देश की अड़तीस करोड़ जनता हिन्द्र फौज पर आशा लगाये बैठी है। दिल्ली की तरफ जाने वाले मार्ग अनेक हैं,दिल्ली ही हमारा पड़ाव हैं.........पृथ्वी की कोई शक्ति भारत को गुलाम नहीं रख सकती। भारत बहुत जल्द आजाद होगा।[1]

उसी दिन उन्होंने पूर्वी एशिया प्रवासी भारतियों को सन्देश दिया कि, ''आपने भारत–मुक्ति के लिए अपने जन,धन और सम्पत्ति देकर देशभक्ति तथा आत्म–त्याग का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है। मेरे 'पूर्ण सैन्य–संघठन'के आह्वान पर आपकी तत्परता एवं उत्साह–पूर्ण प्रतिकिया को मैं कभी विस्मृत नहीं कर सकूँगा। आप अपने पुत्र और पुत्रियाँ लगातार आजाद हिन्द फौज और रानी झाँसी–रैजिमेण्ट में प्रशिक्षण के लिए भरती करते रहो ....आपसे भी अधिक मुझे खेद है कि आपके कष्टों और त्याग का फल तुरन्त नहीं मिला। इस सामयिक असफलता से आप निराश न हों। भारत के भाग्य के प्रति अपना विश्वास एक क्षण–भर को भी डगमगाने न दीजिए।[2]

इस तरह आजाद हिन्द फौज के आन्दोलन ने न केवल यह स्थापित किया कि भारतीयों से सम्बंधित मामलें तय करने का अधिकार भारतीयों को ही है वरन् भारत में अपने कानून चलाने के ब्रिटिश अधिकारों के आगे प्रश्न चिन्ह भी लग गया। भारत बना ब्रिटेन का मुद्दा अब बिल्कुल साफ हो चुका था। अब देश का एक ही नारा था––भारत छोड़ो।

भारत के बाहर दक्षिण–पूर्वी–एशिया में भारतीय फौज का संगठन करके नेताजी ने यह सिद्व कर दिखाया कि गहन देशभक्ति की भावना द्वारा सभी मतभेदों को समाप्त किया जा सकता है।

सुभाष बोस का सैनिक राष्ट्रवाद :–

नेताजी का सैन्य विषयक ज्ञान विलक्षण था। उन्होने प्रमुख सैन्य प्राविधियों (techniques)का विस्तृत अध्ययन कियाथा। वे सभी सैन्य समस्याओं को समझते थें और उन पर सलाह भी देते थे। ब्रिटिश लेखक माइकेल एडवार्डस ने इस विषय में टिप्पणी की थी कि केवल एक विशिष्ट व्यक्तित्व ने व्यक्तिगत रूप से एक पृथक एवं सामरिक मार्ग

1- Speeches of Subhas Bose in Special Order on the Japanies Surrender-15 Auguest 1945.

2- Huge Toye - The Spiringing Tiger-Appendix II

को ग्रहण किया और वास्तव में भारत उनके प्रति किसी अन्य व्यक्ति की तुलना में कहीं अधिक ऋणी है। इस कथन में अतिश्योक्ति नहीं है कि ब्रिटेन ने 1947 में भारत को स्वतंत्रता देने का जो निर्णय लिया,उस पर नेताजी की सैनिक गतिविधियों का विस्तृत सीमा तक प्रभाव था। 1946 में नेताजी की नीति के ही प्रभाव स्वरूप भारतीय नौ सेना के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने ब्रिटेन के विरूद्ध बिद्रोह किया। ब्रिटेन को इस अनुभूति ने कि भारत में ब्रिटिश राज्य की सुरक्षा के लिए वह अब भारतीय सेना पर निर्भर नहीं कर सकता। उसे भारत को आजादी देने के लिए मजबूर किया।[1] इस प्रकार नेता जी की सैनिक कार्यवाही ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के आधार को ही नष्ट कर दिया था।

नेता जी का सैनिक राष्ट्रवाद जर्मन यात्रा के दौरान खुलकर सामने आया जब बोस ने राष्ट्रीय एकता के लिए एक अभिवादन शब्द, एक राष्ट्रीय गान और एक भाषा का निर्णय लिया जो अपने आपमें ही देश के सुनहरे भाग्य की कल्पना करना था। 2 नवम्बर 1941 की, वह ऐतिहासिक घड़ी थी जिस दिन से सुभाष बोस 'नेताजी' बने।[2]सुभाष एक ही बात पर चिार कर रहे थे कि -एक अनुशासित,उच्च प्रशिक्षित और प्राण कुर्बान कर देने वाले रणबांकुरों की सेना की, जो अंग्रेजों को ललकार सके, उनसे सफलतापूर्वक सांघर्ष कर सकें और देश को आजाद करवा सकें।बोस ने शायद भूतकाल में इसी दृष्टि से सैन्य प्रशिक्षण लिया था।

सुभाष बोस ने अब पूरा ध्यान सेना की बटालियन निर्मित करने में लगा दिया। जर्मनी और यूरोप से उन्होंने रणबांकुरो को आकर सेना में भर्ती होने के लिए आमंत्रित किया। धुरी शक्तियों द्वारा युद्वबंदी बन गये भारतीय सैनिको का आवाहन किया कि वे उनके गठित सेना में भर्ती होकर अपने देश को आजाद करवाने में सहयोग दें। नेताजी को विश्वास था वे कि इन युद्वबन्दी सैनिको को प्रेरित कर लेगें। जर्मनी के लिए ये हजारो युद्वबन्दी बोझ थे। सुभाष बोस ने सोचा कि इन पर प्रशिक्षण-व्यय भी कम आएगा, अस्तु भारत की राष्ट्रीय सेना का गठन आराम से हो सकता था। नेताजी ने जर्मन नेताओं से इस विषय पर बात की। जर्मन सरकार एक बटालियन सेना खड़ी करने की स्वीकृति तो दे ही चुकी थी। जर्मन सरकार इस समय बहुत ही उदार हो चुकी थी क्योंकि उसे हर युद्व

1— डा0 जयश्री – स्वतंत्रता संग्राम के अप्रितम नायक : नेताजी सुभाष ; अभिनव ज्योति (स्वर्ण जयंती अंक) –1996–98

2— सत्य शकुन–मैं तुम्हें आजादी दूंगा–भाग 2, पृष्ठ–123

के मोर्चे पर विजय ही विजय मिल रही थी। नेताजी ने जब उनसे राष्ट्रीय सेना के गठन पर बात की तो एक बात साथ में और स्पष्ट रूप से कह दी–

"मैं भारतीय सैनिकों को प्रशिक्षित करने के लिए एक 'लिजन' स्थापित करना चाहता हूं।"[1] नेता जी ने अपना मन्तव्य प्रकट किया। सेना का एक उच्चाधिकारी बोला –"आप इस योजना के खर्चे की बात सोच सकते है ? बोस ने कहा यह बात तो किसी भी योजना को बनाने सें पूर्व सोचनी ही पड़ती है। मैंने सोचा है जर्मनी इस खर्च को बर्दाश्त कर सकता है। एक मित्र के रूप में यह ऋण देना मुश्किल नहीं है।

तत्पश्चात् नेताजी अन्नावर्ग बंदी शिविर गए। वहाँ बंदी भारतीय सैनिकों से मिलकर बातचीत की कि–"मैं यहाँएक राष्ट्रीय सेना खड़ी करना चाहता हूँ जो भारत माँ को अंग्रेजो के चंगुल से मुक्त कराने का काम करेगी। आप लोग भी तो उसी माँ की सन्तान हैं, आप भी दाँसता से पीड़ित है, आपभी स्वतंत्र देश में सांस लेना चाहते हैं....... आप आगे बढ़कर देश को आजाद करवाने में मेरा सहयोग करेगें।

नेताजी भारतीय युद्धबन्दियों द्वारा अपना अभूतपूर्व स्वागत और स्नेह पूर्ण व्यवहार देखकर समझ गए कि उन्हें देश की स्वतंत्रता के लिए हर प्रकार कष्ट स्वीकार है। साथ आए हुए जर्मन अधिकारी आश्चर्य चकित थें। जवानों ने उन्हें आश्वासन दियाथा–'नेताजी अपना देश, सुख सुविधाऐं छोड़कर भारत की आजादी के लिए दर–दर भटक रहे हैं क्यों ? हम भी अपनी कुछ सुविधाओं को इस निमित्त त्याग सकते हैं आप आशा रखिये हम में से जितने भी आपकी रणभेरी की आवाज सुनकर आपके साथ आएंगें,पूरी निष्ठा से देश की आजादी के लिए जूझने ही आएगें।

नेताजी की जर्मन नेताओं से जब अगली बात हुई तो उन्होंने 'लिजन' की स्थापना सम्बन्धी शर्ते उनके सम्मुख रख दीं।

–जर्मन सेना विभाग उन योग्य और समझदार लोगों को प्रशिक्षण देगी जिनका चयन राष्ट्रीय सेना के लिए किया जाएगा।

–भारतीय सैनिक प्रशिक्षणार्थियों को इन्फैंट्री की सभी शाखाओं में जर्मन सेना के समान

1– सत्य शकुन,–मैं तुम्हे आजादी दूंगा (भाग–2) पृष्ठ 125

प्रशिक्षित किया जाएगा। उन्हें अत्याधुनकि हथियार चलाने एवं मोटर यूनिट के कार्यो में दक्ष किया जाएगा।

–भारतीय सैनिक प्रशिक्षणार्थियों को किसी जर्मन सेना की यूनिट के साथ नहीं मिलाया जाएगा।

–उन्हें केवल अंग्रेजो के विरूद्ध अवसर आने पर भारत के मोर्चे पर ही लड़ने के लिए भेजा जाएगा। परन्तु जब वे सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हों तो उन्हें अपनी रक्षा के लिए लड़ने की छूट होगी।

–और सब बातों में अर्थात भोजन, वस्त्र, वेतन अवकाश इत्यादि में उनके साथ जर्मन सैनिकों के तुल्य व्यवहार होगा।

नेताजी की शर्तो को स्वीकार कर लिया गया। उन्होंने प्रशिक्षण की पथम कड़ी के लिएकेवल पन्द्रह युवकों को चुना। इनमें से दस नवयुवक जर्मनी विश्वविघालय के विघार्थी थे और पाँच भारतीय बन्दी सैनिक। इन लोगों को ही फिर आगे वालों को प्रशिक्षण देना था, प्रशिक्षक और सैनिक तैयार करने थे। जर्मन सेंना के प्रधान कार्यालय ने वे वैरके जो सैनिकों के मोर्चे पर जाने के कारण खाली हो गई थी, भारतीय लिजन को सौंप दी इसके साथ लिजन को कुशल प्रशिक्षक भी उपलब्ध करवा दिये गए। 26 दिसम्बर को इस राष्ट्रीय सेना का नामकरण 'आजाद हिन्द फौज'कर दिया गया। आजाद हिन्द फौज का गठ्न नेताजी के सैनिक राष्ट्रवाद की भावना का ही परिणाम है।

आजाद हिन्द फौज में रानी झाँसी रेजिमेन्ट की स्थापना करके नेताजी ने देश की महिलाओं को न केवल पुरूषों के समकक्ष सम्मान दिया उन्हें अपनी क्षमता के प्रदर्शन का भी अवसर दिया। रानी झाँसी रेजिमेन्ट की कैप्टन लक्ष्मी सहगल ने 'नेताजी की स्मृति : मेरे संस्मरण' नामक लेख से नेताजी के सैनिक राष्ट्रवाद की सराहना इस प्रकार की है:–

–'सन् 1944 में नेताजी ने अनुभव किया कि हमें अपना मुख्य कार्यालय सिंगापुर से हटाकर रंगूर लेजाना चाहिए तभी इम्फाल पर पूरी ताकत से आक्रमण किया जा सकता है। जनवरी के मध्य अग्रगामी दल रंगून रवाना भी हो गया क्यों कि मित्रों को बीसा देने

में आनाकानी करते देखकर नेताजी ने पैदल ही रंगून जाने की घोषणा कर दी। रंगून पहुँचने पर रानी झ्रासी रेजीमेन्ट का शिविर थिंगनगम(Thingangum)में लगाया गया। स्थान अनुकूल न होने के कारण शिविर को पुनः कमायुट(Kamayuta)ले जाने की तैयारी की गई। रंगून में रानी झाँसी रेजीमेन्ट की तथा परिचालिका दल की कुछ महिला सदस्यों ने ऐसी खघ वस्तुओं का परीक्षण किया, जिन्हें हफ्तों सुरक्षित रखा जा सकता था।यह खाद्य मोर्चे पर लड़ रहे सिपाहियों के लिए आपात कालीन भोजन के रूप में पर्याप्त उपयोगी था। पालिशदार चावल पूरी तरह से मना था। साथ ही हर सिपाही को एक चम्पच भूसी लेना भी जरूरी था। इस प्रकार से विटामिनों की कमी से होने वाले बेरी-बेरी जैसे रोगों पर किसी प्रकार नियंत्रण किया जा सका।

नेताजी ने हमें रेडियों पर मातृ-भूमि के विषय में बोलने के लिए भी प्रोत्साहित किया था। इस सम्बन्ध में हमारी धारणा थी कि हम अवपने देशवासियों के हृदय का भलिभाँति स्पर्श कर सकेंगें।

श्रीमती कस्तूरबा. गाँधी के निधन के समाचार से नेताजी अत्यधिक द्रबित हो उठे। उस रात को उन्होंने रेडियों से विशेष प्रसारण किया और श्रीमती मानवती पांण्डेय तथा मुझसे भी बोलने का आग्रह किया। उसी रात को हम पर प्रथम हवाई हमला हुआ और उसकी सूचना हमें उस समय हुई, जब रेडियों पर हम प्रसारण कर रहे थें अपने ऊपर इस आक्रमण के बाबजूद हमने प्रसारण जारी रखा।

मार्च सन् 1944 में रानी झाँसी रेजिमेन्ट की एक कम्पनी की ओर परिचालिका विभाग की व्यवस्था करने के लिए मैं सिंगापुर वापस लौटी। नियमित सैनिक प्रशिक्षण के अतिरिक्त हम दिन और रात के लम्बे पथ-संचालनों(रूट-मार्चो)में भी भाग लेते थे। हमारे प्रशिक्षण में कई युद्ध-पद्धतियों के अभ्यास तो थें ही, उसमें गुरिल्ला युद्ध और वन युद्ध भी सम्मिलित थे। 20 अप्रैल को हमारी एक बड़ी और विशेष बैठक हुई, जिसमें कि आजाद हिन्द फौज की मलाया स्थित सभी इकाइयाँ (यूनिट्स)उपस्थित थीं। हमारी सेनाओं का मनोबल बहुत ऊँचा था-यही वह समय था जब हमारी फौजें अराकान अभियान पर गयीं हुई थी, और

अब इम्फाल पर चढ़ाई करने के लिए तत्पर थी।

प्रयोग न की जाने वाली एक स्कूली इमारत में स्थान बदलकर जाने की हमारी प्रक्रिया का नेताजी स्वंय निरीक्षण करते रहे। हवाई हमला आगे आने वाली विपत्ती की एक प्रकार से चेतावनी थी। इम्फाल पर अभियान रोका जा चुका था और समय पर सैनिक सहायता आ जाने से ब्रिटिश सेनाओं ने बार-बार पीछे धकेलने की व्यवस्था कर ली थी। प्रकृति के भी हमारे विपरीत होने से मानसून बहुत जल्दी और जोर से आए। सम्पूर्ण सीमा-क्षेत्र कीचड़ और मिट्टी का दलदल बन गया था, जो कि मलेरिया और पेचिस जीवाणुओं के लिए उपयुक्त वातावरण था। हमारे वीर सिपाही अब जो कुछ कर सकते थे, वह केवल पीछे हटना था।

जिस कमरे में पूछताछ हो रही थी उसमें नेताजी का एक चित्र था। किसी भी प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व रानी झाँसी रेजिमेन्ट की सदस्याओं ने 'जयहिन्द' के उच्चारण के साथ नेताजी के चित्र का अभिवादन किया। पूछताछ करने वाले अधिकारियों ने अपनी ओर से भरसक प्रयत्न किया कि लड़कियाँ यह स्वीकार कर लें, कि रानी झाँसी रेजिमेन्ट में उन्हें बलपूर्वक भर्ती किया गया, अथवा वे विवशता में भर्ती हो गई, किन्तु वे बुरी तरह असफल रहे। एक-एक सभी ने यही उत्तर दिया कि वे पूर्णतया स्वेंच्छा से जाकर भर्ती हुई और उन्हें इस बात का गर्व है कि उन्हें ऐसा करने का सौभाग्य मिला। यदि उन्हें अवसर दिया जाए तो वे पुनः यही करेगी। उन सभी ने कहा कि बन्दी बनाकर मुकद्में के लिए भारत ले जाए जाने पर उन्हें गर्व अनुभव होगा। ब्रिटिश अधिकारी वास्तव में यह आत्मबल देख्कर चकित थे।(1)

नेताजी ने अकेले ही जो साहस और त्याग, इन नवयुवतियों के हृदय में भर दिया था, उसे देखकर कितने ही ब्रिटिश अधिकारियों ने नेताजी के वास्तविक व्यक्तित्व के गइराई का दर्शन किया। इन युवतियों ने उन्हें अनुभव करा दिया कि आजाद हिन्द सेना जापानियों के हाथ की कठपुतली नहीं है। वे पूर्वी एशिया के भारतीयों की पूर्णतः स्वतंत्र संस्थाएं थी जो भारत माँ के सच्चे सपूत नेताजी सुभाष चन्द्र बोस से स्फूर्ति और पथ-प्रदर्शन लेकर अपनी मातृ-भूमि को स्वतंत्र कराने की इच्छा से प्रेरित थी।

1— कैप्टन लक्ष्मी सहगल (रानी झांसी रेजीमेन्ट)— नेताजी की स्मृति : मेरे संस्मरण : पृष्ठ 92

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस देश में नेताजी के हजारों सच्चे और निष्कपट अनुआयी थे, जो इस देश की अन्तिम विजय के नेतृत्व के लिए नेताजी की योग्यता में सच्चाई से विश्वास करते थे। फिर भी उस समय देश में दुर्भग्य से ऐसी परिस्थितियाँ थीं कि नेताजी की अपूर्व मेघा को कार्य करने का अवसर न मिला। चकाचौंध करने वाला व्यक्तित्व होते हुए भी उनका व्यवहार सामान्य था। नेताजी में गर्व का लेश-मात्र नहीं था। अत्यधि ाक महत्वपूर्ण कार्यो में व्यस्त रहते हुए भी नेताजी समय निकालकर औपचारिक रूप से सैनिक शिविरों में यह देखने जाते कि वे कैसे चल रहे हैं।

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का सैन्य विषयक ज्ञान विलक्षण था। उन्होंने प्रमुख सैन्य प्राविधियों का विस्तृत अध्ययन किया था। नेताजी का अन्य विशिष्ट गुण था-वैचारिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक अनुशासन की लालसा। इन सबमें उन्होंने पूर्णता प्राप्त की थीं और उनका गम्भीर प्रयास था कि अपने सारे अनुयायियों को इसकी शिक्षा दें। नेताजी अनुभव करते थें कि एक राष्ट्र के नाते हम लोंगो में अनुशासन की बहुत कमी हैं। प्रथम तो वे चाहते थे कि हम में शारीरिक अनुशासन आए। उसको लाने के लिए उनके विचार से सैनिक जीवन से बढ़कर कोई अन्य उपाय नहीं था। उसे प्राप्त करने के लिए उन्होंने प्रत्येक युवक को आजाद हिन्द्र फौज में, तथा प्रत्येक युवती को रानी झाँसी रेजिमेन्ट में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित किया। परन्तु यह सब अन्य किसी बात से कहीं अधिक नेताजी के इस विचार के फलस्वरूप था कि वे विभिन्न व्यक्तियों को एक साथ कर्मरत बनाकर एक ऐसी विशाल शक्ति खड़ी कर सकें, ताकि भारत-माता पुनः अपने श्रेष्ठ गौरव को प्राप्त करे। नेताजी के इन्हीं गुणों के कारण प्रत्येक व्यक्ति उनके लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने के लिए हर समय तत्पर रहता था।

४-साम्यवादी का फासीवादी विचारधारा एवं सुभाष -

राष्ट्रीय समाजवाद(फासिज्म)राष्ट्रीय एकता और संगठन को सृजित करने और जनता की दशा को सुधारने मे समर्थ रहा है। परन्तु यह विघमान आर्थिक व्यवस्था को जिसका निर्माण पूँजीवादी व्यवस्था पर हुआ था, पूरी तरह सुधारने में समर्थ नहीं हो पाया है।

टोकियो विश्वविघालय के छात्रो को
सुभाष बोस का सम्बोधन (नवम्बर-1944)

बोस को राजनीतिक यथार्थवाद में विश्वास था। उनकी बुद्धि बहुत ही कुशाग्र थी। उन्होनें स्वीकार किया कि भारतीय स्वाधीनता के पक्ष में सहानुभूति विश्वव्यापी लोकमत तैयार करने के लिए विदेशों में प्रचार करने की आवश्यकता है। इस प्रकार वे देश के बाहर भारत के लिए मित्रों की खोज करने में विश्वास करते थे।

सुभाष बोस का मानना था कि राजनीति में एक बड़े स्वार्थ के लिए किसी दूसरे शक्ति शाली देश की सहायता लेना अनुचित नहीं होता है। इग्लैण्ड ने एशिया की मद्द नहीं ली थी? हिट्लर ने अपने महान शत्रु स्टैलिन के साथ समझौता नहीं किया था? तो फिर भारत क्यों नहीं कर सकता है?

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि बोस के मन में फासीवादी अधिनायकों के सबल तरीकों के प्रति भावनात्मक झुकाव था। 1934-35 में बोस ने अपनी पुस्तक 'Indian Struggle' में लिखा था कि मुसोलिनी एक ऐसा व्यक्ति है जिसका आधुनिक यूरोप की राजनीति में विशेष महत्व है।[1]

जवाहर लाल नेहरू भी गाँधीवादी श्रेणी में बामपन्थी का ही प्रदर्शन करते थे। उनका वामपंथ गाँधीजी की भावना को समर्पित था। इसलिए उनकी आलोचना इस बारे में नेहरूजी ने नहीं की। अप्रत्यक्ष रूप से सुभाष बोस के प्रति उन्होंने कहा था कि 'कांग्रेस में ऐसे बहुत से लोग हैं जिनका झुकाव इट्ली, जर्मनी और जापान की तरफ हैं' उनकी दृष्टिमें

1- Subhas Chandra Bose - The Indian struggle 1934-35

यह झुकाव उचित नहीं था, क्यों कि नेहरू यह मानने को तैयार नहीं थे कि ब्रिटिश सरकार का हर शत्रु मित्र बनने योग्य हैं। या जैसा कि सुभाष बोस मानते थे।'' राजनीति में आदर्शवाद को कोई जगह नहीं है। ब्रिटेन के हर दुश्मन को दोस्त समझा जाये।

मुसोलिनी के प्रति सुभाष के सद्भाव को प्रजातंत्र विरोधी और स्वतन्त्रता विरोधी अनुभव किया जाने लगा। तत्कालीन यूरोप में सभी के होठों पर एक ही प्रश्न था कि क्या भारत साम्यवाद को समर्पित हो जायेगा। इसके उत्तर में जवाहर लाल नेहरू ने फासिस्टवाद की आलोचना तथा साम्यवाद के गुणगान किये हैं। नेहरू ने कहा था कि साधनों के आधार पर वह भले ही उसे पसंद न करें लेकिन उनके आदर्श नेहरू जी को पसन्द थे। साध ानों को वे परिस्थिति के अनुसार बदलने के समर्थक थे। सुभाष बोस का दृष्टिकोण इससें भिन्न था।

1934 में उनका वियार था कि विश्व में राजनीतिक विचारधारा के विकास की अगली अवस्था फासीवाद तथा साम्यवाद के समन्वय की अवस्था होगी। इसी समन्वय को वे वास्तविक साम्यवाद मानते थें, और उनकी भावना थी कि भारत को. उसे साक्षात्कृत करने के लिये प्रयत्न करने चाहिए। अपनी पुस्तक 'भारतीय संघर्ष' के 'भविष्य की एक झलक' नामक अध याय में बोस लिखिते हैं: ''कम्युनिज्म तथा फासीवाद के बीच वैषम्य के बाबजूद कुछ ऐसी विशेष्ताएं हैं जो दोनों में सामान्य रूप से विघमान हैं। साम्यवाद तथा फासीवाद दोनों व्यक्ति के ऊपर राज्य की सर्वोच्चता में विश्वास करते हैं। दोनों संसदीय लोकतंत्र की निन्दा करते हैं। दोनों को दल के शासन में विश्वास है। दोनों दल के अधिनायक तंत्र में तथा असहमत अल्पसंख्यकों का निर्मम रूप से दमन करने में विश्वास करते हैं। दोनों का देश के नियोजित औघोगिक पुनस्संगठन में विश्वास है। ये उभयनिष्ठ विशेष्ताएँ नये समन्यवय का आधर होर्गी। इस समन्वय को बोस ने 'साम्यवाद'का नाम दिया है। यह हिन्दी का शब्द है, जिसका अर्थ है 'समन्यवय अथवा समानता का सिद्धान्त।'' इस समन्वय का सम्पादन करना भारत का काम है।''[1] बोस द्वारा प्रयुक्त यह साम्यवाद शब्द सोवियत संघ के साम्यवाद से पृथक रूप से प्रयुक्त किया गया ।

सुभाष बोस का मत था कि भारत में साम्यवाद पनप नहीं सकता ,क्योंकि साम्यवाद,

---

1— बोस ने नवम्बर 1944 में टोकियो के साम्राज्यवादी विश्वविद्यालय में भारत की मूल समस्याएं' शीर्षक भाषण पर बल दिया। उसमें उन्होने फासीवाद अथवा राष्ट्रीय समाजवाद और साम्यवाद के समन्वय पर बल दिया था–The Indian Struggle : 1935-9142 : page 11-20

राष्ट्रवाद को स्वीकार नहीं करता, रूस समस्त विश्व में बिद्रोह करना चाहताहै। आर्थिक प्रश्न पर बहुत सी बातें अच्छी नहीं लग सकती हैं, किन्तु उसकी बहुत सी बातें भारत को अच्छी नहीं लगतीं। गाँधीवाद को वह एक नये रास्ते के रूप में मानते थें, लेकिन उनके अनुसार गाँधीवाद के पास समाज निर्माण की कोई वास्तविक योजना नहीं है। इन सभी मान्यताओं के कारण उन पर यह आरोप लगाया जाता रहा है कि वह फासिस्ट है। सुभाष बोस के मन में भारत को ब्रिटिश साम्राज्यवाद की लौह श्रृंखलाहों से मुक्त करने की जो तीब्र छटपटाहट थी, उसी ने कम से कम कुछ अंशों में फासीवादी विचारों का समर्थक बना दिया था। बोस ने 'भारत के लिए, ब्रिटिश साम्राज्यवाद की समाप्ति के बाद, एक तानाशही व्यवस्था की माँग की थी, एक कमाल पाशा की माँग की थी।[1]भारत के सुखमय भविष्य के बोस ने अच्छी व्यवस्था देने की जो कामना की थी, आज की परिस्थिति को देखते हुए उसे सही कहा जा सकता है लेकिन इस बात में उन्हें फासिस्टवादी कहनाउपयुक्त नहीं लगता। हीरालाल लाल सेठ ने 'पर्सनेलिटी एण्ड पॉलिटिकिल आइडियाज ऑफ सुभाष' में तार्किक विवेचना करते हुए इस बात का खण्डन किया है कि वह फाासिस्ट है। उनमें राष्ट्रवाद था, जो कठोर साधना और अनुशासन की भावना को समर्पित था। सुभाष बोस में नेतृत्व की अपार क्षमता थी। ....

बोस उग्र राष्ट्रवादी थे और देश की स्वतन्त्रता के लिए हिंसात्मक तरीकों का प्रयोग करने में विश्वास करते थें। इसलिए द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान उन्होंने भारत की स्वाधीनता के लिए 'आजाद हिन्द फौज'' का संगठन किया। विश्व के अनेक देशों में स्वतंत्रता के लिए हिंसात्मक संघर्ष चलाये गये है। स्वंय हिंसा पर फासीवाद का एकाधिकार नहीं है। किन्तु बोस का हिंसात्मक संग्राम इसलिए फासीवादी जान पड़ा कि उन्होंने यूरोप तथा एशिया की फासीवादी शक्तियों से सशस्त्र सहायता ली थी। राजनीतिक आचारनीति की दृष्टि से यह काम किसी भी प्रकार निन्दनीय नहीं था। बोस ने 19फरवरी 1939 को हरिपुरा में जोर देकर कहा था कि स्वतंत्रता के बाद के काल में कांग्रेस को अपनी लोकतान्त्रिक स्थिति बनाये रखनी चाहिए। उसे नास्ती पार्टी आदि की तरह से, जो नेतृत्व के सिद्धान्त पर आध

ारित है, कार्य नहीं करना चाहिए।'[1]

बोस को फासीवाद के अतिवादी सिद्धान्तों में विश्वास नहीं था। उन्होंने कभी साम्राज्यवादी प्रसार का समर्थन नहीं किया,[2]और न कभी जातीय (नस्लगत)सर्वोच्चता के सिद्धान्त को स्वीकार किया। वे जब तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में रहे तब तक शोषित जनता के हितो का समर्थन करते रहे। अतः यह कल्पना करना अनुचित होगा कि यदि उनके हाथों में राजनीतिक शक्ति आ जाती तो वे जर्मनी और इटली के फासीवादियों की भाँति शोषक तथा प्रभुताशाली वर्गो से मिल जाते।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के मुख्य-पत्र 'पीपुल्स बार' ने 21 नवम्बर 1943 को नेताजी सुभाष बोस पर यह झूठा कलंक मढ़ने की कुचेष्टा की कि "अकालग्रस्त बंगाल पर सुभाष बोस चावल की बोरियों के बजाय बम-वर्षा,बरबादी और जापानी गुलामी थोप रहे हैं।"[3]कम्युनिस्ट मुखपत्र 'पीपुल्स बार'में उस वक्त 'दिसम्बर 1942 में लिखा गया कि " भारत में जापानी एजेंटों (सुभाष बोस के समर्थकों) की गतिविधियाँ तेज हो गई हैं। उनके गुरिल्ले (सन् 42 के आन्दोलनकारी) सरकारी सम्पत्ति और रेलों का नाश किए दे रहे है। सुभाष बोस जापानी साम्राज्यवाद के हस्तक हैं। तोजो एण्ड कम्पनी की कृपा से इस भावी तानाशाह (सुभाष बोस) का वादा क्या है- लूट, हत्या और विध्वंस की एक सेना। कम्युनिस्ट पार्टी इस चुनौती का मुकाबला करने के लिए कमर कसकर तैयार है और इन गद्दारों और विदेशी एंजेटों (आजाद हिन्द फौज तथा सन् 42 के आन्दोलनकारियों) से निपट लेगी। बोस की यह भाड़े के टट्टुओं की लुटेरी 'आजाद फौज' अगर भारत में कदम रखती है तो उसे जनता के क्रोध का सामना करना होगा।"[4]

पुनः 13 दिसम्बर 1942 में यही 'पीपुल्स बार," लिखता है-"भारत के लोग फासिस्टवादी नहीं है, एक बहुत छोटा गिरोह, जिसके नेता बर्लिन में सुभाष बोस है, के सिवा पूरा देश फासिज्म से नफरत करता है। हमारी पूरी हमदर्दी रूसी-चीनी और संयुक्त राष्ट्रों (इग्लैण्ड-अमरीका) के उद्देश्यों के साथ है।[5]

कम्युनिस्टों के इसी दुष्प्रचार के शिकार नेहरू जी सरीखे तत्कालीन अनेक कांग्रेसी नेता भी हो गए। नेहरू जी ने रानी खेत में कह डाला कि ' अगर सुभाष बोस सेना

1— 1941 में काबुल में किसी ने बोस से प्रश्न किया था। उसके उत्तर में उन्होने कहा था, "जब तक देश में एक तीसरा पक्ष अर्थात अंग्रेज हैं तब तक इस फूट का अन्त नहीं हो सकता। वह बढ़ती ही जाएगी। उसका अन्त तभी होगा जब भारत पर बीस वर्ष के लिए कोई अधिनायक शासन करेगा। ब्रिटिश शासन के समाप्त होने पर कम से कम कुछ वर्ष के लिए भारत में अधिनायक शासन करेगा। देश में अन्य कोई संविधान सफल नही हो सकता क्योंकि भारत किसी एक रोग का शिकार नहीं है। वह इतनी राजनीतिक बीमारियों का शिकार है कि केवल एक निर्मम अधिनायक ही उसे स्वस्थ कर सकता है। भारत को एक कमाल पाशा की आवश्यकता है।"—हिन्दुस्तान टाइम्स : 8 मार्च 1946

1- The Indian Annual Register, 1938 : पृष्ठ 340
2— बोस के साम्राज्यवाद विरोधी विचार—Japan's Role in the fareast Modern Review.1937.
3- Quoted the peoples war - 21 November 1943
4— वचनेश चित्राठी — जब सुभाष बोस को फासिस्ट लिखा गया ; पृष्ठ—119
5- Reported in peoples war - 13 December 1942.

के साथ भारत में कदम रखते हैं तो मैं तलवार के साथ उनका मुकाबला करूँगा।''[1]अंग्रेजों ने नेहरू जी के उसी सुभाष विरोधी बयान को पत्रक रूप में लाखों की तादाद में छपवाया और ठीक ''आजाद हिन्द फौज'' के युद्वरत सिपाहियों के बीच विमानों से गिरवाया ताकि 'आजाद-हिन्द-सेना'के सिपाही और सेनानी सुभाष बोस का साथ छोड़कर अलग हो जाएँ, लेकिन वे रण-बाँकुरे जहाँ थे, वहीं डटे रहे। जबकि उधर कम्युनिस्टों की चाल में फँसकर नेहरू सरीखे बड़े नेता भी सुभाष बोस को 'फासिस्ट' मानकर उनके खिलाफ तलवार चमकाकर युद्व की धमकी दे रहे थे।

जबकि सुभाष बोस का मानना था कि बिना बाहरी सहायता के सशस्त्र विरोध का संगठन कर सकना असंभव है। वह सहायता विदेशें में बसे हमारे देशवासियों तथा विदेशी शक्ति अथवा शक्तियों की हो सकती है। उनके सामने लक्ष्य केवल आजादी का ही था।

बोस को 'फासिस्ट' कहा गया था, क्योंकि उन्होंने 18 दिसम्बर 1938 को प्रकाशित पं0 जवाहर लाल नेहरू के इस मत को करारी चुनौती दी थी कि संसार को किसी न किसी रूप में कम्युनिज्म और फासिस्टवाद में से किसी एक का चुनाव करना पड़ेगा और उस स्थिति में उनकी (नेहरूजी) सहानुभूति कम्युनिज्म के साथ होगी।[2]

जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है कि 1938 में जब सुभाष चन्द्र बोस भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष थे उस समय उन्होंने ''इस बात की स्वीकृति नहीं दी कि कांग्रेस कोई ऐसा काम करें जो जापान , जर्मनी अथ्वा इट्ली के विरूद्व हो। फिर भी कांग्रेस में और देश में ऐसी भावना थी कि उन्होंने कांग्रेस, द्वारा चीन तथा फासीवादियों और नात्सियों के आक्रमण के शिकार देशों के प्रति कांग्रेस द्वारा प्रदर्शित सहानुभूति का विरोध नहीं किया। हमने उनकी अध्यक्षता के काल में अनेक प्रस्ताव पास किये और अनेक प्रदर्शनों का संगठन किया जिनका उन्होंने अनुमोदन नहीं किया, किन्तु उन्होंने उनको सहन कर लिया क्योंकि वे उनके पीछे जो भावनाएँ थी उनकी शक्ति को समझते थे।''[3]

सन् 1930 से सन् 1938 तक बोस ने गाँधी जी के अंहिसात्मक आन्दोलन को अपनी पूरी शक्ति के साथ समर्थन दिया। लेकिन द्वितीय महायुद्व के समय जब उन्हें नजर बन्दी से भागना पड़ा, तब उन्होने शक्ति के आधार पर अंग्रेजी साम्राज्य को मिटाने के

1- V.S. Patil : Subhas Chandra Bose : His Contribution to Indian Nationalism.
2– श्री पद्याकांत मालवीय – कांग्रेसी नेताओं ने उन्हें फासिस्ट बताया : पृष्ठ 86.
3- Jawaher Lal Nehru - An Autobiogrephy.

कार्य किये। इस काल में उनका सम्बन्धप्रत्यक्ष रूप से फासिस्टवादी और नाजीवादी शक्तियों से था। सुभाष का एक शक्ति के रूप में उदय हो रहा था। वे देश में गाँधी समर्थक लोगो की दृष्टि में वामपंथी और फासिस्टवादी बन गये। क्योंकि अपनी यूरोप यात्रा में वे फासिस्ट तानाशाह हिट्लर और मुसोलिनी से मिले थे और अपने देश की दासता और गुलामी की बेड़ी काटने और स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए उनकी सहायता स्वीकार की थी।

बोस को इग्लैण्ड के विक्टोरियों-युगीन लोकतन्त्र की परम्परागत कार्य-प्रणाली में विश्वास नहीं था, और न वे उन्नीसवीं शताब्दी के फ्राँस के पूँजीवादी तरीकों को सन्तोषजनक मानते थें। बोस ने 10 जून, 1933 को लंदन में तृतीय भारतीय राजनीतिक सम्मेलन के दौरान एक भाषण में लोकतंत्र का डटकर समर्थन किया था। उन्होंने कहा था, ' स्वतंत्र भारत पूँजीपतियों,जमीदारों और जातियों का देश नहीं होगा। स्वतंत्र भारत एक सामाजिक तथा राजनीतिक लोकतन्त्र होगा।''[1]उस भाषण में उन्होंने प्यूरिटन क्रान्ति, फ्रांस की क्रान्ति ,मार्क्सवादी समाजवाद तथा रूसी क्रान्ति ने सभ्यता में जो योगदान दिया है, उसकी प्रशंसा की है।

कम्युनिष्टों के इस दुष्प्रचार का खण्डन करते हुए सुभाष बोस कहते हैं कि सत्य को जानने के लिए कि क्या धुरी राष्ट्र हमें हमारी स्वतंत्रता के युद्ध में सहायता देने के लिए तैयार होगें, मुझे भारत छोड़ना पड़ा। अपने घर, अपनी मातृभूमि को छोड़ने का अन्तिम निर्णय करने से पहले मुझे इस बात का निश्चय करना था कि क्या विदेशों से सहायता लेना उचित होगा?मैंने इससे पहले समस्त विश्व की क्रान्तियों का इतिहास यह खोज निकालने के लिए पढ़ा था कि अन्य राष्ट्रों ने अपनी स्वतंत्रता किन उपायों से प्राप्त की। परन्तु मुझे एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिला कि जिसमें किसी गुलाम जाति ने बिना किसी प्रकार विदेशी सहायता के अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की हो।[2]जहाँ तक नैतिकता का प्रश्न था कि क्या विदेशों से सहायता लेना उचित है, मेरा मानना है कि जिस प्रकार निजी जीवन में उसी प्रकार सार्वजनिक जीवन में व्यक्ति सदैव ऋण के रूप में सहायता ले सकता है और बाद में उसे चुका सकता है। इसके अतिरिक्त जब एक शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य जैसा साम्राज्य समस्त संसार में भीख की झोली लेकर जा सकता है, तब भारतीयों के लिए

1- Subhas Chandra Bose - The Indian Struggle : page 72.
2- Japat S. Bright (Ed.) Important Speeches and writings of Subhas Chandra Bose.

जो गुलाम और निःशस्त्र है, बाहर से ऋणस्वरूप सहायता लेने में क्या आपत्ति हो सकती है।

जब मैंने इस जोखिम भरे वृत्त से निकल पड़ने का निश्चय किया तब मैंने दिनों, हफ्तो और महीनों उसके परिणामों पर विचार किया। इतने लम्बे समय तक देशवासियों की अपनी योग्यता के अनुसार सेवा करने के उपरान्त मुझे देश द्रोही बनने अथवा किसी को मुझे देश द्रोही कह सकने के औचित्य को उपस्थित करने की अभिलाषा जागृत नहीं हो सकती थी।

एक अन्य स्थान पर सुभाष बोस कहते हैं कि-मेरे लिए यह सबसे आसान होता कि मै देश में रहता और जिस प्रकार मैने तब तक काम किया था वैसे ही काम करता रहाता।[1] मेरे लिए यह भी आसान था कि जब तक युद्ध चलता मैं भारत के कारावास में रहता। ऐसा करने से मेरी कोई हानि नहीं होती। मेरे देशवासियों की उदारता और प्रेम के परिणाम स्वरुप मैने भारत में किसी सार्वजनिक कार्यकर्ता के लिऐ चरम प्रतिष्ठा का पद संभव हो सकता था, प्राप्त कर लिया था। मैने एक राजनीतिक दल भी बना लिया था जिसमें मेरे दृढ़ और निष्ठावान सहयोगी थे, जिनका मुझमें पूर्ण विश्वास था।

विदेशों में एक जोखिम भरी खोज के लिए जाने से पहले मैने केवल अपना जीवन और अपना भावी राजनीतिक जीवन ही खतरे में नहीं डाल दिया वरन् अपने दल के भविष्य को भी खतरे में डाल दिया। यदि मुझे किंचित मात्र भी इस बात का अनुमान होता कि बाहर से बिना कार्यवाही किए हम स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं तो मैं इस संकटकाल में भारत को कभी नहीं छोड़ता। परन्तु दो बातों का मुझे पूरा भरोसा है- प्रथम यह कि ऐसा स्वर्ण अवसर एक शताब्दी तक भी नहीं आएगा-दूसरा यह कि हम केवल देश के अन्दर अपने प्रयत्नों से, बिना बाहर से कार्यवाही किए अपनी स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकेंगें यही कारण था कि मैने समुद्र में डुवकी लगाने का निश्चय किया।

भारत से निकलने के बाद मेरा पहला प्रयत्न यह रहा कि जहाँ कहीं भीमुझे मेरे देशवासी मिले मैने उन्हें संगठित किया। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता है कि मैने उन्हें सब जगह जागृत और अपने देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए चिंतित पाया। तब मैने उन सरकारों

1– सत्य शकुन–मैं तुम्हें आजादी दूंगा–भाग 2 : पृष्ठ 170

से जो हमारे शत्रुओं के विरूद्व युद्व कर रहीं थीं, यह जानने के लिऐ बात की कि भारत के प्रति उनका रूख कैसा है? मुझे मालूम हुआ कि वर्षो से अंग्रेजों के प्रचार के विरूद्व भी धुरी राष्ट्र अब खुले रूप से भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में थे।[1]वे हमें अपने सामर्थ्यनुसार हर प्रकार की सहायता देने के लिए तैयार थे।

अपने शत्रुओं द्वारा किए जा रहे दुष्प्रचार से मैं अवगत हूँ।मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे देशवासी शत्रुओं के इस दुष्प्रचार से भ्रमित नहीं होगें तथा धोखे में नहीं आऐगें।ध ुरी राष्ट्रों के संबंध में मुझे केवल एक प्रश्न का उत्तर देना शेष रहता है' क्या यह संभव हो सकता है कि उन्होंने मुझे धोखा दिया है? मेरा विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात को स्वीकार करेगा कि विश्व में सबसे अधिक होशियार और धूर्त राजनीतिज्ञ अंग्रेजों में पाए जाते हैं। जिस व्यक्ति ने ऐसे धूर्त राजनीतिज्ञों से जीवन भर संघर्ष किया हो, उसे संसार में कोई भी राजनीतिज्ञ धोखा नहीं दे सकता । विदेशों में रहने वाले मेरे देशवासी इस बात की साक्षी देंगें कि जब से मैने भारत छोड़ा है, मैंने कभी ऐसा कार्य नहीं किया है जिससे मेरे देश के सम्मान और प्रतिष्ठा पर तनिक भी आँच आ सकती हो। इसके विपरीत मैने जो कुछ किया है वह मेरे देश के लाभ के लिए, भारत की प्रतिष्ठा में ' वृद्वि करने के लिए और भारत की स्वतंत्रता के कार्य को बढ़ाने के लिए किया है।

एक समय था जब जापान की हमारे शत्रुओं से मित्रता थी। मैं उस समय तक जापान नहीं गया जब तक कि आंग्ल-जापान दैत्य सम्बन्ध साधरण थे। जापान ने जब वह कदम बढ़ाया जो कि उसके इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम था अर्थात् उसने इंग्लैण्ड और अमेरिका के विरूद्व युद्व की घोषणा कर दी, तब मैने स्वतः अपनी इच्छा से जापान जाने का निश्चय् किया। कांग्रेस के अध्यक्ष होने के नाते 1938 के दिसम्बर माह में चंगकिंग मेडिकल मिशन भेजने के लिए मैं जिम्मेदार था। परन्तु जापान जाकर मुझे अनुभव हुआ कि पूर्वी एशिया में युद्व छिड़ने के बाद जापान का रूख दुनिया की तरफ साधरण और एशियाई राष्ट्रों के प्रति पूर्ण और क्रान्तिकारी रूप से परिवर्तित हो गया है।

यह परिवर्तन केवल जापान सरकार में ही नहीं, जापानी जनता में भी आया है। जापान की जनता की आत्मा को एक नई चेतना ने, जिसे मैं एशियाई चेतना की संज्ञा

1- Jagat S. Bright (Ed.) Important Speeches and writings of Subhas Chandra Bose.

दूँगा,[1]अभिभूत कर लिया है। जापान जाने के बाद और उस देश के वर्तमान नेताओं से निकट का सम्बन्ध स्थापित करने के पश्चात् मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि एशिया के प्रति जापान की वर्तमान नीति की जड़ सद्भावना में हैं,[2]वह धोखा मात्र नहीं हैं जब तक जापान ने चीन के प्रति वर्तमान नीति को स्वीकार नहीं किया था तब तक चीन के लिए जापान से युद्ध करने के लिए ब्रिटेन और अमेरिका से सहायता का कुछ औचित्य और बहाना हो सकता था। परन्तु अब जब कि चीन-जापान सम्बन्ध में एक बिल्कुल नया अध्याय आरम्भ हुआ है तब जापान के विरूद्ध व्यर्थ का संघर्ष करने के लिए किंचित मात्र भी बहाना नहीं है। यह न चीनियों के लिए अच्छा है और न एशिया के लिए।

वास्तविकता यह है कि यदि किसी कारणवश जापान पराजित हो गया तो चीन पर अमेरिका का प्रभाव और नियंत्रण हो जाएगा। वह चीन और एशिया के लिए अत्यन्त दुखान्त दुर्घटना होगी।[3]

भारतीय केवल बचनों के प्रति कितने शंकाशील हैं । यदि जापान की नीति केवल वायदों की घोषणा होती तो मैं उनसे प्रभावित होने वालों में अन्तिम व्यक्ति होता। परन्तु मैने स्वंय अपनी आँखों से देखा है कि किस प्रकार युद्ध के बीच जापान में फिलीपाइन्स, वर्मा और राष्ट्रीय चीन में कैसे क्रान्तिकारी परिवर्तन किए हैं। जापान अपने शब्दों का सच्चा है और उसके कार्य उसकी घोषणाओं के अनुरूप है। भारत के सम्बन्ध में जापान ने अपने कृत्यों से अपनी सच्चाई सिद्ध कर दी है। जापान की भारत के प्रति स्वार्थ की भावना नहीं है। यदि ऐसा होता तो वह अस्थायी आजाद हिन्द सरकार को क्यों मान्यता देता? वह अण्डमान-निकोबार द्वीपों को स्वतंत्र करवाने के बाद आजाद हिन्द सरकार को क्यों सौंप देता? पोर्ट ब्लेयर में अण्डमान-निकोबार द्वीपों का चीफ कमिश्नर भारतीय क्यों होता? अन्तिम महत्वपूर्ण बात यह है कि जापान पूर्व एशिया के भारतीयों को अपनी स्वतंत्रता-प्राप्ति के युद्ध में बिना शर्त सहायता क्यों देता ?[4]

समस्त पूर्वी एशिया में भारतीय है और उन्हें जापान को निकट से देखने का अवसर मिला है। यदि समस्त पूर्वी एशिया में फैले हुए तीस लाख भारतीय जापान की सच्चाई

1- Important Speeches and writings of Subhas Chandra Bose-Ed. by Jagal S. Bright.
2- Netaji Subhas Bose-Japan's Role in the Far East, Modern Review, 1937
3- Subhas Bose - The Indian Struggle : 1935-1942 : Page-100
4- Netaji Subhas Chandra Bose-Japan's Role in the far East,'Modern Review: 1937.

पर विश्वास नहीं करते तो वे जापान के साथ निकट सहयोग करने की नीति क्यों अपनाते ? एक आदमी को दबाकर आप जो चाहे उससे करा सकते है।परन्तु समस्त पूर्वी एशिया में फैले हुए तीस लाख भारतीयों को कोई नहीं दबा सकता।

यदि पूर्वी एशिया के भारतीयों ने बिना अधिकतम त्याग किए और बिना स्वंय प्रयत्न किए जानियों से सहायता ली होती तो वे गलत कार्य करने के दोषी होते। परन्तु एक भारतीय होने के नाते मैं यह कहने में गौरव अनुभव करता हूँ कि मेरे देशवासियों ने भारत की स्वतंत्रता के युद्ध लिए मानव शक्ति, द्रव्य तथा सामग्री एकत्रित करने का भागीरथ प्रयत्न किया है। ऐसे में मैं जापान से अस्त्र–शस्त्र इत्यादि आवश्यक सामग्री के रूप में सहायता लेने में कोई हानि नहीं देखता। क्योंकि हम उन वस्तुओं का उत्पादन स्वंय नहीं कर सकते ।[1]

भारत की भूमि से अंग्रेजो को निकाल बाहर करने के लिए हमें जापान से कितनी सहायता की आवश्यकता होगी, वह इस बात पर निर्भर होगी कि हमें भारत के अन्दर से कितना सहयोग मिलता है। जापान की स्वयं अपनी मद्द हम पर लादने की कोई इच्छा नहीं है। ब्रिटेन और अमेरिका के विरूद्ध युद्ध की घोषणा करने के उपरान्त हमने जापान की सहायता माँगी है क्योंकि हमारे शत्रु ने अन्य शक्तियों से सहायता ली है।[2] मुझे आशा है कि हमें अपने देशवासियों से इतनी अधिक मात्रा में सहायता मिलेगी कि हमें जापान से सहायता लेने की जरूरत ही नहीं होगी।

हमसे अधिक और किसी को प्रसन्नता नहीं होगी कि हमारे देशवासी स्वंय के प्रयत्नों से स्वतंत्रता प्राप्त कर लें अथवा ब्रिटिश सरकार 'भारत छोड़ों' प्रस्ताव को स्वीकार कर लें और उसको कार्य रूप में परिणत कर दें। परन्तु हम यह मानकर चल रहे है कि इसमें से कोई भी बात सम्भव नहीं है और सशस्त्र युद्ध अवश्यम्भावी है।

एक अन्य स्थान पर सुभाष बोस ने कहा था कि– मैं यह जानता हूँ कि भारत की भूमि पर ब्रिटेन अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए निराशेन्मत्त प्रयत्न में बहादुरी और कठोरता से लड़ेगा। परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि संघर्ष चाहे कितना ही लम्बा और कठिन क्यों न हो, उसका एक ही परिणाम हो सकता है– अर्थात् हमारी विजय।[3]

1- सत्य शकुन–मैं तुम्हें आजादी दूंगा–भाग 2 : पृष्ठ 175

सुभाष बोस अवोध आलोचक के लिए निश्चित् ही फासिस्टवादी हो सकते है लेकिन तार्किक विवेचन करने वाले सत्यप्रिय आलोचक को वह महान राष्ट्रवादी के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देगें। सुभाष बोस भारत को एक मुक्त देश देखना चाहते थे जिसके लिए सशस्त्र संगठन को आवश्यक मानते थे, जो कि देश में बिना बाहरी सहायता के सशस्त्र विरोध ा का संगठन कर सकना असम्भव था। वह सहायता विदेशों में बसे हमारे देशवासियों तथा विदेशी शक्तियों की हो सकती थी, क्यों कि बोस का मान्ना था कि राजनीति में एक बड़े स्वार्थ के लिए किसी दूसरे शक्तिशाली देश की सहायता लेना अनुचित नहीं होता है और जो नैतिक तथा राजनैतिक दृष्टि से सत्य भी है। सुभाष बोस का दृष्टिकोण शुद्व राष्ट्रवाद का था। और भारत की स्वतंत्रता के लिए विदेशों से सहायता प्राप्त करने के उ्द्देश्य से मातृ-भूमि को छोड़कर अपना जीवन ही नहीं वरन् राजनीतिक जीवन भी खतरने में डाल दिया।

सुभाष बोस को व्यक्तिगत रूप से अधिनायकवाद से कोई आपत्ति नहीं थी, वशर्ते वह किसी न्यायपूर्ण पक्ष के लिए हो। सुभाष की इस धारणा का शत्रुओं ने प्रचार किया कि सुभाष बोस ने अपना स्वाभिमान तथा सम्मान विदेशी फासीवादी शक्तियों को बेच दिया है। जबकि यह तर्क निराधार है क्योंकि जिस व्यक्ति ने अपने जीवन पर्यन्त राष्ट्रीय स्वाभिमान और सम्मान के लिए संघर्ष किया हो और उसके प्रति समर्थन के लिए बहुत अधिक कष्ट सहे हो, वह संसार में अन्तिम व्यक्ति होगा जो किसी विदेशी शक्ति को अपना सम्मान वेच दे। अपने देशवासियों से उच्चतम सम्मान पाकर शेष क्या था, जो सुभाष बोस को विदेशी शक्ति से प्राप्त हो सकता था? विदेशी शक्ति की कठपुतली वही व्यक्ति बन सकता था जिसमें सम्मान और स्वाभिमान की भावना बिल्कुल न हो अथवा जो अन्य शक्तियों के प्रभाव से अपनी प्रतिष्ठा का निर्माण करना चाहता हो।

सुभाष बोस के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी स्थिति अपने देश में नगण्य थी और अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए उन्हें किसी विदेशीशक्ति की आवश्यकता थी। भारत छोड़ने के साथ ही सुभाष चन्द्र बोस ने अपना सब कुछ छोड़ने का खतरा लिया, यहाँ तक कि उनके जीवन का भी कोई भरोसा नही था। लेकिनयह खतरा उन्होने इसलिए

लिया क्योंकि ऐसा करने से ही भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती थी।

सुभाष बोस पूँजीवाद और साम्राज्यवाद को भारत से विदा देखना चाहते थे। प्रत्येक व्यक्ति को उसके मौलिक अधिकार दिये जाने का समर्थन करते थे। पूँजीपतियों, जमीदारों और उच्च जातियों के चंगुल में पड़ी हुई मानवता को वह उन्मुक्त देखना चाहते थे। बोस किसी एक जाति अथवा एक वर्ग के अधिकारों को ही उपयुक्त नहीं मानते । वह वास्तविक अर्थो में, सामाजिक और राजनैतिक प्रजातन्त्र के समर्थक थे। उन्होंने भारत में रहते हुए सदैव दलित भावना की सेवा का आदर्श व्यवहार में प्रस्तुत किया था।

बोस यदि देश की मुक्ति के लिए संगठित शक्ति से अंग्रेज शासन का विरोध कर रहे थे, तब उन्हें फासिस्ट बताना उचित नहीं है। उन्होने जापान, इटली और हेमवर्ग में सदा अपने को भारत की स्वतंत्रता का ही समर्थक माना। उन्होने नाजी पार्टी से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं रखा। बोस अंग्रेजो को धोखा देने वाली नीति के आलोचक थे। अंग्रेजो ने द्वितीय महायुद्ध के समय कहा था कि वह ' स्वतंत्रता तथा प्रजातंत्र' की रक्षा के निमिम्त फासिज्म का विरोध कर रहे हैं लेकिन जब भारत ने इन दो चीजों (स्वतंत्रता और प्रजातंत्र) की माँग की तो उसे नकारात्मक उत्तर दिया। इस प्रकार से सुभाष बोस अंग्रेजों की कुटिल नीतियों के विरोध में खड़े एक पूर्ण रूपेण राष्ट्रवादी व्यक्तित्व है, जिनमें न विरोधाभास है और न ही छलछ्द्य। इसलिए यह मान लेने के लिऐ कोई गुंजाइश नहीं है कि बोस फासीवादी थे! क्योंकि फासिज्म तो शासन की दमन पर आश्रित पद्वति है। जबकि बोस तो शासन करने का स्वप्न ही नहीं देख रहे थे बल्कि ब्रिटिश शासन के दमन का विरोध कर रहे थे। वह फासीवाद नही वरन् लोकतन्त्र के समर्थक थे।

३-आजाद-हिन्द-फौज बनाम ब्रिटिश राज-

हिन्दुस्तान की आजादी की फौज बन गयी। यह फौज गठित होकर सिंगापुर पहुँच गयी, जो एक समय ब्रिटिश साम्राज्यवाद का गढ़ था। यह फौज भारत से साम्राज्यवादी सार जुआ ही नहीं हटायेगी वरन् उसके बाद आजाद हिन्द की राष्ट्रीय सेना बन जाएगी।

दिल्ली चलो, दिल्ली चलो (5-7-1943)

वर्मा युद्ध में 1943-1945 के बीच, आजाद-हिन्द-फौज के गुप्तचर पैराशूटों या पनडुब्बियों से भारत-भूमि पर उतारे गये थे। ब्रिटिश-सरकार ने उन्हें गिरफ्तार करके युद्ध-बन्दी नहीं अपितु 'गद्दार' फरारी, और 'बेईमान' मानकर गोली मारकर या फाँसी चढ़ाकर खत्म कर दिया था। मन्मथनाथ गुप्त ने 'हिस्ट्री आँफ दइण्डियन रैवोल्यूशनरी मूवमैन्ट' में ऐसे इक्कीस सैनिको का विवरण प्रस्तुत किया है जिनमें से चौदह को ब्रिटिश सरकार ने जुर्म घोषित किये बिना खत्म कर दिया था। दो पर 1943 में, चार पर 1944 में तथा एक पर 1945 में मुद्मा चलाया था। मई 1945 से आजाद-हिन्द-फौज के सैकड़ों सैनिक बन्दी बनाकर भारत लाये गये और लाल किले में कैद कर दिये गये।[1] सरकार के इन पर अत्याचार, बेरहमी और नृशंसता ने देश भर में तहलका मचा दिया। सुभाष चन्द्र बोस तक भी सूचना पहुँच गयी ।

30 मई 1945 को बैंगकाक में बोसा ने अपने वक्तव्य में ब्रिटिश-सरकार के इस दुराचरण एंव नृशंसता की भर्त्सना करते हुए कहा,"............वर्मा में मित्र-सेना के विभिन्न राष्ट्र सैनिक है किन्तु आजाद-हिन्द-फौज के अफसरों और सैनिकों के साथ बेरहमी का दायित्व केवल ब्रिटिश पर है। ब्रिटिश अधिकारी यह बहाना भी नहीं गढ़ सकते है कि हमारे द्वारा कैद किये उनके सैनिकों के साथ हमने दुर्व्यवहार किया है। हमारे पास मित्र-पक्ष के वही सैनिक है जो स्वेच्छा से आजाद-हिन्द-फौज में भरती हो गये। दिल्ली-रेडियों तक ने कुछ दिन पूर्व प्रसारित किया था कि आजाद-हिन्द-फौज में भरती इन सैनिकों के साथ अच्छा व्यवहार किया गया। ब्रिटिश अधिकारी शायद यह सोचते हो कि हम इसका प्रतिशोध ा नहीं ले सकते......यदि ब्रिटिश सरकार हिन्द फौजियों और अफसरों पर इसी तरह जुल्म करती रही तो बाध्य होकर हमें भी प्रतिशोध के तरीके सोचने पड़ेगें......... भारत में जन-सम्मति

1- Manmath Nath Gupt - History of the Indian Revolutionary.

इतनी सशक्त नहीं है कि वह ब्रिटिश को बाध्य करके भारत की स्वतंत्रता प्राप्त कर ले. ....किन्तु इतनी सशक्त अवश्य है कि ब्रिटिश के हाथों युद्ध-बन्दियों पर अत्याचार और उत्पीड़न को अवश्य रोक सकती है......... आजाद-हिन्द-फौज के सैनिक सच्चे देश भक्त और क्रान्तिकारी है जिन्होंने मातृ-भूमि की स्वतंत्रता के लिए संग्राम किया।

..............अन्तराष्ट्रीय परम्परा और पद्धति के अनुसार इन बन्दियों को अच्छे व्यवहार का अधिकार है।.......मैं अपने देशवासियों से अपील करता हूँ कि ब्रिटिश अधिकारियों पर दबाब डालकर इन युद्ध-बन्दियों के भाग्य के बारे में सही सूचना प्राप्त करे, जिससे विश्व निर्णय कर सके कि ब्रिटिश जिन अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध-नियम-कायदों के प्रति मौखिक रूप से उत्सर्गित है, उसका स्वंय अनुपालन करते है अथवा नहीं है।''[1]

ब्रिटिश-सरकार द्वारा आजाद-हिन्द्र-फौज तथा आजाद-हिन्द-संघ के बन्दियों के सम्बन्ध ा में निर्णय पर पहुँचना दुष्कर व्यापार था। उसके समक्ष समस्या का केवल न्याय और अनुशासन का पहलू ही नहीं था। सरकार को ज्ञात था कि इन फौजियों को जापानी सेना तथा उसकी युद्ध-नीति एवं युद्धपद्धति के सम्बन्ध में पूरी जानकारी होगी जो ब्रिटिश सेना के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं लाभदायक सिद्ध हो सकती थी। स्वतः किन्तु स्वंतन्त्रता-प्राप्ति के लिए समर्पित सुभाष चन्द्र बोस के बलिदान से इन सैनिको का हृदय यदि अत्यधिक विचलित हो तो इन्हें ब्रिटिश भारतीय सेना में लेना संकट-जनक हो सकता था। इसके अतिरक्त शत्रु-पक्ष सम्बन्धी सूचना प्राप्त इन सैनिकों का अस्तित्व ही परेशानी पैदा कर सकता था! सर्विस आँर्गनाइजेशन पर आजाद-हिन्द-संघ के सदस्यों तथा आजाद-हिन्द-फौज के सैनिकों की पूरी तहकीकात का दायित्व था।[2]पूरी जाँच-पड़ताल के बाद कुछ सैनिकों को वापिस सेना में ले लिया गया था। जिन कैदियों का सुभाषचन्द्र बोस प्रतिपादित आदर्शो के सम्बन्ध में उत्साह बना हुआ था उन्हें पुर्नवास केन्द्र में भेज दिया गया। जो फौजी निरन्तर धुरी-शक्ति के गुण गाकर एजेन्ट की तरह प्रचार पूर्ण बाते करते उन्हें सर्विस आर्गनाइजेशान के अधि ाकारियों-सहित लाल किले में कैद कर दिया गया था।

दिल्ली के लाल किले में बन्द आजाद-हिन्द-फौज ने भारतवासियों में विचित्र सी चेतना जागृत कर दी। जर्मनी के आजाद-हिन्द रेडियो तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया की अस्थायी सरकार

1- Pandit, H.N,-Netaji Subhas Chandra Bose : From Kabul to the Battle of Imphal, page-116

2- आशा गुप्त-सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति-पथिक-पृष्ठ 206

द्वारा प्रसारित समाचारों में जनता की रुचि बढ़ने लगी। वह बड़ी तत्परता से समाचार सुनती। किन्तु इन खबरों पर कहाँ तक विश्वास किया जाय। जैसे कि समाचार था कि इम्फाल में कुछ हफ्ते के लिए आजाद हिन्द-फौज ने अपना तिरंगा झण्डा फहराया था।[1]आजाद हिन्द-फौज के समाचारों के साथ नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के प्रसारित वक्तव्य एवं भाषणों ने भी जनता का ध्यान आकृष्ट कर लिया।

सरकार की तरफ से समाचारों पर कड़ा सेंसर लागू था। सेंसर नहीं उठाया गया, किन्तु विश्व-युद्ध समाप्त होते ही गोपन समाचारों का पर्दा फाश होने लगा। प्राप्त सूत्रों के अनुसार आजाद-हिन्द-फौज के सैनिकों पर पहला नियमित कोर्ट-मार्शल कदाचित् जुलाई 1945 में हुआ था। किसी पत्रकार की रिपोर्ट से यह भी ज्ञात हुआ कि अगस्त में फौज के छह सैनिक खत्म करा दिये गये।

जवाहर लाल नेहरू ने प्रतिक्रया-स्वरूप एक सर्तक-सा वक्तव्य प्रेस में भेजा कि,-"किसी और वक्त आजाद-हिन्द-फौज के सैनिकों के साथ निष्ठुरतापूर्वक पेश आया जा सकता था, किन्तु इस समय, जबकि भारत में बहुत से परिवर्तन होने की सम्भावना है, यदि इनके साथ सामान्य विद्रोहियों का बर्ताव किया गया तो भयंकर भूल होगी। इसका पिरणाम गम्भीर होगा। इनको दण्ड देना वस्तुतः सारे भारत और सब भारतीयों को दण्डित करना होगा। करोड़ों लोगों के हृदय में गहरे घाव हो जायेगें।"[2]नेहरू का यह वक्तव्य तीन दिन बाद सेंसर ने पास किया। नेहरू के वक्तव्य के साथ एक सरकारी विज्ञप्ति, 20 अगस्त 1945 को, प्रकाशित हुई कि, " भारत सरकार बड़ी गम्भीरता से विचार कर रही है कि जो भारतीय सैनिक शत्रु पक्ष से जा मिले थे उनके प्रति कैसा व्यवहार किया जाय। इन व्यक्तियों के केसों का परीक्षण यथा-शीघ्र तथा यथा-सम्भव सहानुभूति के साथ किया जायेगा।"[3]

भारत-सरकार की इस लगी-लिपटी विज्ञप्ति ने भारतीय जनता पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। देश के चारों कोनो से आजाद-हिन्द-फौज के सैनिको की रिहाई की माँग बुलन्द होने लगी। 27 अगस्त 1945 को एक और विज्ञप्ति द्वारा ब्रिटिश-सरकार ने बात संभालने की कोशिश की। कहा गया था कि ' सरकार ने पद और दस्तावेजों को मद्देनजर रखकर उन सैनिको के साथ सहृदयता और उदारता से पेश आने का फैसला किया है जो दवाब में गुमराह

1- Pandit H.N.-Netaji Subhas Chandra Bose : From Kabul to the Battle of Imphal page-117
2- Nehru, Jawaher-An Autobiography : page-112
3- Reported the Anand Bazar Patrika-20 August 1945

हो शत्रु-पक्ष की सेवा में जा मिले थे। फिर भी कानूनी कार्यवाही यथा-नियम की जायेगी। सरकार उन लीडरों का कोर्ट मार्शल करेगी जो विशेष अपराध के भागीदार थे। इन्हें अपनी सफाई के प्रतिनिधित्व के लिए वकील नियुक्त करने का अधिकार होगा।''[1]

दूसरा विश्व-युद्ध समाप्त होते ही 21-23 दिसम्बर 1945 को अखिल भारतीय कांग्रेस-अधिवेशन बम्बई में हुआ। जिसमें एक सशक्त प्रस्ताव पारित हुआ कि इन फौजियों के लिए बचाव-कौंसिल का आयोजन किया जाय। अक्टूबर में महात्मा गाँधी ने वायरसरॉय लार्ड वेवल को लिखा कि ''हथियार-वद्ध व्यक्तियों के बचाव के लिए यों तो कुछ नहीं कहना है किन्तु उन सशस्त्र सैनिकों की वीरता और देशभक्ति की तरफ आँखें नहीं मूँदी जा सकतीं।इस समय देश मुकदमे के अधीन इन फौजियों का प्रशंसक हो गया है। इसमें सन्देह नहीं कि सरकार के पास बहुत से अधिकार हैं पर भारत की जन-सम्मति के विरुद्ध इन अधिकारों का प्रयोग करना दुरुपयोग होगा।''[2]इस सन्दर्भ में वे भारतीय सेना के कमाण्डर-इन-चीफ जनरल आकिनलैक से भी मिले।

भारतवासियों में आजाद-हिन्द्र-फौज के प्रति परम सम्मान का भाव जागरित हो चुका था इधर कुछ रिपोर्टर वर्मा-मलाया से फौज और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जौहर और युद्ध कौशल की प्रभूत सामाग्री लेकर आये थे। जनता को दक्षिण-पूर्वी-एशिया से आये हुए, भारतीयों द्वारा भी कुछ समाचार प्राप्त हुए। सिंगापुर से आजाद हिन्द्र फौज पर एक डाक्यूमेंटरी फिल्म भी चोरी-चोरी भारत में आ चुकी थी जो दिल्ली में इधर-उधर देखी जा रही थी। इस प्रकार की रिपोर्टो तथा समाचारों से जनता यह तक भूल गयी थी कि आजाद-हिन्द्र-फौज एक बुझा हुआ चिराग है और इसके सैनिको को युद्ध-बन्दी नहीं गद्दार समझा जा रहा है। भारत-सरकार द्वारा हिन्द्र फौज के लीडरों पर प्रस्तावित मुकद्दमा सार्वजनकि महत्व ध ारण कर चुका था। सुभाष चन्द्र बोस को भारत छोड़े साढ़े चार वर्ष से भी अधिक बीत चुके थें। किन्तु हर देशवासी का अभिवादन 'जयहिन्द' बन गया था। जनता की जिस प्रतिक्रिया के लिए सुभाष चन्द्र बोस आजीवन प्रयत्नशील रहे, वह देश-भर में अब पूरे जोर-शोर से प्रकट हो रही थी। जोग के अनुसार,''यदि किसी चमत्कार द्वारा वे भारत लौट पाते तो अपने साथ वह सब कुछ ला पाते। जिस तरह एॅल्वा से बच निकलने के बाद नेपोलियन

1- British Indian Government Report - 27 August 1945.

2- Mahatma Gandhi - My Experiments with truth. Banaras

लाया था।''[1]

युद्ध-काल में ब्रिटिश-सरकार जिन सुभाषचन्द्र बोस को देश-द्रोही तथा उनकी आजाद-हिन्द-फौज को 'लालची' 'गद्दार' और 'फरारी' कहती रही थी, वे जनता की दृष्टि में परम सम्मानीय और पूजनीय बन चुके थे। जनता की इस प्रतिकिया से सरकार किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गयी। सरकार शायद भूल गयी थी कि अभी, तीन वर्ष पूर्व, 'भारत छोड़ो' आन्दोलन कितने शक्तिशाली पैमाने पर हो चुका था और जनता के हृदय से उसकी छाप अभी मिटी नहीं थी। अभी चन्द महीने पहले जून में देश के नेता जेल से आजाद हुए थे। सरकार को भ्रान्ति थी कि निराश एवं हतोत्साहित एवं निष्क्रिय जनता से उनका सामना होगा। किन्तु हर जेल के सामने जनता का अपार समूह अपने प्रिय नेताओं के स्वागत के लिए खड़ा था। नेहरू के दर्शनों की अभिलाषी जनता अल्मोड़ा जेल के बाहर दिखायी दी। बम्बई की बाँकुरा जेल के बाहर धुआँ-धार बारिश में आधी करोड़ जनता कतार बाँधे मौलाना अबुल कलाम आजाद तथा अन्य नेताओं की प्रतीक्षा कर रही थी। यह अत्युक्ति नहीं कि जन-जागरण का काम किया था आजाद-हिन्द-फौज ने।[2]यही नहीं, सुभाष चन्द्र बोस की 30 मई 1945 की बैंगकांक से प्रसारित देश के नेताओं की अपील भी मानों रंग ला रही थी।

कांग्रेस ने आजाद-हिन्द-फौज के मुकद्दमें के लिए बचाव पक्ष के वकीलों की नियुक्ति के अतिरिक्त राहत-कमेटी और तकनीकी-कमेटी संगठित कर ली थी जिसका मुख्य लक्ष्य मुक्त फौजियों की आर्थिक सहायता, भोजन तथा नौकरी की व्यवस्था थी। इसके अलावा ''आजाद-हिन्द-फौज' निधि-कमेटी, यहाँ पर निधि महापौर कमेटियाँ भी बना दी गयी। यही नहीं कांग्रेस मंच से पूरे देश में आजाद-हिन्द-फौज' के मसले का प्रचार किया जा रहा था। दूसरे शब्दों में हिन्द-फौज का मुद्दा देश-व्यापारी संघर्ष में मील का पत्थर साबित हुआ। इन बन्दियों को आजाद करने की माँग जोर पकड़ती जा रही थी। सरकार को प्रतिशोध की चेतावनी दी जा रही थी। तात्पर्य यह कि सुभाष चन्द्र बोस के आदर्शानुरूप किसी एकान्त लक्ष्य-प्राप्ति के निमित्त हर प्रान्त, हर जाति और हर दल उस लक्ष्य के प्रति समर्पित था। सबकी एक ही माँग थी, एक ही नारा था, एक ही आंकाक्षा थी-आजाद-हिन्द-फौज के सैनिकों, उसके अफसरों की मुक्ति।

1- N.G. Jog-In Freedom's Quest : 64

2- Haynes, Edward S.-Subhas Chandra Bose and the Early Azad Hind Sangh," in V. Grover (ed) Political thinkers of Modern India.

गुप्तचार ब्यूरों के निदेशक को मानना पड़ा था कि पहले कभी शायद ही ऐसा विषय रहा हो जिसमें भारतीय जनता की इतनी गहरी रूचि-सहानुभूति कहना अधिक उचित होगा-रहा हो।'' स्वंय नेहरू की भी यही धारणा थी कि '' भारत के इतिहास में देश की आबादी के विभिन्न वर्गो में ऐसा अविच्छेध मनोभाव और संवेदना कभी प्रकट नहीं हुई थी जैसी 'आजाद-हिन्द-फौज'के प्रश्न को लेकर हो रही है।'' [1]

दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता,मद्रास, उत्तर-प्रदेश भागों द्वारा पंजाब आदि तो संघर्ष केन्द्र बन ही गये थें, सुदूर कुर्ग, बलूचिस्तान और असम तक आन्दोलन का प्रसार हो गया था। देश के प्रादेशिक क्षेत्रों में संघर्ष के कई तरीके थें-कुछ आर्थिक अनुदान देते, कुछ सभाएँ आयोजित करते, दुकानदार दुकानें बन्द कर देते। विभिन्न राजनीतिक दल, संगठन आदि आजाद-हिन्द-फौजियों को मुक्त करने की माँग बुलन्द कर रहे थे।

1945-46 के दौरान सरकार के विरूद्ध देश के कुछ महत्वपूर्ण विद्रोह उल्लेखनीय है-जैसे छात्रों का विद्रोह तथा रॉयल नौ सेना का विद्रोह।[2]कलकत्ता में फॉरवर्ड ब्लॉक के सदस्य, छात्र फैडरेशन, एक्टिविस्ट-दल तथा इस्लामिया कॉलेज के छात्र सरकारी केन्द्र डलहौजी स्क्वायर तक मार्च करते हुए गये। ''फरवरी 1946 को आजाद-हिन्द-फौज' के अफसर राशिद अली को सात वर्ष की सजा मिलने पर मुस्लिम लीग के छात्रों के जुलूस में कांग्रेस तथा वामपंथ छात्र भी शमिल थें। 18 फरवरी 1946 को रॉयल-नौ-सेना का विद्रोह इसकी सबसे महत्वपूर्ण कड़ी थी। सेना में विशेष रूप से जागृति उत्पन्न हो गई थी! और इस विद्रोह से अंग्रेजों का यह विश्वास अधिक दृढ़ हो गया था कि अब इस नौ सेना पर अधिक निर्भर नहीं रहा जा सकता।

तात्पर्य यह कि कलकत्ता, बम्बई जैसे बड़े नगरों तक में काम प्रायः ठप रहा। हड़तालें, फैक्ट्रियों की स्ट्राइक, सरकारी बैंक यहाँ तक की वाई0एम0सी0ए0 केन्द्र तक जला डाले गये। रेल की पटरियों पर बैठ्कर यातायात का अवरोध, पुलिस लॉरियों पर पथराव आदि द्वारा जनता अपना आक्रोश प्रकट करती रही। आजाद-हिन्द-फौज को मोर्चे पर भेजते हुए सुभाषचन्द्र बोस ने कहा था,-''खून को खून पुकार रहा है..........उठो! वक्त गँवाने का मौका नहीं है......शस्त्र उठाओ ।''[3]उस समय आजाद हिन्द फौज की धमनियों में बोस की उक्तियाँ

1— जवाहर लाल नेहरू-एन आटोबायोग्राफी गिल्पसेज इण्डिया ऑफ द वर्ल्ड हिस्ट्री

2- Maikap, Dr. Sathish Chandra-Netaji Subhas Chandra Bose and the Indian war of Independence.

3— आशा गुप्त-सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ-210

प्रवहमान थी और अब! सारे देश में उन शब्दों की प्रतिध्वनि गूँज उठी थी।

5 नवम्बर 1945 को सारी औघेगिक संस्थाएँ, बाजार आदि बन्द रहे। धमण गाँव और सोलापुर में 16 नवम्बर 1945 को किसान-सभा तथा 29 दिसम्बर 1945 को हैदराबाद की अखिल भारतीय महिला-काँन्फ्रेन्स के दसवें अधिवेशन में आजाद-हिन्द-फौज के बन्दियों को आजाद करने की माँग दोहरायी गयी। यहाँ तक कि ब्रिटिश भारतीय सेना में भी सहानुभूति उद्बुद्ध हो गयी। उत्तर-पश्चिमी-सरहद के गर्वनर ने ब्रिटिश सरकार को सावध ाान किया कि हर दिन दृढ़-निश्चयी भारतीयों को ब्रिटिश विरोधी कैम्प की तरफ ले जा रहा है। दूसरे शब्दों में मुद्दा 'भारतीय बनाम ब्रिटिश राज' बन गया। प्रश्न केवल यह शेष था कि भारतीयों के फैसले का हक ब्रिटेन को है या नहीं। बार-बार जैसा कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता नेहरू भी कह रहे थे कि "अगर ब्रिटिश-सरकार ब्रिटेन के मनोभाव-परिवर्तन के प्रति ईमानदार है तो 'आजाद-हिन्द-फौज' का किस्सा भारतवासियों पर छोड़ देना चाहिए।"[1] बहुत शीघ्र विदित हो गया कि माउण्ट पोपा के पास 1945 में गिरफ्तार आजाद-हिन्द-फौज के तीनों अभियुक्त अफसर-शहनवाज खाँ , पी0के0 साहगल और गुरुवख्श सिंह ढ़िल्ला का कोर्ट मार्शल किया जाएगा। ये तीनों अफसर अब भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रतीक बन चुके थे। मुकद्दमा इंग्लैण्ड और भारत के बीच क्या था, भारतवासियों की इच्छा-शक्ति और शासकों के राज्य कायम रखने की अभिलाषाओं के बीच था।

लाल किले में एक काम चलाऊ कचहरी बनायी गयी थी जहाँ आजाद-हिन्द-फौज के सैनिक पिंजरों में बन्द थे। इस अनोखी पारदर्शी जेल में बन्दियों को दिखाकर ब्रिटिश-सरकार का अभीष्ट जनता में दहशत पैदा करना था। किन्तु जनता पर इसका उलटा असर हुआ। लगभग एक शताब्दी पूर्व अन्तिम मुगल शाँहशाह बहादुरशाह 'जफर' के खिलाफ मुकद्में का ध्यान दिलाना भी सरकार का लक्ष्य रहा हो। किन्तु जनता को कदाचित् सुभाष चन्द्र बोस का 'चलो दिल्ली!....... चलो दिल्ली' नारा भी याद आया हो, और हिन्द फौजियों के सामने विजय भी साकार हो उठी हो। यह मुकद्मा माना अभियोगियों पर नहीं बल्कि न्यायाधीशों तथा उनकी नियुक्ति करने वाले अधिकारियों के बीच था।

जनरल-कोर्ट-मार्शल की तिथि 5 नवम्बर 1945 निश्चित् थी।

1- Jawaher Lal Nehru-An Autobiography (Gilmpsez, India of the word History)

जनरल कोर्ट मार्शल में साात सैन्य-अधिकारी थे, जिनके अध्यक्ष मेजर जनरल ब्लैखलैण्ड थे। कांग्रेस द्वारा नियुक्त बचाव पक्ष में भारत के कानून एवं न्याय विशेषज्ञों में सत्रह सदस्य थे। इनमें बम्बई बार के मूलाभाई देसाई प्रमुख तथा शेष में तेजबहादुर सप्रू, के० एन०काट्जू, हाई कोर्ट के तीन पुराने न्यायाधीश जवाहरलाल नेहरू जो तीस वर्ष पूर्व अपनी बैरिस्टिरी की गार्डन छोड़ चुके थे, तथा आसफ अली थे। जूनियर वकीलों में जुगलकिशोर खन्ना, राजेन्द्र नारायण तथा गोविन्दसरन थे।[1]प्रेस पूरे दल-बल सहित उपस्थित था। देश के गणमान्य व्यक्तियों में अमरीकी सेना के एडबोकेट-जनरल ब्रिगेडियर जनरल फैन तथा विलियम बेकन, सरोजिनी नायडू, पद्मजा नायडू, श्रीमती राजेन नेहरू, मास्टर तारा सिंह, सरकार मंगल सिंह एम०एल०ए० सरदार सेवा सिंह, नवाबजादा लियाकत अली खाँ के अतिरिक्त अभियुक्त पी०के०सहगल, के पिता जस्टिस अच्छरूराय (सपरिवार)तथा कैप्टेन शाहनवाज खाँ के चाचा खानबहादुर फतह खाँ विशेष उल्लेखनीय है।

गवाहों में ब्रिटिश ,भारतीय तथा जापानी शामिल थे। गवाहो मे ब्यान के बाद 'आजाद-हिन्द-फौज' के सब अभियुक्तों पर दस-दस तथा इन अफसरों पर कई एक अतिरिक्त अपराध साबित किये गये थे। इन सबसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण एक अपराध था-हिज मैजेस्टी किंग एम्परर आँफ इण्डिया के विरूद्ध युद्ध का अभियोग। बचाव पक्ष की तरफ से मूलाभाई देसाई ने पहली दिसम्बर 1945 को जिरह शुरू की कि-'अदालत के सामने आजाद-हिन्द-फौज के सम्मान और कानून का मुकद्मा है। मुकद्मा है कि गुलाम जाति को अपनी आजादी के लिए युद्ध करने का अधिकार है अथवा नहीं ।''

इत्तफाक से इस्तगासा ने जो दस्तावेज, कागज-पत्र दाखिल किये थे तथा जिन तीस गवाहों को पेश किया था उनमें आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार की स्थापना, आजाद-हिन्द-फौज का गठन और ब्रिटेन के विरूद्ध हिन्द-फौज के इस्तेमाल पर जोर दिया गया था। बचाव-पक्ष की तरफ से बारह गवाह थे। इनमें बोस के कई समीपवर्ती सह-कर्मी भी थे। बचाव-पक्ष ने मृत्युदण्ड के आरोप पर चुनौती दी कि जो गवाह पेश किया गया था उसे लिखा-पढ़ा कर लाया गया था। कोर्ट मार्शल का निर्णय सबको पहले से विदित था। आनन्द बाजार पत्रिका ने प्रकाशित किया कि-प्रकाशित रिपोर्ट तीन सौ सत्तासी पृष्ठों

1— आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 211

में आवद्ध थी। मुकद्मा 31 दिसम्बर तक चला।[1]सारे भारत में दिन-प्रतिदिन की अदालती-कार्यवाही, टिप्पणियों सहित प्रकाशित होती रही। अदालत ने, तीनों अभियुक्तों को ,इंग्लैण्ड के महामहिम सम्राट के शिलाफ युद्ध के अभियोग में आजीवन करादण्ड, काला-पानी एवं छोटे-छोटे अपराधों के लिए अपेक्षाकृत कम दण्ड का विधान कर दिया। भारत सेना के कमाण्डर-इन -चीफ द्वारा फैसले का समर्थन अनिवार्य था।

जवाहर लाल नेहरू ने कोर्ट मार्शल बन्द करने तथा दण्ड रद्द करने की माँग की। कमण्उण्डर-इन-चीफ ऑकिनलैक ने इन्कार कर दिया,साथ में स्तीफा देने की धमकी दी। परिस्थिति बहुत गम्भीर थी। जब नेहरू सिंगापुर गये तो लार्ड माउन्टवेटन ने इस सम्बन्ध ा में बात छेड़ी। नेहरू को आजाद-हिन्द-फौज के स्मारक-स्तम्भ पर पुष्प-अर्पण से भी रोक दिया। माउण्टवेटन ने कहा कि "आजाद-हिन्द-फौज के सैनिक राष्ट्रीय भावना सचेतवीर नहीं थे जो अपने देश के लिए लड़े थे। वे कायर और गद्दार थे जिन्होंने अपने वफादार मित्रों को धोखा दिया था।.....आपकी भावी राष्ट्रीय-सेना में आपकी सेवा करने वाले ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो अपनी शपथ का निर्वाह करें। आप अगर जन-प्रिय न रहे तो बेईमान सेना आपके ही विरूद्ध खड़ी हो जाएगी।"[2]पण्डित नेहरू को माउन्टवेटन की बात जँच गयी। फिर भी उन्होंने कहा कि "राजनीतिक परिस्थिति को देखते हुए मुकद्मा बन्द करवाना जरूरी है।"

उसी दिन शाम को वायसराय, कमाण्डर-इन-चीफ ऑकिनलैक से मिलने गये। 4 फरवरी 1946 को 'हिन्दुस्तान स्टेण्डर्ड' पत्र ने ब्रिटिश भारतीय सेना के बारे में एक रिपोर्ट प्रकाशित कर दी कि ब्रिटिश-भारतीय-सेना ने आजाद-हिन्द-फौज के तीनो वीर अफसरों की रिहाई की माँग की है।[2] मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार ऑकिनलैक के सामने ब्रिटिश-भारतीय-सेना की तत्सम्बन्धी प्रतिकया सिर उभारे खड़ी थी। कारण कि इस मुद्दे पर जब बोट ली गयी थी तो अस्सी प्रतिशत भारतीय-सेना तीनों अफसरों को आजादकरने के पक्ष में थी। जब सेना को वफादारी तथा शपथ आदि का स्मरण कराया गया और दुबारा बोट ली गयी तब भी अठहत्तर प्रतिशत उसी हक में रहे। सेना के भारतीय विभाग ने साफ-साफ कह दिया था कि यदि आजाद-हिन्द-फौज की जगह वे खुद होते तो वही कुछ

1- Quoted in the Anand Bazar Patrika-December 1945.

2- Nehru, Jawahar lal-A Bunch of old letters. 1988.

3- Reported in the 'Hindutan Stendard' Patrika Lucknow-4 Feburary 1946.

करते जो आजाद-हिन्द-फौज के सिपाहियों ने किया था। भारतीय सेना के मनोभाव तथा प्रतिक्रया के परिप्रेक्ष्य में ऑकिनलैक ने वायसराय की कार्यकारिणी कौंसिल को परिस्थिति की गम्भीरता की ओर ध्यान दिलाते हुए सावधान किया था कि "भारतीय शस्त्र-धारी सैनिकों को कानूनी या संवैधानिक हैसियत जो भी हो, यह जाहिर हो चुका है कि यह सेना केवल भारत-राष्ट्र के प्रति वफादार है और किसी के प्रति नहीं।"[1]अन्त में , ऑकिनलैक ने दस्तावेजो और गवाहों के बयानों के, हर नुक्ते से कोर्ट-मार्शल का निर्णय न्याच्य माना फिर भी सब अभियुक्तों के आजीवन कारादण्ड को रद्द कर दिया। केवल वेतन और भत्ता जब्त करने का आदेश जारी कर दिया।

3 जनवरी 1946 को गजेट ऑफ इण्डिया 'एक्स्ट्रा-ऑर्डिनरी' में निर्णय प्रकाशित हुआ कि सब साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए तथा जनमत के झुकाव और भारतीय सेना के मनोभावों के यथा-शक्ति मूल्यांकन के उपरान्त मुझे अब कोई सन्देह बाकी नहीं रहा कि मात्र ब्रिटेन के सम्राट के विरूद्व युद्व के अपराध में कैद(इन अभियुक्तों)के दण्ड का समर्थन करने से सारे देश में हिंसा फैल जाती तथा सेना, विशेषकर अफसरों और उच्चतर शिक्षित पदाधिकारियों में मन-मुटाव और प्रतिक्रिया पैदा कर देता।यह खतरा मोल लेना हमारे लक्ष्य को कठिन मुसीबत में डाल सकता था।

तात्पर्य यह कि दया, सहानुभूति और उदारता के वशीभूत नहीं बल्कि भारत की जन-सम्मति, विशेषकर भारतीय सेना के प्रतिक्रया पूर्ण मनोभाव तथा भारत में ब्रिटिश-शासन की बुनियादों के हिलने की सम्भावना ने, दूरदर्शी जनरल ऑकिनलैक को कोर्ट-मार्शल का निर्णय रद्द करने को बाध्य किया था। नेता जी सुभाषचन्द्र बोस और उनकी आजाद-हिन्द-फौज की वीरता, त्याग और सामरिक कौशल ने न केवल जन सामान्य में बल्कि भारतीय सेना के तीनों वर्गो में भी विद्रोह की चिनगारी फूँक दी थी। 1946 में नौ सेना द्वारा विद्रोह ने तो गम्भीर रूप धारण कर लिया था।

अहिंसावादी, नरम नीति के पोषक महात्मा गाँधी ने सुभाषचन्द्र बोस के क्रान्तिपूर्ण विचारों तथा सशस्त्र अभियान का कभी समर्थन नहीं किया था। पर अब देश व्यापी भावना से वे भी विचलित हो उठे थे। लाल किले में अक्सर इन फौजियों से मिलने

1- Manmath Nath Gupt - History of National Movement.

जाते थे। मुक्ति प्राप्त आजाद–हिन्द–फौज के कुछ अफसर अपने वतन लौटने से पूर्व गाँध
ी जी से मिलने जाते थे। गाँधी जी ने उनसे कहा,"तुम्हें गये इस बात का सन्तोष होगा कि सारे देश, बल्कि नियमाधीन सैन्य वर्ग में भी अभिनव राष्ट्रीय चेतना का संचार हो गया है। वे भी स्वतंत्रता के सम्बन्ध में चिन्तनशील हो उठे है।" तात्पर्य यह कि सुभाषचन्द्र बोस भारत निवास–अवधि में जन–वर्ग में जिस चेतना के संचार के लिए प्रयत्नशील रहे,उसे दक्षिण–पूर्वी–एशिया में अपनी कार्यकुशलता एवं बलिदान द्वारा फलीभूत कर पाये। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में बोस का यह योगदान अभूतपूर्व है।

भारत सरकार ने मई 1946 में बिदादरी राजनीतिक–बन्दी–शिविर में आजाद–हिन्द–फौज के दो अफसरों द्वारा अत्याचारों के खिलाफ मुकद्मा चलाने का फिर दुःसाहस किया। उनको कैप्टैन दुर्रानी को पीड़ा पहुँचाने के जुर्म में सात–सात वर्ष की सजा सुना दी गयी। ऑकिनलैक ने इसका समर्थन भी कर दिया। किन्तु वर्ष के अन्त में सरकार ने उन्हें कारा–मुक्त करने का निर्णय ले लिया। जाहिर था कि ब्रिटिश–सरकार केवल सशस्त्र सैनिकों के बल पर राज्य कर सकती थी। इधर दूसरे विश्व–युद्व में पाँच वर्ष तक निरन्तर युद्व–रत रहने के बाद थके–हारे ब्रिटिश सैनिक अपने वतन लौटना चाहते थे। इन्हें ब्रिटेन के साम्राज्यवाद कायम रखने या उपनिवेश भारत पर अधिकार जमाये रखने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। लेवर–पार्टी सत्ता में आ चुकी थी। ब्रिटिश–साम्राज्य का भारतीय सेना पर विश्वास निःशेष प्राय हो चुका था। एन0जी0जोग के अनुसार ब्रिटिश कुछ वर्ष शायद और टिक जाते किन्तु 1857 जैसे गदर की सम्भावना का खतरा उन्हें संत्रस्त किये हुए था। सुभाष बोस की विमान दुर्घटना के ठीक दो वर्ष बाद 14 अगस्त 1947 को सुभाषचन्द्र बोस का जीवन–स्वप्न साकार हो गया। हिन्द आजाद होकर विश्व के मानचित्र पर अंकित हो गया।

षष्ठ अध्याय
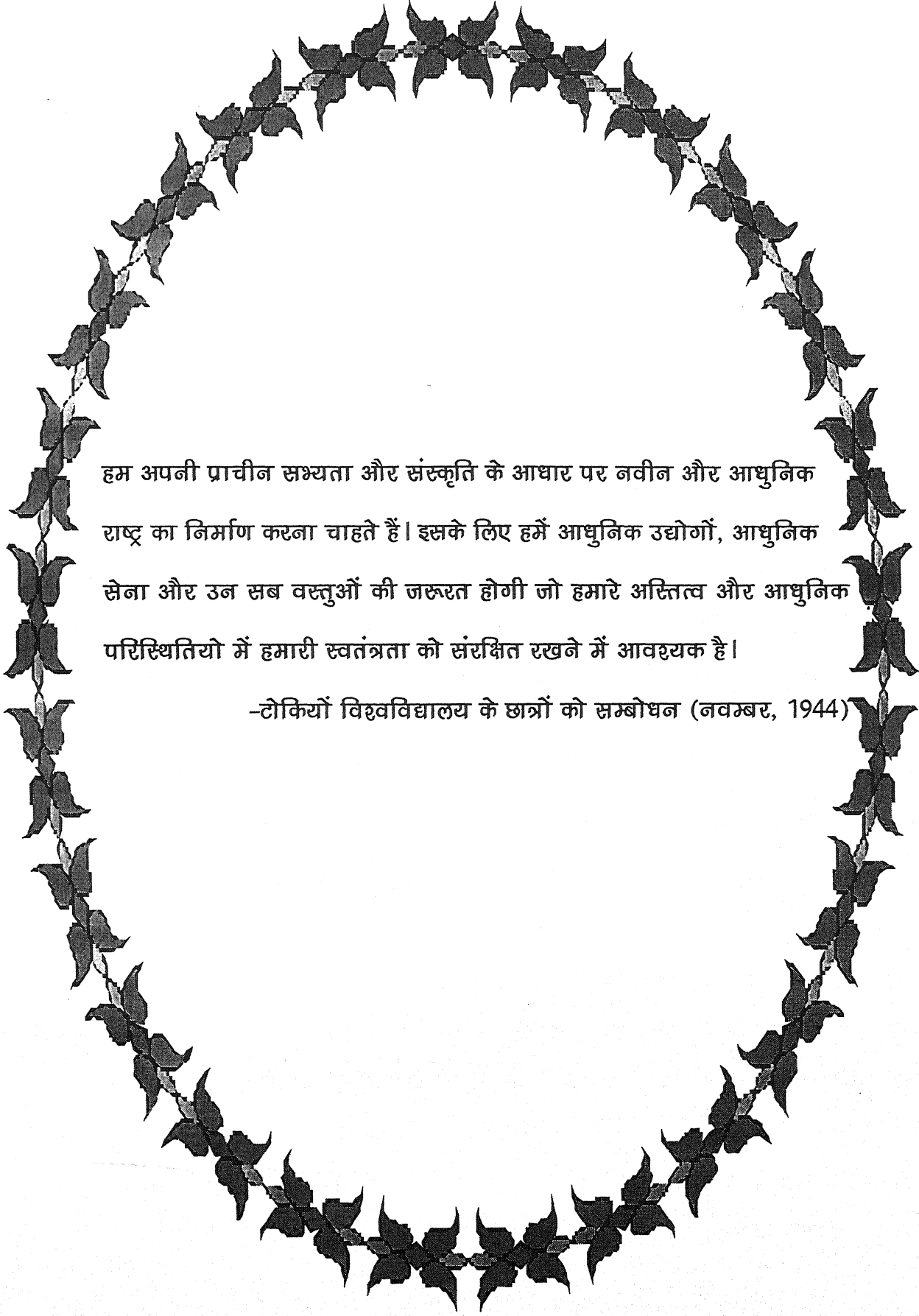
सुभाष चन्द्र बोस के योगदान

का मूल्यांकन

EVALUATION OF

SUBHASH CHANDRA BOSE'S

CONTRIBUTION

1- आधुनिक भारतीय राजदर्शन को बोस का योगदान

- प्रगतिशील राष्ट्रवाद के प्रणेता एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण

2- स्वतंत्रता संग्राम में बोस का रचनात्मक योगदान

- सशस्त्र संघर्ष का मूल्यांकन
- गांधी, नेहरू व सुभाष के नेतृत्व का तुलात्मक आंकलन
- मृत्यु सम्बन्धी विवाद

हम अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के आधार पर नवीन और आधुनिक राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं। इसके लिए हमें आधुनिक उद्योगों, आधुनिक सेना और उन सब वस्तुओं की जरूरत होगी जो हमारे अस्तित्व और आधुनिक परिस्थितियो में हमारी स्वतंत्रता को संरक्षित रखने में आवश्यक है।

–टोकियों विश्वविद्यालय के छात्रों को सम्बोधन (नवम्बर, 1944)

सुभाष चन्द्र बोस के योगदान का मूल्यांकन

सुभाष चन्द्र बोस को राजनीतिक-मंच से ही नहीं, भारत से अन्तर्धान हुए लगभग आधी शताब्दी बीत चुकी है किन्तु भारत के स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास उनकी राजनीतिक क्रिया-विधि के उल्लेख बिना अधूरा ही रह जाता है। 1921 में राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश के बाद, सुभाष बोस यों तो भारत में बीस वर्ष तक रहे किन्तु इस अवधि के पांच वर्ष (1933-1938) से कुछ अधिक ब्रिटिश सरकार द्वारा देश-निष्कासित, यानी योरूप-प्रवास में काटे। शेष पन्द्रह वर्षो में भी वे ग्यारह बार कार-रूद्ध रहे क्योंकि ब्रिटिश सरकार उन्हें भारत में सबसे खतरनाक व्यक्ति समझती रही।

यदि सफलता का मापदण्ड केवल लक्ष्य-उपलब्धि है तो सुभाष बोस निश्चय ही सर्वथा असफल क्रान्तिकारी कहे जायेगें क्योंकि उनका प्यासा रक्त मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता का साक्षी नहीं हुआ। किन्तु यदि जन-चेतना में आजादी की महत्ता को समझने-परखने की क्षमता से मूल्यांकन किया जाय तो स्वतंत्रता-संग्रामी सुभाष बोस ने, एकनिष्ठ लक्ष्य के निमित्त, अपने त्याग और बलिदान द्वारा इतिहास में अमिट छाप छोड़ी है। क्या सर्वहारा, क्या व्यापार-संघ, क्या युवा, क्या छात्र, क्या महिलायें-सभी वर्गो में उन्होने स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय सहयोग की अनिवार्य चेतना जाग्रत की। उन्होने अपने प्रेस-वक्तव्यों तथा अध्यक्षीय भाषणों द्वारा देश की जनता को यदि एक तरफ सार्वजनिक आन्दोलन की ओर उन्मुख किया तो दूसरी तरफ ब्रिटिश-सत्ता के प्रति विरोध एवं विद्रोह ही भावना प्रज्वलित की।

सुभाष बोस गांधीजी के अहिंसा मूलक सत्याग्रह द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति की सम्भावना को स्वप्नवत् समझते थे। उनके विचार में सशस्त्र क्रान्ति बिना देश को स्वतंत्र करना सर्वथा असंभव था। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में गुलाम भारत के लिए अपनी सेना के संगठन की सम्भावना क्षीण थी कारण कि देश का सबसे सशक्त राजनीतिक दल कांग्रेस था। उसकी प्रभुता सवस्वीकृत हो चुकी थी जो गांधी जी की छत्र-छाया में 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन की विजय-मंत्र ग्रहण कर चुकी थी। 1939 में परिस्थितिवश कांगेस के सभापत्वि से त्याग-पत्र देने के बाद सुभाष बोस के सामने राजनीतिक पट-भूमि खुलकर

सामने आ गयी थी।

देश के प्रमुख राजनीतिज्ञ बोस की राजनीतिक क्रियाविधि के अनुकूल न भी रहे हों किन्तु गांधी जी की सर्वप्रियता के कारण प्रतिरोध की क्षमता हार बैठे थे। उग्रवादी युवा-दल निरन्तर ब्रिटिश सरकार के उत्पीड़न का शिकार हो रहा था। इधर ब्रिटिश सरकार सुभाष बोस को हथकड़िया पहनाने के बहाने खोजती रही। वह किसी भी कीमत पर उन्हें आजाद छोड़ना नहीं चाहती थी। अब बोस के सामने दो विकल्प थे-गांधीवादी विचारधारा के अनुसार आन्दोलन स्वीकार करना अथवा आजीवन कारारूद्ध रहना। उन्हे दोनो ही स्वीकार नही थे।

पिछले अपराध के अतिरिक्त जब नव-संगठित 'फारवर्ड ब्लाक' के तीन लेखों के नये जुर्म में वे कारारूद्ध कर दिये गये तब पहले मौके पर देश से निकल गये। अपने सुदृढ़ एवं परिपक्व विचारों को हृदय में संजाये, वे निःसंग, एकाकी ही क्रान्ति के दुर्गम पथ पर अग्रसर हो गये। जनवरी 1941 में जब सुभाष बोस भारत से अग्निकेतन की तरह निकले थे, उन्हें अपनी मंजिल का पता था अपने लक्ष्य यानी मातृभूमि की स्वतंत्रता प्राप्ति की लगन भी थी पर ब्रिटेन विरोधी विदेश क्या, कितनी और कहा तक सहयोग देग यह विदित नहीं था। किन्तु निर्भीक, दुस्साहसी, अपराजेय सुभाष बोस बढ़ते ही गये, फिर पलट कर नहीं देखा जर्मनी में 'आजाद-हिन्द संघ' और 'आजाद-हिन्द-फौज' के गठन में अनगिनत कठिनाइयों, व्यवधानों और विलम्ब का सामना करने पर भी उन्होने हौसला नही हारा।

इस क्रान्ति-पथ पर आरूढ़ सुभाष बोस कितने अकेले थे इसका संकेत उनेक सहकर्मी गिरिजाकुमार मुखर्जी ने दिया है। इनका कहना है कि किसी भी अन्य व्यक्ति को खतरे में डाले बिना सब कर्मी का प्रतिफल स्वंय झेलना सुभाष की परम कामना रही। उनकी इस तटस्थ वृत्ति से उनके सहकर्मियों को क्लेश भी पहुंचता था क्योंकि वे भी बोस की निराशाओं को बांटना चाहते थे। पर बोस ने अपने व्यक्तित्व का गठन कुछ इस ढंग से किया था कि दूसरों को निरन्तर यह एहसास दिलाते रहे कि वे स्वयं सबसे अधिक साहसी एवं निर्भीक व्यक्ति हैं। बोस का कहना था 'नेता' शब्द 'फुरर' का पर्याय है अन्यथा मैं 'नेताजी' नही भारत का साधारण पुत्र हूं। साहस के साथ उनमें विनम्रता की भावना भी विशेष रूप से मौजूद थी।

१. आधुनिक भारतीय राजर्शन को बोस के योगदान

हम अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के आधार पर नवीन और आधुनिक राष्ट का निर्माण करना चाहते हैं। इसके लिए हमें आध ुनिक उद्योगों, आधुनिक सेना और उन सब वस्तुओं की जरूरत होगी जो हमारे अस्तित्व और आधुनिक परिस्थितियो में हमारी स्वतंत्रता को संरक्षित रखने में आवश्यक है।

–टोकियों विश्वविद्यालय के छात्रों को सम्बोधन (नवम्बर, 1944)

प्रतिशील राष्ट्रवाद के प्रणेता एवं यथार्थवादी दृष्किोण

स्वतंत्र हो जाने पर यदि हम एक राष्ट्र के रूप में संगठित होना चाहते हैं, तो यथार्थ में हमें कठोर परिश्रम करना होगा। राष्ट्रीय एकता और संगठन को विकसित करने के लिये अनेक बातों की आवश्यकता है, यथा-एक सामान्य भाषा, एक सामान्य वेश-भूषा, एक सामान्य आहार इत्यादि।.......................मेरे विचार में एकता की समस्या व्यापक रूप से एक मनोवैज्ञानिक समस्या है। लोगों को यह अनुभव कराने के लिए कि वे एक राष्ट्र के हैं, शिक्षित करना होगा और लोगों को अभ्यास कराना होगा।

-क्रास रोड पृ0 54

इस शताब्दी में मनुष्य के इतिहास में मुट्ठी भर लोग ही पृथ्वी पर आए और हर किसी के हृदय में कौतुहल जगाने में सफल हुए हैं। उनमें से सुभाष एक हैं।

बोस एक ऐसे ओजस्वी व्यक्तित्व थे जिनके लिए आजादी का अर्थ भारत की आम जनता के चेहरे पर खुशहाली लाने और उसका खोया हुआ गौरव दिलाने से था ऐसी आजादी जिसमें देश की जनता अपनी भलाई के फैसले स्वयं करने के लिये स्वतंत्र हो, जिसमें सभी वर्गो, जातियों, धर्मो को बिना भेदभाव के विकास का अवसर मिले और जिसके चलते भारत वास्तविक अर्थो में सार्वभौम गणराज्य बन सके, आज अगर हम यह लक्ष्य पा सके है तो उसमें नेताजी के संघर्ष, जिजीविषा, रणनीति और बलिदान पर अतुलनीय योगदान है।

नवम्बर 1944 में टोकियों में छात्रों को सम्बोधित करते हुए बोस ने कहा था कि हमकों भारत में प्रजातांत्रिक संस्थाओं का कुछ अनुभव है और हमने फ्रांस, इग्लैण्ड, तथा अमरीका जैसे देशों से भी प्रजातांत्रिक संस्थाओं की कार्य-प्रणाली का अध्ययन किया है और हम इस परिणाम पर पहुचे हैं कि प्रजातांत्रिक प्रणाली को अपनाकर स्वतंत्र भारत की

समस्याओं को नही सुलझा सकते। अतः भारत में आधुनिक प्रगतिशील विचार एकं अधिनायकवादी राज्य के पक्ष में है, जो जनता के सेवक अथवा अंग के रूप में कार्य करेगा। कुछ घनी व्यक्तियों अथवा किसी गुट के सेवक के रूप में नहीं।[1] स्वतंत्र भारत के लिये उन्होने प्रजातंत्र को ही एक मात्र पद्धति के रूप में स्वीकार किया परन्तु भारत की अविकसित एवं अशिक्षित जन समुदाय के लिए सैनिक दृष्टि से अनुशासित एवं एकता बद्ध प्रजातंत्र का समर्थन किया साथ ही उन्होने सुदृढ़ केन्द्रीय शासन को देश के लिये उपयुक्त समझा और संघात्मक शासन को परवर्ती एवं अन्तिम उद्देश्य माना। सुभाष बोस का मत था कि स्वतंत्र भारत में हमारा कार्य ऐसी पद्धति को विकसित करना होगा जो संसार के विभिन्न भागों में चल रही पद्धतियों का समन्वित रूप हो। नेताजी का मत था कि भारतीय सन्दर्भ में पाश्चात्य मॉडल ज्यों का त्यों नही लेना चाहिए। भारत के विकास के लिए वह हमेशा परिचय की वामपंथी व्यवस्था और भारतीय संस्कृति के मिश्रण से निर्मित व्यवस्था के समर्थक रहे। उनका मत था कि इन दोनो का समन्वय भारत के विकास के लिए आवश्यक है। वह भारतीय मूल्यों को ज्यों का त्यों स्वीकारने के पक्ष में थे।

नेता जी का मत था कि भारतीय सन्दर्भ में पाश्चात्य माडल ज्यों का त्यों नही लेना चाहिये। भारत के विकास के लिये वह हमेशा पश्चिम की वामपंथी व्यवस्था और भारतीय संस्कृति के मिश्रण से निर्मित व्यवस्था के समर्थक रहे। उनका मत था कि इन दोनों का समन्वय भारत के विकास के लिये आवश्यक है। वह भारतीय मूल्यों को ज्यों का त्यों स्वीकारने के पक्ष में थे।

वर्तमान विश्रृड.खल प्रजातंत्र नेताजी का लक्ष्य न रहा। वास्तव में भारत की वर्तमान प्रजातंत्रीय पद्धति में भ्रष्टाचार, लाल फीताशाही, अराजकता, साम्प्रदायिकता आदि दोषों को देखते हुए नेता जी की राजनैतिक योजना अधिक उचित प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध में बोस ने कहा भी था हम अनुभव करते है कि हमारे देश में संस्थाओं और संगठनों का जाल खड़ा करके और उनके संचालन के लिये अधिकारियों का तंत्र खड़ा करके नौकरशाही ने स्वयं को संस्थापित कर लिया है। हमें शक्ति के इन किलों पर प्रहार करना है और किसी उद्देश्य से सामान्तर संस्थाऐं गठित करनी हैं।[2]

एक सच्चे यथार्थवादी की भांति बोस ने युवा शक्ति संगठित कर उसमें राजनीतिक चेतना जागृत की, क्योंकि बोस का मत था युवा जो केवल काम नहीं करेगे, स्वप्न भी देखेगे, नष्ट ही नही करेगे, निर्माण भी करेगे। जहां वे विफल हुए युवा आन्दोलन सफल होगा। वे नया भारत स्वतंत्र भारत का निर्माण करेगे जो विफलताओं पुर्नप्रत्यनों तथा अतीत के अनुभव पर टिका होगा।[3] सुभाष बोस का कहना था कि देश का तरूण वर्ग आज

1– सुभाष चन्द्र बोस का टोकियों विश्वविद्यालय के छात्रों को सम्बोधन–नवम्बर1944

2– महाराष्ट्र कान्फ्रेन्स पूना के अध्यक्षीय पद से भाषण–3 मई 1928.

3- Jagat S. Bright-Insportant Speeches and Wgritings of Subhas Chandra Bose 44.

अपने व्यस्त नेताओं को सारे दायित्व सौंपकर खुद हाथ बांधकर बैठने या मूक बाधित पशु की तरह अनुसरण करने के लिए कदापि तैयार नहीं है उन्हें भारत का निर्माण करना है। स्वतंत्र महान और शक्तिशाली भारत का। वे यह दायित्व ले चुके है और परिणाम के लिय पूरी तरह तैयार है। इन शब्दों में सुभाष बोस का अपना व्यक्तित्व, उनकी विचारधारा, अपने प्रति दृढ़ विश्वास तथा कुछ कर गुजरने का पक्का इरादा प्रतिबिम्ब है। इकत्तीस बत्तीस वर्षीय सुभाष बोस खुद उसी युवा वर्ग का हिस्सा थे। वे चरम पंथ तथा क्रान्तिकारी पद्धति के समर्थक थे। इसलिये गांधी तथा अरविन्द द्वारा प्रतिपादित दर्शन को देश के लिए घातक समझने लगे थे। उन्होने इनकी कड़ी आलोचना करते हुए कहा था कि 'सारबरमती आश्रम की विचारधारा आधुनिकता के लिए हानिकारक है। आश्रम बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण को दोषपूर्ण समझता है................अपनी इच्छाएं नहीं बढ़ाना चाहिए............रहन-सहन बेहतर नही करना चाहिए.............यथा शक्ति बैलगाड़ी के युग में लौट जाना चाहिए......................यानी आत्मा इनती महत्वपूर्ण है कि शारीरिक शक्ति और सैनिक प्रशिक्षण की उपेक्षा की जा सकती हैं।..............यह दर्शन नहीं निष्क्रियता है जिसके विरूद्ध मैं आपत्ति करता हूं................आज हम भारत में सक्रियता का दर्शन चाहते है। हमें स्वतन्त्र आशावादिता से प्रेरणा लेनी है।'[1]

सुभाष बोस भारत में कर्मयोग चाहते थे। कार्य के दर्शन को पसन्द करते थे क्योंकि बोस जानते थे कि हमें वर्तमान में रहना है। हम विश्व मे अलग-अलग अपने दरवाजों व खिड़कियों को बन्द करके नहीं रह सकते। जब हिन्दुस्तान आजादी पाएगा तब भारतीयों को अपने अस्तित्व की रक्षा के स्वयं तत्पर रहना होगा। सुभाष बोस का कहना था कि आज के युग के दुश्मन से मुकाबला करने के लिए जोकि नवीन हथियारों से लैस है हमें भी आधुनिकतम हथियारों से लैस होना होगा। आर्थिक और राजनीतिक मैदान में अपने अस्तित्व को कायम रखना है क्योंकि अब बैलगाड़ी का युग चला गया। स्वतंत्र भारत को आत्मनिर्भर होना पड़ेगा। नए-नए अस्त्रों-शस्त्रों से लेस होना हेगा और सदैव आत्म रक्षा के लिए तैयार रहना पड़ेगा।[2]

प्रगतिशील राष्ट्रवाद के प्रणेता सुभाष बोस का यथार्थवादी दृष्टिकोण था कि राष्ट्र की मूलभूत समस्याओं का हल खोजने के लिए हमें अपनी चिन्तना की मीलों आगे ले जाना

1- Selected speeches of Subhas Chandra Bose - His Contribution to Indian Nationalism: 73

2- Reported the Anand Bazar Patrika - 26 December 1928.

3- Selected speeches of Subhas Chandra Bose : 46:47

होगा..........................बन्धुबान्धव हीन एकाकी खड़े होने का साहस बटोरकर संघर्ष करना होगा।..................अपने स्वार्थहीन कार्यो के लिए दूसरों के अपशब्द और निन्दा सहने के लिए तैयार रहना होगा। अपने निकटतम बन्धुओं के अवांछित, अनावश्यक बैर के लिए प्रस्तुत रहना होगा।[3] नेताजी का मत था कि सबको स्वीकार करना होगा कि जो कुछ अब तक हम करते आये हैं, उससे कही अधिक मात्रा में हमें विश्व के समक्ष भारत को ला खड़ा करना होगा। भारत की समस्याऐं अन्ततः विश्व की समस्याऐं ही तो है। विदेशो के प्रगतिशील आन्दोलन के निकट सम्पर्क में केवल भारत का ही कल्याण नहीं है, उस पर पीड़ित मानव जाति भी निर्भर है।[1]

बोस कट्टर यथार्थवादी थे। उन्होने कहा था कि 'राज्यों का निर्माण होता है विकास होता है फिर पतन होने लगता है। ग्रेट-ब्रिटेन के प्रथम दो चरण पूरे हो चुके है। अब यदि वह स्वतन्त्र राष्ट्रीय-संघ में परिवर्तित नही होगा तो अन्य साम्राज्यों की तरह उसका पतन अवश्यम्भावी है। ग्रेट-ब्रिटेन अन्य देशों को गुलाम बनाकर जी रहा है। ये गुलाम देश अब साम्राज्यवादी शासन की जड़ों में आघात करने के लिए तैयार बैठे है।..................विच्छेद नीति में ब्रिटेन जैसा सुनिपुण देश शायद ही कोई दूसरा हो, जो सुव्यवस्थित ढंग से भारत में इसका निष्ठुरतापूर्वक प्रयोग कर रहा हो। भारत सरकार के नये संविधान में इसका अन्य रूप में कथन हुआ है। यदि देश ने नया संविधान स्वीकार न किया तो ब्रिटेन दूसरे उपाय द्वारा विच्छेदक-नीति ग्रहण करके अधिकार हस्तान्तरण को निरर्थक कर देगा।''

बोस ने भारतीय प्रदेशों में प्रयोगात्मक सत्ता के बारे में भी जनता को सावधान किया कि 'इससे यह नहीं समझना चाहिए कि हमारी क्रिया-विधि संवैधानिकता तक सीमित रहेगी..............इस सम्भावना के लिए पर्याप्त आकाश है कि यदि संघीय ढांचा जबरदस्ती लादा गया तो उसके विरोध में अधिक सशक्त 'अवज्ञा आन्दोलन में पवसत्त हो जायें।

सुभाष बोस परिस्थितियों के सम्बन्ध में यथार्थवादी दृष्टिकोण रखते थे। इस परिप्रेक्ष्य में 1999 में उन्होने कहा था कि-वह समय अब आ गया है जब हमें ब्रिटिश सरकार को अन्तिम चुनौती दे देनी चाहिए कि वह एक निश्चित समय के अन्तर्गत भारत को स्वतंत्रता की घोषणा करे। हम किसी भी दशा में संघीय योजना को अपने ऊपर थोपने नहीं दे

1- V.S. Patil-Subhas Chandra Bose : His Contribution to Indian Nationalism:74

सकते'। आज ब्रिटेन की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बहुत कमजोर है और मेरी दृढ़ मान्यता है कि छः महीने में ही योरुप में महायुद्ध छिड़ जाएगा। अस्तु यदि इस अवसर का हमने लाभ नहीं उठाया तो जब शान्ति हो जाएगी और ब्रिटेन की राजनीतिक स्थिति पुनः मजबूत हो जाएगी तो वह पुनः साम्राज्यवादी नीति को अपनाने से बाज नही आएगा।..............यदि ब्रिटिश सरकार उस निश्चित समय के अन्तर्गत देश को आजादी प्रदान नही करती तो हमें देश व्यापी सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ कर देना चाहिए। मेरा विश्वास है कि ब्रिटेन आज देशव्यापी सत्याग्रह आन्दोलन का सामना कर सकने की स्थिति में नही है।

..........मुझे यह देखकर दुख होता है कि कांगेस में ऐसे व्यक्ति भी है जो इतने निराशावादी है कि वे मानते है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर अन्तिम प्रहार करने का सयम अभी नही आया। परन्तु परिस्थिति को एक यथार्थवादी की भांति देखने पर मुझे निराश होने का कोई भी कारण प्रतीत नही होंता।[1] ब्रिटिश भारत में जन आन्दोलन बहुत सशक्त बन गया है और देशी राज्यों में अभूतपूर्व चेतनता उत्पन्न हुई है। भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए इससे अधिक उपयुक्त अवसर और कौन सा हो सकता है। विशेषकर जब अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति हमारे अनुकूल हो। एक कठोर यथार्थवादी के नाते मैं कह सकता हूं कब हममें वह राजनीतिक दूरदर्शिता होगी कि हम अपनी इस अत्यन्त अनुकूल स्थिति का लाभ उठाएं, अन्यथा हम इस अवसर को खो देगें।

भावी भारत के पुर्ननिर्माण के आधार पर बोस ने एक और महत्वपूर्ण समस्या पर प्रकाश डाला–स्वतन्त्रता उपरान्त ग्रेट ब्रिटेन के साथ भारत के सम्बन्ध। उनका कहना था कि ब्रिटिश सत्ता से हमारी कोई शत्रुता नही है। हम अपनी स्वतंत्रता के लिए उनसे संघर्ष कर रहे है। हमें आगामी सम्बन्धों के बारे में निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता होगी। आजाद देश ही तरह ब्रिटिश के साथ हम मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध क्यों नहीं स्थापित कर सकते!!

आजाद भारत में कांग्रेस की भूमिका के बारे में बोस का मत था कि कांग्रेस में कुछ मित्र यह सोचते है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेस को खण्डित हो जाना चाहिए। यह चिन्तन सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है, कारण कि जो पार्टी भारत को स्वतंत्रता दिलायेगी उसे युद्धोत्तर पुर्नरचना की योजना भी कार्यान्वित करनी होगी। उसे प्रशासन भार भी संवहन करना होगा।

1– सत्य शकुन, मैं तुम्हें आजादी दूंगा – भाग –1,पृष्ठ 22

2- Subhas Chandra Bose - Impression of life : 140

यदि कांग्रेस को जबरदस्ती समाप्त कर दिया गया तो विश्रृंखला का संचार हो जाएगा। कांग्रेस को आजादी के बाद तीन प्रकार की भूमिका निभानी होगी–पुनर्गठन के लिए आसन्न उद्देश्य होंगे(1) देश को स्वार्थ त्याग के लिए तैयार करना (2) भारत की अखण्ड एकता का प्रयास करना एवं (3) प्रान्तीय एवं सांस्कृतिक अधिकार देना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार का गठन करना होगा।''[1]

नेताजी के राजनीतिक विचारो तथा कर्म में नियोजन का प्रमुख स्थान था। असम्बद्ध विचारों तथा आचरण के घोर विरोधी सुभाष निरर्थक विचारों में कदापि तल्लीन नही होते थे। धर्म परायण होते हुए भी वह कट्टरपंथ, संकीर्णता, साम्प्रदायिकता व अन्धविश्वास से मुक्त थे। इसलिए गुलामी की जंजीरों में जकड़ी कुरूतियों से घिरी इस देश की गरीब व असहाय जनता के बीच वह एक मात्र आशा की किरण थे। नेताजी की धारणा थी कि राष्ट्र के आर्थिक एवं औद्योगिक सर्वेक्षण के लिए एक योजना आयोग हो जो आर्थिक एवं औद्योगिक क्षेत्र के आंकड़े उपलब्ध कराये। बोस भारत के औद्योगकीरण के प्रबल हिमायती थे। बोस मानते थे कि कृषि उत्पादन अभिवृद्धि से भुखमरी की समस्या काफी हद तक दूर हो जाएगी। औद्योगीकरण को बढ़ावा देने से बहुत सी जन–शक्ति को इधर स्थानान्तरित करना पड़ेगा। किन्तु नयी पार्टी के समाजवादी राष्ट्रीय पुनर्गठन का आधार औद्योगिक होना चाहिए। विदेशी उद्योगो से प्रतियोगिता के लिए यह आवश्यक है उस स्थिति में देश का रहन–सहन स्वतः उन्नत हो जायेगा।''

1939 में कांगेस से अलग होने के बाद नेताजी ने अपनी वामपंथी प्रतिबद्धता के अनुरुप 'फारवर्ड ब्लाक' नामक दल का गठन किया था। इस दल के उद्देश्यों के सिद्धान्तों का सार इस प्रकार व्यक्त किया गया कि उनका प्रगतिशील राष्ट्रवाद स्पष्ट होकर सामने आता है।

बोस ने अपने दल के कार्यक्रम में पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा उसको प्राप्त करने के लिए अविचल साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष पर बल दिया। उनकी आकांक्षा थी एक पूर्णतः आधुनिक ढंग का समाजवादी राज्य की स्थापना करने की। देश के आर्थिक पुनरूत्थान के लिए वैज्ञानिक ढंग से बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए बोस जोर देते रहे। उन्होने उत्पादन

1- Subhas Chandra Bose - Impression of life : 140

तथा वितरण दोनो का सामाजिक स्वामित्व तथा नियन्त्रण का समर्थन किया।

दल के सिद्धान्तों में उन्होने व्यक्ति को धार्मिक पूजा-पाठ में स्वतंत्रता देना चाहा। स्वतंत्रता के साथ समानता के पुजारी सुभाष ने स्वतंत्र भारत में हर व्यक्ति के समान अधिकार को समर्थन दिया ; भारतीय समाज के हर वर्ग को भाषा-विषयक तथा सांस्कृतिक स्वतंत्रता भी उन्होने देना चाहा। वे नवीन स्वतन्त्र भारत के निर्माण में समानता तथा सामाजिक न्याय के सिद्धान्त को लागू करना चाहते थे।

इस दल के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए नेताजी ने कहा था कि यह दल आम जनता का प्रतिनिधित्व करेगा। राजनीतिक एवं आर्थिक सुधार, राज्य योजनाकृत विकास, नवीन सामाजिक संरचना और जमींदारी उन्मूलन भी इसका प्रमुख उद्देश्य होगा। नेताजी ने स्पष्ट किया था कि संरक्षण काल में देश का एक कठोर अनुशासित दल के नेतृत्व में संचालन आवश्यक होगा क्योंकि एक मजबूत दल के द्वारा ही भारत को एक रखा जा सकता था। अपने लम्बे अनुभव के बाद नेताजी का यह मूल्याकांन था कि भारत जैसे गरीब देश की प्रगति का सूत्र सामाजिक एकता एवं नियोजित व्यवस्था में छिपा हैं।

स्वतंत्रता के बाद भारत की अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने के लिये बोस ने समाजवाद को एकमात्र आधार माना। उनका विचार था कि राष्ट्र की प्रमुख समस्याअें का समाधान समाजवाद द्वारा ही सम्भव है चाहे वह निर्धनता, या अशिक्षा हो बेरोजगारी या उत्पादन एवं वितरण की समस्या हो समाजवादी आधार पर ही प्रभावशाली ढंग से सुलझायी जा सकती है।[1] बोस ने कहा कि मेरे मस्तिष्क में कोई सन्देह नहीं है कि संसार की तरह भारत का परित्राण समाजवाद पर निर्भर है। भारत को दूसरे राष्ट्रों के अनुभव से सीखना और लाभ उठाना चाहिए। किन्तु भारत की अपनी आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल अपनी कार्यप्रणाली विकसित करने में भी समर्थ होना चाहिए। किसी सिद्धान्त को व्यवहार में लाते समय इतिहास और भूगोल को असंगत घोषित नही कर सकते, अगर आप ऐसा करते है तो असफल ही होगे। इसलिये भारत को समाजवाद के अपने प्रकार को विकसित करना चाहिए। समाजवाद के उस रूप में जो भारत विकसित करेगा, कुछ नया और मौलिक होगा जो सम्पूर्ण विश्व के लिये लाभदायक भी होगा।[2]

1— सम्पादक—डा0 गिरीराजशरण ; सुभाष ने कहा था (हरिपुर कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण 192—1988)

2— सुभाष चन्द्र बोस का ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस से अध्यक्षीय भाषण (कलकत्ता) 4—7—31

सुभाष के समाजवादी विचारो को स्वामी-विवेकानन्द के शोषण विहीन सामजिक-आर्थिक व्यवस्था के विचार से प्रेरणा मिली। स्वामी जी के मानव बन्धुत्व दरिद्र नारायण के प्रति अथाह प्रेम,कर्मठता,आत्मविश्वास, आत्म-सम्मान आदि की भावनाओं ने भी सुभाष को प्रेरित किया। सुभाष ने लिखा है कि रामकृष्ण के त्याग एवं शुद्धता के दृष्टांत ने शुद्ध स्वार्थ की समस्त शक्यितों के साथ घमासान लड़ाई को प्रेरणा दी और स्वामी विवेकानन्द के आदर्श ने परिवार तथा सामाजिक व्यवस्था के साथ मुझे संघर्षरत बनाया।[1] इसी के प्रभाववश उन्होने मानवमात्र की सेवा में जीवन अर्पित करने का निश्चय किया। नंगे,भूखे,निरक्षर,अस्पृश्य हर भारतीय को बधुत्व रूप में देखने की प्रेरणा यही मिली।.............

समाजवादी आर्थिक योजना के अर्न्तगत बोस ने 1938 में कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में जमीदारी उन्मूलन, सहकारी कृषि किसानों के लिए सस्ते ऋण, ऋणमाफी कृषि में वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग बड़े उद्योगो एवं बैंको का राष्ट्रीयकरण, लघुउद्योगो का विकास आदि कार्यक्रमों को शामिल किया था।

बोस ने कहा था कि समाजवाद की नयी धारणायें पश्चिम से भारत की ओर गतिशील हो रही है और वे अनेक व्यक्तियों के विचारों को आन्दोलित कर रही है, किन्तु समाजवाद की धारणा इस देश के लिए कोई नही बात नहीं है। हम इसे इसलिये आदर दे रहे है क्योंकि हमने अपने इतिहास के सूत्र को खो दिया है। किसी भी विचारधारा को त्रुटिरहित और पूर्णता सही मानना उचित नहीं है। हमें नही भूलना चाहिए कि कार्लमार्क्स के मुख्य अनुयायी रूस ने भी इस विचारधारा का अन्धानुकरण नही किया। अपने सिद्धान्तों पर लागू करने में कठिनाई देखकर उन्होने ऐसी आर्थिक नीति ग्रहण की जो व्यक्तिगत सम्पत्ति और व्यापारिक कारखानों के स्वामित्व के अधिग्रहण की विरोधी नही थी। इसलिए हमें अपने आदर्शो और अपनी आवश्यकताओं के अनुसार समाज और राजनीति को आकार देना चाहिए।[2]

इन्हीं सिद्धान्तों को उन्होंने फारवर्ड व्लाक के घोषणा पत्र में भी स्थान दिया था जिन्हे आज स्वतंत्र भारत में मूर्त रूप दिया जा रहा है। इतना ही नहीं भारतीय अर्थव्यवस्था में वैज्ञानिक नियोजन के लिये उन्होने राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना भी की। नेताजी भारत में पूर्णरूप से सुसंगठित आधुनिक समाजवादी समाज का निर्माण करना चाहते थे। उन्होने

1— गिरीराज शरण—सुभाष ने कहा था (रंगपुर राजनैतिक सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण 30.3.1929)

2— योगीन्द्र द्विवेदी—भारतीय गणतन्त्र; नेताजी का एक स्वप्न—सन्देश पत्रिका—1998

ऑल इण्डिया नौजवान भारत सभा में कहा भी था मैं भारत में समाजवादी गणतंत्र चाहता हूं मुझे पूर्ण समग्र और स्वतंतत्रा का संकेत देना है। जब तक कि आधारभूत या क्रान्तिकारी तत्वों को आन्दोलित नहीं किया जाता तब तक हम स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकते और एक नये संदेश द्वारा प्रेरिंत किये बिना उन क्रान्तिकारी तत्वों को अपने बीच उत्तेजित नही कर सकते।[1]

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के प्रो0शैलेन्द्र पांथरी के अनुसार महान कर्मयोगी स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाओं को सुभाष ने पूर्णरूपेण ग्रहण किया। उन्होने कहा था कि-कारखानों से, झोपिड़ियों से बाजारो से नये भारत का उदय होने दो। सुभाष के कानों में विवेकानन्द के ये शब्द गूंजते रहते थे कि सत्ता जनता के हाथों में आनी चाहिए। सुभाष जन सामान्य में शिक्षा के प्रसार को तथा युवा छात्र किसान तथा श्रमिक आन्दोलनों में भी अनिवार्य मानते थे। सुभाष का मानना था कि भारत की प्रगति किसानों, धोबियों, चमारो तथा मेहतरों के हाथों होगी। सुभाष जातिवाद के प्रबल विरोधी थे। सुभाष बोस का मत था कि यदि हम भारत को वास्तव में महान बनाना चाहते है, तो हमें प्रजातांत्रक समाज के आधार पर राजनीतिक प्रजातंत्र की स्थापना करनी होगी। जन्म जाति और सम्प्रदाय पर आधारित विशेष सुविधाऐ समाप्त होनी चाहिए तथा जाति मत एवं धर्म से निरपेक्ष होकर सबको समान अवसर दिये जाने चाहिए।[2]

भारतीय समाजवाद के सम्बन्ध मे 1924 में अपने भाषण में सुभाष ने कहा था कि वे स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित लोकतन्त्र में नारायण का निवास उन लोगों में होता है जो भूमि को जोतते है, हमें रोटी देते है, जो घोर निर्धनता के के बीच रहकर हमारी सभ्यता, संस्कृति तथा धर्म के द्वीप को प्रज्जवलित रखे हुए है।[3] ऐसे ही सामाजिक न्याय एंव समता तथा बन्धुत्व से अनुप्राणित समाज एवं राष्ट्र को सुभाष ने अपना ध्येय बनाया। क्योंकि स्वराज की उनकी संकल्पना केवल राजनीतिक ही नहीं समाजिक,आर्थिक और सांस्कृतिक भी थी।

भावी भारत की योजनाओं के बारे में सुभाष बोस की धारणा थी कि नये युग की देहली पर खड़े भारत को प्रत्येक दिशा में अपने को परिपूर्ण करना है, परन्तु अन्य

1– सुभाष ने कहा था– ऑल इण्डिया नौजवान भारत सभा कराची में अध्यक्षीय भाषण 27.3.1931

2– स0–गिरीराज शरण– महाराष्ट्र प्रान्तीय कान्फ्रेस पूना के अध्यक्षीय पद से भाषण–3मई 1920[p]

3– योगीन्द्र द्विवेदी– भारतीय गणतन्त्र–नेताजी का एक स्वप्न–संदेश पत्रिका–1998.

राष्ट्रों के मूल्य पर नहीं, और न ही आत्मवृद्धि तथा साम्राज्य वाद के रक्तपात पूर्ण मार्ग पर चलकर। सुभाष बोस की हार्दिक अभिलाषा थी कि विश्व एक परिसंघ का रूप ग्रहण करें जिसमें समस्त राष्ट्र एक परिवार के सदस्य के समान रहें। सम्प्रभुता, बन्धुता, परस्पर सहयोग, एक-दूसरे की भावनाओं के प्रति सम्मान, हर एक जाति की सृजनात्मक प्रतिभा के उत्थान तथा आर्थिक विकास के अवसरों की उपलब्धता, जातीय भेदभाव के उन्मूलन, सांस्कृतिक सम्पर्क को प्रदत्त प्रोत्साहन और जाति की प्रगति में सहयोग के आधार पर। भारतीय जनता की तत्कालीन समस्याओं के समाधान एवं भविष्य के निर्धारणके प्रति भी नेताजी ने सदैव स्पष्ट एवं व्यवहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

चूंकि बोस स्वतंत्र भारत के परिप्रेक्ष्य में यथार्थवादी दृष्टिकोण रखते थे इसलिए देश की बढ़ती आवादी से चिन्तित थे। देश की वृद्धिशील आवदी के बारे मे बोस ने कहा था कि 'दरिद्रता, भूखमरी और व्याधि जिस देश की छाती में पल रही है, उनकी आबादी बढ़ाने की हममें क्षमता नहीं है। अतः जनसंख्या को बढ़ने से रोकना हमारा कर्तव्य होना चाहिए।. ....दरिद्रता उन्मूलन के लिए जमींदारी प्रथा की समाप्ति और भूमि व्यवस्था का आमूल संस्कार अनिवार्य है......................खेती उत्पादन वृद्धि के लिए वैज्ञानिक प्रयोग का सहारा लेना होगा..............शिल्पोन्नयन कुटीर उद्योग, हस्तकरधा आदि से तैयार कपड़ें के लिए प्रचुर अवकाश है। कृषि, शिल्प तथा सामाजिक व्यवस्था के लिए धन की आवश्यकता होगी। अपने देश तथा अन्य देशों से इसे इकट्ठा किया जा सकता है। राष्ट्रीय योजना की सफलता के लिए सीमित उपकरणों वाले भारत देश के वैज्ञानिक विकास के निमित्त एक सुचिन्तित एवं क्रमबद्ध योजना जरूरी है।

भारत में जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए नेताजी ने 1965 मे गांधीजी के विरोध ा के बाबजूद परिवार नियोजन के आधुनिक कृत्रिम साधनों के प्रयोग का सुझाव रखा था। जबकि गांधीजी ब्रह्मचार्य एवं आत्मसंयम पर बल देते रहे।[1]

सुभाष बोस सुदृढ़ राष्ट्र-शक्ति तथा देश की अखण्ड एकता के लिए बहुभाषी तथा बहुलिपि-प्रधान भारत देश में 'राष्ट्रभाषा' तथा 'राष्ट्रलिपि' निश्चित करने के पक्ष मे थे। इस सन्दर्भ में उन्होने सर्वाधिक प्रचलित हिन्दी और उर्दू की बात छेड़ी और जन-साधारण में

1— डा0 जयश्री—स्वतंत्रता संग्राम के अप्रतिम नायक : नेताजी सुभाष ; अभिनव ज्योति, 1996—98, (स्वर्ण जयंती अंक)

प्रचलित इन दोनों के मिश्रित रूप यानी 'हिन्दुस्तानी' को 'राष्ट्र भाषा' का दर्जा देने का सुझाव पेश किया। दूसरी समस्या लिपि की थी। उनका तर्क था कि वैज्ञानिक अथवा ऐतिहासिक दृष्टि से किसी भी लिपि में धार्मिकता या पवित्रता की कोई भूमिका नहीं होती। वैज्ञानिक दृष्टि तथा तटस्थ भाव से यदि सामान्य लिपि के प्रश्न पर सोचा जाय तो 'रोमन लिपि' से समस्या हल हो सकती है। यह लिपि भारत को अन्य देशों के साथ बराबर की पंक्ति में खड़ा कर देगी। जहां तक जन साधारण के सीखने का प्रश्न है भारत की नब्बे प्रतिशत आबादी अनपढ़ है। उसे प्रारम्भिक शिक्षा के समय जो भी लिपि सिखायी जायेगी वह सीख लेगी।

भावी भारत के पुर्ननिर्माण के आधार प्रजातंत्र की वकालत करते हुए सुभाष बोस ने कहा था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कम से कम बीस वर्षो तक भारत मे एकतंत्री व्यवस्था अवश्य रखी जाएगी। उनका आशय हिट्लरशाही चलाना नहीं था, बल्कि यह था कि इतने समय तक लोगों को सख्ती से अनुशासन में रखकर उन्हें स्वतंत्रता में रहना सिखाया जायेगा। इस प्रकार बीस वर्षो में हर तरह से अनुशासित, नैतिक और राष्ट्रीय चरित्र से उत्पन्न जो पीढ़ी तैयार होगी वह लोकतंत्र को दृढ़ता से स्थापित कर देश में उसे सार्थक भी बना सकेंगी।[1] परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में लोकतंत्र की स्थापना से पहले उनके इस दृष्टिकोण पर ध्यान नहीं दिया गया।

ब्रिटिश सरकार के सम्बन्ध मे सुभाष बोस कट्टर यथार्थवादी थे। इस निमित्त बोस ने कहा था कि जब मैं भारत में था, उस समय के ब्रिटिश सरकार के मेरे अनुभव और अब जबकि मैं भारत के बाहर हूं और ब्रिटिश नीति के सम्बन्ध में विश्व परिप्रेक्ष्य के लिहाज से साधिकार बात कर सकता हूं, निश्चयपूर्वक यह कह सकता हूं कि ब्रिटिश सरकार कभी भी भारत की स्वतंत्रता की मांग को स्वीकार नहीं करेगी, ब्रिटेन का एकमात्र प्रयत्न इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए भारत का पूर्णरूप से शोषण करना है। इस युद्ध मे ब्रिटेन ने अपने प्रदेश का एक भाग अपने शत्रुओं और दूसरा भाग अपने मित्रों को खो दिया है। यदि किसी प्रकार ब्रिटेन यह युद्ध जीत भी जाय तो भविष्य में अमेरिका का वर्चस्व स्थापित होगा और उसका अर्थ यह होगा कि ब्रिटेन अमरीका का पिछलग्गू बन जाएगा।

1– नगमा खानम् – भारतीय लोकतन्त्र की सार्थकता (लेख)"आज" समाचार पत्र–13 अप्रैल 2001.

संयुक्त राज्य अमेरिका के युद्ध के लक्ष्य के बारे में मैं कहना चाहूंगा कि वर्तमान शताब्दी में अमेरिका विश्व पर छा जाएगा।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो नेताजी का यह विचार कितना सत्य सिद्ध हुआ है। आज यह एक चिन्तन की विषय वस्तु है कि यदि नेताजी आजाद भारत में जीवित होते तो भारत की स्थिति शायद वह नहीं होती जो आज है। बोस के कार्यक्रम एंव विचार यथार्थवादी होने के साथ ही देश के जनसाधारण के सामान्य हितों पर आधारित थे। बोस को राजनैतिक यथार्थवाद के अनुसार कार्य करने पर विश्वास था। बोस को एक अद्वितीय योद्धा के रूप में स्वतंत्र भारत के पुनर्निमाण में उनके वैचारिक योगदान को उचित स्थान देना होगा। भारतीय इतिहास लेखनी की उस मूल को सुधारना होगा जो ब्रिटिश दृष्टिकोण पर आधारित है।

सुभाषचन्द्र बोस जन-वर्ग में जिस चेतना के संचार के लिए प्रयत्नशील रहे, उसे अपनी कार्यकुशलता एवं बलिदान द्वारा फलीभूत कर पाये। देश की आजादी के लिए आजीवन संघर्षरत नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, उसकी प्राप्ति से दो वर्ष पूर्ण, इतिहास के पन्नों में खो गये। एवं अपनी आंखों से अपनी चिरवांछित आशा और संकल्प का प्रतिफल नहीं देख पाये।

पुरूषार्थ के ज्वलंत प्रतीक नेताजी का भारतीय स्वतंत्रता के प्रति योगदान अप्रतिम है। उन्होने भारत की स्वतंत्रता के लिए जो अथक प्रयत्न किये, उनकी गाथा भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में सदैव स्वर्णिम अक्षरों में अंकित रहेगी। आधुनिक भारत के नव-निर्माण एवं पुर्नजागरण के लिए नेताजी के गम्भीर एवं यथार्थवादी विचार आज भी प्रासंगिक है।

स्वतत्रंतता संग्राम में बोस का रचनात्मक योगदान

हम अपने खून से अपनी स्वतंत्रता का मूल्य

चुकाएंगे और ऐसा करके हम राष्ट्रीय एकता

की नींव रखेगें। अपनी आजादी को बनायें

रखने में हम तभी समर्थ होगें जबकि

इसे अपने बलिदान और खून से प्राप्त करे।

सुभाषचन्द्र बोस

सशस्त्र संघर्ष का मूल्यांकन

आजादी का अन्तिम संघर्ष लम्बा और मुश्किल होगा
और हमे तब तक लड़ते ही रहना होगा जब तक कि
भारत पर कब्जा रखने वाले सभी अंग्रेजो को हम
काराग्रस्त या निकालकर बाहर न कर दे।

-वैंकाक से सुभाष चन्द्र बोस का प्रसारण (2.10.1943)

आधुनिक भारत की मुक्त आत्मा अपने को क्रियाशीलता में व्यक्त करना चाहती थी परन्तु एक ओर राज्य के द्वारा और दूसरी और समाज के द्वारा स्वंय को श्रंखलाओं में आबद्ध पाती थी। इन परिस्थितियों में सन्1857 में उत्तरीय और मध्य भारत में एक शक्तिशाली जन विद्रोह हुआ। 1857 का विद्रोह सिपाहियों का असन्तोष मात्र नहीं था व्लकि वास्तव में यह 'औपनिवेशिक शासन' की नितियों के कारण कम्पनी के प्रति जनता के संचित असंतोष का परिणाम था।[1] जन असन्तोस का दूसरा कारण अंग्रेजो द्वारा देश का आर्थिक शोषण देश के परम्परागत आर्थिक ढ़ाँचे का विनाश था।

1859 के अन्त तक भारत पर ब्रिटिश सत्ता पूरी तरह पुर्नस्थापित हो चुकी थी, किन्तु विद्रोह व्यर्थ नहीं गया। यह पुराने ढंग से भारत को तथा इसके परम्परागत नेतृत्व को बचाने का एक प्रयास तो था ही परन्तु यह ब्रिटिश सम्राज्य से मुक्ति के लिए भारतीय जनता के लिए पहला संघर्ष था

सन् 1857 की सैनिक क्रान्ति अनेक कारणों से सफल न हो पाई पर उसने अंग्रेज शासको के दिल दहला दिये थे। आगे फिर वह स्थिति न आये इसके लिए अंग्रेजो ने चेष्टा की। एक आई0 सी0 एस0 अंग्रेज (मि0ह्यूम) ने अखिल भारतीय संगठन बनाया-ऑल इण्डिया नेशनल कांग्रेस। देश के बड़े-बड़े व्यक्ति इसमें समबेत हुए क्योकि देश का अभियुत्थान करना इसका उद्देश्य घोषित किया था। परन्तु उपायों की भी घोषणा साथ-साथ थी-शान्तिपूर्ण और बैध उपायों को फिर स्पष्ट कर दिया गया, जब उनकी जगह सत्य और अहिंसा ने ले ली थी।

1— गिरीराज शरण – सुभाष ने कहा था : पृष्ठ-3

सितम्बर 1920 में कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया गया, उसमें महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आन्दोलन सम्बन्धी प्रस्ताव रखा गया। अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित कर गांधीजी को ब्रिटिश सरकार के बिरूद्ध शान्तिमय और अंहिसक आन्दोलन के अधि ाकार प्रदान कर दिये गये।[1] जुलाई 1921 तक असहयोग आन्दोलन से देश में पूरी जाग्रति हो चुकी थी लेकिन ब्रिटिश शासको पर उसका कोई प्रभाव नही पड़ा और खिलाफत का प्रश्न जहाँ का तहा था। नतीजा यह हुआ की लोगों में खीझ बढने लगी तथा वे हिंसा पर उतारू होने लगे।

दुर्भाग्य से 5फरवरी को एक हिंसक दुर्घटना उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के चौरी-चौरा ग्राम में घटित हुई, जिसमे ग्रामवासियों ने थाने में आग लगा दी। जिससे 21सिपाही तथा अन्य लोग जलकर भस्म हो गये। गांधी जी मन बचन तथा कर्म से अहिंसा में निष्ठा रखतें थे।[2] लेकिन जनता उस भावना को अपना नही पायी थी। जो गांधी जी के दर्शन का मूल आधार थी। जिस नैतिक निष्ठा को वह अपने जीवन और राष्ट्र की स्वाधीनता से भी ज्यादा चाहते थे उसी के उल्लघंन पर उनकी अन्तर्रात्मा उन्हे कचोटने लगी।

ऐसी स्थिति में गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित कर देने की घोषणा की। यह निर्णय पराजय की स्वीकृति के समान था। आन्दोलन जिसके कारण लोगो का उत्साह सर्वोच्च शिखर पर पहुच चुका था। अचानक स्थगित कर देने से लोगो मे भ्रम फैलना स्वाभाविक था।

सुभाष लिखते है कि-'महात्माजी ने असहयोग की जो नीति रखी उसका विराध बुद्विजीवियों की तरफ से हुआ पर उन्होंने अहिंसा का जो सिद्धांत रखा उसका विरोध क्रान्तिकारी दल की ओर से हुआ। प्रथम महायुद्व के दौरान हजारों क्रान्तिकारियों को कारागार में रहने का मौका मिला था। उनमें से बहुतेरे अप्रतिरोध के सिद्धान्त को नहीं मानते थें। और उन्हे यह भय था कि यदि सिद्धान्त मान लिया गया तो इससे जनता नपुंसक हो जाएगी और उनके प्रतिरोध की शक्ति कमजोर पड़ जाएगी।[3]

सुभाष चन्द्र बोस प्रारम्भ से ही यह चाहते थे कि किसी प्रकार क्रान्तिकारी और कांग्रेस के अन्दर एक समझौता रहे और दोनों मिलकर राष्ट्रीय कार्य करे।

1— ताराचन्द्र — भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास : पृष्ठ 520

2— सूर्य नारायण सक्सेना — नेताजी सम्पूर्ण वाड्न्मय (भाग—2) : पृष्ठ 127

3— माया गुप्ता (पत्नी श्री मन्मथ नाथ गुप्त—काकेरी केस) — नेताजी सुभाष के क्रान्तिकारी विचार : पृष्ठ 53

हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन मुख्य रूप से अहिंसा वादी था और देश का वातावरण भी उसी रूप में था। दुनिया भर में इसका प्रचार भी अहिंसा वाद के रूप में किया गया। गांधी के नेतृत्व में सम्पूर्ण जनता ने अहिंसात्मक आन्दोलन को स्वीकृति दी-निष्क्रिय प्रतिरोध जिसका अस्त्र था। इन परिस्थितियों में सुभाष बोस ने हिंसात्मक आन्दोलन पर बल दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध की परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए संकटपूर्ण सशस्त्र के माध्यम से स्वतंत्रता आन्दोलन को संचालित करने का साहस भरा निर्णय किया। 14जून 1943 को बोस ने जापान में एक प्रेस वक्तव्य प्रसारित किया-'पिछले माहायुद्धो में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने भारतीय नेताओं को धोखा दिया यही कारण था कि आज से बीस वर्ष पूर्व यह शपथ ली थी कि हम आगे कभी भी अंग्रेजो की बातो का विश्वास करके धोखा नहीं खायेगे। मेरी पीढी ने बहुत लम्बे वर्षो तक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया है और वे अत्यन्त उत्सुकता से उस समय की बाट जोह रहे थे जो आया है। आज का समय भारत की स्वतंत्रता का सूर्योदय का क्षण है। हम जानते है कि ऐसा स्वर्ण अवसर दूसरे सौ वर्षो तक भी आने वाला नहीं है। हम उसका लाभ उठाने के लिए कृतसंकल्प है। अंग्रेजी शासन के फलस्वरूप भारत को नैतिक पतन, आर्थिक -निर्धनता, सास्कृतिक विनाश और राजनीतिक दासता प्राप्त हुई है। अतः हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपनी स्वतंत्रता के लिए अपना रूधिर दे। हम जब अपनी स्वतंत्रता को अपने त्याग और परिश्रम से प्राप्त करेगे तो उससे उत्पन्न होने वाली राष्ट्रीय शक्ति से उसकी रक्षा भी कर सकेगे। हमे शत्रु ने तलवार से गुलाम बनाया है। हमें उससे तलवार से ही युद्ध करना होगा। सत्याग्रह को हमे सशस्त्र युद्ध में बदलना होगा।[1]

दुर्भाग्यवश लम्बे समय तक देश की आजादी की प्राप्ति में नेताजी के योगदान का उचित मूल्यांकन नहीं किया गया एवं स्वतान्त्रता प्राप्ति में केवल अहिंसक साधनो को ही महत्व दिया जाता रहा। भारतीय संग्राम के इतिहास को केवल भारतीय कांग्रेस एवं गांधीजी के अहिंसा वादी आन्दोलन के इतिहास के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है। जबकि स्वतंत्रता संग्राम में क्रान्तिकारी आन्दोलन के अमर शहीद नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की ऐतिहासिक भुमिका को भारत एवं विदेशों के भी अनेक इतिहासकारों ने अमूल्य स्थान दिया है।[2]

1— सत्य शकुन— मैं तुम्हें आजादी दूंगा — (भाग—2) : पृष्ठ—144

2— डा0 जयश्री — स्वतंत्रता संग्राम के अप्रतिम नायक : नेताजी सुभाष ; अभिनव ज्योति 1996—98

ब्रिटिश लेखक माईकेल एडवार्डस ने इस विषय में टिप्णी की थी कि केवल एक विशिष्ट व्यक्ति ने व्यक्तिगत रूप से एक प्रथक एवं सामरिक मार्ग को ग्रहण किया और वास्तव में भारत उनके प्रति किसी व्यक्ति की तुलना में कही अधिक ऋणि है। इस कथन में अतिशयोक्ति नहीं है कि ब्रिटेन ने 1947 में भारत को स्वतंत्रता देने का जो निर्णय लिया उस पर नेताजी की सैनिक गतिविधियों का विस्तृत सीमा तक प्रभाव था। नेताजी सुभाष और उनकी आजाद हिन्द फौज की वीरता त्याग और सामरिक कौशल ने न केवल जन-सामान्य में बल्कि भारतीय सेना के तीनों वर्गो में विद्रोह की चिंनगारी फूक दी थी। 1946 में नेताजी की नीति के ही प्रभावस्वरूप भारतीय नौ सेना के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने ब्रिटिश के विरूद्ध विद्रोह किया। ब्रिटेन की इस अनुभूति ने कि भारत में ब्रिटिश राज्य की सुरक्षा के लिए वह अब भारतीय सेना पर निर्भर नहीं कर सकता उसे भारत को आजादी देने के लिए मजबूर किया। इस प्रकार नेताजी की सैनिक कार्यवाही ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के आधार को ही नष्ट कर दिया था।

नेताजी सुभाष बोस आजाद भारत के प्रथम राज्य प्रधान थे। 'आजाद हिन्द सरकार' स्वतंत्र भारत की प्रथम सरकार थी। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए 'आजाद हिन्द फौज' का गठ्न एक ऐतिहासिक घटना हैं। 1943 में अस्थाई आजाद हिन्द सरकार को न केवल अनेक देशों से कूटनीति मान्यता मिल चुकी थी वरन उनके पास अपनी सेना थी। अपना प्रदेश था निजि राष्ट्रीय झण्डा एवं राष्ट्रीय गीत भी था। यहा तक कि उनके पास निजी मुद्रा एवं सिक्के थे, अपने डाक टिकट थे, निजी बैंक प्रणाली थी एवं एक सम्प्रभु देश की अन्य सभी आवश्यकताऐं थी। इन्ही दिनों नेताजी ने पहली बार देश को 'जयहिन्द' का नारा भी दिया था। नैताजी की यह एक सफलता थी की देश के गौरव और प्रतिष्ठान को कायम रखते हुए, परायी धरती पर उन्होंने 'आजाद हिन्द फौज' की स्थापना कर दी।

जुलाई 1944 को गांधीजी को भेजे गये अपने सन्देश में नेताजी ने कहा था कि 'भारत की आजादी का आखरी युद्व सुरू हो गया है। अब आजाद हिन्द की टुकड़ियॉ भारतीय भूमि पर बहादुरी से लड़ रही है और वावजूद दिक्कतों और दुःखो के धीरे-धीरे लेकिन लगातार आगे बढ़ रही है। यह सशस्त्र संघर्ष तब तक चलता रहेगा जब तक की

आखिरी आंग्रेज को निकाल कर बाहर नहीं किया जाता और जब तक कि हमारा तिरंगा राष्ट्रीय झण्डा गर्व से नयी दिल्ली के वायसराय भवन पर नहीं फहराता।'[1]

नेताजी ही वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने स्वतंत्र भारत सरकार के प्रधान के रूप में विदेशों की यात्रायें की थी, जहॉ भारत के राष्ट्र प्रधान के रूप में उनका भव्य स्वागत किया गया था। नेताजी ने ही भारत की स्वतंत्र भूमि में (वर्तमान नागालैण्ड की राजधानी इम्फाल में तथा आण्डमान एवं निकोवार में) हमारे राष्ट्रीय ध्वज को फहराया था। एवं उनकी फौज ने ही पहली बार भारत के कुछ भू-भाग को ब्रिटिश स्वामित्व से मुक्त कराया और भारतीय स्वतंत्रता को मूर्त रूप दिया।[2] वर्मा के तत्कालीन प्रधानमंत्री वामौ ने इस विषय में लिखा है कि वास्तव में सुभाष का यह दुर्भाग्य था कि बोया उन्होंने पर काटा किसी और ने।

नेताजी ने 1943 में टोकियो में कहा था कि मेरा दृढ विश्वास है कि ब्रिटिश नृशंसता का शस्त्रबल से बिरोध करने पर ही भारत माँ को आजाद किया जा सकता है। और अपना रक्त बहाये विना भारतीय भारत को मुक्त नहीं करा सकते। अपना रक्त बहाये रक्त बहाये बिना प्राप्त की गयी स्वतंत्रता वास्तविक स्वतंत्रता नहीं होगी। हमने अपने शत्रु ब्रिटेन से अपनी पूरी शक्ति के साथ लड़ने का दृढ निश्चिय किया है।''[3]

भारतीय जनता की तत्कालीन समस्याओं के समाधान राष्ट्र की सुरक्षा एवं भविष्य के निर्धारण के प्रति भी नेताजी ने सदैव स्पष्ट एवं व्यवहारिक दृष्टिकाण प्रस्तुत किया । बोस निरन्तर यह भाव पोषित करते रहे कि भारत की अपनी राष्ट्रीय सेना हो जो अनुसाशन, प्रशिक्षण तथा उपकरणों में विश्व की सर्वाधिक सफल आधुनिक सेना की समक्षता कर सके। साथ ही युद्ध द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करके देश की सुरक्षा भी करती रहे।[4] नवजात देश के रूप में भारत की सुरक्षा के लिए देश की सुरक्षा पद्धति को सुदृढ एवं शक्तिशाली बनाने की उनकी तत्कालीन योजना थी। राष्ट्र की प्रगति के लिए उन्होंने वैदेशिक सहायता पर बल दिया। शत्रु के शत्रु को हमे मित्र बनाना चाहिए, इस सिद्धान्त को जहां द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मूर्त रूप दिया, वही नाजीवादी फासीवादी शक्तियों से सहायता लेते हुए भी देश की स्वतंत्रता एवं आत्म सम्मान की कीमत पर किसी समझौता वादी नीति को नहीं स्वीकारा।

1— सुभाष ने कहा था — गांधी जी को संदेश — 6 जुलाई 1944; पृष्ठ 176

2— डा0 जयश्री — स्वतंत्रता संग्राम के अप्रतिम नायक : नेताजी सुभाष ; अभिनव ज्योति—1996—98

3— इंपीरियल कंसल्टेटिव पॉलिटिकल काउंसिल टोकियो में सुभाष चन्द्र बोस का भाषण—26.6.1943

4- Ganpuley - Netaji in Germany : page-64

हमें अनुभव है कि शक्ति की काल्पनिक एवं सन्तुष्टीकरण की अव्यवहारिक नीति के कारण आजादी के वाद भारत को अपने विशाल भू-भाग से किस प्रकार वंचित होना पड़ा। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने अपना रास्ता स्वयं चुनने का फैसला किया। यह रास्ता था-अंग्रेजों के दुश्मन जर्मनी से सहयोग लेने और सैनिक अभियान का। सुभाष का मत था कि अस्त्र शक्ति के आक्रमण से अपने सम्राज्य की रक्षा के लिए अगर आज ब्रिटेन अमेंरिका के आगे भिक्षापात्र बढ़ाने मे लज्जित नही होता तब भारतवर्ष ही क्यों स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए अन्य जाति, देश से सहायता न मागे। स्वयं बोस को यह अहसास तो था कि विदेशों की भारत के प्रति सहानभूति तो है लेकिन मिशनरी या दूसरी एजेन्सी की तरह भारत विदेशो को अपने बारे में सही जानकारी देने के प्रति लापरवाह है।

इसके केवल दो रास्ते है-या तो आंख मूदकर अपमान सहते रहे या अपने देश का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने के लिए कटिबद्ध हो जाएं। बोस का मत था कि 'गुलाम और दलित राष्ट्र को हिंसा के मार्ग पर अग्रसर राष्ट्रों की सहानुभूति अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। इसके लिए प्रचार कार्य अनिवार्य है।[1]

भारत के बाहर दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय फौज का संगठन करके नेताजी ने यह सिद्ध कर दिखाया कि गहन देश भक्ति की भावना द्वारा सभी मतभेदो को समाप्त किया जा कसता है। उन्होंने आजाद हिन्द फौज के सैनिको में देश भक्ति की भावना भरते हुए कहा था कि आज आप भारत के राष्ट्रीय गौरव के संरक्षक है और भारत की आशाओं और अभिलाषाओं के सजीव रूप हैं। इसलिए आप अपना व्यवहार ऐसा बनाइऐ कि आपके देशवाशी आप को आर्शीवाद दे और भावी पीढ़िया आप पर गर्व करे। सुभाष बोस का मत था कि सैनिको को निष्ठा कर्तव्य और बलिदान के तीन आदर्शो को संजोये रखना होगा और उनका पालन करना होगा जो सैनिक देश भक्त होते है और प्राणोत्सर्ग के लिए सदा तत्पर रहते है, वे अजेय होते है।

जब भारत में पाकिस्तान की मांग जोर पकड़ रही थी, उन्होंने अपनी सेना में सभी धर्मो के लोगो को एक साथ बाधा। बोस ने निश्चित रूप से देश की आजादी के मूल्य के रूप में भारत के विभाजन को कभी न स्वीकार होता। देश में साम्प्रदायिकता

2- Subhas Chandra Bose - Impression of life (Lahor 1947) : 148-149.

व प्रान्तीयता को जड़ से नष्ट किया होता। नेताजी कितने दूरदर्शी थे यह बात उनके प्रिय शब्द 'हिन्द' से स्पष्ट है। उन्होंने देश का नाम भारत न रखकर 'हिन्द' रखा। आजाद हिन्द राज्य के कानून में इस देश का नाम हिन्द रखा गया 'भारत' नहीं। क्योंकि उस समय जिन्ना की पाकिस्तान बनाने की मांग देश के बटवारे का हठ आंग्रेजो की चाल नेताजी अच्छी तरह समझ चुके थे। वह अखण्ड भारत के पुजारी थे। जिसकी स्पष्टता हिन्द शब्द में है हिन्द शब्द सिंधु से निःसृत है-सिंधु, सिंध हिन्द।[1]

'आजाद हिन्द फौज' में रानी झांसी रेजीमेंट की स्थापना करके नेताजी ने देश की महिलाओं को न केवल पुरूषों के समकक्ष सम्मान दिया । उन्हे अपनी क्षमता के प्रदर्शन का भी अवसर दिया। स्वयं कैप्टन लक्ष्मी सहगल के शब्दों में,'नेताजी को अपनी सैन्यवाहिनीयों के स्वास्थ्य और कल्याण का ध्यान सदैव रहता था। राज्य के अत्याधिक कार्यो में व्यस्त रहते हुए भी वे समय निकालकर औपचारिक रूप से सैनिक शिविरों में यह देखने के लिए वे कैसे चल रहे है, जाते थे। बिल्कुल वही भोजन स्वयं करते थे जो शिविर में दिया जाता था। कोई भी ऐसा सैनिक अस्पताल नही था जहाँ वे न गये हो।'[2]

सन् 1943 में आजाद हिन्द फौज की कमान सम्हालने पर नेताजी ने कहा था कि हमारे दिमाग में तनिक सा भी सन्देह नहीं है। कि जब हम अपनी सेना के साथ भारतीय सीमाओं को पार करेगे और अपने राष्ट्रीय ध्वज को भारत की धरती पर फहरायेगें देश भर में वास्तविक क्रान्ति फूट पड़ेगी- क्रान्ति जो अन्ततोगत्वा भारत से ब्रिटिश शासन को बाहर निकाल देगी। बोस का मत था कि क्रान्ति आज के युग की आवाज है। इसलिए हमे बगैर धैर्य खोए क्रान्ति के रास्ते पर चलना है।

सुभाष बोस ने गांधी जी से कहा था -विद्रोह का आर्थ विनाश ही नही निर्माण भी है। एक तरफ बिद्रोही दूसरो से युद्ध करते है, दूसरी ओर स्वतंत्रता की मीठी धुन भी बजाता रहा है। अतः एक ही समय में बिनाश ही नये निर्माण का स्रोत बनता है। बिद्रोह के एक शब्द का आर्थ है वर्तमान व्यवस्था में पूर्णतया बदलाब[3] और जिस फौज में साहस निडरता और अजेयता की परम्परा न हो वह ताकतवर दुशमन पर हावी नहीं हो सकती । जब अंग्रेजो ने माण्डले को अधिकार में लिया था तो उन्हेंाने एक आदेश निकाला

1— योगीन्द्र द्विवेदी – भारतीय गणतन्त्र–नेताजी का एक स्वप्न (सन्देश पत्रिका, जनवरी 1998)

2— कैप्टन लक्ष्मी सहगल– नेताजी की स्मृति : मेरे संस्मरण : पृष्ठ 93

3- Reva Chatterjee - Netaji and the Congress : page 75-76

कि कोई भी भारतीय अभिवादन के रूप में 'जयहिन्द' का प्रयोग नही करेगा जिसका अर्थ है 'भारत की विजय' इसका परिणाम यह हुआ कि माण्डले में बाल-सेना के बालक -बालिकाये बाहर सड़को पर आ गयें और अंग्रेज अधिकारियों से उन्होंने जयहिन्द कहकर अभिवादन किया। तात्यपर्य यह है कि यदि हम बहादुरी के साथ लड़ते है और अपना खून बहाते है तो हम न केवन उन देश वासियों को प्रभावित करने में समर्थ होगें जो उदासीन और उत्साहहीन है, बल्कि हम शत्रुओं को भी प्रभावित करने में समर्थ होगे।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि भारत की आजादी के लम्बे संघर्ष में नेताजी का व्यक्तित्व बिल्कुल अलग से दिखता है। सैनिक वेशभूषा, उनका धीर-गम्भीर व्यक्तित्व सीध ा आम जनता से साक्षात्कार करता लगता है। एक ऐसा व्यक्तित्व जिसके सामने अपना लक्ष्य स्पष्ट था और उसे पाने की रणनीति भी स्पष्ट थी। यह लक्ष्य था आंग्रेजो की गुलामी से भारत की मुक्ति, जिसे पाने के लिए उन्होंने हथियार उठाने से भी परहेज नहीं किया। विल्कुल वचपन के दिन हो या आजाद हिन्द फौज के कमाण्डर इन चीफ के रूप में देश को आजाद कराने के लिए सक्रिय रणबांकुरे के बढ्तें कदमो वाले दिन उनकी सक्रियता अपनी मिसाल आप थी।

अपने विचारो के प्रति अडिग श्रद्धा, आस्था और मान्यता रखतें हुए अपने दृष्टिकोणो के अनुसार सर्वस्व लुटाकर उन्होंने हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी और अन्त में अपने लक्ष्य को प्राप्त करके दिखला दिया। कोई नहीं कह सकता कि अंग्रेजो को भारत में अपने साम्राज्य के दो स्तम्भ भारतीय सेना और पुलिस की राजभक्ति में अविश्वास न उत्पन्न हो गया होता, तो वे इतनी आसानी से देश को छोड़कर चले जाते और दोनों का ही सारा और सबसे अधिक श्रेय सुभाष चन्द्र बोस और उनकी आजाद हिन्द फौज को है इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता है।

वास्तव में सुभाष स्वयं अपने आपमे एक इतिहास थे। सुभाष का सम्पूर्ण जीवन ही साम्राज्यवाद के बिरुद्ध संघर्ष का साक्षात इतिहास है। नेताजी केवल एक राष्ट्रीय नायक ही नही वरन भविष्य के एक लीजेण्ड भी है।

गांधीजी, नेहरू व बोस के नेतृत्व का तुलात्मक आंकलन

बीस वर्षो से भी अधिक समय से महात्मा गांधी भारत की मुक्ति कें लिए कार्य कर रहे है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि यदि वह 1920 में संघर्ष का नया हथियार लेकर सामने नहीं आते तो संभवतः भारत अब तक पद दलित ही रहता। भारत की आजादी के लिए उनकी सेवाए अनुपम और अद्वितीय है। वैसी ही परिस्थितियों में कोई भी अकेला व्यक्ति अपने जीवन में इतना हासिल नहीं कर सकता था।

गांधीजी के जन्मदिन पर बैंकाक से प्रसारण (2.10.1943)

भारतीय राजनीति के कुछ मिथ है जिनमें एक यह भी है कि नेताजी सुभाष महात्मा गांधी के प्रबल बिरोधी थे वे एक दूसरे को फूटी आंख नही सुहाते थे। और कई मौके पर नेहरू जी का चरित्र संदिग्ध हो जाता था। जबकि वस्तुस्थिति यह भी है कि सुभाष गांधी के अनन्य प्रसंशक व गांधी जी द्वारा चलाए जा रहे स्वाधीनता अभियानो के पूरक थें। इन महारथियों में दृष्टि साम्य धर्मनिष्ठता व देश भक्ति की अर्न्तज्वाला सतत प्रवाहित होती रहीं थी। इतिहास का यह क्रूर मजाक है कि ये तीनो हस्तियाँ युद्ध के बाद मिल न सकी अन्यथा देश का इतिहास शायद कुछ और ही होता। स्वयं गांधीजी ने इसे स्वीकारा था।

स्वतंत्रता पूर्व भारतीय राजनीति का मलिन अध्याय था कांग्रेस का 1936 का त्रिपुरी अधिवेशन, जहां सुभाष-गांधी आमने-सामने खड़े थे। कांग्रेस अध्यक्ष के चर्चित चुनाव में गांधी के उमीदवार थे सीतारमैय्या व युवाओं के प्रत्याशी थे नेताजी सुभाष सुभाष चन्द्र बोस! बोस को1580 मत मिले जबकि गांधी समर्पित सीतारमैय्या को मात्र 1375 मत मिले। सुभाष की इस निर्णायक जीत पर गांधी ने कहा था यह पट्टाभि की नहीं मेरी हार है। यह एक विरला अवसर था जब सौम्य व शान्त प्रकृति का यह वयोवृद्ध इतना बौना व चिड़चिड़ा हो गया था।(1)

जब बीमार अध्यक्ष सुभाष को स्ट्रेचर पर रखकर मंच पर लाया गया तो सभी गांधी समर्थक वहां से उठकर चले गये। यह अपमान केवल नवनिर्वाचित सुभाष का ही नहीं

1— डा0 राजेन्द्र पुरवार — सुभाष गांधी सम्बन्ध : एक पुनर्परीक्षण (अभिनव ज्योति 19996—98)

वरन् कांग्रेस अध्यक्ष का भी था। एक बीमार व्यक्ति से यह कितना घिनौना बदला था। उसके बाद गोविन्द बल्लभ पंत ने एक प्रस्ताव रखा कि कार्यकारिणी को मनीनीत करने का अधिकार कांग्रेस अध्यक्ष को नहीं वरन गांधी को दिया जाये। रवीन्द्रनाथ टैगोर व जवाहर लाल नेहरू के विरोध के बाबजूद प्रस्ताव पारित हुआ। सुभाष के सामने त्यागपत्र के अलावा अब कोई विकल्प नहीं बच।

इस लज्जास्पद घटना के बाबजूद सुभाष बोस ने गांधी जी से सदैव देश का नेतृत्व करने के लिए आग्रह किया। उन्हें 'राष्ट्रपिता' कहा और अपनी भावी योजनाओं के लिए उनसे आर्शीवाद भी मांगा। सुभाष बोस की गांधी जी के प्रति असीम श्रद्धा देखकर जब बोस के समर्थकों ने प्रश्न उठाया तो नेताजी ने कहा कि इस देश में यदि सुभाष आवाहन करे तो 20 लाख लोग इकट्ठे हो जायेंगे पर गांधी जी कहें तो 20 करोड़ लोग एकत्र होगे। साम्राज्य हिल जायेगा। नेताजी का महात्मा के प्रति कितना निश्चल विश्वास व देश के प्रति यर्थावादी प्रेम था। तभी नेताजी को लोग 'देशभक्ति' की 'अनर्तज्वाला' कहते थे।

ह्यूग टोइ का अनुमान है कि 1933, 1934, 1935 में यदि बोस भारत में आजाद होते तो गांधी का तिरस्कार करके नयी पार्टी बना लेते।[1] हरिहर दास इससे विल्कुल सहमत नहीं है। इनका तर्क है कि बोस कांग्रेस में एकता कायम रखने को बड़ा महत्व देते थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण त्रिपुरी कांग्रेस की घटना है। बोस के दुबारा अध्यक्ष चुने जाने की प्रतिक्रिया में जब गांधी के संकेत पर कांग्रेस की पूरी कार्य-कारिणी-समिति ने पद त्याग किया था और बोस से कहा था कि 'वे अपनी मर्जी की कार्यकारिणी-समिति का गठन कर लें तो बोस अविचल भाव से गांधी से आग्रह करते रहे थे कि वे अपने पसन्द के सदस्य निर्वाचित कर दें। इसके अलावा बोस को कांग्रेस समाजवादी पार्टी से भी पूरी उम्मीदें थी।' नेहरू की सहानुभूति इस पार्टी के साथ थी। चौथे, सुभाष बोस ने पृथक् राजनीतिक दल बनाने की इच्छा कभी जाहिर नहीं की जब तक कि उन्हे 1939 मैं कांग्रेस से बाहर नहीं निकाल दिया गया।[2]

भारतीय नेशनल कांग्रेस का 51वां अधिवेशन 19 फरवरी 1938 को हरिपुर में होना निश्चित था। सुभाष बोस कलकत्ता पहुंचते ही अध्यक्षीय भाषण में लग गये। वे निश्चय

1- Huge Toye: The springing Tiger : 53 -54

2- Hari Har Das : Subhas Chandra Bose and Indian National Movement : 156

कर चुके थे कि गांधी जी को यथाशक्ति अप्रसन्न नहीं करेगे। साथ ही कांग्रेस को अपनी विचारधारा तथा कार्यप्रणाली के अनुरूप ढालने की चेष्टा करेगें। वे पहले कह चुके थे कि कांग्रेस जन-संघर्ष के लिए सबसे महत्वपूर्ण संगठन है। चाहे वे दक्षिण एवं वामपंथी दो दलों में विभाजित हो चुकी हो किन्तु साम्राज्यवादी शक्ति से टक्कर लेने का वही एक मंच है। वे कांग्रेस की ध्वजा के अन्तर्गत सब दलों को केन्द्रित करने के आकांक्षी थे।(1)

स्पष्टवादी सुभाष ने गांधीजी की नमनीय नीति को कभी पसन्द नहीं किया था। वे धर्म दर्शन में लिपटी हुई उनकी अंहिसा के कायल न थे। इसके अतिरिक्त 'द इण्डियन स्ट्रगल' के पन्नों में वर्णित लेखक की चिन्तन पद्धति, वांछित कार्य-प्रणाली, अभीष्ट पथ, सव कुछ भारत के विभिन्न दलों के समक्ष लिखित रूप में मौजूद था।

सुभाष बोस की स्वतंत्रता-प्राप्ति के प्रति एक निशिचित सरकार से टक्कर लेने का अदम्य साहस एवं निश्चित भाव-धारा देश के अनेक दलों, विशेषकर युवा एवं छात्र-वर्ग को सम्मोहित कर चुकी थी। युवा-वर्ग को सुभाष बोस के जोश-पूर्ण तथा आकर्षक व्यक्तित्व में आदर्श नेता के सब गुण विद्यमान लक्षित होते थे।

इस वस्तु-स्थिति के परिप्रेक्ष्य में गाधीजी का सुभाष बोस के अध्यक्षीय पद सौपने की योजना से गांधीवादी कांग्रेसी आश्चर्य-चकित थे। ह्यूग टोइ के अनुसार 'कांग्रेस में ऐसी ऊर्जस्वी शक्ति का अभाव था............बोस जैसा समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष तथा व्यवहारवादी प्रखर व्यक्तित्व कांग्रेस में नही था जो नेतृत्व कर सकता।(2) एन0जी0जोग का कहना है कि 'गाधी के इस कदम को देशवासियों ने उनकी शालीनता तथा समझौते का मनोभाव तो समझा ही था इसके अतिरिक्त गांधी कदाचित् वाम-पंथियों को बोस के सहारे थे वंचित करना चाहते थे जैसा कि आठ वर्ष पूर्व लाहौर-अधिवेशन के समय नेहरू को अपनी तरफ खड़ा करके किया था।''(3) उन्होने कांग्रेस से कुछ समय के लिए चाहे निवृत्ति ले ली थी किन्तु कांग्रेस पर उनका प्रभाव अक्षुण्ण था। ह्यूग टोइ के शब्दो में 'सुकरात-गांधी के लिए प्लैटो-जवाहर लाल की सत्ता विद्यमान थी।(4) नेहरू की देश-संचालन शक्ति के पीछे गांध ी का अलक्ष्य वरद हस्त था। उनके संरक्षण में नेहरू दृढ़ता पूर्वक जन-स्वीकृत नेता-पद की ओर अग्रसर होते रहे। अब वे बोस को भी उसी राह पर लाने के आकांक्षी रहे होगे।

1- Selected speeches of Subhas Chandra Bose : 94
2- Huge Toye: The springing Tiger : 53 -54
3- N.G. Jog: An Alternative Leadership : 1936 - 1941 : A Becan Across Asia -72
4- Huge Toye: The springing Tiger : 54

बोस शुरू से साम्प्रदायिक दंगों से संत्रस्त रहे थे जो देश की अखण्ड एकता में घातक हो सकते थे। बम्बई में आयोजित साम्प्रदायिक बैंठक के बाद उन्होने मुस्लिम नेता मिस्टर जिन्नाह के साथ, 13 मई 1938 से 17 अगस्त 1938 तक, लगातार पत्र व्यवहार किया।[1] जिन्नाह साहेब अपनी बात पर अड़े रहे, इसलिए कोई नतीजा हाथ न लगा। बोस दोनो जातियों के बीच भेद-भाव की खाई को पाटने में असफल रहे। उनकी शंका भी निर्मूल सिद्ध नही हुई। भारत विभाजित होकर रहा। वे भारत के राजनीतिक मंच से अदृश्य हो चुके थे। भारत की अखण्ड एकता का उनका स्वप्न मिथ्या हो गया।

हरिहरदास का कहना है कि 'बोस के धर्म-निरपेक्ष भाषणों से देश में साम्प्रदायिकता की फैलती हुई लहर काबू में आ सकती थी। दूसरे उन्हे मुसलमानों का भी समर्थन प्राप्त था।[2] अतः सुभाष बोस को अध्यक्ष चुनने में गांधी का उपक्रम तो था किन्तु अनुग्रह कदापि नहीं कहा जा सकता था। 1938 तक बोस कांग्रेस के अग्रणी नेताओं में तथा वाम-पंथ के व्यक्तिगत नेता-पद पर आसीन हो चुके थे। दूसरे शब्दों में उन्हें समूचे देश का आदर-सम्मान एवं समर्थन प्राप्त हो चुका था। यह बात दूसरी है कि गांधी उन्हें नेहरू की मानिन्द अपने विचारानुकूल तोड़-मरोड़ नही सके।

सुभाष बोस ने अध्यक्षीय पद से कांग्रेस के तर्क-वितर्क, निर्णय आदि का न्यायपूर्ण संदर्शन किया। हर पार्टी तथा हर व्यक्ति के प्रति सौहार्द बनाये रखना। हरिपुर में घोषित अपनी योजना-नीति तथा कांग्रेस के संदेशों के प्रचारार्थ वे पूरे देश का भ्रमण करते रहे। गांधी जी के प्रति सहृदयतापूर्ण व्यवहार तथा कांग्रेस सदस्यों के साथ सहयोग ने उनको 'मूक अध्यक्ष' (साइलेंट प्रेसिडेन्ट) की उपाधि दी थी। सुभाष बोस को गांधीवादी कांग्रेसियों के साथ सहयोग बनाये रखने में कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था, जब प्रादेशिक तथा मुख्य-मंत्रियों के झगड़े में उन्हें अध्यक्ष की हैसियत से मध्यस्थता करनी पड़ी थी।

सुभाष बोस की अध्यक्षता में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक सितम्बर 1938 मे दिल्ली में हुई जिसमें नागरिक-स्वतंत्रता सम्बन्धी प्रस्ताव पारित हुआ। बैठक का झुकाव वामपंथी था।

1939 में योरूप में महायुद्ध छिड़ चुका था। इग्लैण्ड बड़ी नाजुक स्थिति में था।

1. सुभाष रचनावली – चतुर्थ 188.198
2. Hari Har Das, Subhas Chandra Bose and the Indian National Movement, :164

बोस को यह अवसर भारतीय राजनीति के लिए वरदान सा लग रहा था। इस मौके का लाभ उठाकर आन्दोलन-आह्वान जैसे सक्रिय कदम के लिए बोस गांधी पर भरोसा नहीं कर पा रहे थे। कांग्रेस सदस्यों को मंत्रालय के स्वायत्त का स्वाद मिल चुका था। हाई कमाण्ड शान्त था। कुछ कांग्रेसी यह तक सोच रहे थे। कि 1935 के अधिनियम वाला संघीय ढाँचा ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है। इस वातावरण के परिप्रेक्ष्य में सुभाष बोस ने 1939 में सबकी सम्मति के प्रतिकूल, कांग्रेस-कार्यकारिणी समिति की इच्छाओं का उल्लंघन करके कांग्रेस के आगामी निर्वाचन में अध्यक्ष पद के लिए इच्छा प्रकट कर दी। कांग्रेस में दो दल खड़े हो गये।[1] देश के विभिन्न क्षेत्रों में वक्तव्यो, प्रतिवक्तव्यों की झड़ी लग गयी। बोस ने कलकत्ता से 21 फरवरी, 25 फरवरी, 27फरवरी 1939 को बारदोली में सरदार पटेल अल्मोड़ा में जवाहरलाल नेहरू पटना में राजेन्द्र प्रसाद तथा वर्धा में माहात्मा गांधी के वक्तव्यो के प्रत्युत्तर भेजे।

गांधी का कांग्रेस पर अधिपत्य कोई छिपी हुई बात न थी। उन्होंने अध्यक्ष पद के लिए नेहरू का नाम देना चाहा। नेहरू तीन बार (1929,1936,1937) इस पद पर आसीन हो चुके थे। दो बार (1936-1937) में लगातार अध्यक्ष रहे थे। कदाचित इसलिए उन्होंने मना कर दिया उसके बाद शायद मुस्लिमों को शान्त करने की नीयत से गांधी ने मौलाना अबुलकलाम आजाद को निर्वाचन टिकट देना चाहा। उन्होंने सेहत के बहाने अपनी असमर्थता जता दी। अन्त में पट्टाभि सीतारमैय्या का नाम सामने आया बोस से कहा गया कि वे अपना नाम वापस ले ले। दूसरी तरफ बोस कई प्रादेशिक कमेटियो द्वारा मनोनीत हो चुके थे। 21 फरवरी 1939 को बोस ने अपने वक्तव्यों में कहा था, 'यह प्रश्न व्यक्तिगत नहीं है इस सम्बन्ध में लोगो का मत बदल रहा है कि अन्य स्वतंत्र देशो की तरह समस्याओं के ठोस हल और योजना नीति के आधार पर भारत में भी अध्यक्षीय चुनाव लड़ा जाय, जिससे मुद्दो के स्पष्टी करण में सहायता मिले और जो मानस की भावधारा का समर्थक हो।'[2]

26 जनवरी 1939 को सरदार पटेल राजेन्द्र प्रसाद, जयराम दास, दौलतराम, जे. वी. कृपलानी, जमना लाल बजाज, शंकरदेव राव तथा मूलाभाई देसाई-सात कार्यकारिणी सदस्य,

---

1. आशा गुप्त, सुभाषचन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक : पृष्ठ 91
2. Subhas Chandra Bose- Crossroads : 87

बारदौली की बैठक के बाद, प्रति वक्तव्य में गांधी द्वारा मनोनीत पट्टाभि सीतारमैय्या का समर्थन कर चुके थे। तर्क था कि अध्यक्ष सर्वसम्मति से बनाया जाय, चुनाव द्वारा नहीं। दूसरे विशेष परिस्थितियों के अलावा किसी व्यक्ति को दुबारा अध्यक्ष नहीं चुना जायेगा। तीसरे अध्यक्ष की स्थिति प्रबन्धक की सी होती है। वह राष्ट्र का प्रतीक होता है। बोस को अपना नाम वापस ले लेना चाहिए।

बोस ने नाम वापस नहीं लिया। उन्होंने आरोप लगाया कि कुछ लोग संघीय ढांचे के मामले पर ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता करना चाहते है। इसलिए बोस का विरोध कर रहे है। जैसे आचार्यनरेन्द्र देव जैसे खरे, संघ विरोधी को सर्व-सम्मति से अध्यक्ष बनाने को तैयार हो तो बोस नाम वापिस लेने को तैयार है। हाई कमाण्ड को यह प्रस्ताव पसन्द नहीं आया इधर सीतारमैय्या ने बोस के पक्ष में अपना नाम वाविस लेने से मना कर दिया था। कार्यकारिणी के सदस्यों ने उम्मीदवार सीता रमैय्या के पक्ष में अलग-अलग हस्ताक्षरों तथा संयुक्त हस्ताक्षरों द्वारा समर्थन कर दिया। जवाहर लाल नेहरू ने भी बोस को नाम वापिस लेने की सम्मति दी थी किन्तु पट्टाभि सीतारमैय्या के प्राथी पर हस्ताक्षर नहीं किये।[1] चुनाव में बोस को दो सौ से कुछ अधिक वोट अतिरिक्त मिले। वे जीत गये तथा देश चकित रह गया। कांग्रेस के इतिहास में पहली घटना थी। इससे पूर्व गांधी के निर्णय को कभी चुनौती नहीं दी गयी थी। गांधी ने इसे पट्टाभि सीता रमैय्याकी नहीं अपनी पराजय माना और संकेत दिया कि जो सदस्य कांग्रेस में रहने में असुविधा अनुभव करते हो वे पद त्याग सकते सकते है। कार्यकारिणी समिति ने पहले मौके पर त्याग पत्र दे दिये। गांधी ने सुभाष बोस को सलाह दी कि वे समंजनवादी समिति स्वयं बना ले तथा वामपंथी योजना लागू कर दे।

सुभाष बोस गांधीजी के इस व्यवहार पर बहुत खिन्न हो गये। उन्हेंने कहा कि मेरा लक्ष्य उददेश्य यही होगा कि गांधीजी का विश्वास प्राप्त कर सकूं। यदि औरो का विश्वास जीत लिया किन्तु भारत के सबसे महान व्यक्ति का विश्वास न जीत सका तो बड़े दुर्भाग्य की बात होगी।[2] इस दिशा में उन्होंने पहला कदम यह उठाया कि 15 फरवरी 1939 को गांधी जी से मिलने वर्धा पहुचें। विरोध का मुद्दा कांग्रेस की नयी कार्यकारिणी समिति

1- जवाहरलाल नेहरु – एन आटोवायो ग्राफी : 124

2- N.G. Jog: An Attemative Leadership : 1936 - 1941 : A Becan Across Asia -81

के गठन पर टिक गया। बोस ने गांधीजी से अनुरोध पूर्वक प्रथना की कि वे पुराने सदस्यों का सहयोग दिलाने में उनकी मद्द करे। गांधी ने, प्रतिउत्तर में, बोस को स्वरूचि अनुसार नयी समिति चुनने की सलाह दी।

बोस ने वामपंथी दल को 22 फरवरी को कार्यकारिणी-समिति की योजना की खबर तार द्वारा भेजी। अचानक ज्वर ग्रस्त हो जाने के कारण वे बैठक में उपस्थित न हो सके। उन्होंने बैठक स्थगित करने की प्राथना की। इस पर उनके भाई शरत चन्द्र के अतिरिक्त शेष सदस्यों ने त्याग पत्र दिया था। बोस ने सन्देश भेजा कि कार्यकारिणी समिति के औपचारिक कार्य निपटाने पर उन्हे कोई आपत्ति नहीं होगी। इसे पश्चात-विचार कहकर तिरस्कार कर दिया गया। गांधी जी राजकोट चले गये। वहा के राजा के रियासती झगडो का फैसला करना था। वे दो महीने वही रहे। इस बीच उन्होंने आमरण अनशन भी कर डाला। जाहिर था कि गांधी जी आगामी पूर्णाधिवेशन (प्लनैरी सैशन) में नहीं आ सकेगे यानी बोस गांधी के समझौते की सम्भावना और भी क्षीण हो गयी। बोस को अहसास हुआ कि जनता का ध्यान त्रिपुरि से हजार मील दूर राजकोट पर केन्द्रित हो गया है जहा गांधी जी आमरण अनशन कर रहे थे। फरवरी के अन्त तक कांग्रेस की कार्यकारिता में बाधाए उपस्थित होने लगी।

सुभाष बोस के साथ एक दुर्घटना हुई। 10 मार्च को त्रिपुरि में जब कांग्रेस अधिवेशन शुरू होने वाला था, बोस सख्त बीमार पड़ गये। डॉक्टर ने कलकत्ता से इतनी लम्बी यात्रा करने का निषेध किया था, किन्तु वे नहीं माने जब वे त्रिपुरी पहुचें निर्णयों का संदर्शन या कठनाईयां दूर करने की बात तो अलग, अध्यक्षीय भाषण देने में असमर्थ थे। जुलूस में उनका फोटो रखा गया था

गांधीजी अनुपस्थित थे। कांग्रेस कमेटी के पूर्णाधिवेशन के समय सुभाष बोस डाक्टरों की फौज से घिरे कुर्सी पर बैठे थे। गोबिन्द बल्लभ पंत ने पिछली कार्यकारिणी कमैटी के प्रति विश्वास प्रस्ताव द्वारा अध्यक्ष बोस से, गांधी की इच्छा अनुसार, नयी समिति के गठन का आग्रह किया।[1]

यह विषय समिति की एक चाल थी। प्रस्ताव बहुमत से पारित हो गया जो अप्रत्यक्षतः

1- B. Pattabhi Sitaramayya - The History of the congress -110

अध्यक्ष बोस से अविश्वास का धोतक था। एन. जी. जोग ने इस प्रसंग का व्यंगपूर्वक विवरण इस प्रकार दिया है, "10 मार्च 1939 को जब त्रिपुरी का अधिवेशन शुरू हुआ, जनता को हरिपुर का अधिवेशन याद आ रहा था। अब फन्देवाजी और अवान्तर दृश्य दिखायी दे रहे थे................कांग्रेस के पिछले अधिवेशनों की तुलना में त्रिपुरी के अधिवेशन का वातावरण सर्वथा भिन्न था। हैमलेट नाटक खेला जा रहा था किन्तु डेनमार्क का राजकुमार उपस्थित नही था।" [1]

मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अधिवेशन की कार्यवाही की देख-देख की ओर सुभाष बोस के भाई शरतचन्द्र ने उनका भाषण पढ़ा। भाषण में केवल ज्वलन्त समस्याओं पर दृष्टि-निक्षेप किया गया था। कहा गया था कि स्वाराज्य लेने का समय आ गया है और व्रिटिश सरकार पर पूर्ण स्वाराज्य का प्रस्ताव दाखिल करके दबाव बनाया जाय................ .यदि इस समय हम सन्तोषजनक उत्तर नहीं पाते है तो हम अपनी क्षमता के अनुसार जन संग्राम का अधिकार ग्रहण कर सकते है।'[2] इस पर अन्य प्रान्तो से आये हुए नेता आश्चर्य में पड़ गये क्योंकि उन लोगों के दिलों में गांधी जी उस वक्त बेताज के बादशाह थे। और उन्हें आश्चर्य हुआ कि एक ऐसा व्यक्ति भी है जो इतना निर्भय और निडर है।

हॉलाकि इसमें कोई शक नहीं कि राजनीतिक मैदान में उस समय जवाहर लाल नेहरू बहुत ही प्रसिद्ध थे। शिक्षा में, व्यक्तित्व में, हिम्मत में और स्वतंत्र सोच में उनका कोई मुकाबला नहीं था। लेकिन कभी-कभी वो ऐसे मौके पर हिचकिचा जाते थे। और उनका चरित्र संदिग्ध हो जाता था।[3] ऐसे मौके पर उन्होंने बड़े साफ और जोरदार आवाज में सुभाष द्वारा लाये गये प्रस्ताव का समर्थन किया और कहा कि यह प्रस्ताव वही है जो हम भी चाहते हैं। हम सिवाए पूर्ण आजादी के और कोई रास्ता नहीं चाहते। लेकिन जवाहर लाल नेहरू का यह निर्णय ज्यादा समय तक नहीं ठहर सका और जैसे ही इस प्रस्ताव पर वोटिंग हुई बहुमत ने गांधी जी का समर्थन किया।[4] यानि गांधीवादी सदस्यों और नेहरू ने इस प्रस्ताव का विरोध किया।

कमेटी ने, अध्यक्ष की इच्छा के विरुद्ध जनरल सैक्रेटरी की रिपोर्ट स्वीकार कर ली। बोस का प्रस्ताव रद्द हो गया। निर्वाचन के समय जिन प्रतिनिधियों ने बोस के पक्ष में

1- N.G. Jog- Beacon Across Asia : 84

2– सुभाष चनावली– V : 39-40.

3- Reva Chatterjee - Netaji Subhas Bose, Bengal Revolution and Independence (Netaji and the Congress) ; Page 77

4- Subhas Chandra Bose - The Indian Struggle (1920-42) Sisir K.Bose and Sujata Bose

वोट दिया था, वे गांधी के विरोध और उनके राजनीति से निवृत्ति लेने की सम्भावना से घबरा रहे थे। और अपने निर्णय पर पुर्नविचार करने को बाध्य हो गये थे। गांधी और बोस का मत वैषम्य अव खुलकर सामने आ गया था। यद्यपि दोनों इसे मानने से कतरा रहे थे। यह भी स्पष्ट था कि यदि गांधी या बोस में से किसी एक को चुनने का प्रश्न उठा तो प्रतिनिधि एवं अन्य सदस्य गांधी का साथ देगे।

हेमसथ ने 'व्हाइ डिड इण्डिया नॉट फौलो सुभाष बोस में स्पष्ट लिखा है कि गांध ी का जनता के साथ गहरा सामाजिक सम्बन्ध था। ऐसा सम्बन्ध जिसकी गहराई में कोई इतिहास-शोधक पहुंच नहीं सकता, शब्दों में प्रकट करने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। गांधी नियम, संयम और अनुमानित नेतृत्व के प्रतिनिधि थे। कांग्रेस और देशवासी ऐसा रास्ता बचाकर चलना चाहतें थे, जो अराजकता की तरफ ले जा सकता है। उधर बोस की उग्रता और व्यग्रता जनता में भय का संचार करती थी यद्यपि उन्हे रोमांचित भी करती थी।[1]

संकट की इस घड़ी में नेहरू के व्यवहार ने सुभाष बोस को सबसे अधिक आश्चर्य में डाला था। नेहरू के सुधार वादी सिद्धान्तो तथा समाजवादी दृष्टिकोण के कारण बोस के मन में उनके लिए असीम श्रद्धा थी। अब नेहरू ने सुधारवादी तत्वों से अपने सम्बन्ध का खण्डन किया तो वे चकित रह गये। बोस ने इस सम्बन्ध में कहा, 'जैसे ही मैने इस बारे में उनकी टिप्पणी पढ़ी, मैं बार-बार आंखे मलकर देखता रहा। कांग्रेस के साथ दीर्घकालिक सम्बन्ध होते हुए भी पण्डितजी का किसी विशेष दल के साथ कभी सम्बन्ध नहीं रहा.. ....मैने उनसे अपील की इस संकटपूर्ण ऐतिहासिक बेला में वे अपनी वर्तमान द्विविध ा से निकलकर देश की सुधारवादी एवं प्रगतिशील शक्तियों का साहसपूर्ण एवं उचित नेतृत्व करे।[2] नेहरू ने बोस पर आरापो की भी बौछार कर दी। उन्होंने कहा 'तुमने निदेशक-अध यक्ष के रूप में नहीं वल्कि वक्ता की तरह काम किया है।''[3]

इस राजनीतिक अवमानना ने सुभाष बोस को नेहरू से भी दूर कर दिया। उन्हे लगा कि नेहरू ने व्यक्तिगत तौर पर उन्हें सबसे अधिक हानि पहुंचायी है।

कारण कुछ भी हो। सुभाष और नेहरू के बीच एक अपूर्णीय खाई बन चुकी थी।

पूर्णरूप से विचार करने पर यही कहा जा सकता है कि निश्चित ही कोई अंतर्निहित

1- Hemsath - Why did India not follow Subhas Bose in 1939.

2- Subhas Chandra Bose - The Indian Struggle 1920-1942 : 256

3- Jagat S. Bright (Ed.) Important Speeches and Writings of Subhas Bose : 255.

स्वाभाविक मतभेद था जो कि ऐसी खाई का कारण बना। पंडित नेहरू की मास्को से प्राप्त होने वाले उपदेश की ओर बढ़ती आस्था और उत्साह ने सुभाष की उनके प्रति अस्थिर संदेहो में वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त उनका अप्रकट अविश्वास और संदेह उस समय कठनाई से ही समाप्त हो सकता था। जब पंडित नेहरू ने बिना कुछ सोचे समझे कम्युनिस्टो का यह आदर्श वाक्य कि –धर्म आत्मा के लिए अफीफ में समान है'– स्वीकार कर लिया और अपनी जीवनी (ऑटोवायोग्राफी) में साफ–साफ शब्दों में लिखा कि –''धर्म का तमाशा मुझे हमेशा भयभीत कर देता है, इसलिए मैने अक्सर इसका विरोध किया है और इससे विल्कुल अलग रहने का विचार रखता हूं।''[1]

सुभाष बोस के मित्र दिलीप रॉय ने इस सम्बन्ध में कहा है कि मै सुभाष की धार्मिक और रहस्यपूर्ण आत्मा को पंडित नेहरू के अहंवादी भौतिकतावाद से समौझौता न करने का कारण समझता हूं।[2]

पण्डितजी ने अपनी रोचक जादूभरी जीवनी (ऑटोबायोंग्राफी) में कहा है कि में पश्चात्य देशो में अपने को बिदेशी तो समझता ही हूं, भारत में भी मुझे कभी–कभी विदेशी होने की सी अनुभूति होती है। ऐसी परिस्थितियों में पंडित नेहरू से सुभाष कभी भी सहानुभूति नहीं रख सकते थे। वह आदतन कह उठते थे कि 'पंडितजी भारत में अपने को इसलिए विदेशी सा समझते है क्योकि उनकी अंतश्चेतना आरम्भ से ही योरुप के आलोचनात्मक भौतिकतावाद (नेशनल–मैटरियल्जिम) और रुस के ईश्वर–विरोधी कम्युज्मि के बीजो के साथ विखरा दी गयी थी। स्वयं के लिए सुभाष भावुक होकर कहते थे कि यद्यपि वे सभी देशों को प्रेम कर सकते है और उन देशो की संस्कृतियों के अच्छे तत्वों की प्रशंसा भी कर सकते है, लेकिन भारत में आकर वे अपने को अपने घर में होने का अनुभव करते है–और सुभाष ऐलान करते थे : ''जवकि जवाहर लाल अपने कार्यो के लिए बाहर का आदेश ग्रहण करते है। मैं पाश्चात्य देशों से आयातित जीवन की कोई भी दर्शनिक व्याख्या स्वप्न में भी स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत नही, यद्यपि वह रोगग्रस्त और हीनांग भारत को रुसी तानाशाही के हवाले करने से कहीं बेहतर है।''[3]

स्वयं गांधीजी के शब्दो में, 'जवाहर लाल जितने तो भारतीय नहीं उससे कहीं ज्यादा

1- Anthisterian's Approach to Religion, Chapter 19.

2– दिलीप राय – सुभाष और नेहरू का मूल मतभेद – 48

3- Dilip Kumar Roy - The Subhas I knew - 1966

अंग्रेज है, इसलिए देशवासियों की जगह अंग्रेजों के साहचर्य से ज्यादा खुश होते है।[1] भारत के राजनीति के क्षेत्र में नेहरू जी हमेशा ही बड़ी भारी जिज्ञासा के चिन्ह रहे है। कब किस तरफ झुक जाये कहना कठिन था।

एक बात और उल्लेखनीय है त्रिपरि कांग्रेस-अधिवेशन द्वारा गृहीत गोविन्दबल्लभ पंत के प्रस्तावनुसार नयी कार्यकारिणी-समिति के गठन पर बोस और गांधी में, 24 मार्च 1939 से 14 मई 1939 तक लम्बा पत्र-व्यवहार चला था।[2] गांधीजी अपनी बात पर अड़े रहे कि बोस कार्यकारिणी-समिति का गठन अपने मनोनुकूल करे। बोस ने उनसे अनुरोध किये, अपील की समझौते की प्रार्थना की, किन्तु सब व्यर्थ । गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गांधी को पत्र में बोस की सहायता करने का अनुरोध किया। गांधी ने उसकी भी उपेक्षा कर दी। उत्तर में उन्होने लिखा, 'आपका संवेदन से भरा हुआ पत्र मिला। आपने कठिन समस्या सामने रखी है। मैने बोस को कुछ परामर्श दिये है। इस निकट स्थिति से निकलने का मेरे पास और काई रास्ता नहीं है।''[3]

सुभाष बोस नेहरू के साथ भी निरन्तर पत्र-व्यवहार कर रहे थे। नेहरू ने भी गांधीजी से अपील की कि 'बोस में बहुत सी कमियां है किन्तु मैत्रीपूर्ण व्यवहार द्वारा वे प्रभावित हो सकते है। यदि गांधी इरादा कर ले तो कोई न कोई रास्ता निकल आयेगा............ ....राजकोट का प्रश्न अवश्य महत्वपूर्ण है किन्तु कांग्रेस का मसला इस समय अधिक गम्भीर है..........कांग्रेस की सम्पूर्ण कार्य विधि उस पर निर्भर है।[4]

कांग्रेस का अगला अधिवेशन कलकत्ता में होना था। गांधीजी के उसमें शामिल न होने की सम्भावना से नेहरू विचलित हो उठे। कांग्रेस के टूटने की आशंका सिर उभार रही थी। नेहरू की अपील पर गांधीजी कलकत्ता तो आ गये किन्तु 'अधिवेशन में उपस्थित होने से साफ इन्कार कर दिया। यंही नहीं सरदार पटेल को भी कलकत्ता आने से रोक दिया। बोस ने, कलकत्ता में, गांधीजी से पुनः भेंट की। लम्बी वार्ता विफल रही। गांधी ने केवल यह सलाह दी कि जिन सदस्यों ने त्याग-पत्र दिये है बोस उनसे समझौते का प्रयत्न करें। स्थिति और गम्भीर हो गयी।

29 अप्रैल 1939 को कांग्रेस का अधिवेशन शुरू हुआ। सुभाष बोस ने गांधी जी

1- Dr. Pattabhi Sitaramayya - History of the Congress - Part-2, Pages 132

2- सुभाष चनावली- V : 65-124

3- गुरू रवीन्द्र नाथ ठाकुर का गांधी जी को पत्र - 1939.

4- A Beacon A cross Asia : 86

का पत्र पढ़कर सुनाया और कहा, 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की वर्तमान समस्या के समाधान के लिए मै किस प्रकार से कमेटी की सहायता कर सकता हूं। इस विषय में मैने गम्भीर चिन्तन किया है। मैं सोचता हूं इस संकट के मुहुर्त में सभापति के रूप में मेरी उपस्थिति संभवतयः कमेटी के मार्ग में बाधा या प्रतिबन्ध स्वरूप हो सकती है...... .....उदाहरण के तौर पर कहा जा सकता है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक वर्किंग कमेटी की नियुक्ति की इच्छा हो सकती है। जिसमें मेरा रहना ठीक नही होगा।

............मैं और भी सोचता हूं कि एक नये सभापति के होने से सम्भवतः अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के लिए इस समस्या का समाधान सरल हो सकता है। अतः गम्भीर विचार-विमर्श के बाद एवं सम्पूर्णतया सहयोगिता की भावना के साथ मैं अपना पद त्याग पत्र आपके हाथों में सौंप रहा हूं।''[1]

नेहरू ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया। बोस का त्याग-पत्र मंजूर मान लिया गया। राजेन्द्र प्रसाद नये सभापति बन गये। सुभाष बोस का अब कार्यकारिणी समिति का सदस्य रहना भी वे मायने था। कुछ अन्य कारणों से नेहस्रू भी समिति से अलग हो गये।

बोस के त्याग-पत्र पर बंगाल में बड़ी भयंकर प्रतिक्रिया हुई। गुरू रविन्द्रनाथ ठाकुर ने अविलम्ब 'देशनायक'' नामक लम्बे लेख में सुभाष बोस को अभिनिन्दित किया। उन्होने लिखा, ''सुभाष मै तुम्हारा देशनायक के पद पर वरण करता हूं। आज तुम जिस आलोक से प्रकाशित हो उसमें कोई संशय नही............तुम्हारे जीवन ने बहुत आत्मसात किया है। कर्तव्य क्षेत्र में तुम्हारी जो परिणति मैने देखी है उससे मुझे प्रबल जीवनी शक्ति का प्रमाण मिला है।'' परन्तु प्रभात कुमार मुखोपाध्याय ने स्पष्ट किया है कि कवि के मित्रों तथा विश्व भारतीय के हितैषियों के परामर्श से इसे प्रकाशित नही किया गया था। निबन्ध सात वर्ष वाद 1946 में प्रकाशित हुआ जब सुभाष बोस राजनीतिक मंच पर कहीं नहीं थे।[2]

बोस के साथ गांधी के इस निम्न स्तरीय व्यवहार के कारण आलोचकों ने निर्मम प्रहार किये हैं। हीरेन मुखर्जी ने लिखा कि 'वह महान विभूति जो इतना शान्त, संयम और गरिमामय था। इस समय बहुत घटिया और कर्कश लगा।''[3] माइकल एड्वर्ड्स ने कहा कि 'भारत तथा विदेशों में अनेक व्यक्ति जिस गांधी को कोमलता और प्रकाश का

1- सुभाष रचनावली - V : 51-52

2- रवीन्द्र जीवनी - खण्ड IV : 161

3- Mukherjee - The Gentle Colassus : 78.

सम्मि-श्रण समझते थे, अपनी कीर्ति का लाभ उठाकर नेतृत्व को चुनौती देने वाले अपने एकान्त विरोधी को छल द्वारा हटाने में वह सफल हो गया।''[1] शब्द भेद से यही बात माइकल ब्रेखर ने भी कही कि 'सारे सहकर्मियों में से केवल गांधी का स्पष्ट एवं अटल लक्ष्य था-बोस को हटाना।'[2]

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सुभाष बोस की भूमिका के शोधकों का कहना है कि बोस दुराग्रही नहीं थे। उन्हें पद की कोई लालसा नहीं थी। उनकी उत्कृष्ट कामना बस इतनी थी कि कांग्रेस संघर्ष के पक्ष में तुरंत निर्णय ले ले।

24 मार्च के पत्र में गाधी ने उन्हें लिखा था कि 'यदि सेहत ठीक नही है तो वे पद त्याग दे।''[3] बोस का उत्तर था कि वे पद पर जमें रहने के आकांक्षी नहीं है। किन्तु बीमारी पद-त्याग का कारण कादपि नही हो सकता। उन्होने यह भी कहा कि त्याग-पत्र देने के लिए उन पर बहुत जोर डाला गया था किन्तु इस भय से वे त्याग-पत्र नहीं दे पा रहे थे कि उस स्थिति में कांग्रेस राजनीति में ऐसा दौर शुरू हो सकता था जिसे वे बचाना चाहते थे।[4] अन्यत्र उन्होने गांधीजी से यह भी कहा था 'यदि आप आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण कर ले तो मैं यथा शक्ति अपकी सहायता करूंगा। यदि आपको लगता है कि कांग्रेस किसी अन्य सभापति के साथ अधिक सुचारू रूप से संघर्ष चला सकेगी तो मैं पद-त्याग दूंगा। मैं सिर्फ यही कहना चाहता हूं कि कांग्रेस इस संकटपूर्ण घड़ी में स्वराज्य-प्राप्ति के लिए संघर्ष प्रारम्भ कर दे। यदि अपने को मिटा डालने से राष्ट्रीय लक्ष्य को लाभ पहुंच सकता है तो विश्वास कीजिए मैं अपने को पूरी तरह मिटा डालने को तैयार हूं। मुझें अपने देश से इतना प्रेम है कि यह अवश्य कर सकूंगा।''[5]

एन0जी0 जोग ने बोस की सहायता, सद्भावना तथा अनुपम देशभक्ति की चर्चा करते हुए कहा है कि ''हृदय में गाधी के प्रति श्रद्धा-सम्मान और अनुराग पोषित करने वाला, बोस जैसा दूसरा कोई व्यक्ति नही था। किन्तु व्यक्ति की महत्ता की अपेक्षा लक्ष्य को वे वृहत्तर मानते थे। बोस ऐसे व्यक्ति थे जो जल्द से जल्द आजादी हासिल करने के लिए व्यग्र थे। लक्ष्य उनके लिए महत्वपूर्ण था, प्राप्त करने की पद्धति नही। वे गांधी के नेतृत्व के कायल थे किन्तु दीर्ध-सूचिका, कार्य-विधि, अहिंसा के प्रति दुराग्रह के साथ उनकी कोई

1- M. Edwardes - The Last years of British India : 67
2- M. Brecher - Nehru a political Biography : 245
3- B. Pattabhi Sitaramyya - The History of the Cogress : 116-117
4- Ibid
5- A Beacon Across Asia : An Attemative Leadership : 90.

सहानुभूति नहीं थी। महात्मा ने जब संघर्ष का विगुल बजाया बोस सबसे आगे थे। किन्तु जब उन्होन रूकने का बार-बार संकेत या लौटने का संशयपूर्ण आदेश दिया, बोस रोष से भर उठे। उन्होने गांधी जी की दुर्बलता और दुविधा की कड़ी आलोचना की।[1]

सीता रमैय्या ने बोस के दुबारा अध्यक्ष बनने के अनौचित्य पर जो टिप्पणी दी हैं इतिहास शोधकों को वह मान्य नहीं। सुभाष बोस से पहले जवाहरलाल नेहरू तीन बार सभापति रह चुके थे। 1936-37 में तो लगातार चुने गये। मौलाना अबुल कलाम आजाद 1923 में कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। गांधी ने अब दोबारा उनका नाम पेश किया था। सीता रमैय्या का तर्क था कि गांधी हिन्दू-मुस्लिम गुत्थी को सुलझाना चाहते थे। हरिहर दास का कहना है गांधी ने सीतारमैय्या का नाम दिया था किसी मुसलमान का नहीं।[2] वस्तुतः सीतारमैय्या पक्के गांधीवादी थे। वे गांधी के सहयोग से काम करते थे।

एन0जी0 जोग ने बोस की 1938 की अध्यक्षता की सफलताओं का उल्लेख करते हुए बताया है कि '1938 तक निर्वाचन औपचारिक सा होता था। समिति गांधी के निर्देश पर पहले अनौपचारिक रूप से नाम पेश करती थी। बोस के दुबारा अध्यक्ष बनने की इच्छा गांधीजी के मनोकूल नहीं थी' इसलिए समिति ने विरोध किया था। हां, गांधी ने खुलकर, कम-से-कम प्रारम्भ में इसका विरोध नहीं किया था। जोग बोस की आकांक्षा को असामान्य तो मानते है किन्तु अनुचित नहीं, क्याकि बोस ने, पद लालसा से नंहीं आदर्श की सुरक्षा के लिए पद कामना की थी। जोग के शब्दों में, 'इससे वामपंथी बकरिया दक्षिण-पंथी भेड़ों से अलग तो हो जातीं।''[3]

सुभाष बोस ने 'द इण्डियन स्ट्रगल' में इस पर टिप्पणी दी थी कि कांग्रेस अध यक्ष के रूप में बोस ने ब्रिटेन के साथ समझौता न होने देने के लिए यथा-शक्ति कांग्रेस-पार्टी को सशक्त रखना चाहा था। गांधीवादी ब्रिटिश सरकार के साथ समझौते की प्रत्याशा कर रहे थे। इसलिए वे अप्रसन्न हो गये। सितम्बर 1938 के 'म्यूनिख पैक्ट' के बाद बोस ने खुल प्रचार द्वारा भारतवासियों को राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए तैयार करना शुरू कर दिया था। जिससे आन्दोलन योरोप के आगामी युद्ध के साथ समकाल-वर्ती हो सके। यह योजना जनता को समग्रतः पसन्द थी किन्तु गांधीवादी इससे बिगड़ उठे, वे अपने मंत्री पदो तथा

1- N.G. Jog - In Freedom's Quest : 176,177

2- Hari Har Das - Subhas Chandra Bose and the Indian National Movement : 164

3- N.G. Jog - In Freedom's Quest : 177

संसदीय कार्य में किसी तरह का व्यवधान नही चाहते थे। उस समय वे राष्ट्रीय संघर्ष प्रारम्भ करने के भी विरूद्ध थे।[1]

गांधी जी ने 'हरिजन' की सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा था कि देश में अराजकता और सर्वनाश निकटवर्ती है। उन्होने बोस का नाम तो नही लिया था किन्तु जोग का अनुमान है संकेत उन्हीं की तरफ था और यह भी कि बोस इसे समझ नहीं पाये। यदि गांधी के प्रति व्यक्तिगत आदर अथवा उनकी इच्छा के सामने अथवा अवसरनुकूल जानकर बोस झुक गये होते तो आगामी संकट से बच सकते थे जिसने उन्हें कालान्तर में घेर लिया था। फिर भी जोग संशयग्रस्त है कि क्या उससे दोनो के रास्ते अलग होना रूक जाता, अथवा उसे टाला जा सकता था ? इसलिए इस प्रश्न पर सर्वथा मौन है।[2]

नेहरू की आत्मकथा के कथनांश से इतना समर्थन तो होता ही है कि बोस इटली, जर्मनी, जापान आदि विदेशों को लक्ष्य प्राप्ति में सहायक समझते थे। कांग्रेस द्वारा विदेशी सत्ता पर आक्षेप उन्हें रूचिकर नहीं था।[3] किन्तु इसके पीछे उन विदेशों का प्रभुत्व स्थापित कराने की कामना नहीं थी, बल्कि वे इन्हे देश की आजादी के लिए हथियार की तरह प्रयोग में लाना चाहते थे। वे अपने प्राणों की बाजी लगा देते किन्तु देश को किसी विदेशी सत्ता के हवाले नहीं होने देते।

इसके अतिरिक्त बोस के हृदय में गांधी के प्रति उत्कट सम्मान था। सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि दक्षिण-पूर्वी एशिया से प्रसारित ऐतिहासिक भाषण में गांधी को राष्ट्रपिता सम्बोधित करने वाले बोस प्रथम व्यक्ति थे। आजाद हिन्द फौज की एक रेजीमेन्ट का नाम 'गांधी ब्रिगेड' था। हां बोस नेहरू को कभी क्षमा नहीं कर सके। त्रिपुरि-कांग्रेस-अधिवेशन की घटना से उन्हें गहरा आघात लगा था। नेहरू के प्रति अग्रज भ्राता का श्रद्धा भाव खण्डित हो गया था। उनको विश्वास था कि यदि नेहरू ने वामपंथ की अवमानना तथा असम्बद्धता न प्रकाशित की होती तो दोनों आपसी सहयोग द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति को गति प्रदान कर सकते थे। शायद गांधी को भी बाध्य कर पाते।!!

ह्यूग टोई के शब्दों में, बोस सशक्त शब्दो में कह सकते थे कि अब उनके अपने व्यक्तियों ने अन्याय किया था-उनके अपने राजनीतिक बन्धुओं ने। क्योंकि गांधी के मनोनीत

1- Subhas Chandra Bose - The Indian Struggle : 1920-1942; Page 331-332
2- N.G. Jog - An Alternative Leadeship : A Beacon Across Asia -80
3- Jawahar Lal Nehru - An Autobiography-1962

व्यक्ति को नहीं, उनको सम्मान-पूर्वक लोक-तंत्रात्मक रीति से निर्वाचित किया गया था। उनके पक्ष में मतदान करने वालों को उनके दृष्टिकोण का ज्ञान था। सोच-समझकर उन्हें चुना गया था। जनता द्वारा निर्वाचन, छल-कपट की सहायता से, निरर्थक कर दिया गया। यह कपट केवल उनके साथ ही नहीं, बल्कि लोकतंत्र के साथ भी हुआ जिसने उन्हें चुना था।

शायद वे सचमुच असफल हो गये.....................असफल हो गये जहां कम प्रतिभा-सम्पन्न, कम आत्म-विश्वासी सफल हो जाता है। क्योकि बोस के व्यक्तित्व में समझौते की कोई गुंजाइश नहीं थी, बीच का केोई रास्ता नही था। प्रकाश-अंधकार के मध्य कोई और रंग नहीं था। अपने अलावा किसी अन्य की सम्मति के प्रति सहनशीलता नहीं थी। उन्होने एक बार कहा था 'मैं अतिवादी हूं........सब कुछ.............या कुछ भी नहीं।'[1]

तात्पर्य यह कि सुभाष बोस अव राष्ट्रीय स्तर पर, विदेशी दृष्टि से भी बहुत उच्च स्थान प्राप्त कर चुके थे। उन्हें गांधी के बाद दूसरा और नेहरू को तीसरा स्थान दिया जाने लगा था। कुछ लोगों को तो आकर्षक व्यक्तित्व, शालीन आचरण तथा मातृभूमि की आजादी की लगन के कारण सुभाष बोस, इन दोनों की अपेक्षा, अधिक मोहक लगते थे।

सुभाष बोस के केवल राजनीतिक जीवन का ही नहीं-पूरे जीवन का आलोड़न करने के उपरान्त इस तथ्य की उपेक्षा नही की जा सकती कि उनकी 'पद' या 'सत्ता' स्वायत करने की कभी इच्छा नहीं थी। उनका मात्र लक्ष्य था-भारत की स्वतंत्रता। उसमें व्यवधान या विलम्ब देखकर वे गांधी से असहमत हुए थे। वे अपने को 'देश सेवक' ही समझते थे। बोस ने कालान्तर में गाधी जी को संकेत दिया था कि आजादी के बाद बहुत से राजनीतिज्ञ निवृत्ति लेना चाहेगे। उनका अपनी तरफ स्पष्ट संकेत था। उनके व्यक्तिगत पत्रों, लेख-निबन्ध, ग्रन्थों से कही संकेत नहीं मिलता कि वे पार्टी बनाकर कांग्रेस को कमजोर बनाना चाहते थे। यदि उन्हें पार्टी संगठित करने अथवा गांधी की तरह नेता बनने की अभिलाषा होती तो कोई शक्ति उनके पथ में बाधा नहीं डाल सकती थी। गांधी के शब्दों में वे 'अप्रतिरोध' थे।

भारतीय राजनीति का यह निर्विवाद तथ्य है कि 1941 में सुभाष द्वारा देश छोड़ने के निर्णायक फैसले के बाद महात्मा गांधी का मन सुभाष के लिए पिघल गया था। यह

1- Huge Toye - The Springing Tiger : 58-59

सुभाष बोस के चिन्तन का ही प्रभाव था कि गांधी जी ने कांग्रेस कार्यकारिणी के अधिकांश सदस्यों के मत के विपरीत जापान पर अविश्वास व्यक्त नहीं किया, क्रिप्स प्रस्तावों को दिवालिया बैंक भी बाद की तारीख वाला चैक कहा और ब्रिटिश शासन के विरूद्ध भारत छोड़ो आन्दोलन की अप्रत्याशित घोषणा कर दी। गांधी जी के इन सभी क्रान्तिकारी निर्णयों के पीछे सुभाष बोस की सोच व प्रयास था। उस समय गांधी जी की आवाज में सुभाष बोल रहे थे। अहिंसा के मसीहा हिंसक सुभाष के प्रति सहानुभूति रखने लगे थे। सुभाष के प्रबल शत्रु भी अब सुभाष की भूमिका से सम्मोहित हो चले थे। भारत-छोड़ो आन्दोलन की घोषणा करते समय गाधी जी की वाणी में यह व्यथा झलक ही पड़ी कि यदि मेरा बेटा सुभाष यहां होता तो मुझे किसी अन्य की जरूरत नही पड़ती।

गांधी व सुभाष साम्राज्य विरोधी संग्राम में एक दूसरे के सम्पूरक थे। यद्यपि जवाहर लाल नेहरू को गांधी जी ने उत्तराधिकारी घोषित किया पर वास्तविकता यह है कि अपनी दृष्टि व प्रवृत्ति से सुभाष गांधी के अधिक नजदीक थे। जवाहर लाल और अन्य नेताओं को गांधीजी के सामने सिर झुकाना ही पड़ा था। सुभाष के बाद जवाहर लाल ही एक ऐसे व्यक्ति थे। जिनसे युवक लोग आशा रखते थे। इसके अलावा उनकी ओर से कोई डर भी नहीं था। उनका अपना कुछ भी मत क्यों न हो, जरूरत पड़ने पर उन्हें वश में लाना आसान था।

संयुक्त प्रदेश के विख्यात कांग्रेस नेता रफी अहमद किदवई ने जवाहर लाल नेहरू को लिखा था कि 'आप पर हम सबको ज्यादा भरोसा था लेकिन लग रहा है आप हमारे लिए झूठ साबित हुए..........आपके सामने सचमुच एक मौका आया था। चाहते तो आप अपनी मर्जी से वंर्किग कमेटी बना सकते थे।.....आपने उन्हें हटा दिया जिनसे आपको ताकत मिल सकती थी। गांधी वादियों ने चतुराई से आपको अलग कर दिया है।

गांधी जी ने अपने प्रिय पात्र जवाहर लाल के लिए कहा था-आशा की बात यह है कि जब जवाहर लाल आदर्श की बाते करता है तब बह पूरी तरह से चरमपंथी हो जाता है। पर कार्यरूप में यह बात नहीं। उस समय वह बड़ा सर्तक और संयत रहता है।......मुझे लगता है जवाहर लाल अपने अधिकांश सहकर्मियों की बातें मानता रहेगा।

भारतीय राजनीति के क्षेत्र में नेहरू जी हमेशा ही बड़ी भारी जिज्ञासा के चिन्ह रहे है। कभी-कभी खास मौंको पर वे हिचकिचा जाते थे और उनका चरित्र संदिग्ध हो जाता था। गांधी जी के आगे सिर झुकाने पर भी, जवाहर लाल वैसे थे नहीं। असल में उनके अन्दर एक आदर्शवादी निर्भीक सत्ता निवास करती थी जो कि कभी-कभी छिटक कर बाहर निकल आती थी।

गांधी व सुभाष बोस दोनो में ही विचारों को, तथ्यों व वास्तविकताओं में बदलने की अभूतपूर्व क्षमता थी। गांधी व सुभाष दोनो ही भारतीय जमीन से जुड़े थे। उन्हें भारत की खोज की आवश्यकता कभी नही पड़ी। वे दोनो स्वाभाविक व बिना प्रयास के देशज थे। दोनो ही महान अनुशासन पालक व संगठ्क थे। यदि गांधी जी ने आन्दोलन को जन आन्दोलन में परिवर्तित किया तो सुभाष चन्द्र बोस ने विदेशी भूमि पर आजाद हिन्द फौज संगठित कर अपनी संगठ्न क्षमता की धाक जमाई थी।[1]

गांधी जी के प्रति सुभाष के मन में असीम श्रद्धा थी, उन्होने गांधी जी को राष्ट्र का लोकप्रिय नेता स्वीकार किया था परन्तु सुभाष कभी गांधीवादी नहीं बन सके। वे हमेशा गांधीजी के समझौतावाद, उग्र सैनिक आदर्शवाद, अहिंसा के प्रति समर्पण एवं उनकी न्याय पद्धति के प्रति शंकालू बने रहे। गांधी ने सुभाष बोस की दृष्टि से भूले भी की और पाश्चाताप भी।

गांधी जी की भूलों को बोस ने देश के प्रति घातक माना। सुभाष के अनुसार राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए कठिन संघर्ष और कूटनीति की आवश्यकता थी। उन्होने हिंसक संघर्ष द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत के स्वतंत्र अस्तित्व को अनुभव करा दिया। यदि युद्ध के बाद गांधी और सुभाष मिले होते तो देश के भविष्य के लिए कोई नयी ही योजना बनाते। एक देश के आन्तरिक हलचलों का सेनापति था तो दूसरा वाहय गतिविधियों का सेनापति। दोनो एक ही लक्ष्य के पथिक थे। पृथक दृष्टि के बाद भी दोनो ही भारतीय स्वतंत्रता की आंकाक्षा और उपलब्धि के प्रति समान रूप से जागरूक थे।

महात्मा गांधी और सुभाषचन्द्र बोस की राजनीतिक विचारधारा में, क्रिया-पद्धति की दृष्टि से बुनियादी अन्तर था। किन्तु दोनो के हृदय में एक-दूसरे के लिए गहरा आदर-सम्मान तथा स्नेह भाव था। बोस सुदूर दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र में बैठे युद्ध-काल में भी गांधीजी का

1— डा0 राजेन्द्र कुमार — सुभाष गॉधी सम्बन्ध : एक पुर्नरीक्षण, अभिनव ज्योति, 1996.1998.

जन्म दिवस मनाना नही भूले थे। उन्हें 'राष्ट्रपिता' सम्बोधित करने वाले सुभाषचन्द्र बोस पहले व्यक्ति थे। और गांधी जी!! उन्होने सुभाष बोस के एकान्त लक्ष्य के प्रति पूर्ण समर्पण भाव एवं बलिदान से निष्कर्ष निकाला था कि 'बोस ने अपनी सेना में ऐसी एकता का भाव निमज्जित कर दिया कि वे सब धार्मिक संकीर्णताओं, प्रादेशिक सीमाओं तथा जाति-भेद से ऊपर उठकर आजादी के एकान्त लक्ष्य के लिए रक्त वहा सके। गांधीजी ने कहा था, 'उनकी यह अपूर्व उपलब्धि इतिहास के पन्नों में उन्हें अवश्य अमर कर देगी।......नेता जी के हर अनुयायी ने वही एक बात कही कि नेताजी का उन पर जादुई प्रभाव था, उनके नेतृत्व में वे सब भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए क्रियाशील रहे थे।

सुभाष चन्द्र बोस प्रारम्भ से अन्त तक भारतीय थे, जबकि भारत के निर्माण की गांधी, नेहरू और बोस की मूल कल्पना में जमीन-आसमान का अन्तर था। नेहरू की सोच में पेरिस, मास्को, वाशिंगटन की चकाचौध थी, बोस और गाधी की आंखों में भारत का भूखा, नंगा, अनपढ़, बीमार, गरीब गांववासी और उजड़े हुए गांव थे। इन दोनो महान व्यक्तित्व का कहना था कि गांव बनेगा तो देश बनेगा, नेहरू कहते थे कि बड़े उद्योग और सुन्दर शहर देश को दुनिया में प्रतिष्ठा प्रदान करेंगे। जबकि यह गांधी जी की सोच के विरुद्ध था।

एक बार नेहरू ने जयप्रकाश नारायण से पूछा था, क्या भारत जैसे विशाल देश के प्रधानमंत्री को विशाल, सुसज्जित निवास में नहीं रहना चाहिए कि दुनिया भर के नेता उसे देखकर दंग रह जाएं ? क्या इससे भारत की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती? जयप्रकाश बोले, "नेहरू जी, भारत की प्रतिष्ठा प्रधानमंत्री के भव्य भवन से नहीं, जनता के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक स्तर पर बढ़ने और उसके प्रतिनिधि की सादगी और सरलता से बढ़ेगी।[1]

जबकि बोस नेहरू के विपरीत भारत को स्वतंत्रता दिलाने के पश्चात् किसी प्रतिष्ठित पद के इच्छुक नही थे बल्कि राजनीति से सन्यास लेने के इच्छुक थे। नेहरू जी ने गांध ी जी की अविनाशी आत्मा पर आघात किया था। गांधी जी चाहते थे कि देश आजाद होगा तो राष्ट्र के नवनिर्माता गांव में रहेगे। गांव से देश की समृद्धि के महायज्ञ का प्रारम्भ हेगा। अपने उत्तराधिकारी नेहरू को वह इसके लिए तैयार करना चाहते थे। उन्होने भावी

1— भानुप्रताप शुक्ल – अपने अनुयायियों के हाथों विकते महात्मा ; अमर उजाला 27.9.2004

भारत की रूपरेखा वर्ष 1908 में बना ली थी। अपने हिन्द स्वराज्य के दस्तावेज पर वह बार-बार बल देते रहे।

नेहरू जी ने कहा मैने तो अड़तीस वर्ष पूर्व 'हिन्द स्वराज्य' पढ़ा था, जो मुझे पूर्णतः अवास्तविक लगा। पुराना चित्र आपके मस्तिष्क में आज भी विद्यमान है, जानकर आश्चर्य हुआ।

इस विषय में गांधी और नेहरू की तुलना में बोस के विचार ज्यादा यथार्थवादी थे, उन्होने ग्रामीण विकास तथा कृषि एवं लघु उद्योगो की उन्नति के साथ शहरी उद्योगों के विकास को भी देश की उन्नति के लिए आवश्यक माना।

मृत्यु सम्बन्धी विवाद

वह पहाड़ों में समा गया,

वह जंगल में खो गया।

झरना अपने में ही सूख गया,

उस समय जबकि उसकी जरूरत बहुत भारी थी

आज जब देश नेता जी की 59 पुण्यतिथि पर पुष्पांजलि अर्पित कर रहा है। एक बार फिर नेताजी की मौत का विवाद गहराया है।

ताइवान सरकार द्वारा नई दिल्ली के एक पत्रकार को भेजी एक चिट्ठी ने नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की मौत के रहस्य में न केवल एक और तथ्य जोड़ दिया है बल्कि इसे और अधिक गहरा दिया है। नेताजी पर शोध कर रहे पत्रकार अनुजधर को मिले इस पत्र में कहा गया है कि–18 अगस्त 1945 को ताइवान में कोई विमान दुर्घटना नही हुई। 'सभी उपलब्ध रिकार्डो की छानवीन से पता चला है कि 14 अगस्त से 25 अक्टूबर 1945 के बीच ओल्ड मात्सुयामा हवाई अड्डे (आजकल ताइपे के घरेलू हवाई अड्डे) से उड़ने वाला नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को ले जा रहा कोई विमान दुर्घटनाग्रस्त नही हुआ था।''[1] अनुज धर ने पत्र मुखर्जी आयोग को भेज दिया। इससे पहले भी नेताजी की मृत्यु की जांच के लिए दो आयोग बैठ चुके है। वर्ष 1956 में गठित शहनवाज हुसैन आयोग तथा वर्ष 1980 में गठित न्यायमूर्ति जी0डी0 खोसला आयोग भी रहस्य पर से परदा नहीं उठा पाया था। इसी सन्दर्भ में मई 1999 में मनोज कुमार मुखर्जी आयोग का गठन किया गया। 58 वर्षो से विश्व तथा भारत की जनता के लिए कौतूहल का विषय रहा यह विवाद शायद अधिक गहराकर ही सुलझे।

नेताजी पर शोध करते समय मैने भी सोचा, कई बार सोचा। उनके देदीप्यमान चरित्र से मैं इतना अभिभूत थी कि अपने मस्तिष्क में बनी उनकी छवि को घुधंला नहीं सकी।

1— नेताजी की गुमशुदगी के मामले में नया मोड़–अमर उजाला 17 सितम्बर 2003.

उनके चरित्र से सम्बन्धित कई तथ्यों पर मुश्किलें आयीं भी किन्तु विभिन्न पुस्तकों, मैग्नीजो की कतरनों और समाचार-पत्रों के उद्धरणों से छानवीन करने के उपरान्त शोध पुनः गतिशील हुआ। लेकिन अन्त में उनके मृत्यु-प्रकरण पर आकर काफी कठिनाई हुई।

नेताजी की मृत्यु की घटना इतनी विवादित है कि किसी एक रास्ते को पकड़ पाना बहुत कठिन है। हमने इस प्रकरण में इतने आख्यानों को जन्म दे दिया है कि किसी एक ठोस निर्णय पर पहुंच पाना नितान्त कठिन हैं। कोई उन्हें शौलमारी का बाबा बनाता है, तो कोई फैजावाद में गुमनाम का जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति। किसी को वे पन्द्रह अगस्त को लाल किले की दर्शक दीर्घा में नजर आते है तो अन्यों की भ्रम है कि उन्हें युद्धबन्दी के रूप में लाल किले के तहखाने में लाकर गोली मार दी गई।

शोध का प्रारम्भ हुआ तो अन्त होना भी आवश्यक है। अनेक प्रकार की भ्रान्तियों को लेकर किसी भी शोध का अन्त नही किया जा सकता, अतः मैने अपने विवेक से नेताजी के जीवन के पटाक्षेप का वही वृतान्त चुना है, जिसे कुछ लोक नाटक मानते है।

सुभाषचन्द्र बोस भारत-स्वतंत्रता संग्राम के लिए रूस की सहायता के आकांक्षी थे। उन्होने जापान-सरकार से अपने रूस जाने की इच्छा प्रकट कर दी। बोस ने कहा 'यदि जाना पड़ा तो मै अकेला ही चला जाऊंगा.........जापान-सरकार मेरे मन्त्रिमण्डल को बाद में भेजने की व्यवस्था कर दे।''[1] बोस की योजना थी कि मंचुरिया पहुंचकर स्वयं को रूसी सेना के हवाले कर देगे। उसके बाद सोवियत सहायता प्राप्त करने की कोशिश करेंगे। जापानी थर्ड वायुसेना के मित्सुविशी की है वी-इंडस्ट्रीज द्वारा निर्मित 22.5 मीटर चौड़ा, 16 मीटर लम्बा, 7,450 किलो का हैवी बाम्बर (मॉडल 97-रसैली), दो इंजन वाला वायुयान सैगॉन हवाई-अड्डे से शाम 5:30 के लगभग 17 अगस्त 1945 को चला।[2] बोस के साथ केवल हबीबुर्रहमान गये थे। तेइपेइ पहुंचने पर जोर का विस्फोट हुआ। वायुयान गोता खाता हुआ भूमि पर आ गिरा। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस समेत चार व्यक्तियों की अस्पताल में मृत्यु हुई तथा हबीर्बुरहमान को छोटी-मोटी चोंटे आयी।

हबीर्बुरहमान ने इस त्रासदी दुर्घटना के इक्कीस वर्ष बाद, 1966 में, रावल पिंडी से हायाशिदा को नोट भेजा था। तदनुसार, 'मिस्टर एस0सी0बोस और मैं आग से बाहर

1- Hyge Toye - The Springing Tiger : Appendix II -185 Full Text

2- आशा गुप्त - सुभाष चन्द्र बोस : निस्संग क्रान्ति पथिक ; पृष्ठ-192

कूद पड़े। बोस अपने कपड़ों की आग बुझाने की चेष्टा कर रहे थे जिन पर पेट्रोल विखर गया था। मैं भागकर आगे गया, आग बुझायी और उन्हें जमीन पर लिटा दिया।'' नेताजी ने रहमान से कहा, 'हबीब! जब वापिस जाओं, मेरे देशवासियों से कहना कि अपने देश के लिए मैं अन्त तक लड़ा और अब अपने देश के लिए प्राण दे रहा हूं। अब कोई शक्ति हमारे देश को गुलामी में नहीं रख सकेगी। वे संघर्ष करते रहे। भारत बहुत शीघ्र स्वतंत्र हो जायेगा।''[1]

हबीबुर्र रहमान ने नोट में लिखा था,-'जापानी डॉक्टरों ने उनका भरसक इलाज किया, किन्तु दुर्भाग्य से उसी दिन, 18 अगस्त 1945 को, रात साढ़े आठ बजे उनकी मृत्यु हो गयी।[2]

नेताजी का अन्तिम संस्कार 20 अगस्त 1945 को तेइपेइ के शव-दाहन मे किया गया। उस समय कर्नल हबीर्बुरहमान, फारमोसा सेना के मेजर नागतोमो, दुभाषिया नाकामुश, बौद्ध पुरोहित एवं शव-दाहन का प्रबन्धक मौजूद थे।

हबीबुर्रहमान खान ने अपने नोट के अन्त में लिखा था, ''वड़े शोक की बात है मिस्टर बोस आजीवन जिस आजादी की प्राप्ति के लिए संघर्ष करते रहे उसका प्रतिफल अपनी आंखों से न देख पाये.....................काश! के जीवित लौट आते। यह निश्चित था कि वे भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित होते। तब भारत और पाकिस्तान में हार्दिक सम्बन्ध होते, आज की तरह कड़वे नहीं।[3] प्राप्त तथ्यों के आधार पर ह्यूग टोइ ने भी समर्थन किया कि, 'उनकी मृत्यु 18 अगस्त 1945 को जापानी मिलिटरी अस्पताल ताइहोकू के नानमोन बार्ड में हुई थी।''[4]

नेताजी शान से जिये और शान से मरे। लेकिन उनके जीवन के पटाक्षेप को कई लोगों में पटाक्षेप न मानकर नाटक का एक दृश्य माना है। लेकिन वास्तविकता क्या है इस पर लोगों के विचार विभिन्न है।

कई लोगों का विचार है कि उस दुर्घटना की रचना नाटक के रूप में जापानियों ने नेताजी को अंग्रेजों के चंगुल से बचाने के लिए की थी और उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुंचाकर जापानी सरकार ने यह घोषणा कर दी कि नेताजी की विमान दुर्घटना में मृत्यु

1- i- Jog : Freedom' s Quest : 272

ii- Habibur-Rehman Khan's Netaji Subhas Chandra Bose and his last dyas in Hayashida's-Netaji Subhas Chandra Bose : 143

iii- Satio and Hayashida in - A Beacon Across Aisa : 229.

2- Hayshida - Netaji Subhas Chandra Bose : 117

3- A Beacon Across Asia : 230.

4- Hyge Toye - The Springing Tiger : 183

हो गई।

इस तथ्य को जाचंने के लिए सन् 1956 में लोकसभा ने शहनवाज खां आयोग का गठन किया, जिसके तीन सदस्य थे-श्री शहनवाजखां (अध्यक्ष), श्री मित्रा (सदस्य) और नेताजी के बड़े भाई श्री सुरेशचन्द्र बोस (सदस्य)। इस समिति ने अपनी जो रपट प्रस्तुत की उसके अनुसार नेताजी की मृत्यु विमान-दुर्घटना में ही हुई। लेकिन श्री सुरेशचन्द्र बोस की मान्यता यह थी कि नेताजी की मृत्यु हवाई दुर्घटना में नही हुई अपितु जापान सरकार ने उन्हें मंचूरिया पहुंचा दिया, जहां से सम्भवतः वे रूस चले गये।[1]

इस बात की जांच करने के लिए डा० सत्यनारायण सिन्हा ने जापान, फारमोसा, जर्मनी और मास्को की यात्राएं की। उनका कहना भी यही है कि नेताजी मंचूरिया में डेरियन नामक स्थान पर चले गये थे, जहां से उन्हे रूस द्वारा कैदी बनाकर यक्यूटैक्स (साइबेरिया) भेज दिया गया।

हो सकता है कि नेताजी के पारिवारिक सदस्यों का अनुमान सही हो, क्योकि नेताजी किसी भी तरह रूस से सम्पर्क साधना चाहते थे, यद्यपि जापान के राजनीतिज्ञ इस बात से सहमत नहीं थे। हो सकता है कि मित्र देशों के साथ विजित देशों की बांटने तथा हिस्सा लेने के लोभ से स्टालिन ने नेताजी को कैद कर लिया हो और अन्ततः मित्र देशो के दबाब के कारण 1947 में नेताजी को मरवा दिया हो। लेकिन यहा पर प्रश्न खडा होता है कि नेताजी मित्र देशों द्वारा घोषित युद्व-अपराधी थे। ब्रिटिश राज्य सत्ता के विरूद्ध विद्रोह करने का उन पर अभियोग था। इस स्थति में स्टालिन उन्हें आंग्रेजी शासन को सौपकर वाहवाही लूट सकता था। पर उसने ऐसा क्यों नही किया। अतः यह तथ्य सन्दिग्ध ा प्रतीत होता है।

शाहनवाज खाँ समिति के समक्ष महत्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा दिए बयान निम्न है

★ कैप्टन नाकामुरा तेपेह हवाई अड्डे के ग्राउण्ड इंजीनियर थे। उन्होंने व्यान दिया कि हवाई जहाज कंक्रीट के रनवे से 100 मीटर दूर समतल भूमि पर गिरा। इसकी पुष्टि मेजर सकाई ने भी की जो हवाई अड्डे के सुरक्षा अधिकारी थे।

कर्नल हवीदुर रहमान ने समिति के समक्ष निम्न व्यान दिया-'कुछ ही सेकेण्ड में

1- Bose, Sisir, K; (Ed.) Crossroads-The works of Subhas Chandra Bose.

जहज पृथ्वी पर आकर गिरा और जहाज के अग्र भाग में आग लग गयी। नेताजी मेरी ओर मुड़े। मैने कहा–नेताजी, आगे से निकलने का यत्न कीजिए पीछे की ओर कोई रास्ता नहीं। इसलिए नेताजी अग्नि में से होकर निकले। उनके कपड़ो में आग लग गयी थी। मैने दौड़कर उनकी बुशर्ट की पेटी को खोलने में मद्द की। मैने उन्हे जमीन पर लिटा दिया। और उनके सिर पर एक गहरा घाव सम्भंवतः बायी ओर देखा। मैने अपने रूमाल से उनके घाव से खून वहने को रोका। मेरे कपडो में आग नही लगी थी। मेरे दोनों हाथ नेताजी के कपड़े उतारने के प्रयास में जल चुके थे जिनके निशान आज तक बाकी है।

नेताजी ने मुझसे हिन्दुस्तानी में पूछा- आप को ज्यादा चोट तो नहीं लगी ? अपने बारे में उन्होंने कहा ऐसा लगता है कि मै नहीं बचूंगा।'[1]

★ लेफ्टिनेंट कर्नल नोनोगाकी का बयान था कि जहाज गिरने के उपरान्त मैने सबसे पहले नेताजी को देखा तो बे बायी ओर खड़े थे। उनके कपड़ो में आग लगी हुई थी और उनके सहायक उनके कोट को उतारने का प्रयत्न कर रहे थे नेताजी जहाज में पेट्रोल टैक के पास ही बैठे थे सो जहाज के गिरने पर वे पेट्रौल से भीग गये थे। ऐसा लगता था उनका सारा शरीर जल रहा है।'

★ मेजर तकाहासी ने समिति के सामने निम्न साक्षी प्रस्तुत की- मैने नेताजी को जहाज के सामने के हिस्से की बायी ओर से निकलते देखा उनके कपड़ो में आग लगी हुई थी। उनके कपडो में बहुत थोड़े भाग में पेट्रौल गिरा था सो केवल उन्हीं भागों पर आग लगी हुई थी।''

★ अन्तिम समय नेताजी की चिकित्सा करने वाले डॉ. योशिमी का ब्यान था कि, "18 अगस्त 1945 को तीसरे पहर दो बजे उन्हें तेहाकू हवाई अड्डे से टेलीफोन द्वारा सूचना मिली कि हवाई जहाज दुर्घटना में कई व्यक्ति घायल हो गये है, जिन्हें अस्पताल लाया जा रहा है। वे उनकी सेवा तथा चिकित्सा की तैयारी रखे। कुछ समय उपरान्त एक दर्जन घायल व्यक्ति अस्पताल में दाखिल हुए, जिनमें नेताजी थे। नेताजी की दशा सबसे खराब थी। जब उनकी

1- Habibur-Rahman Khan's - Netaji Subhas Chandra Bose and his Last dyas in Hayashida's page-144

चिकित्सा की जाने लगी तो उन्होंने कहा कि दूसरों की चिकित्सा की जायें और उनकी देखरेख बाद में की जाए। नेताजी का शरीर जल गया था। परन्तु उनके सिर पर कोई घाव नहीं था।''[1]

★ नेताजी के दुभाषिए श्री जे0 के0 नकामुरा के अनुसार-'नेताजी घायल होने के बाद तीन बार बोले। पहली बार नेताजी ने कहा कि उनके कुछ साथी उनके पीछे फारमोसा आएगें सो उनकी ठीक देख भाल की जाये। दूसरी बार उन्होंने कहा कि खून उनके मस्तिष्क की ओर दौड़ रहा है। घायल जपानी डॉ. से प्रार्थना कर रहे थे कि उन्हे मार दिया जायें ताकि वे भोग रही पीडा़ से मुक्ति पायें। लेकिन नेताजी चुपचाप बिना किसी कराहट पड़े हुए थे। हमे उनकी सहन शक्ति पर आश्चर्य हो रहा था।''[2]

इन व्यानो के आधार पर कुछ प्रश्न उभरते है जो इस घटना को सन्देह के घेरे में ला खडा़ करते है। 18 अगस्त को नेताजी की मृत्यु बताई जाती है पर 20 अगस्त तक इस सूचना का प्रसारण नहीं किया गया। यहा तक कि आजाद हिन्द सरकार के वरिष्ट सदस्य जो उस समय सेनागांव में थे, उन्हें भी सूचित नहीं किया गया। इस विषय में उस वक्त के फारमोसा सेना के चीफ ऑफ स्टॉफ जनरल इसायामा ने समिति को बताया कि जापानी अधिकारियों ने नेताजी की मृत्यु की खबर को इसलिए छुपाया ताकि नेताजी जैसे महान नेता टोकियों की ओर जा रहे है, यह पता ब्रिटेन और अमेरिका गुप्तचरों को न लग सके।

यहां सभावना यही हो सकती है कि नेताजी जैसे महान व्यक्ति की मृत्यु की खबर इसलिये छिपाई गयी हो ताकि उनकी मृत-देह मित्रराष्टों के हाथ पकड़कर अपमान न भुगते। दूसरी संभावना यह भी हो सकती है कि जापान के आत्मसर्पण के बाद मित्र राष्ट्रों की सेनायें जापान में फैल चुकी थी और नेता जी को ढूढ़ रही थी। जापान ने नेता जी को सुरक्षित निकालने की कोशिश की थी। निश्चित था कि यह दोष जापान पर मढ़कर उसे प्रताड़ित किया जाता। सम्भवतः इसलिये भी यह खबर दबाई गई और जब जापान के उच्चधि िकारियों ने निर्णय कर लिया हो तब प्रसारित की गई हो। तत्कालीन परिस्थितियों को नजर

1- A Beacon Across Asia -230.

2- Taiboku Theke Bharat, 1970:PP.55-56 (Reprint of the Shah Nawaz Report)

में रखते हुये सोचा जाये,तो नेता जी की मृत्यु की खबर एकदम से प्रसारित कर देने से पराजित जापानी सरकार कूटनीतिक संकट में फस सकती थी।

इसी प्रकार एक अन्य सवाल भी उठाया जाता है कि नेता जी जैसे महत्वपूर्ण व्यक्ति के अन्तिम चित्र क्यों नहीं खीचें गये? डा0 योशिमी ने समिति के समक्ष इस प्रश्न का उत्तर दिया–नेताजी ने अन्तिम वक्त के चित्र इसलिए नही खीचें गयें क्योंकि जापान में मृत व्यक्ति का फोटो लेने का चलन नहीं है।[1] जापान के चलन को देखतें हुए उत्तर ठीक है। लेकिन नेताजी कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे। और न ही जापानी थे। कर्नल हबीबुर रहमान ने इस प्रश्न के उत्तर में कहा–नेताजी का चेहरा सूज गया था। और काफी बिकृत हो गया था, इसलिए उनके चेहरे का फोटो नहीं लेने दिया गया।

नेताजी की व्यक्तिगत चीजों में से एक मात्र चौकोर घड़ी कर्नल हबीवुर रहमान द्वारा पंण्डित नेहरू जी को सौपी गयी थी, जिसे पण्डित जी ने श्री शरतचन्द्र को सौप दिया। कर्नल हबीर्वुरहमान का कहना था कि नेताजी की यह घड़ी उन्हें डॉ. योशिमी ने दी थी। लेकिन जब इस विषय में समिति ने डॉ. योशिमी से पूछा तो उत्तर मिला मैने मि0 रहमान को इस प्रकार की कोई घड़ी नहीं दी थी। नेताजी के व्यक्तिगत सेवक श्री कुन्दन सिंह का कहना है कि नेताजी हमेशा गोल घड़ी पहनते थे।

नेताजी की मृत्यु के बाद दक्षिण सेना के चीफ ऑफ स्टॉफ ने ऑफिसर कमांडिग किकन को तार भेजा था। तार की भाषा इस प्रकार थी–

''ओ0सी0 किकन को

चीफ ऑफ स्टॉफ सदर्न आर्मीद्ध, स्टॉफ

सिंगनल 66, 20अगस्त 1945

'टी' (नेताजी का गुप्त नाम) जबकि राजधानी जा रहे थे। उनका जहाज 18 अगस्त को दो बजे सांयकाल तेहाकू हवाई अड्डे पर दुर्घट्नाग्रस्त हो गया। उनके गंभीर चोंटे लगी और वे उसी रात्रि को मर गए। फारमोसा की सेना ने उनका शव हवाई जहाज द्वारा टोकियों भेज दिया।''[2] लेकिन ये तथ्य उक्त तार की सूचना के विरोधी है कि नेताजी कि भस्मि लेकर हबीबुर रहमान टोकियों गए थे।

1- Taiboku Theke Bharat, 1970 PP 57-58 (Reprint of the Shahnawaz Report)

2– सत्यु शकुन – मैं तुम्हें आजादी दूंगा ; (भाग–2) पृष्ठ 222

एक असंगति यह भी है कि शहनवाज खां समिति को जो चित्र सौपा गया था, उससे जाहिर होता है कि जहाज किसी पहाड़ी से टकराकर टूटा है। जहाज की पृष्ठभूमि में पहाड़ी स्पष्ट दिखती है। जबकि साक्षियं यह मिलती है कि रनवे के समीप समतल भूमि पर हवाई जहाज गिरा है।

नेताजी के बड़े भाई श्री सुरेशचंद्र बोस ने अपनी पुस्तक (Dissentient Report) में निम्न तथ्य प्रस्तुत किए है–

- जो भी यात्री उस हवाई में यात्रा कर रहे थे, उन्होने समिति के सामने जो बैठने का क्रम बतलाया है और अपने स्कैच दिए, उनमें परस्पर भेद है। उनसे यह ज्ञात होता है कि नेताजी पेट्रोल टैंक के पास नहीं बैठे थे।
- जब तेहाकू हवाई अड्डे पर जहाज गिरा और उसमें आग लगी तथा नेताजी घायल हो गये, जल गए–उसका वर्णन सभी गवाही देने वालों ने भिन्न–भिन्न दिया है। किन्ही दो का बयान भी एक जैसा नही हैं।
- केवल कर्नल हबीर्बुरहमान के अतिरिक्त अन्य किसी ने भी नेताजी के शव को नही देखा, उन्होने केवल सुना कि नेताजी की मृत्यु हो गयी।
- हवाई जहाज बाम्बर था। उसमें बैठने की कोई सीट नहीं होती है जैसे कि अन्य यात्री हवाई जहजों में होती है। सभी फर्श पर बैठे हुए थे। यदि जहाज सामने की ओर से (नोज) गिरता तो सभी यात्री धक्के से काकपिट में पहुंच जाते, पर ऐसा नही हुआ।
- नेताजी के शव का, उनकी घायल अवस्था का हवाई अड्डे पर या अस्पताल का कोई भी चित्र नहीं है। शहनबाज खां कमेटी रिपोर्ट में केवल 4 फोटो है जो हबीर्बुरहमान ने दिये थे, उसमें से एक फोटो टूटे हुए हवाई जहाज का है जो एक पहाड़ी पर टूटा हुआ दिखलाई देता है। जबकि सभी गवाहो ने कहा हैं कि हवाई जहाज रनवे के पास ही मैदान में गिरा था। एक फोटो और है, जो नेताजी के कफन का कहा जाता है, लेकिन उसे देखने से ऐसा लगता है कि सफेद चादर में कोई गठरी–सी वस्तु बंधी हैं।[1]

1- Bose, Suresh Chandra - Dissenting Report (Netaji Enquiry-Committee), Kodalia ; 24- Parganas,1956.

श्री सुरेशचंद्र बोस की मान्यता है कि कर्नल हबीबुर्रहमान को नेताजी ने शपथ दिला दी कि वे प्रचारित कहानी को ही दोहरायें। उनका कहना है कि तोरेन में नेताजी को किसी बड़े होटल में ठहराया गया, समिति को इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिल सका। उनकी यह भी मान्यता है कि नेताजी के साथ वायुयान में अन्य यात्री भी थे जिन्हे कथित हवाई दुर्घटना में चोट आ गयी थी और वे भी अस्पताल ले जाए गयें, जहां उनका इलाज हुआ। लेकिन यह अजीब बात है कि कर्नल हबीबुर्रहमान के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति को नेताजी की मृत्यु की जानकारी नहीं थी और न उन्होने नेताजी का मृत शरीर देखा था।[1]

अस्तु, श्री सुरेशचन्द्र बोस का विश्वास है कि जापानियों ने पूर्व निश्चित योजनाके अनुसार नेताजी को गुप्त रूप से गन्तव्य स्थान मंचूरिया (डेरियन) पहुंचा दिया और फिर विमान दुर्घटना की कहानी प्रचारित करवा दी।

लेकिन यहां एक प्रश्न उठता है कि इस नाटक के लिए जापानी सरकार ने अपने महत्वपूर्ण जनरल शीदी को बलि क्यों चढ़ाया ? जहाज के दुर्घटना के वास्तविक चित्र प्रसारित करने में जापानी सरकार को क्या कठिनाई थी, गलत चित्र क्यों प्रदर्शित किए गए ?

नेताजी की मृत्यु की खबर के बाद ब्रिटिश तथा अमेरिकन जासूसी विभाग ने भी जांच की थी। इंटेलीजेन्स विभाग के मैराइट का पत्र जो उन्होने 19 फरवरी 1946 को अन्य अधिकारी यंग को लिखा था-

प्रिय यंग,

श्री बोस की कथित मृत्यु के सम्बन्ध में जो भी जानकारी उपलब्ध थी, उसकी जांच कर ली गई। जांच का परिणाम पूरी तरह संतोषजनक नहीं है। उसमें इतनी .त्रुटिया है कि जब तक उनका स्पष्टीकरण न हो जाय तब तक मृत्यु के सम्बन्ध में निश्चित परिणाम पर पहुंचना संदेहास्पद होगा। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि बोस की यह योजना थी कि वे अपने कुछ चुने हुए साथियों के साथ भूमिगत हो जाएं। जापानियों ने बोस को भूमिगत होने के लिए सहायता तथा सुरक्षा का बचन दिया था।[2]

सिंगापुर — भवदीय

इंटेलीजेन्स डिवीजन — हस्ताक्षर

डब्ल्यू. मैकराइट

1- Suresh Chandra Bose - Dissentting Report (Netaji Enquiry Committee) - Kodalia-1956

2- Sacsea Commission - Report No.1 6 November 1945.

नेताजी की मृत्यु के सिलसिले में डा0 सत्यनारायण सिन्हा बर्लिन गये। वहां उनकी मुलाकात भारतीय क्रान्तिकारी अवनी मुखर्जी की रूसी पत्नी के पुत्र गोगा मुखर्जी से हुई। इन्ही गोगा मुखर्जी को रूस सरकार ने मृत घोषित कर दिया था। गोगा ने डा0 सिन्हा को बताया, 'जब मेरे पिता को यह पता लगा कि नेताजी साइबेरिया के यकूटस्क में कैद है तो उन्होने स्टालिन को नेताजी के बारे में पत्र लिखा कि वे महान देशभक्त है और देश की स्वतंत्रता के लिए ही उन्होने जर्मनी और जापान से सहयोग किया था, उन्हें छोड़ दिया जाए। पत्र लिखने के दूसरे ही दिन पिताजी को कैद कर लिया गया और अब वे लापता है।''[1]

यहां गौर करने लायक बात यह है कि स्टालिन नेताजी को फासिस्ट मानता था। हो सकता है इसलिए उसने नेताजी से उदार व्यवहार न किया हो। इसी सन्दर्भ में श्री गोगा ने बताया कि कामिंटर्न की भारतीय शाखा के अध्यक्ष श्री मजूत ने उन्हें बताया कि उन्होने नेताजी और श्री अवनी मुखर्जी को यकूटस्क (साइबेरिया की केन्द्रीय जेल) की सेलों में देखा था। यह बात 1950-51 की है।

डा0 सिन्हा ने यह सारी सूचना नेहरू जी को भिजवाई। लेकिन नेहरू जी ने डॉ0 सिन्हा को इस विषय में कोई उत्तर नही दिया।

पूर्व में कतिपय भारतीयों की मान्यता यह थी कि जापानी सरकार ने खुद ही नेताजी को अंग्रेजों को सौप दिया, क्योंकि वे मित्र राष्ट्रों को नाराज कर जापान का और अधिक सर्वनाश करवाना नहीं चाहते थे। मेकआर्थर नामक अधिकारी ने उन्हें मरवा दिया।

नेताजी के घनिष्ठ सहयोगी और विश्वासी मित्र थे आबिद हसन। ये नेताजी के साथ बर्लिन से ही जुड़ गए थे। उनका मत नेताजी की मृत्यु के विषय में भिन्न है-

''नेताजी कैसे मरे और कहां मरे यह कुछ ऐसी बात है जिसे हम शायद कभी नहीं जान पांएगे। यह सारा विवाद श्री हबीर्बुरहमान के कारण उठ खड़ा हुआ। आजाद हिन्द फौज को हबीर्बुरहमान पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास था। चाहिए यह था कि एक सैनिक होने के नाते उनका वक्तव्य स्पष्ट और सरल होता ताकि सब स्वीकार कर लेते। लेकिन उन्होने अस्पष्ट और उलझे शब्दों में नेताजी की मृत्यु के सम्बन्ध में वक्तव्य दिया जिसके

1- सत्यु शकुन - मैं तुम्हें आजादी दूंगा ; (भाग-2) पृष्ठ 226

कारण बाद को उनके द्वारा सीधें हा'या 'न' में उत्तर का कोई मूल्य नहीं रह गया।

मैं आज हवाई जहाज की दुर्घटना वाली बात पर विश्वास नहीं करता। लेकिन दीर्घ काल व्यतीत हो जाने के कारण मैने अपने नेता की मृत्यु को स्वीकार कर लिया है। वे ऐसे व्यक्ति नहीं थे, जो अपनी मातृ-भूमि से निष्कासन को स्वीकार कर लेते।''[1]

नेताजी के अन्य निकटस्थ सहयोगी थे-श्री एस0ए0अय्यर। वे अपने नेता की मृत्यु के विषय में अपनी पुस्तक 'क्या नेताजी जीवित है ? में लिखते है-'जबकि मातृभूमि स्वतंत्र हो गई और देश संकट की स्थिति से गुजर रहा है तो नेताजी अन्तिम व्यक्ति होते जो दूर रहकर यह सब देखते रहते। इसके अतिरिक्त यदि नेताजी आज जीवित होते और पृथ्वी के किसी भी भाग में क्यों नही होते, वे निश्चित रूप से अपनी पत्नी और पुत्री अनीता बोस को अवश्य पत्र लिखते। मैं इस तथ्य को भली भांति जानता हूं कि नेताजी जब 18 अगस्त 1945 को अपनी अन्तिम यात्रा के लिए उड़े तब से उनकी पत्नी को उनका कोई पत्र या सन्देश नहीं मिला।[2]

नेताजी की पत्नी श्रीमती ऐमली शैकिल की मान्यता है कि-'18 अगस्त 1945 के उपरान्त मुझे मेरे पति का न कोई पत्र मिला और न अन्य किसी के द्वारा कोई सन्देश प्राप्त हुआ। जहां तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है कि क्या मैं विश्वास करती हूं कि वे जीवित हैं, उसका उत्तर मैं 'न' में दूंगी। 1945 से आज तक बहुत अधिक वर्ष हो गए है और यदि जीवित होते तो इस समय सत्तर वर्ष के होते। वे जिस घोर मानसिक शारीरिक और श्रम का जीवन व्यतीत करते रहे, वह इस बात की संभावना प्रकट नहीं करता कि वे अब तक जीवित हो।

मैं स्वयं हवाई जहाज की दुर्घटना से उनकी मृत्यु में विश्वास नहीं करती, किन्तु सोचती हूं कि कुछ वर्ष व्यतीत हो गए होगें, जब उनकी मृत्यु हो गई होगीं यदि ऐसा न होता वे वे अपने परिवार से इन वर्षो में सम्पर्क साधने के तरीके और साधन ढूढ़ लेते।''[3]

श्री अय्यर और श्रीमती शैकिल के ये वक्तव्य सारी स्थिति और नेताजी के कहीं छिपे होने की बात को समाप्त कर देते है। उपर्युक्त सारा प्रकरण पढ़कर और मनन करने

1- Abid Sasan Safrani - The man from Imphal -3

2- S.A. Ayyar - IS Netaji Alive -143

3– सत्यु शकुन – मैं तुम्हें आजादी दूंगा ; (भाग–2) पृष्ठ 228

के बाद इसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि नेताजी या तो वायुयान-दुर्घटना में मारे गए या फिर साइबेरिया की कैद में उन्हें गोली से उड़ाया गया....शेष सारी अवधारणाएं कोरी कल्पना की उड़ानें है।

नेताजी की मृत्यु के रहस्य को उघाड़ने की दृष्टि से सरकार द्वारा स्थापित खोसला आयोग के विचारों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। 11 जुलाई 1970 को इस आयोग को नियुक्त किया गया था जिसने अपनी रपट 30 जून 1974 को भारत सरकार को सौंप दी थी। यह एक सदस्यीय आयोग था। श्री खोसला पंजाब उच्च न्यायालय के रिटायर्ड मुख्य न्यायाधीश थे। सो उनसे अपेक्षा थी कि वे इस रहस्य को खोल देगे। लेकिन उनसे भी कुछ नही हो पाया। उनके द्वारा प्रस्तुत की गयी रपट में वे तर्क दिए गए हैं जो नेताजी की मृत्यु के विरूद्ध दिए जाते है-

- नेताजी के प्रति जापानियों की इतनी गहन श्रद्धा थी कि उन्होने मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के हाथों में पड़ जाने से नेताजी को बचाने के लिए वायुयान की दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो जाने की झूठी कहानी गढ़ ली, जबकि नेताजी सकुशल मंचूरिया पहुंच गए और वहां से रूस चले गये।

- सभी गवाहों ने शाहनवाज खां कमेटी तथा खोसला आयोग के समक्ष जो बयान दिए है, उनमें घोर विरोधाभास और विभेद है।

- नेताजी सुभाष चन्द्र बोस रहस्मय तथा गोपनीय स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्होने अपनी योजना को केवल कतिपय अत्यन्त विश्वस्त व्यक्तियों के अतिरिक्त किसी को भी नहीं बताया। यही कारण था कि नेताजी किस प्रकार बच निकलेगे, इस योजना का विस्तृत ब्यौरा किसी को भी ज्ञात नहीं था। उनकी धारणा थी कि उनकी मृत्यु की सूचना प्रसारित कर देने से मित्र-राष्ट्रों का ध्यान उनके वास्तविक शरण-स्थल से हट जाएगा, और वे उन्हें मरा समझकर उनकी खोज नही करेंगे।

➢ जिस बाम्बर में नेताजी गए थे, उसमें जो भी सहयात्री थे, उसमें से कर्नल हबीबपुर रहमान के सिवाय अन्य कोई भी नेताजी को नहीं पहचानता था। अतएव कोई भी नहीं कह सकता था कि तेहाकू हवाई अड्डे पर विमान दुर्घटना में जल जाने के कारण जिस व्यक्ति का शरीरान्त हुआ, वे नेताजी थे। इसके अतिरिक्त एक बात विशेष उल्लेखनीय थी कि उस विमान दुर्घटना मे केवल वही लोग मरे जो तेपेह के आगे मंचूरिया जाने वाले थे। जो उस विमान में बच गये, उनमें से कोई भी तेपेह से आगे जाने वाला नहीं था। यह विचित्र संयोग इस तथ्य का समर्थन करता है कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस तथा अन्य व्यक्ति जो कि मंचूरिया जाने वाले थे, वास्तव में वहां पहुंच गये और जिन यात्रियों को पीछे छोड़ दिया गया, उनके लिए कह दिया कि वे ही दुर्घटना में बच गए।

➢ नेताजी के अन्तिम संस्कार के समय उनको किसी प्रकार का सैनिक सम्मान नही दिया गया। नेताजी एक स्वतंत्र राष्ट्र के अध्यक्ष थे, जिसे नौ स्वतंत्र देशों ने स्वीकार किया था। जापानी उन्हें गहन श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। अस्तु, यह सोचा भी नहीं जा सकता कि जापानी उन्हें बिना राजकीय तथा सैनिक सम्मान दिए, उनका अन्तिम संस्कार हो जाने देते। यहां तक कि उनके मृत शरीर पर फूलमालाएं तक भी नहीं चढ़ाई गई।

➢ 18 अगस्त, 1945 को तेहाकू हवाई अड्डे पर जो विमान (बाम्बर) दुर्घटनाग्रस्त हुआ, उसके कोई फ्लाइट डॉक्यूमेंट्स नहीं है। इस बात की भी कोई साक्षी नही है कि उस विमान दुर्घटना के सम्बन्ध में कोई जांच की गई है।

➢ दुर्घटना के बाद नेताजी की क्या चिकित्सा हुई तथा उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में अस्पताल में कोई रिकार्ड नहीं है। उनकी बीमारी का इतिहास-लेख (हिस्टरी शीट) तथा रोग शैया पर उनके नाम का टिकट भी नही है।

➢ यह सिद्ध करने के लिए कि बोस (नेताजी) की ही दाह क्रिया की गई है, इससे सम्बन्धि

ात दाह क्रिया करने का आज्ञा पत्र अथवा दाह प्रमाण-पत्र भी उपलब्ध नहीं है।

➢ नेताजी की मृत्यु की कोई राजकीय घोषणा नहीं की गई। उनकी मृत्यु का समाचार प्राइवेट डैमी एजेंसी ने प्रसारित किया। यह विचित्र बात है कि श्री ए0एम0 सहाय से उनकी मृत्यु के समाचार का प्रारूप तैयार करने को कहा गया। उन्होने नेताजी के शव को देखा तक नही था।

➢ नेताजी का एक दांत सोने से मढ़ा हुआ था। यदि उनके मृत शरीर का दाह-संस्कार किया जाता तो उनकी भस्मी में सोना मिलता। इस बात का भी कोई प्रमाण नही है कि जिस भस्मी को टोकयों ले जाकर रनकोजी मन्दिर में रखा गया, उसमें सोना मिला। यह बात भी बोस की मृत्यु तथा दाह क्रिया का खण्डन करती है।[1]

खोसला ने इन तर्को का खंडन किया है, इससे अधिक और कुछ वे कर नहीं सकते थे क्योंकि हर आयोग का कार्यक्षेत्र निर्धारित होता है। इसी तरह मई 1999 में गठित मुखर्जी आयोग भी इस गुत्थी को नही सुलझा सका और उसका कार्यकाल बढ़ा दिया गया। अब अपने विवेक से कुछ सच्चाइयों का विवेचन कर लें ताकि इस विषय पर प्रकाश पड़ सके।

❒ जापानियों की नेताजी पर श्रद्धा जरूर थी पर उन्होने उन्हें कभी भी बराबरी का दर्जा नहीं दिया। नेताजी जो भी सैनिक अभियान की योजना बनाते थे, उसके लिए वे पूर्ण रूप से जापानियों पर निर्भर रहते थे। यही कारण था कि दक्षिण पूर्व के भारतीयों का दृष्टिकोण जापान के विरोध में था। वे जापान को दम्भी मानते थे। शाहनवाज खां ने अपनी पुस्तक 'आई0एन0ए0 एण्ड इट्स नेताजी में साफ-साफ लिखा है, कि आजाद हिन्द सेना के सैनिकों को जापानियों ने जो हथियार दिये वे जंग लगे हुए और पुराने थे। मशीनगनों के स्पेयर पार्ट्स नहीं दिये गये तथा तोपो के कई उपकरण गायब थे। परिवहन की भी हमारे सैनिकों के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। जापानियों को यह संशय था कि उन्होने आई0एन0ए0 को मजबूत बना दिया तो कल यह जापानियों से भी जूझ

1- G.D. Khosla - Netaji Enquiry Committee Report Government of India 1980

सकती है। यदि जापानियों ने इम्फाल पर आक्रमण के समय हमारी पूरी मदद की होती तो इस युद्ध का परिणाम ही कुछ और होता। इस विषय में जापानियों ने हमे धोखा दिया था। नेताजी का यह निर्णय पहले से ही था कि अगर जापानी अंग्रेजो को हटाकर उनके स्थान पर काबिज होने की कोशिश करेगे तो उनके विरूद्ध भी लड़ा जाएगा।''[1]

❒ नेताजी को भी इस बात का संशय था कि अंग्रेजो को निकालने के चक्कर में कही दिल्ली पर जापानी अधिकार न कर बैठे। लेकिन उनका विश्वास था कि जनता और आजाद हिन्द सेना उस समय इतनी सशक्त होगी कि जापानी उनका प्रतिरोध नहीं कर पाएंगे सो वे ऐसा दुस्साहस नहीं कर पाएगे। जापानी आजाद हिन्द फौज में रूचि इसलिए नही ले रहे थे कि वे भारत को ब्रिटिश दासता से मुक्त कराने में उसकी सहायता करना चाहते थे, वरन वे दक्षिण पूर्वी एशिया में मित्र राष्ट्रों के विरूद्ध युद्ध में उनका उपयोग करना चाहते थे। उन्होने यह अनुभव कर लिया था कि दक्षिण-पूर्वी एशिया में नेताजी को असंख्य भारतीयों की गहन श्रद्धा प्राप्त है और सभी भारतीय उनके अनुयायी है। नेताजी के प्रति जापानियों की श्रद्धा उनकी उपयोगिता तक थी। जापानियों के आत्मसमर्पण के बाद नेताजी का उनके लिए कोई उपयोग नही रह गया था। वे उनके प्रति मौखिक श्रद्धा दर्शाते रहे।

अतः इस स्थिति में यह नहीं माना जा सकता कि जापानी नेताजी को बचाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार की योजना बनाते।

❒ साक्षियों में जिन विरोधाभासों और विभेदों की ओर उंगलियां उठाई गई हैं, उनसे विमान दुर्घटना झूठी साबित नही होती अपितु एक लम्बा समय हो जाने के कारण ये विरोधाभास पैदा हुए हैं। फलस्वरूप साक्षियों की स्थिति अस्पष्ट हो गई है। अतः यह नही कहा जा सकता कि हबीर्बुरहमान की साक्षी गढ़ी हुई है। यह तर्क भी न मानने योग्य है कि मंचूरिया जाने वाले सभी यात्री मर गये थे और जो बच गये थे मंचूरिया जाने बाले नही थे। क्योंकि यह तर्क तथ्यों पर आधारित नहीं है।

❒ एक और तथ्य कि नेताजी की फोटों एवं राजकीय सम्मान की व्यवस्था इसलिए नहीं हो सकी

1- Shahnawaz Khan - I.N.A. and its Netaji.

क्योंकि आत्मसर्मपण के बाद जापानी सरकार अपने आवश्यक कार्यो में इतनी उलझी हुयी थी कि ये चीजे उनके लिए गौण हो गई है। बोस के चेहरे की फोटो इसलिए नहीं ली गयी। क्योंकि उनका चेहरा काफी जल गया था।

- फ्लाइट डॉक्यूमेंट्स उपलब्ध न होने का कारण वायुयान का अग्रभाग पूरी तरह जलकर नष्ट हो गया था तो सारे उड्डयन प्रालेख उसी में जल चुके थे। विमान दुर्घटना की जांच इसलिए सम्भव नहीं थी क्योंकि फारमोसा पर किसी भी वक्त मित्र राष्ट्रों का अधिकार हो सकता था। बोस की मृत्यु का समाचार समय पर क्यों प्रसारित न हो सका ? ऐसी कोई साक्षी नहीं मिल सकी कि उस समय ते हाकू में समाचार को प्रसारित करने के लिए कोई साधन या माध्यम उपलब्ध था भी या नहीं। उस समय जापानी नहीं चाहते थे कि उनका कोई भी संदेश मित्र राष्ट्रों द्वारा पकड़ लिया जाय। जैसे ही आजाद हिन्द सरकार के प्रचार मंत्री श्री अय्यर वहां पहुचे उनसे बोस का मृत्यु सम्बन्धी प्रालेख तैयार करने के लिए कहां गया था। इस तथ्य से बोस की मृत्यु के समाचार में प्रसारण की देरी होने की बात स्पष्ट हो जाती है।

- अब रही नेताजी की घड़ी का गोल या चौकोर होना। नेताजी के पास भारत में गोल घड़ी जरूर थी जो उन्हें सुरेशचंद्र बोस ने दिया या उनकी पत्नी ने भेंद दी थी। लेकिन श्री उत्तमचन्द्र के अनुसार नेताजी ने अपनी गोल घड़ी भगतराम को भेंट कर दी थी। सो इस विषय में कोई पुख्ता प्रमाण नही मिलता कि जापान में नेताजी गोल घड़ी ही पहनते थे।

- नेताजी का एक दांत सोने से मढ़ा हुआ था इस विषय में शाहनवाज कमेटी के समक्ष हबीर्बुरहमान का कहना था कि नेताजी के दांत का सोना उनके भस्मि कलश में रख दिया गया था। इस विषय में उनके भतीजों-अभिय बोस तथा अरविन्दु बोस में भी एकता नहीं है। अरविन्दु का कहना है कि नेताजी का एक भी दांत सोने का नही था। श्री समर गुहा का इस प्रकरण में मत है कि अपनी पहचान छिपाने के लिए नेताजी ने अपने दांत का सोना निकाल लिया होगा।

श्री खोसला ने नेहरू जी पर लगाए जाने वाले आरोप का खंडन किया है कि उन्होने

इस विषय में कोताही वरती या वे नेताजी के गायब हो जाने के सम्बन्ध में जांच करवाने के इच्छुक थे। इस विषय में गांधी जी की चर्चा करनी बेहतर रहेगी। महात्मा जी ने जब बोस की मृत्यु का समाचार सुना तो उन्होने कहा-उनकी अन्तर्रात्मा कहती है कि वे (नेताजी) मरे नहीं है। कहा यह भी जाता है कि गांधी जी ने बोस के परिवार को तार दिया था कि वे नेताजी का श्राद्ध न करें। गांधी जी के इस कथन के बारे में खोसला की मान्यता है कि गांधी जी की बोस के प्रति गहरी श्रद्धा थी और उन्हें जीवित देखने की उनकी इच्छा बलवती थी। राष्ट्रपति डॉ0 राधाकृष्ण की भी इस सन्दर्भ में चर्चा की जाती है उन्होने 1948 में रूस में नेताजी को देखा था। नेताजी ने उनसे कहां था कि उनकी भारत लौटने की व्यवस्था की जाए। डॉ0 सत्यनारायण ने तो यहां तक कहां कि जब मैं (सन् 1954 में) पेरिस में डॉ0 राधाकृष्ण के दुभाषिए का कार्य कर रहा था तो उन्होने बताया कि उनकी जानकारी में नेताजी जीवित है और रूस में है। खोसला आयोग के पत्र के उत्तर में डॉ0 राधाकृष्ण ने कहा कि वे सन् 1940 के ग्रीष्मकाल में दार्जिलिंग में अन्तिम बार नेताजी से मिले थे।

संशय- नेताजी के बड़े भाई श्री सुरेशचंद्र बोस (शाहनवाज खां समिति के सदस्य) के 4 नवम्बर 1970 को दिये गये ब्यान के एक अंश में कहा था,

'मेरे सहयोगी श्री शहनवाज खां तथा श्री मित्रा सम्भवतः उस गवाही पर विचार नही कर सके जो कि कमेटी के समक्ष लेखबद्ध की गई थी। यदि वे उस साक्षी का विश्लेषण करते तो बे इस निर्णय पर पहुंचते की नेताजी की मृत्यु नही हुयी लेकिन उन लोगो को तो यह आज्ञा हुई थी कि वे कहें कि नेताजी की मृत्यु हो चुकी है सो उन्होने ऐसा ही किया। इसके लिए पंडित नेहरू ने उन्हें पुरस्कृत किया। शाहनवाज खां को डिप्टी मिनिस्टर (रेलवे) बनाया गया और श्री मित्रा को पाकिस्तान का डिप्टी हाई कमिश्नर नियुक्त किया गया। और मै यह भी कह दू कि मेरे लिए भी एक बड़ा पारितोषिक सोचा गया था। श्री शहनवाज खॉ ने टोकियो में मुझसे कहा था-'श्री बोस यदि आप पसन्द करे तो आप बंगाल के गर्वनर बन सकते है।''

खोसला आयोग ने श्री सुरेशचंद्र के बयान को एक कहानी कहकर टाल दिया। लेकिन

हर कहानी मे निश्चित तथ्य तो होते है। हम राजनीतिक परिप्रक्ष्य में देखे तो गांधीजी कांग्रेस के सदस्य न होते हुए भी एक तानाशाह की तरह पार्टी में अपना स्थान बनाय हुए थे। नेहरू जी के प्रति उनकी उदार भावना जग प्रसिद्ध है। कांग्रेस ने नेताजी के साथ जो किया वह कोई बहुत अच्छा व्यवहार नहीं था। वास्तविकता यह थी उस वक्त गांधीजी की विचारधारा के प्रतिकूल चलने का अर्थ था राजनैतिक मौत। नेताजी में पिछलग्गू बनने की कभी आदत थी ही नहीं। इसलिए उनकी कांगेस से कभी नही बनी। नेहरू जी और सरदार पटेल गांधी जी के खास अनुयायी थे। खास अनुयायी का अर्थ इस सन्दर्भ में लें कि गांधी जी की प्रत्येक बात का समर्थन करना। नेताजी जब यह नहीं कर सके तो उन्हें कांग्रेस से हटा दिया गया। कांग्रेस के हटाने के उपरान्त भी कांग्रेसी नेताजी की ओर से निश्चितं नही हुए क्योंकि उनके दम-खम से सभी परिचत थे। हां सरदार पटेल का रूख बाद में नेताजी के प्रति उदार हो गया था।

इस परिप्रेक्ष्य का विश्लेषण करने से मालूम होगा कि स्वतंत्रता के बाद सत्ता पर बैठे हुए नेतागण कभी यह नहीं चाहते थे कि नेताजी की मृत्यु के रहस्य का अनावरण हो। क्योंकि इस समय तक नेताओं की शक्ति चुक-चुकी थी। इस बात की नेहरू जी की स्वीकारोक्ति देखिए-

'सच तो यह है कि हम लोग थक चुके थे हमारी आयु बढ़ती जा रही थी हम में से बहुत कम लोग ऐसे थे जो पुनः जेल जाने की सम्भावना का सामना कर सकते थे। यदि हम आविभाजित भारत के लिए अड़ते तो स्पष्ट था कि जेल हमारी आगवानी करती। हमने पंजाब में अग्नि धधकती देखी और प्रतिदिन मार-काट की कहानी सुनी। विभाजन की योजना ने हमें इस स्थिति से बाहर निकालने का रास्ता प्रदान किया।''[1]

देश के टुकड़ों को स्वीकार करके सत्ता प्राप्त करने वाले नेताओं की भावनाएं सत्ता के प्रति क्या रही होगी इसकी कल्पना हम बखूबी कर सकते है, बशर्ते भक्ति-भाव छोडकर तथ्यों के आधार पर नापतौल की जाय। ये सब नेतागण व्यक्ति थे और व्यक्तिगत आकांक्षाओं से ऊपर उठ पाना बहुत ही मुश्किल काम है। अपने द्वारा उठाए गये कष्टों का मोल कौन नहीं-चाहता ? वह मोल चाहे सत्ता-सुख में हो और चाहे अपनी भावी पीढी की सुरक्षा

1— नेहरू जी का यह स्वीकारोक्ति 1960 की है जो उन्होने अपने जीवनी लेखक माइकल ब्रैशर के आगे स्वीकार की थी।

करने में हो। इसी बिन्दु पर आकर व्यक्ति के चरित्र की प्रखरता का पता लगता है।

इस हालत में हम कल्पना कर सकते है कि नेताजी की मृत्यु की सही तस्वीर में शायद उस समय किसी को रूचि नहीं थी। इस विषय में एक प्रिज्म बना दिया गया ताकि कई रंग बिखेरे और तरह-तरह की भ्रान्तिया उत्पन्न करें। देश का यह दुर्भाग्य रहा है कि समय पर नेताजी के सैनिक आन्दोलन को अन्दर से कोई सहायता नही मिली। लेकिन इस आन्दोलन की कीमत की बाद में जरूर आंका गया। गांधी जी ने आजाद हिन्द सेना के सम्बन्ध में कहा था-"यद्यपि आजाद हिन्द सेना अपने तत्कालीन उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रही परन्तु उसके ऐसे बहुत से कार्य है जिनके लिये गौरव अनुभव किया जा सकता है। उनमें से सबसे महान गौरव पूर्ण कार्य था-एक ध्वजा के नीचे भारत के सभी धर्मो और जातियों को एकत्रित कर सकना, उनमें एकता उत्पन्न कर देना तथा साम्प्रादायिक और संकुचित प्रादेशिकता की भावना का समूल नाश कर देना।"

जब आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर लालकिलें में ऐतिहासिक मुकदमा चला तो कांग्रेस ने आजाद हिन्द सेना द्वारा देश को स्वतंत्र करने के लिए विदेशी सहायता लेने का समर्थन किया। इस मुकद्में में जब आजाद हिन्द फौज के तीन अधिकारी रिहा कर दिये गये तो इसका राजनीतिक महत्व बढ़ गया। राष्ट्रीय नेताओं एवं जनता ने इसका यही अर्थ लिया कि स्वाधीनता प्राप्ति के लिए विद्रोह करने के अधिकार को कानूनी मान्यता दे दी गयी है। इस मुकदमें से यह भी भ्रान्ति टूटी कि नेताजी जापानियों के एजेण्ट और फासिज्म में विश्वास करने वाले है। यह घृणित प्रचार अंग्रेजों द्वारा किया गया था। जिसका खण्डन मुकदमें से पहले तक किसी भी राष्ट्रीय नेता ने नहीं किया था। इस मुकदमें के पश्चात् नेहरू जी तक को मानना पड़ा-'मैं मुकदमें से पूर्व इस बात का अनुमान कर रहा था कि इसका देश भर पर भावात्मक प्रभाव पड़ेगा। लेकिन इससे देश पर जितना गहरा और विस्तृत भावात्मक प्रभाव पड़ा उससे में चकित हूं।"[1]

सुभाष बोस के सम्बन्ध में कुछ दस्तावेज

मैं तृतीय विश्व युद्ध की चरम सीमा पर भारत में आऊँगा।

19 दिसम्बर 1945 मंचूरिया रेडियों। (तत्कालीन बंगाल के गर्वनर आर0जी0 पेशी

1- Jawahar lal Nehru-An Autobiography-1962

के रेडियों-मानीटर श्री पी0सी0 कर द्वारा लिपिबद्ध किया गया वह रेडियो-भाषण जिसे नेताजी सुभाष बोस का बताया जाता है।

जापान के रनकोजी मन्दिर में रखी हुयी नेताजी की भस्की को अमेरिकन वैज्ञानिकों ने जानवर की राख बताया है।

'जब जापान सरकार ने नेताजी सुभाष बोस की एक तलवार भेंट करने के लिए अपना एक उच्च अधिकारी लेफ्निेन्ट जनरल फूजीवारा को भारत भेजा और यह समारोह कलकत्ते में आयोजित हुआ तो उसमें तत्तकालीन कांग्रेस सरकार ने भाग क्यों नही लिया ? उस आयोजन में अपना एक भी प्रतिनिधि क्यों नही भेजा?''

-20 मार्च, सन् 1967, संसत्सदस्य

समरगुहा का लोकसभा में वक्तव्य।

सत्ता-हस्तान्तरित करने से सम्बन्धित कागजात दस्तावेज सन् 1999 से पहले भारत सरकार को नहीं दिए जाएगे।[1]

-ल्यिूनार्ड मोसले

(ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन)

''मेरे प्रिय यंग,

बोस की कथित मृत्यु के सम्बन्ध में हमने यहां प्राप्त सूचनाओं की पूर्ण जांच कर ली है और परिणाम पूर्ण संन्तोषजनक नहीं निकला, क्योंकि इनके अनेक विरोध प्रकट होते है। जिन्हें जब तक स्पष्ट न कर लिया जाय, घटना पर कोई निश्चित परिणाम निकालने में सन्देह उत्पन्न करते है।.........1945 के 6 नवम्बर को सेक्सीया कमीशन रिपोर्ट नं0 1 का कथन है...............यह सन्देह रहित बात है कि वे बोस अपने आन्दोलन के चुने हुए साथियों के साथ भूमिगत हो जाना चाहते थे। इस कमीशन की पूर्व रिपोर्ट जो 18 अक्टूबर सन् 1945 को दी गई, बतलाती हैं जापानियों ने आवश्यक सुरक्षा (भूमिगत होने में) दी है।''[2]

-नई दिल्ली

19 फरवरी सन्' 46

(इंटेलिजेंस ब्यूरो)

1– वचनेश त्रिपाठी – अंगार पुरुष – सुभाषचन्द्र बोस– पृष्ठ 166

2- Sacrea Commission - Report No.1 - 6 November 1945.

★ यदि सुभाष अपनी आजाद हिन्द फौज के साथ भारत आते है और आगे बढ़ते है तो मैं तलवार लेकर उनका मुकाबला करूंगा।

-पं0 नेहरू

(रानीखेत, सन् 1945)

★ रूस से वापसी पर तत्कालीन प्रधानमंत्री पं0 नेहरू का सब सरकारी विभागों को एक गोपनीय पत्र

गुप्त संख्या 1552111

प्रधान कार्यालय-बम्बई उपक्षेत्र

कोलाबा, बंबई-6

11 फरवरी सन् 1949 ई0

विषय-नेताजी का चित्र

प्रमाणित किया जाता है कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का कोई फोटो प्रमुख स्थानों, यूनिट लाइसेंस, विनोद-गृहों, क्वार्टर-गार्डी, भोजनालयों आदि सरकारी महत्वपूर्ण स्थानों पर न लगाया जाय।

हस्ताक्षर, मेजर जनरल स्टाफ

पी0एन0 खडुवारी

टेलि-35081

एक्सटीएन 41

मेजर जनरल स्टाफ

★ 'मैं अपने साथ एक ऐसी सूचना लाई हूं जो देश को आश्चर्यचकित कर देगी और उससे प्राप्त होने वाला आनन्द उस आनन्द से कई गुना होगा, जो आजादी मिलने पर हुआ था।''

श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित,

नई दिल्ली सन् 1948

लोक सभा में प्रश्न (29 मार्च, सन् 1965)

★ संसत्सदस्य श्री विभूति मिश्र-'क्या अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार नेताजी सुभाषचन्द्र बोस पर ब्रिटेन की सरकार के विरूद्ध युद्ध करने का कोई आरोप है?

तत्कालीन विदेश मंत्री श्री स्वर्ण सिंह-भारत सरकार को यह मालूम नहीं है कि ब्रिटिश सरकार के खिलाफ युद्ध करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अर्न्तगत नेताजी सुभाष बोस पर कोई आरोप है।

श्री विभूति मिश्र-क्या वे भी युद्ध-अपराधी है ?

श्री स्वर्ण सिंह-जी नहीं।

जो नेताओं ने कहा !

18 अगस्त 1945 को जिस दिन नेताजी की कथित मृत्यु बतायी जाती है, देश के नेताओं ने निम्नलिखित बयान दिये–

- श्री शरतचन्द्र बोस ने, जो नेताजी के बड़े भाई थे, इस कहानी पर बिल्कुल विश्वास नहीं किया। उन्होने नेशन (Nation) नामक अखबार में 24 जुलाई, '49 को लिखा था कि, 'मेरा पूर्ण विश्वास है कि सुभाषचन्द्र बोस 'जीवित' है। अपनी यूरोप की यात्रा से लौटने पर बम्बई में पत्रकारों को अपना वक्तव्य देते हुए 22 जुलाई 49 को उन्होने कहा था–' I believe as I said before he is alive.

-Nataji Mystery revealed,'page8

- महात्मा गांधी ने भी इस दुर्घटना पर विश्वास नहीं किया। उन्होने कहा था, ''किसी और की लाश डाल दी होगी।'' और नेताजी के परिवार के सदस्यों को सलाह दी कि वे उनकी अन्तिम क्रिया–कर्म (जो हिन्दू परिवार में होता है) न करें। तार द्वारा उन्होने अमिय बोस को सूचित किया 'Hold mild prayers" अर्थात् साधारण प्रार्थना कर लें।

–'अभ्यूदय' भाग –39 पेज 21

- स्व0 पंडित मदनमोहन मालवीय ने नेताजी की मृत्यु पर उनके यहां तार दिया 'श्राद्ध स्थगित कर दो'' (Postpone the shradha) उन्होने एक प्रतिनिधि से यह भी कहा, ''यह विचार भी कि सुभाष मर सकते है, मेरी समझ में नही आता।''

–अभ्युदय, भाग–39 पेज–13

- आचार्य कृपलानी ने एक प्रतिनिधि को सुभाष की मृत्यु पर सन्देश मांगने पर कहा, 'सन्देश वह दे जो सुभाष की मृत्यु पर विश्वास करता हो मै तो मानता ही नहीं कि वे मर गए हैं, वे अभी मर ही नहीं सकते।''

- श्री चंद्रभानु गुप्त ने कहा, 'सुभाष बाबू की मृत्यु का समाचार संदेहास्पद है और उस पर विश्वास न किया जाना ही अधिक उचित प्रतीत होता है।''

- स्वर्गीय रफी अहमद किदवई ने कहा, 'सुभाष बाबू नहीं रहे, ऐसा यकीन करने का कोई खास सबब नहीं है।'' उन्होने आगे कहा था ''जो उन्हे 'गद्दार' कहते थे, वे देखेगे कि जिस दिन सुभाष बाबू हिन्दुस्तान की राजनीति में अपना उचित स्थान ग्रहण करने के लिए आएंगे, उस दिन सारा मुल्क उनका शाही इस्तकवाल करेगा।''

- स्व0 डॉ0 पट्टाभि सीता रमैय्या-'हवाई दुर्घटना में उनका एक बार समाचार और मिला था और सौभाग्य से वह गलत निकला। सुभाष बाबू की मृत्यु का समाचार जापानी सूत्रों से मिला था और लोग उस पर विश्वास नहीं करना चाहते थे। युद्ध समाप्त होने पर उनकी तलाश काफी की गई। यदि वे मर चुके है तो सागर की उत्तल तंरगों में चिंता की एकाकी लहरविहीन हो जाएगी, यदि वे जीवित है तो इस रहस्यपूर्ण व्यक्ति के यश में चार चांद लग जाएंगे।''

-कांग्रेस इतिहास खण्ड-3पेज-342

- सुरेश बोस, कलकत्ता (नेताजी जांच कमेटी के गैर-सरकारी सदस्य)-आपने नेताजी की मृत्यु पर असहमति की रिपोर्ट दी। सरकारी सहायता न मिलने पर भी आपने अपने पैसे से यह रिपोर्ट छपवाकर नेहरू सरकार को प्रस्तुत की। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि 'विमान दुर्घटना ने नेताजी की मृत्यु नहीं हुई।'

-Dissentient Report

- मौलाना अबुलकलाम आजाद-'यहां मैं एक अफवाह का जिक्र करना चाहता हूं जो क्रिप्स की आमद के वक्त गश्त कर रही थी। यह खबर गर्म थी कि सुभाष बोस एक हवाई हादसे में मारे गये। इससे हिन्दुस्तान में एक सनसनी फैली और दूसरे लोगों के साथ गांधी जी को भी इसका सदमा पहुंचा। उन्होने सुभाष बोस की बलिदान को एक ताजीती पैगाम भेजा, जिसमें उन्होने उनके लड़के की कौमी खिदमत का बहुत पुरजोश अन्दाज में जिक्र किया। बाद में

मालूम हुआ कि खबर गलत है। क्रिप्स ने मुझसे शिकायत की, वह यह नहीं समझते थे कि गांधीजी ऐसे शख्स सुभाष बोस के बारे में ज्जबात में इस जोश के साथ बात करेगे।''

-India wins freedom' page.89

- पं0 जवाहर लाल नेहरू-'मुझे अभी दम मारने की भी फुर्सत नहीं है। मैं समय मिलते ही नेताजी के विषय में कुछ लिख दूंगा।''

- ए0एम0 सहाय-'दूसरे दिन 23 तारीख को ए0एम0 सहाय यह समाचार लाए कि टोकियों रेडियों ने घोषणा की कि जो विमान नेताजी सुभाषचन्द्र बोस तथा कर्नल हबीर्बुरहमान को लिए जा रहा था वह 18 अगस्त को फारमूसा के ताईहोकू हवाई अड्डे में, जबकि वह हवाई अड्डे से उड़ने जा रहा था, टकरा गया। निःसन्देह इस समाचार ने हम लोगों को संदेह में डाल दिया, पर स्पष्ट कहा जाय तो हममे से किसी ने भी इसकी सच्चाई पर विश्वास नही किया।

- -आबिद हुसैन,'आजाद हिन्द फौज के सेनानी-नेताजी के प्राइवेट सेक्रेटरी तथा जर्मनी से पनडुब्बियों में जापान तक नेताजी के साथ जाने वाले आबिद हुसैन ने हबीब की कहानी पर विश्वास करने से इंकार किया। उन्हें विश्वास था कि नेताजी ने अगस्त सन् 45 में मंचूरिया से मिली रूस की सीमा सुरक्षित रूप से पा ली होगी।

-Unto Him a witness ,"273

- पी0के0 सहगल-सहगल का तर्क दूसरा था। वे हबीब के हाथों को तथा केवल उनकी ऊनी खाकी पोशाक के जलने के स्थानों को देखकर संतुष्ट नही हुए। वे कपड़े जो हबीर्बुरहमान लाल किले में पहने हुए थे, आग से बहुत कम जले हुए प्रतीत होते थे।

- Unto Him a witness,,"278

- बंगाल के मुख्यमंत्री श्री पी0सी0 सेन ने अपनी जापान की 18 दिन की यात्रा से लौटने के उपरान्त पत्रकारों को हवाई अड्डे पर उतरते ही बतलाया कि 'यात्रा के दौरान मुझे जापान के एक नागरिक श्री सेन नाम के व्यक्ति ने बताया कि रनकोजी के मन्दिर में रखी अस्थियां नेताजी की नही है। श्री सेन ने यह बात शाहनबाज कमीशन के सामने भी कही थी।

(साक्षी नं0 49)

डॉ0 सत्यनारायण सिन्हा के लेखों की एक लेखमाला कलकत्ता के दो प्रमुख दैनिकों में निकली है, उसमें उन्होने दावे से कहा है, मुझे चीनी सूत्रों से पता लगा है कि 18 अगस्त 1945 को ताईहोकू में कोई विमान दुर्घटना नहीं हुई।

ये दस्तावेज बोलते है

ठीक उस दिन जिस दिन की 'नेताजी जांच कमीशन' टोकियों पहुंचा, जापान के तत्कालीन विदेश मंत्री ने कहां, 'जापान के खुफिया फौजी अफसरों की सहायता से 'सुभाष चंद्र बोस' मंचूरिया होते हुए रूस पहुंच गए है।

➢ हर जगह भारतवासियों ने शोक मनाया, कुछ समय के लिए अर्द्धविश्वास के साथ कि किसी चमत्कार से पुनः जब उनकी बिल्कुल आशा न होगी नेताजी प्रकट हो जाएंगे और यह उनके गायब होने का नया खेल था और अब जबकि वर्ष गुजर गए हैं। कुछ लोग अब भी उनकी तलाश में हैं और वे क्षण-भर के लिए उन्हें एक ऐसे सन्यासी के वेष में जो स्वतंत्र भारत की पहाड़ियों और ग्रामों में घूमता है, देखते है।''

➢ 23 जनवरी सन् 1951 में नेताजी की वर्षगांठ मनाते समय तथा झंडारोहण करते समय श्री शाहनवाज खां ने यह विश्वास प्रकट किया कि वह लोग उनकी अगली वर्षगांठ मना रहे होगे, तो वे हमारे बीच वापिस आ जाएंगे।

-हिन्दुस्तान स्टैन्डर्ड 24-1-51, 'आनन्द बाजार पत्रिका' 25-1-51

➢ जांच समिति के तीसरे सदस्य तथा चेयरमैन श्री शाहनवाज खां का पश्चिमी बंगाल में एक अभूतपूर्व स्वागत हुआ था और वहां की महिलाओं ने अपने रक्त से तिलक किया था, उस वक्त कलकत्ता की सभा में -जहां लाखों लोग उपस्थित थे-शाहनवाज खां ने कहा था, 'नेताजी जीवित है' और वे अगले वर्ष आएंगे।''

-लोक सभा डिवेट- 24.11.61, पृ0 1095

➢ कर्नल हबीर्बुरहमान आई0एन0ए0 ने जो कि आजकल आजाद काशमीर (पाकिस्तान) में हैं, अभी हाल ही में गत वर्ष (23.1.61) को आजाद-कश्मीर रेडियों पर घोषणा की मैने जो ~~कुछ भी नेताजी के सम्बन्ध में कहा था वह समय के अनुसार तथा नेताजी की सुरक्षा की दृष्टि~~

से कहा था और अब में कहता हूं कि नेताज़ी अब भी जिंदा है और वे भारत में हैं।

-India Reformer, dated 19.4.68

➢ 10-12-64 को नई दिल्ली में फाइन आटर्स सोसायटी हाल में नेताजी के चित्रों की प्रदर्शिनी के अवसर पर एक सभा में जिसमें शाहनवाजखां भी थे, श्री उत्तमचंद्र मलहोत्रा ने अपना भाषण देते हुए श्री शाहनवाज साहब की ओर संकेत करते हुए पूछा, 'क्या आपने 1946 में, जब मैं रावपिंडी जेल से छूटकर आया था, नहीं कहा था कि ''नेताजी जीवित है' और वे पुनः राजनीति में अवश्य आएंगे।'' जब सभास्थल नेताजी जिन्दाबाद' के नारों से गूंज उठा तो शाहनवाज खां के चेहरे पर हवाइंया उड़ने लगीं। वे पसीने-पसीने होकर सभास्थल छोड़कर भागे। इस संबन्ध में यह समाचार 'हिन्दुस्तान टाइम्स, और पैट्रियाट देहली' से 11-12-64 को छपा। जब उनसे पूछा गया आपने इन्क्वायरी क्या की ? तो श्री खां साहब ने कहा कि मैने तो हबीर्बुरहमान के कहने पर विश्वास कर लिया था।

➢ संयुक्त समाजवादी दल के बुलंदशहर निवासी नेता श्री अब्बास ने एक विशाल आम सभा में वाराणसी में कहां कि हमारी केन्द्रीय सरकार नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के सम्बन्ध में कोई जांच नहीं करा रही है और इसके विपरीत विषम जटिलता दे रही है। श्री अब्बास साहिब ने क्रोधित मुद्रा में कहा कि वे स्वंय आजाद हिन्द फौज में एक जिम्मेवार अधिकारी की हैसियत से नेताजी के साथ रहें एवं यह सफेद झूठ है कि नेताजी की मृत्यु वायुयान दुर्घटना में हुई है, जबकि खुद उन्होने नेताजी को इस वायुयान दुर्घटना के 8 दिन बाद सिंगापुर में देखा ही नहीं अपितु घंटो बैठकर विभिन्न महत्वपूर्ण मामलों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श भी किया। श्री अब्बास ने शाहनवाज खां रिपोर्ट को एकदम बेबुनियाद और निराधार बतलाई।

➢ लोकसभा में जब श्री रंगा ने नेताजी का कोई स्मारक बनाने की पेशकश की इस पर श्री डी0सी0 शर्मा एम0पी0 ने कहा-,'इस पर डी0सी0 शर्मा (दीवानचंद्र शर्मा कांग्रेस) बहुत जोर से

हंसे। उन्होने कहा श्री रंगा साहिब नेताजी का कोई स्मारक बनाना चाहते है जबकि देश में बहुत से व्यक्ति उन्हें जीवित मानते है वह स्वयं भी उनमें से एक है।''

–शौलमारी साधु ही 'नेताजी' से उद्गत

चार साल पहले 14 मई 1999 को नेताजी के गुम होने के रहस्य से पर्दा उठाने के लिए जस्टिस मनोज चक्रवर्ती के नेतृत्व में मुखर्जी आयोग का कोलकाता में गठन हुआ था। शुरू में आयोग के सचिव बी0के0 सेन गुप्ता के घर से आयोग का काम शुरू हुआ और कई माह बाद 11 मिर्जागालिब स्ट्रीट के खाद्य भवन में आयोग का कामकाज चला। आयोग ने रहस्य पर से पर्दा उठाने के लिए जितना उत्साह दिखाया है उतनी ही उदासीनता केन्द्र सरकार ने दिखलायी है।

आयोग के लिए समस्या यह है कि नेताजी के रहस्य का पता लगाने के लिए केन्द्र की दिलचस्पी कम है। यहां तक कि खोसला आयोग के सामने प्रस्तुत किये गए दस्तावेज भी मुखर्जी आयोग को उपलब्ध नहीं कराये गये है। आयोग ने गृहमंत्रालय से जानना चाहा है कि रूस में नेताजी के जेल में रहने सम्बन्धी समाचार की सत्यता जानने के लिए क्या कदम उठाया गया है ? आयोग की कुल मिलाकर केन्द्र से पूरा सहयोग नहीं मिल रहा है ऐसे में आयोग के अध्यक्ष जस्टि्स मनोज मुखर्जी का क्षुब्ध होना स्वाभाविक है।

जस्टिस मुखर्जी के मुताबिक केन्द्र की कोताही से नेताजी के लापता होने के रहस्य से पर्दा उठाने में विलम्ब हो रहा है और यदि केन्द्र सहयोग नहीं देना चाहता तो इस तरह के आयोग के गठन की जरूरत ही नहीं है।[1] जापान के 90 वर्षीय चिकित्सक डॉन इयासूमी ने आयोग के सामने साक्ष्य देने से इन्कार किया है। जबकि डाक्टर इयासूमी ने नेताजी का मृत्यु प्रमाण-पत्र दिया था।

इधर नेताजी के लापता होने के रहस्य से पर्दा उठाने के लिए शोधकर्ता पूर्वी राय ने नेताजी भावना मंच का गठन किया है। नेताजी भावना मंच ने प्रधानमंत्री अटल बिहारी

1– राष्ट्रीय सहारा–नेताजी के गुम होने का रहस्य गहरा रही है केन्द की कोताही (सम्पादकीय) कोलकाता से दीपक सान्याल–2 अप्रैल 2002.

बाजपेयी द्वारा जापान दौरे के दरमियान रेनको जी मन्दिर पुस्तिका में नेताजी से सम्बन्धित जो बयान दिया गया था उस पर आपत्ति जताते हुए प्रधानमंत्री को पत्र लिखा था। पत्र का मजमून था कि 18 अगस्त 1945 में जापान के ताइहोकू हवाई अड्डे पर नेताजी की मृत्यु हुयी थी अथवा नही इसकी जांच चल रही है। ऐसे में प्रधानमंत्री द्वारा रेनको जी मन्दिर की पुस्तिका में नेताजी के प्रति अपने मंतव्य से आयोग की जांच प्रभावित होगी। नेताजी भावना मंच के उपरोक्त पत्र का जबाब प्रधानमंत्री के निजी सचिव ने दिया है।'' प्रधानमंत्री कार्यालय द्वारा भेजे गए पत्र में लिखा है कि-टोकियों में रेनको जी मन्दिर का महत्वपूर्ण अस्तित्व है। इस मन्दिर में नेताजी की मूर्ति स्थापित कर जापान ने नेताजी के कामकाज के प्रति अगाध श्रद्धा दिखायी है।[1] रेनको जी मन्दिर के प्रधानमंत्री द्वारा पुस्तिका में लिखे मतंव्य का कोई जिक्र नहीं है। कुल मिलाकर नेताजी के चिताभस्म-विवाद से प्रधानमंत्री ने बचने का प्रयास किया है।

पिछले चार सालों में आयोग कई बार सुनवाई कर चुका है। साथ ही आयोग की ओर से नियुक्त अधिकारी विभिन्न स्थानों में जाकर साक्ष्य और दस्तावेज की छानबीन कर रहे है। साक्ष्य देने वालों में आजाद हिन्द फौज की झांसी रानी बिग्रेड की मुखिया लक्ष्मी सहगल, नेताजी के निजी सचिव मंजर ई भास्करन, कर्नल प्रीतम सिंह, ब्रिटिश खुफिया सेना के अवकाश प्राप्त कर्नल ह्यूग टोय, नटवर सिंह, प्रणव मुखर्जी तथा नेताजी के रिश्तेदार शामिल है।

कुल मिलाकर आयोग को केन्द्र सरकार का पूरा सहयोग नही मिल रहा है और आयोग की मियाद बढ़ती जा रही है।

इस विषय पर विचार समाप्त करने से पूर्व एक अन्य भ्रम का भी निवारण करना आवश्यक है। वह भ्रमित धारणा यह है कि ब्रिटिश सरकार ने नेताजी को युद्ध अपराधी घोषित कर रखा है; सो नेताजी अपने-आपको छिपाए हुए हैं। यदि नेताजी स्वयं को प्रकट कर देते तो भारत सरकार को उन्हें इंग्लैण्ड को सौंपना होगा। इस बारे में तथ्य यह है कि सरदार पटेल ने लोकसभा में इस आशय की घोषणा की थी कि नेताजी का नाम युद्ध-अपराधियों की सूची में नहीं है। वे भारत आ सकते है। दिसम्बर 1970 में श्री मिर्धा

1- दीपक सान्याल-नेताजी के गुम होने का रहस्य गहरा रही है केन्द्र की कोताही ; राष्ट्रीय सहारा 2 अप्रैल 2002.

ने संसद में यही बात पुनः दोहराई थी। इन घोषणाओं के उपरान्त भी यदि नेताजी प्रकट नही हुए तो इसका अर्थ यही लगाया जा सकता है। कि वह जीवित नहीं है।

हम इस विषय में सभी तथ्यों को परखें, सरी साक्षियों पर आलोचनात्मक दृष्टि डालें और निर्णय करें कि हमारा विवेक क्या कहता है? विवेकपूर्ण विचार से शौलमारी फैजावाद और लालकिले की परिकल्पनाऐं ध्वस्त हो जाती है। पुख्ता प्रमाण के अभाव से हमारे सम्मुख दो परिकल्पनाऐं शेष रह जाती है। पहली यह कि नेताजी की मृत्यु तेहाकू अड्डे पर हुई वायुयान दुर्घटना में हो गयी थी या उन्हें रूस द्वारा कैद कर लिया गया था और स्टालिन के हत्यारे दस्ते द्वारा गोली से उड़ा दिया गया।

हमें तरह-तरह के इन प्रश्नचिन्हों को समाप्त करना होगा और पूर्ण विराम को तलाश कर नेताजी जैसे राष्ट्रीय नेता के व्यक्तित्व को राजनीतिक द्वंद्व-फंद से अलग कर आंकना होगा और उन्हें उचित सम्मान देना होगा। जो लोग नेतानी की हवाई दुर्घटना में मृत्यु से असहमत हैं, उन्हें सिद्ध करना चाहिए कि क्या नेताजी का जीवन कभी भी इतना भीरू रहा है कि वे छद्म रूप से जिए हों ? क्रान्ति की भाषा बोलने वाला व्यक्तित्व इतने वर्षो तक छिपकर नहीं रह सकता था। जब मातृभूमि स्वतंत्र हो गयी और देश संकट की स्थिति से गुजर रहा था तो नेताजी ऐसे अन्तिम व्यक्ति नहीं होते सकते जो दूर रहकर यह सब कुछ देखते रहते। इसके अतिरिक्त यदि नेताजी जीवित होते और पृथ्वी के किसी भी भाग मे क्यों न होते, वे निश्चित रूप से अपनी पत्नी ऐमली शैकिल और पुत्री अनीता बोस को पत्र अवश्य लिखते।

स्वतंत्रता के बाद सत्ता पर बैठे हुए नेतागण कभी भी यह नहीं चाहते थे कि नेताजी की मृत्यु के रहस्य का अनावरण हों। नेहरू जी पर तो यह भी आरोप लगाया जाता है कि उन्होने इस विषय में कोताही बरती और वे नेताजी के सम्बन्ध में जांच करवाने के अनिच्छुक थे। सच तो यह है कि हमारे तीनों आयोगो (शाहनवाज खां, खोसला, और मुखर्जी) ने नेताजी की मृत्यु की गुत्थी को सुलझाने की अपेक्षा और उलझा दिया। उन्होने इस विषय में इतनी विसंगतिया पैदा कर दीं कि नेताजी की मृत्यु का रहस्य और भी मजबूत तुंतुओं का जाल बनकर रह गया है। नेताजी की मृत्यु कहां और कैसे हुई यह कुछ ऐसी बात

है जिसे हम शायद कभी नही जान पाऐंगे।

बहरहाल नेताजी की मृत्यु किसी भी परिस्थिति में हुई हो, मगर वे अमर हैं। दुःख है कि हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने नेताजी के व्यक्तित्व की चमक को उनकी मृत्युपरान्त अनुभव किया। यह सब जानने की जरूरत हमें तब पड़ी जब हम नेताजी को खो चुके थे। यह इस देश की फितरत है कि यहां मृत्यु के बाद व्यक्ति का अंकन होता है, उसकी महानता का बखान होता है। इस महान नेता और कालजयी व्यक्तित्व को मृत्युपरान्त 'भारत-रत्न' आज भी नही दिया जा रहा है। सरकार को चाहिये कि नेताजी की मृत्यु सम्बन्धित भ्रम जाल की को निष्पक्ष कार्यवाही द्वारा समाप्त करें।

कुछ अनुत्तरित प्रश्नों ने बार-बार अनेक विचारकों के मन को विकल किया हैं। सर्वविदित है कि सुभाष बोस ने ब्रिटिश सरकार के हाथों बहुत अन्याय सहा था। किन्तु देश के आजाद होने के बाद, यानी स्वतंत्र भारत की भारतीय सेना के मेजर जनरल स्टाफ पी0एन0 खंडुआरी के हस्ताक्षरों से बम्बई हैड-क्वार्टर्स (मुख्यालय) से 11 फरवरी 1949 के (कॉन्फिडेन्शियल एम0 155211-1) 'फोटोज' शीर्षक नोट में चौका देने वाला परामर्श दिखाई पड़ा जो इस प्रकार था 'सुभाष चन्द्र बोस की फोटो, यूनिट लाइन कैन्टीनों क्वार्टर-गार्ड या रिक्रियेशन कक्षों में न लगाये जायं। इतने महान नेता के लिए इस प्रकार का आदेश विवेक सम्मत प्रतीत नही होता प्राप्त सूचना सूत्रों के अनुसार उनका चित्र संसद भवन में प्रधान मंत्री लालबहादुर शास्त्री के प्रशासन-काल में पहली बार लगाया गया था।

1950 में भारत के प्रथम गृह मंत्री सरदार बल्लभ भाई पटेल ने ताया जिनकिन (रिर्पोटिंग इंडिया:114-15) से समालाप के दौरान कहा था कि जो अफसर सुभाष चन्द्र बोस की 'आजाद हिन्द फौज' में जाकर भर्ती हो गये थे, उन्हे पुनः पद स्थित न करने की सावधानी वरती गयी है और यह भी ध्यान रखा गया है कि यह लोग राजनीतिक क्षेत्र में आगे न बढ़ सके। ताया जिनकिन के अनुसार पाकिस्तान में आजाद हिन्द फौज के अफसरों पर ऐसा कोई लांछ्न आरोपित नहीं किया गया था। बल्कि कालान्तर में कई ऐसे अफसरों से उनकी भेंट भी हुयी थी। जो आजाद हिन्द फौज में रह चुके थे। भारत सरकार की इस सावधानी और आक्षेपपूर्ण नीति के पीछे क्या कारण था। यह आज भी स्पष्ट नहीं हो पाया।

ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश लोग देश छोड़ने से पहले स्वतन्त्र भारत सरकार के मस्तिष्क में सुभाष चन्द्र बोस तथा उनकी फौज के प्रति संशय का कीट प्रविष्ट करने में सफल रहे। अथवा शायद दो सौ वर्षो तक पराधीनता से कुण्ठित देशवासियों की दास मनोवृत्ति इसके पीछे क्रियाशील थी-

जापान में कदाचित आज भी सुभाषचन्द्र बोस परम श्रद्धा, सम्मान एवं स्नेह के भाजन है।

वास्तव में नेताजी जैसे अप्रतिम व्यक्तित्व किसी सम्मान या पुरुस्कार के मोहताज नहीं होते। उनका सबसे बड़ा पुरस्कार यही है कि वे जन-जन के हृदय सम्राट है।

उपसंहार

उपसंहार

वातावरण तथा परिस्थितियों से निरपेक्ष सशक्त एवं सुदृढ़ व्यक्तित्व के स्वामी नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के समोहन से निकलना उनके मित्र-बन्धुवर्ग, सहकर्मी, किसी के लिए भी सम्भव न था। उनके बाल-सहचर दिलीप कुमार राय की दृष्टि में सुभाष शक्ति के दुर्ग, पवित्रता के प्रकाश स्तम्भ थे। स्वप्न दृष्टा थे। आजाद-हिन्द फौज के मेजर जनरल शहनवाज खां का कहना था, "मुझे अब तक भी नहीं मालूम कि मनुष्य, सिपाही और राजनीतिज्ञ का उनमें किस-किस अनुपात में सम्मिश्रण था। घर पर उनका मानवीय रूप हावी रहता। मोर्चे पर और फौज के बीच सेनानी का श्रेष्ठ तेज भासमान होता तथा कैंसिल कॉन्फ्रेन्सों और आजाद-हिन्द की अस्थायी सरकार पर पीठासीन उनका प्रतिभा-सम्पन्न राजनीतिज्ञ...........हममें से प्रत्येक पर एक-सा प्रभाव डालता।"

कहते हैं योगी अपने पद से स्खलित होकर भोगी बन जाता है। परन्तु वे आजीवन न तो योग अध्यात्म से तटस्थ हुए न युद्ध मोर्चे से पराड्.मुख। उनके सहकर्मी गिरिजाकुमार मुखर्जी का कहना था कि वे बहुत सादगी पसन्द इन्सान थे। आदत के हिसाब से बहुत सफाई पसन्द थे-अल्प भाषी, कामकाज में दक्ष। उनकी दिन चर्या इतनी व्यस्त रहती कि भोजन करना तक भूल जाते। अपने अति व्यस्त जीवन में भी चिन्तन के लिए क्षण निकाल लेते। सिंगापुर के संघर्षशील वातावरण से अवकाश निकालकर वे प्रायः रामकृष्ण मिशन के अनुयायियों से मिलने पहुंच जाते। कभी-कभी देर रात को मिशन में जाकर रेशमीं धोती से सुज्जित प्रार्थना-कक्ष में कई-कई घण्टे ध्यानस्थ रहते।

यौवन मनुष्य को जीवन के आनन्द और ऐश्वर्यो की तरफ बरबस खीचता है किन्तु सुभाष बोस किशोरावस्था में ही योग-साधना और आध्यात्मिक चिन्तन में लीन रहने लगे थे। जिस आयु में छात्र खेल के मैदान में थक-हार कर घर लौटते है, वे घर में बैठे संस्कृत-पाठ पढ़ते। मात्र सोलह वर्ष की आयु में किसी पथ-प्रदर्शक गुरू की खोज में तीर्थ स्थानों का दौरा करने निकल पड़े थे। श्वेतांग अंग्रेजों के दुर्व्यवहार से चिढ़ते थे। उन्होने प्रोफेसर ओटेन साहब के दुराचरण पर आपत्ति की थी। उनके विरूद्ध गवाही देकर कालेज से भी निष्कासित कर दिये गये। जिस जमाने में यानी 1920-1921 में भारतीय-सिविल-सेवा की चमक-दमक से चौधियाये भारतीय छात्र परीक्षा पास करके अपने को समाज के विशिष्ठ वर्ग का अंश समझने लगत `थे, बोस ने यह पद-त्याग दिया था और राजनीति मे कूद पड़े थे कभी न निकलने के लिए।

सुभाष बोस की राजनीति सम्बन्धी धारणा, मान्यता, लक्ष्य-उद्देश्य सबकी एक धुरी

थीं–भारत की आजादी! आंधियां आयी और शान्त हो गयीं। वे लक्ष्य से कभी नहीं डिगे। जिस समय गांधीजी राजनीतिक पट्भूमि पर सर्वेसर्वा महामहिम पद पर आसीन थे, विचार, चिन्तन एवं क्रिया–विधि के अन्तर से वशीभूत बोस उनसे भी टक्कर ले बैठे। लक्ष्य–प्राप्ति के लिए राजनीति में प्रवेश किया तो मुड़कर नहीं देखा। उनके क्षोभ और क्रोध की भागीदार थी ब्रिटिश सरकार। अध्यादेशों और अधि–नियमों का उल्लंघन करके निरन्तर कारा–दण्ड झेलते रहे। स्वास्थ्य के प्रति सदैव उदासीन रहे।

1933 में ब्रिटिश–सरकार ने रोगी सुभाष बोस को 'सबसे खतरनाक' व्यक्ति मानकर भारत से बाहर स्विट्जरलैण्ड भेद दिया। अपने उद्देश्य–पूर्ति के लिए उन्होने देश में चौतरफा लड़ाई लड़ी। त्रिपुरि कांग्रेस में बहु–विरोध के बाबजूद अध्यक्षता ग्रहण की। उन्हें इस पद की लालसा केवल इसलिए थी कि उन्हें कांग्रेस को अविलम्ब आन्दोलन प्रारम्भ करने के लिए बाध्य करने का अधिकार मिल जाता। वे विश्व–युद्ध अवधि से लाभ उठाकर ब्रिटिश सत्ता पर अचूक आघात करना चाहते थे। यूरोप प्रवास–अवधि में बोस विश्व–भर के इतिहासों का आलोड़न कर भारतीय आन्दोलन का सबसे उत्तम मार्ग चयनित करने का मनोभाव बनाते रहे। उनकी धारणा मूलबद्ध होती गयी कि कोई भी गुलाम देश विदेशी–सैन्य–शक्ति की सहायता बिना स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकता।

ब्रिटिश सरकार के हाथों जुल्म सहकर, जेल की सलाखों के पीछे से बोस देश की आजादी की योजना बनाते रहे और पहले मौके पर भारत जैसी बड़ी जेल ने निकल भागे। माता–पिता, भाई–बन्धु आदि का महत्व उनके जीवन में नगण्य रह गया। रोग से दुर्बल व्यक्ति को जब डॉक्टर पूरे आराम की सलाह देते है सुभाष बोस काबुल पहुंचने के लिए कबायली इलाकों की कठिन पहाड़ी पग–डण्डियों से कभी पैदल, कभी ट्रक पर, कभी चाय की पेटियों से लदी ट्रक के ऊपर सर्दी में ठिठुरते सीमा पार कर रहे थे। जर्मनी–प्रवास के प्रारम्भिक चार–पांच महीनों में आजाद–हिन्द–संघ, आजाद–हिन्द फौज तथा आजाद हिन्द रेडियों कायम करके दम लिया। प्रतीक्षा के ये चार पांच महीने उनके लिये बड़े भारी पड़ गये थे। हिट्लर और जर्मन–सरकार की पर–राष्ट्र नीति से निराश, धुरी–शक्ति द्वारा युद्धोपरान्त भारत–स्वतंत्रता की घोषणा में बिलम्ब देख बोस जर्मनी से भी भागने को अधीर हो उठे। विश्वयुद्ध का समय था जर्मनी से जापान तक पनडुब्बियों का जल पोतों द्वारा स्थानान्तरित होकर यात्रा करना कितना विकट था किन्तु बोस को प्राणों की परपवाह ही कहा थी! नब्बे दिन बाद जापान पहुचकर जल्द ही आजाद–हिन्द–संघ, आजाद–हिन्द–रेडियों केन्द्र, आजाद–हिन्द फौज कायम कर ली।

सुभाष बोस निर्भीक, दुःसाहसी और स्पष्टवादी थे। वे आदेश सुनने के आदी नहीं

थे, आदेश देते थे। गांधी जी के शब्दों में बोस 'अप्रतिरोध थे। अपने कर्म के प्रति चेतना और अद्वितीय कर्मठता थी। 21 अक्टूबर 1943 को सुभाष बोस को आरजी हुकूमते आजाद-हिन्द की स्थापना के अवसर पर वक्तव्य देना था। उनके प्रचार-मंत्री एस0ए0 अय्यर ने अन्टु हिम ए विटनेस (269) में लिखा है कि 'उन्होने कुछ सादे कागज उठाये। तेजी से पेन्सिल चलानी शुरू की कागज पर कागज भरते रहे। एक बार भी पलट कर न पिछला पन्ना देखा न कोई सुधार किया, न कागज पर से आंख हटाई। पन्ना पूरा करते ही टाइप को भेज देते है। टाइप होने के बाद भी न कोई शब्द बदला गया, न कोमे लगाये गये। करीब छह बजे सबेरे तक घोषणा पत्र तैयार था।

सुभाष बोस के अनुशासन-बद्ध जीवन में कही कोमलता भी छिपी थी। सुदृढ़ता में कही नमनीयता भी थी। आजाद-हिन्द फौज के सैनिकों के साथ व्यवहार में उनकी सहृदता का सर्वाधिक परिचय मिलता है। सैनिकों के उत्साहबर्धन के लिये वे केन्द्रों का बराबर चक्कर लगाते रहते। उन्हें आजादी का महत्व समझाते। सुभाष बोस तो अपनी मातृ-भूमि को स्वतंत्र कराने की कामना से निस्संग क्रान्ति पथ पर आरूढ हो चुके थे। उनकी पत्नी एमिली बोस तथा ढ़ाई मास की पुत्री अनीता का स्नेह तक उनके पांवों में बेड़िया डाल सका।

सुभाष बोस ने स्वदेश का बहुपक्षी दृष्टि से गहरा अध्ययन किया था। वे जानते थे 200 वर्षो से जो देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा रहा हो, उस दीन-पीड़ित देश का चारित्रिक स्खलन सहज स्वाभाविक है। भारत देश में जहां निर्धनता, भुखमरी, रोग, सूखा, बाढ़ निरन्तर ताण्डव नृत्य करते रहे हो, जिस देश में 90 प्रतिशत अक्षर-ज्ञानहीन है, जिस देश को आजादी का अर्थ तक विस्मृत हो चुका है इसके लिए बोस की निशचित योजना थी बे जमीदारों और रियासतों का उन्मूलन चाहते थे। देश में औद्योगिक क्षेत्र का विकास, लघु उद्योगों आदि को प्रोत्साहित करने के आकांक्षी थे। गांधी जी की चर्खे की योजना उन्हें जरा भी पसंद नही थी। गांधी जी का औद्योगिक विस्तार का विरोध बोस को तर्कहीन लगता था। बोस का कहना था कि गांधी जी चाहते है कि हम बैल-गाड़ी के युग में लौट जायें। -'भारत में हम कर्मयोग चाहते है। कार्य के दर्शन को हम पसंद करते है क्योकि हमें वर्तमान में रहना है। हम विश्व से अलग-थलग अपने दरवाजों व खिड़कियों को बंद करे नहीं रह सकते। स्वतंत्र भारत को आत्म निर्भर होना पड़ेगा।''

भारत देश के सर्वतोमुखी उन्नयन के सम्बन्ध में उनकी निश्चित कार्य-प्रणाली को सर्वप्रथम वाणी मिली थी- हरिपुरा कांग्रेस मंच के अध्यक्षीय पद से उन्होने अपने भाषण में निर्धनता का उपचार, जमीदारी का उन्नमूलन, औद्योगिक विकास, कृषक वर्ग को आर्थिक

सहायता, अकाल और बाढ़ के लिये वैज्ञानिक साधनों का उपयोग, अशिक्षा दूर करने के लिये हिन्दुस्तानी राष्ट्र भाषा-'रोमनलिपि स्वीकृति आदि पर प्रकाश डाला था। वे भारत की दीर्घ जीवी संस्कृति तथा पुरातन परम्पराओं के प्रशंसक थे। बोस की धारणा थी कि भारत की परंपरा अपनी संस्कृति की छत्र-छाया में पली-बढ़ी है, उसे सुरक्षित रखना हर देशवासी का कर्तव्य है। बेरोजगारी और भुखमरी से मुक्ति के लिए आबादी की रोकथाम अनिवार्य है। देश की समस्याओं को दूर करने तथा समुचित विकास के लिए 1938 में जवाहर लाल नेहरू के संरक्षण में 'नैशलन प्लैनिंग कमीशन भी स्थापित की थी।

सुभाष बोस जाति भेद-भाव तथा धार्मिक संकीर्णताओं को देश की अखण्डता एवं एकता में बाधक मानते थे। जनता के हृदय से इन्हें समूल नष्ट कर देना चाहते थे। बोस का कहना था कि ब्रिटिश सरकार ने प्रशासकीय सुविधा के लिए 'बाँटो और राज्य करो' की नीति से हिन्दू मुसलमान दोनों जातियों में भेद-भाव उत्पन्न कर दिया। देश में बढ़ते हुए साम्प्रदायिक भाव से वे संत्रस्त थे। भारत-निवास के दौरान उन्होने पूर्व घोषणा थी कि यदि हालत न सुधरी तो देश का विभाजन अवश्यम्भावी है। अन्ततः यह पूर्व-घोषणा प्रमाणित हो गयी। साम्प्रदायिकता के विरोध का सबसे बड़ा प्रमाण आजाद हिन्द में मुसलमानों की प्रचुता थी। बोस का उन पर अटूट विश्वास था। विमान दुर्घटना के समय उनके एकान्त साथी हबीर्बुरहमान खां मुसलमान थे।

इसी प्रकार बोस देश में फैली हुयी धार्मिक संकीर्णता को भी अवहेलना की दृष्टि से देखते थे। आविद हसन सफरानी ने 'द मैन फॉम इम्फॉल (13) में बताया है कि सिगांपुर में चेट्टियार मंदिर के महन्त अपने कुछ सहयोगियों के साथ सुभाष बोस को दशहरा-उत्सव के उपलक्ष में निमंत्रण देने आया। बोस ने अपनी सहयोगियों को साथ ले जाने की इच्छा प्रकट की जिसे महन्त ने मना कर दिया.......इस पर बोस आवेश में बोल उठे,'क्या ? दूसरी जाति की बात तो छोड़िये आपके मंदिर में अन्य हिन्दू जातियों का प्रवेश निषेध है ! मैं वहां आऊँ ? कभी नही............कदापि नहीं।''

सुभाष बोस के विचार में स्वतत्रंता का अभिप्राय था-सामाजिक, व्यक्तिगत, प्रादेशिक और धार्मिक स्वतंत्रता वे भावी स्वतंत्र भारत द्वारा अखिल विश्व की सम्राज्यवाद से मुक्ति का स्वप्न देखते थे। उन्होने भावी स्वतंत्र भारत का स्वप्न देखा था जिसे चरितार्थ करने के लिए वे स्वदेश छोड़कर सुदूर पूर्व परदेश चले गये थे। सिडनी जी0स्मिथ के शब्दों में उनका वह स्वप्न ठोस धरती पर पांव जमायें हुये था। (ड्रीमर ऑफ ड्रीम्सः 'द डैकेन हैरेल्ड 23 मार्च 1978) उस स्वप्न को सार्थक करने के लिए वे किसी भी साधना का उपयोग करने के लिये पक्षपाती थे।

बोस गांधीजी के अहिंसात्मक आन्दोलन से सन्तुष्ट नही थे। कारण कि विदेशी-राष्ट्रों के क्रान्तिकारी आन्दोलन से उन्हें शिक्षा मिली थी कि दासत्व से मुक्ति के लिए शस्त्र सैन्य शक्ति प्रयोग अनिवार्य है। आजादी को बलपूर्वक, रक्त बहाकर, पीड़ा सहकर, पूर्ण त्याग द्वारा पाया जा कसता है। वे गांधी जी का सार मर्म' नहीं बल्कि पूर्ण स्वराज्य' चाहते थे। वे कांग्रेस मंच से बार-बार इस पर जोर देते रहे। वे गांधी जी के बिटिश सरकार के 'हृदय-परिवर्तन की प्रत्याशा को आदर्शवादी दुर्बलता मानते थे। उनके समक्ष विश्व के सारे राष्ट्रीय इतिहास साक्षी थे कि कोई भी शासक अपने अधीन औपनिवेशिक क्षेत्र को आसानी से नहीं छोड़ता। गुलाम देश को उसे बलपूर्वक छीनना पड़ता है अपने प्राणों की बाजी तक लगानी पड़ती है।

सुभाष बोस पर आतंकवादी या साम्यवादी अथवा उग्र-राष्ट्रिकहोने का आरोप बे-बुनियाद है। वे 'वाद' की किसी धारा में बन्द ही कहाँ थे। सुभाष बोस तो सैन्य-शक्ति से पोषित सशस्त्र क्रांति चाहते थे-वह भी देश को स्वतंत्र कराने के लिए। बोस सही मायनों में स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्हें जर्मनी, इटली ,रूस, जापान किसी से हार्दिक प्रेम नहीं था। ये सब देश, इनका महत्व, केवल सोपान के समान था जिस पर आरूढ़ हो वे देश को मुक्त करा सकें। भारत-निवास अवधि में उनके जर्मनियों से सम्पर्क की गुप्त सूचना पाकर गाँधीजी विचलित हो उठे थे। इसलिए गाँधी उनको अध्यक्ष पद से हटाकर ही शान्त हुए थे।

1938 की, सुभाष बोस की अध्यक्षता का हवाला देते हुए जवाहरलाल नेहरू ने 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया'(369)में लिख था कि बोस को कांग्रेस का ऐसा कोई काम पसन्द नहीं था जो जापान या जर्मनी या इटली का विरोधी हो। पर कांग्रेस तथा देश-व्यापी मनोभाव के कारण उन्होंने कभी विरोध या आपत्ति नहीं उठायी।तात्पर्य यह कि जर्मनी, जापान और इटली जैसे राष्ट्रों की भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति में निश्चित् भूमिका हो सकती थी कम से कम बोस की यही धारणा थी।

भावी आजाद भारत के ढाँचे के सम्बन्ध में सुभाष बोस की निश्चित् परिकल्पना थी। 10 जून 1933 को तृतीय भारतीय राजनीति कांन्फ्रेंस लन्दन, में उनका निबन्ध पढ़ा गया था। उसमें उन्होंने लोकतंत्रीय शासन की वकालत करते हुए कहा था कि स्वतंत्र भारत पूँजीपति,जर्मीदार और जाति-भेद का धरातल नहीं बनेगा। वहाॅ सामाजिक एवं राजनीतिक गणतंत्रात्मक राज्य बनेगा। उन्होंने साम्यवादी संघ की स्थापना करनी चाही थी। वे आजाद भारत को समाजवाद की ओर उन्मुख देखने के आंकाक्षी थे। किन्तु समाजवाद सम्बन्धी उनकी धारणा नेहरू या कांग्रेस की समाजवादी पार्टी से भिन्न थी। उन्होंने फॉरवर्ड ब्लॉंक में समाजवाद के आदर्श रूप का संकेत भी दिया था। उनका कहना था कि समाजवाद तो पश्चिमी देश

में भी प्रगतिशील है किन्तु समाजवाद के बारे में भारत की अपनी पुरातन परम्पराँए है। इतिहास की कड़ियाँ टूट जाने के कारण देश उन्हें भुला बैठा है। स्वस्थ समाज में वे पुरुष और महिला दोनों वर्गो की समान भूमिका अनिवार्य मानते थे।

सुभाष बोस की मनोकामना थी कि देश का प्रत्येक युवा नियमित सैन्य-प्रशिक्षण प्राप्त करें जिससे भविष्य में भारत की अपनी अनुशासन-बद्ध-राष्ट्रीय सेना हो। बोस छात्रों का राजनीति में भाग लेना इसलिए जरूरी समझते थे कि भावी चिन्तक और राजनीतिज्ञों का प्रादुभवि इसी वर्ग के आश्रित है। इसलिए स्वदेश और विदेश में छात्र वर्ग को निरन्तर कर्तव्यों के प्रति सचेत करते रहे।

सुभाष बोस भावी-आजाद-भारत के स्वस्थ शासन के लिए कमाल पाशा जैसे नेता के हाथ में देश की बागडोर थमाना चाहते थे। कारण किसी सशक्त सत्ता के बिना न तो अखण्ड भारत का विकास सम्भव था और न ही संकट की घड़ी में वह विदेशी आक्रान्ता का मुकाबला कर सकता था। पर राष्ट्र-नीति के बारे में उन्होंने स्पष्ट किया था कि भारत का ब्रिटेन से कोई व्यक्तिगत बैर नहीं है। देशवासियों का वर्तमान मनोभाव मात्र सामयिक है। जब भारत स्वतंत्र होकर ब्रिटेन या अन्य राष्ट्रों के समकक्ष तथा सम-स्तर पर आसीन हो जायेगा तब यह बैर भाव मैत्री में परिणत हो जायेगा। आजाद भारत को विदेशी-राष्ट्र-शक्तियों के साथ 'तटस्थ-नीति' अपनानी होगी। बोस द्वारा प्रतिपादित इसी तटस्थता की नीति को स्वतंत्र भारत की विदेश नीति का एक आधार भूत अंग बनाया गया।

सुभाष बोस के प्रत्येक शब्द, प्रत्येक प्रक्रिया, प्रत्येक योजना से उनका स्वदेश की मुक्ति के प्रति पूर्ण समर्पण-भाव प्रतिभासित होता है। बोस अपने को देश सेवक मानते थे। इसे उन्होंने जीवन के हर पड़ाव पर बचन और कर्म द्वारा प्रमाणित कर दिया था। वे अपनी इस निःस्वार्थ देश सेवा का प्रतिदान नहीं चाहते थे। पद की उन्हें कोई कामना नहीं थी। 5-6 नवम्बर 1944 को जब तोजो ने 'डायट' में उन्हें आजाद हिन्द के भावी सर्वे-सर्वा कहा तो बोस की उत्तेजना का कोई अन्त न था। वे अपने एक निष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कभी'मोहम्मद जियाउद्दीन' पठान बने, कभी इटैलियन' ओरेलाण्डो मजाये' और कभी 'मल्सुदा' ।

भारत से जर्मनी, जर्मनी से जापान और वहाँ से रंगून। उन्होंने जापान द्वारा घोषित 'फर्स्ट ऑर्डर आफ द राइजिंग सन्' सर्वोत्तम उपाधि पदक लेने से भी इन्कार कर दिया था। मंचुरिया में स्वयं को रूस के हवाले करने की योजना उनके त्याग की पराकाष्ठा थी। उन्होंने गाँधी जी से अपने अन्तिम सन्देश में स्पष्ट कर दिया था कि आजादी हासिल करने के बाद बहुत से लोग राजनीति से निवृत्ति लेना चाहेंगे।'' इस उक्ति में बोस की परवर्ती

जीवन–योजना का स्पष्ट आभास था। 1939 में 'फॉरवर्ड ब्लॉक' का संगठन कांग्रेस के विरोध
ी–दल पार्टी की तरह नहीं बल्कि कांग्रेस की शक्ति–सामार्थ्य को सहारा देने के निमित्त किया गया था। बोस साम्राज्यवाद विरोधी, अतिवादी तथा प्रगतिशील वर्गो को ब्लॉक के संरक्षण में एकत्र करना चाहते थें जिससे कांग्रेस की कार्य–पद्धति में किसी वर्ग का विरोध न रहे। बोस की कारा–रुद्ध–अवधि में भी ब्लॉक ने कांग्रेस को सर्तक एवं सचेत रखकर ''चौकीदार'' का दायित्व निभाया था।

किन्तु सुभाष बोस की अधीर मनोवृत्ति एवं व्यग्रता उनकी लक्ष्य प्राप्ति में अभिशाप बन गयी। यह अधैर्य भारत में उनके राजनीतिक जीवन में बाधक सिद्ध हुआ। कांग्रेस के अध्यक्षीय पद से ही नहीं, बंगाल–प्रादेशिक–कांग्रेस–कमेटी,यहाँ तक कि कांग्रेस सदस्यता से भी निकलना पड़ा। गाँधी जी के साथ उनके मत–वैषम्य की भी इसमें भूमिका रही। गाँध
ी जी के बार–बार आन्दोलन–स्थगन पर बोस के क्षोभ का कोई अन्त न था। वे विश्व–युद्ध अवधि में सशक्त भारतीय आन्दोलन प्रारम्भ करना चाहते थे। उन्हें यह सर्वथा उपयुक्त अवसर प्रतीत हुआ। त्रिपुर–कांग्रेस–मंच से उन्होंने ब्रिटिश–सरकार को मात्र दस महीने की अवधि देने का प्रस्ताव पारित करना चाहा था जबकि गाँधी जी, अपनी नरम नीति के वशीभूत, इस अवसर को उचित नहीं मानते थे। बोस गाँधी जी के मनोभाव से सहमत तो न हुए, उनकी नरम नीति के सामने नत भी नहीं हुए, देश छोड़कर निकल गये।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने जापान में 'सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी'रास बिहारी की सहायता से आजाद हिन्द फौज की स्थापना की।'आजाद हिन्द सेना की बढ़ती शक्ति को देखकर जापानी मद्दगार अचम्भित रह गये। उन्होंने चालाकी से हवाई जहाजों की सहायता बन्द कर दी, दूसरी ओर वर्षा भी प्रारम्भ हो गयी। जिससे सेना का आगे बढ़ना कठिन हो गया। बरसात खत्म होने के बाद जनवरी 1945 को सुभाष बोस के नेतृत्व में दूसरा हमला किया गया। जहाँ पर जापानी फौजो ने विश्वास घात किया। जापान के दो प्रमुख नगरों नागासाकी तथा हिरोशिमा पर अमेरिका ने बम वर्षा कर दी। जिससे वहाँ पर तबाही मच गयी और जापान हार गया। ऐसी स्थिति में आजाद हिन्द फौज की आशाओं पर पानी फिर गया।

वर्मा की पराजय तथा फौज की दयनीय दशा में वापिसी भी, उनकी मनोकामना, उनका स्वप्न, उनकी लक्ष्य प्राप्ति की इच्छा को खण्डित नहीं कर सकी। बोस यह सोचते रहे कि दक्षिण–पूर्वी एशिया में चाहे जो हो चुका हो , वे रूस की सहायता से भारत–भूमि पर पहुँचकर देश को अवश्य स्वतंत्र करा सकेंगे, किन्तु भाग्य ने उनके साथ धोखा किया, न वे मंचुरिया पहुँच सकें और न ही अपने को रूसियों के हवाले करने की घड़ी आयी। रास्ते में ही प्राण गँवा दिये।

सुभाष बोस की विमान–दुर्घटना के ठीक दो वर्ष बाद 14 अगस्त 1947 को सुभाष चन्द्र बोस का जीवन–स्वप्न साकार हो गया। हिन्द–आजाद होकर विश्व के मानचित्र पर अंकित हो गया।

सुभाष चन्द्र बोस के एकान्त–लक्ष्य के प्रति पूर्ण–समर्पण–भाव, उनके मत–वचन एवं कर्म की सदाशयता को नकारा नहीं जा सकता। उनका व्यक्तित्व एक प्रकाश–स्तम्भ, एक उल्का–पिण्ड था। युद्ध क्षेत्र में उनके अनमनीय सेनानी रूप का, घर में विनम्र, हँसमुख व्यक्तित्व से कोई तालमेल न था। उनके सहकर्मियों तक के लिए वे एक अबूझ पहेली थे। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव ऐसा रहा कि उनके सामने कोई सह–कर्मी, कोई सैनिक , कोई कॉमरेड उनके आदेश का उल्लंघन नहीं कर पाता था। उनके अफसर प्रयास के बाबजूद उनकी अधीरता, उनकी व्यग्रता को काबू में नहीं कर पाये । उन्होंने वर्मा छोड़ दिया और फिर दो ही दिन बाद अतीत में विलीन हो गये। एस0 राधाकृष्णन् के शब्दों में,'उनका निर्भीक साहस, उनका प्रमत्त निरातंक समर्पण, उनका कष्ट, उनका त्याग, भारत स्वतंत्रता आन्दोलन की पुरातन गाथा का अंश बन चुका है। भावी सनतित उनकी विस्मयोत्पादक जीवनी को गर्व और श्रद्धा से पढ़ेगी , उन्हें महान योद्धा के रूप में प्रणाम करेंगी जिन्होंने भारत के नव प्रभात का सन्देश दिया था।''

परिशिष्ट

APPENDIX

जीवन-तालिका

1897-	23 जनवरी	कटक में जन्म्।
1902-	जनवरी	प्रारम्भिक शिक्षा का आरम्भ
		प्रोटेस्टेंट योरोपियन स्कूल में प्रवेश।
1909-	जनवरी	रेवेनशा कॉलेजियट स्कूल में प्रवेश
1912-		राजनीतिक जागृति उत्पन्न हुई
1913-	मार्च	मैट्रिकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की। कॉलेज शिक्षा का आरम्भ
		प्रेसीडेन्सी कॉलेज में भर्ती।
1914-	जुलाई	बीमार पड़े
1915-		इण्टर में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए।
1916-		कॉलेज से बहिष्कृत कर दिए गए।
1917-	जुलाई	स्कॉटिश चर्च कॉलेज में पुनः प्रवेश
1919-		समुद्री जहाज द्वारा इग्लैण्ड रवाना।
1919-		वी0ए0 दर्शन में उत्तीर्ण।
1919-	25अक्टूबर	इग्लैण्ड पहुंचे।
1919-	नवम्बर	कैम्ब्रिज में भर्ती।
1920-	सितम्बर	आई0सी0एस0 की परीक्षा उत्तीर्ण।
1921-	22अप्रैल	आई0सी0एस0 से त्यागपत्र।
1921-	16जुलाई	स्वदेश वापस।
		बम्बई पहुचे।
		उसी दिन प्रथम बार गांधी जी से मिले।
1924-	मार्च	कलकत्ता कारपोरेशन के चीफ एक्जिक्यूटिव अफसर के पद पर नियुक्ति।
1924-		अलीपुर जेल भेजे गए।
1925-	जनवरी	माण्डले जेल भेजे गए।
1927-	16मई	स्वास्थ्य खराब होने के कारण छोड़ दिए गए।
1927-	दिसम्बर	कांग्रेस के महासचिव तथा सर्वदलीय समिति
		के सदस्य बनाये गए।
1933-	11मार्च	इलाज कराने बियना की यात्रा पर गये।
1933-	मई	बियना से बर्लिन और रोम की यात्रा।
1934-		इण्डियन स्ट्रगिल का प्रकाशन
1935-	मार्च	फिर योरूप रवाना।
1936-		हिट्लर से भेंट।
1936-	8अप्रैल	बम्बई पहुंचे।

		हवाई अड्डे पर गिरफ्तार।
1937-	17 मार्च	रिहा कर दिये गये।
1938-	फरवरी	हरिपुरा कांग्रेस के अध्यक्ष बनाये गए।
1939-	मार्च	जबलपुर कांग्रेस की अध्यक्षता की।
1940-	2 जुलाई	ब्लैक हॉल के विरोध में आन्दोलन किया।
1940-	नवम्बर	गिरफ्तार हुए।
1940-	दिसम्बर	रिहा कर दिये गये।
1941-	16 जनवरी	सुभाष बोस का भारत से पलायन।
1942-	जून	आजाद हिन्द फौज की स्थापना।
1943-	21 जून	टोक्यो रेडियो पर बोले।
1943-	6 जुलाई	सिंगापुर की सार्वजनिक सभा में भाषण। भारत की आजादी के लिए सम्पूर्ण रूप से युद्ध की घोषणा की।
1943-	12 जुलाई	झांसी रानी रेजीमेन्ट बनाई, जिसकी कैप्टन लक्ष्मी सहगल थी।
1943-	21 अक्टूबर	अस्थाई सरकार की उद्घोषणा।
1943-	24 अक्टूबर	अस्थाई सरकार ने इग्लैण्ड और अमेरिका के विरूद्ध युद्ध की घोषणा की।
1943-	24 अक्टूबर	इस सरकार को जापान, वर्मा, जर्मनी, क्रोशिया, चीन, इटली, थाइलैण्ड, मंचुरिया और दूसरे देशों ने भी मान्यता दे दी।
1943-		जापान सरकार ने अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह अस्थाई सरकार को सौंप दिये।
1943-	31 दिसम्बर	अण्डमान और निकोबार का नाम बदलकर 'शहीद' और 'स्वराज्य' द्वीप रखा गया।
1944-		आई0एन0ए0 ने इम्फाल, कॉक्स बाजार, नागालैण्ड, कोहिया पर अपना झण्डा फहरा कर इन स्थानों को स्वतंत्र करा दिया।
1945-	7 जनवरी	सिंगापुर से रेडियो प्रसारण।
1945-	21 जनवरी	रास बिहारी बोस की मृत्यु।
1945-		जापान ने वर्मा से अपनी फौजे हटा लीं।
1945-	15मई	नेताजी पैदल बैंकाक पहुंचे।
1945-	6,9 अगस्त	जापान के हिरोशिमा और नागासाकी पर बम वर्षा।
1945-	14 अगस्त	जापान ने मित्र राष्ट्रों के सामने समर्पण।
1945-	16 अगस्त	नेताजी सैगॉन होते हुए फारमोसा पहुंचे।
1945-	18 अगस्त	महाप्रयाण।

आजाद-हिन्द-सेना का गीत

शुभ सुख चैन की बरसा बरसे,
भारत भाग है जागा।
पंजाब-सिंधु-गुजरात-मराठा-
द्राविड़, उत्कल बंगा।
चंचल सागर विंध्य हिमालय,
पावन यमुना, गंगा।
तेरे नित गुण गाएं, तुझसे जीवन पाएं,
सब जन पाएं आशा।
सूरज बनकर जग पर चमके
भारत नाम सुभागा।
जय हो, जय हो, जय हो,
जय-जय-जय-जय हो।
भारत नाम सुभागा-।।1।।
साँझ सबेरे पंख-पखेरू, तेरे ही गुण गाएं।
बास भरी से सुखद हवाएं, जीवन में रूत लाएं।
सब मिल हिंद पुकारे, जय आजाद हिंद के नारे।
प्यारा देश हमारा।
सूरज बनकर जग में चमके, भारत नाम सुभागा।
जय हो, जय हो, जय हो, जय-जय-जय-जय हो।
भारत नाम सुभागा।।2।।
सबके दिल में प्रीति बसास तेरी मीठी वाणी।
हर सूबे के रहने वाले, हर मजहब के प्राणी।
सब भेदों का फर्क मिटाकर,
सब तेरी ही गोद में आकर।
गूंथे प्रेम की माला।
सूरज बनकर जग में चमके भारत नाम सुभागा।
जय हो, जय हो, जय हो, जय-जय-जय-जय हो।
भारत नाम सुभागा।।3।।

जय हिन्द!

1– बचनेश त्रिपाठी, अंगार पुरूष सुभाष चन्द्र बोस–पृष्ठ 110, अखिल भारतीय 3014 चर्खेवालान, दिल्ली–110006

मार्च सांग

कदम-कदम बढ़ाये जा

खुशी के गीत गाये जा।

ये जिन्दगी है कौम की

तू कौम पर लुटाये जा।

तू शेर-ए-हिन्द आगे बढ़

मरने से फिर भी तू न डर।

आसमान तक उठा के सर

जोशे वतन बढ़ाये जा।

कदम-कदम बढ़ाये जा

खुशी के गीत गाये जा।।

तेरी हिम्मत बढ़ती हरे

खुदा तेरी सुनता रहे।

जो सामने तेरे पड़े

वो खाक में मिलाये जा।

कदम-कदम बढ़ाये जा

खुशी के गीत गाये जा।।

'चलो दिल्ली' पुकारके

कौमी निशां सम्भाल के।

लाल किले पे गाड़ के

लहराये जा लहराये जा।

कदम-कदम बढ़ाये जा

खुशी के गीत गाये जा।।

सुभाष के नाम पत्र

रोम्यां रोला
बिल्लेनिबे (वौड) हिला ओल्गा
22 फरवरी, 1935

प्रिय श्री सुभाष चन्द्र बोस,

आपके द्वारा कृपा करके प्रषित 'दि इण्डियन स्ट्रगल 1920-35' नामक पुस्तक प्राप्त हुई। इसके लिए मेरा हार्दिक धन्यवाद और बधाई स्वीकार करें। यह पुस्तक हमें इतनी अच्छी लगी कि मैंने अन्य (दो) प्रतियों के लिए आदेश दे दिया है ताकि मेरी पत्नी और मेरी बहन एक-एक प्रति अपने पास रख सकें। भारतीय इतिहास की स्वतंत्रता-संग्राम से सम्बन्धित यह अपरिहार्य पुस्तक है। इसमें आपने इतिहासकार के सर्वोत्तम गुणों का परिचय दिया है-जैसे स्पष्टता और निष्पक्षता। बिरले ही ऐसी स्थिति देखी जाती है कि आप जैसा सक्रिय (राजनीतिक कार्यकर्ता) व्यक्तिगत दलगत स्वार्थ से ऊपर उठकर निष्पक्ष रूप से कोई वर्णन प्रस्तुत कर सके।

मैं हृदय से चाहता हूं कि आपका स्वास्थ्य शीघ्रता से भारत की भलाई के निमित्त सुधार प्राप्त करे, क्योंकि आज उसको आपकी महती आवश्यकता हैं। साथ ही मैं प्रार्थना करता हूं कि आप मुझ पर विश्वास करें। मेरी हार्दिक सम्भावनाएं आपके साथ हैं।

जो सुभाष बाबू ने सुनाया

-सरदार बलवंत सिंह

(भू0पू0 अधिकारी-प्रशिक्षक आजाद हिन्द फौज)

आजाद हिन्द फौज में मुझे नेताजी के नेतृत्व में काम करने का सौभाग्य मिला है। उनकी बहुत सी बातें याद आती हैं। एक बार उन्होने मुझे जनतंत्र के सम्बन्ध के बहुत ही प्रेरणाप्रद संस्मरण सुनाया। उस संस्मरण में यह राज छुपा हुआ है कि हिन्दुस्तान में किस तरह डेमोक्रेसी यानी जनतंत्र को कामयाब बनाया जा सकता है। नेताजी ने बताया कि मैं एक बार जापान के एक होटल की ऊपरी मंजिल में बैठा हुआ था। खिड़की खुली हुई थी। अचानक मैने देखा कि बेशुमार बच्चों की कतारें बाकायदे अनुशासित शक्ल में नीचे आम सड़क से गुजर रहीं है। कोई शोरगुल नहीं।

मुझे अचरज हुआ। कतार बाधे हुए ये बच्चे कैसी खामोशी से फौज की तरह बढ़ते जा रहे हैं। और फिर उसी समय मुझे अपने देश की याद आयी, अपने देश के बच्चों की याद आयी।

जापान में उस दिन मेरा पहला भाषण होने वाला था। वकौल होटल वालें क़े यह सब बच्चे उसी के लिए जा रहे थे।

उसके बाद कलांतर से एक दिन जनरल तेजो (जापान के सर्वेसर्वाथे) से मेरी भेंट हुई तब मुझे उस दिन का दृश्य याद आ गया। मैने उनसे पूछा-"मैं वह स्कूल देखना चाहता हूं जहां आपके देश के बच्चों को इतने अनुशासित ढंग से चलना-फिरना सिखाया जाता है। हम लोग एक स्कूल में गये। किसी बच्चे को कोई जिज्ञासा नहीं कि कौन आया है। वे जैसे पढ़ रहे थे, पढ़ते रहे। अध्ययन-अध्यापन में कोई अंतराय नहीं आ सका। उनकी वह तल्लीनता क्षण भर को भंग नहीं हुई। अनुशासन का यह एक भव्य रूप ही है जो जापान के नागरिक जीवन का एक जरूरी हिस्सा बन चुका था।

इस घटना का हवाला देकर नेताजी ने मुझसे यह कहा कि मेरी दिली ख्वाहिश है कि जब हिन्दुस्तान आजाद हो, तो पहले बीस साल तक सब बच्चों को सैनिक जीवन के अनुशासन की शिक्षा जरूरी तौर से दी जाय, साथ-साथ पढ़ाई भी चलती रहे, क्योंकि जापान में मैने यही देखा कि अनुशासन ही नागरिक जीवन को सफल और यशस्वी बनाता है। इस शिक्षण के बाद ही भारत में जनतंत्र की व्यवस्था व्यवहार्य बनाई जा सकेगी। और आज सोचता हूं कि नेताजी का वह विचार भारत सरीखे देश के लिए शत-प्रतिशत उपयोगी है।

जब नेताजी अचानक लुप्त हुए

-किरणचन्द्र दास

('लाहौर-केस के शहीद यतीन्द्र दास के अनुज)

गृह विभाग दिनांक 29 जनवरी 41 के दस्तावेज की प्रतिलिपि

"सुभाष बोस का तिरोधान हो जाना आजकल सबसे रुचिकर विषय है। 26 जनवरी के मध्याह्न के बाद उन्हें नहीं देखा गया। गोपनीय सूचनाओं से संकेत मिले है कि जब 25 जनवरी को गोपिका विलास सेन और कविराज विमलानंद सुभाष बोस से मिलने गए तो उन्होने देखा कि नेताजी सन्यासी के रूप में, स्वल्प कपड़ो से व्याघ्र-चर्म पर बैठे थे। उन्होने मौन धारण कर रखा था, अतएव वे कुछ बोले नहीं। इसके ये कारण हो सकते है-

वह अपने को सन्यास-मार्ग से च्युत पाते हों, क्योंकि उनकी जन्म-कुंडली में लिखा था कि 46 वे वर्ष में वे सन्यासी हो जाएंगे। 44वॉ जन्म दिवस मनाकर हाल ही उन्होने 45 वें में कदम रखे थे।

अचानक लुप्त हो जाना उनका एक सुनियोजित कार्य रहा हो। सुभाष बोस के भतीजे अरबिंद बोस ने अपने एक पत्र में (उ0प्र0 फारवर्ड ब्लाक विद्यार्थी संघ के बल़राम सिंह के नाम लिखे गए) 23 जनवरी को होने वाले सम्मेलन में सम्मिलित हो पाने में असमर्थता व्यक्त की है। उन्होने यह भी लिखा है कि 'वे इस विषय में कोई कारण नहीं देना चाहते, क्योंकि जल्दी ही लोगों को वह मालूम हो जाएगा।

इस पत्र से यह ध्वनित होता है कि अरविन्द बोस 23 जनवरी को सुभाष बोस के लुप्त हो जाने की अपेक्षा रखते थे।"

22 जनवरी 41 का दस्तावेज-

इंटेलिजेंस ब्यूरों के डायरेक्टर ने 28 जनवरी को सुभाष बोस के विषय में कलकत्ता की स्पेशल ब्रांच से एक तार पाया। पहली बात यह कि 10 दिन पूर्व नेताजी जापान या रूस के लिए प्रस्थान कर चुके थे, दाढी बढ़ाए हुए तथा कृत्रिम पासपोर्ट के आधार पर। दूसरी बात यह कि उन्होने हॉगकॉग के लिए प्रस्थान किया हो, 17 तारीख को एक नौका के द्वारा, जिसका नाम था-'थायीसुंग' (Thaisung) ब्यूरो के डायरेक्टर सुदूर पूर्व में जांच करने के लिए प्रयत्न कर रहे है।

गृह विभाग के अतिरिक्त सविच का नोट, दिनांक 31 जनवरी 41

यह सूचना पाकर हम बंगाल सरकार के पास जा सकते थे, जो सब बातों के बाबजूद इस मामले से प्रारंभिक रूप से सम्बद्ध थी। मेरा विचार यह नहीं कि भारत सरकार बिना किसी संदर्भ के उन पर कार्यवाही कर सकती थी। इन्फार्मेशन ब्यूरे के डायरेक्टर ने खोज

बीन से यह पता लगाया था कि 'थायीसुंग' हांगकांग जाने को उद्यत अंग्रेजी नौका है-जहां उसे 30 या 31 तारीख को पहुंचना था। पेनॉग और सिंगापुर भी इसे जाना था।

यह संदिग्ध प्रतीत होता है कि सुभाष बोस एक ऐसी ब्रिटिश नौका पर आरूढ़ हों, जिसे अंग्रेजी बन्दरगाह पर बुलाया गया हो।

ये नोट्स अतिरिक्त सचिव के है; दिनांक 3.2.41

'हमें भी रूचि है, वास्तव में बंगाल की अपेक्षा यह ज्यादा रूचिकर है। मेरा विचार है हमे डायरेक्टर इन्फार्मेशन ब्यूरो की सलाह पर काम करना चाहिए। यदि प्रारूप तार उपयोगी है, मेरा विचार है- इसे जारी करना चाहिए। हमने विदेश कार्यालय से युद्ध अपराधियों के बारे में कुछ ऐसे ही तार पाए है और उन्हें गिरफ्तार करके रोक लिया है, जब वे भारत आ गए।

क्या डायरेक्टर इन्फार्मेशन ब्यूरों ने तार जारी करने की संतुति की है ? यदि ऐसा है तो जारी करो।' 7 मार्च 1941 को दी गई एफ0एच0 पुकले की निम्नलिखित रिपोर्ट के बाद सुभाषचन्द्र बोस के विषय में खोजबीन समाप्त कर दी गई।

सुभाष बोस ने अनुमानतः 28 फरवरी को आजाद हिन्द स्टेशन से अपना भाषण प्रसारित किया। यह स्टेशन उत्तरी जर्मनी में 31.61 मीटर पर है किन्तु वायुमंडलीय स्थितियों के कारण सुना नहीं जा सका।

'कल 5 बजे सांय, हमने सुभाष चन्द्र बोस जब रेडियो पर, (जिसे हम पहचान न सके कि कहां का है) 6.31 मीटर वैड पर बोल रहे थे, उसके आधे घंटे बाद सुभाष बोस का परिचय हिन्दुस्तानी में आजाद हिन्द को कराया गया। पुनः जब वे बोले, उन्होने ब्रिटिश की आलोचना की, जैसा वे सामान्य रूप से करते हैं। कांग्रेस की उत्साहहीनता की भी आलोचना की और किसी भी राष्ट्र के साथ सहयोग करने की तत्परता की घोषणा की, जो भारतीय स्वाधीनता प्राप्त करने में हमारी सहायता करें।'

उक्त साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने भारत से निकलने की ऐसी सुदृढ़ मार्ग योजना बनाई थी कि ब्रिटिश इंटेलिजेंस सपने में भी इस मार्ग-योजना का मूल्य तब तक न जान सका, जब तक कि कलकत्ता फारवर्ड ब्लाक के अध्यक्ष स्व0 सरदार शार्दूल सिंह कवीश्वर से उनकी भेंट न हो गई।

यह भी स्पष्ट है, कि अकेले वे ही प्रलोभनों से बचकर तत्कालीन अंग्रेजों के शत्रुओं की सक्रिय सहायता से मातृभूमि को सशस्त्र संग्राम के द्वारा स्वतंत्र कराने में लग सके। और यदि वह आज भी जीवित हों तो क्या कोई उनकी उपस्थिति को अनिवार्य मानकर उन्हे लाने में सफल हो जाएगा ? या उन्हें अपना स्वामी स्वयं होने के लिए छोड़ दिया जाएगा ? नेताजी चिरायु हों।

जयहिन्द

गांधी जी पर सुभाष बोस के क्रान्ति प्रयासों का प्रभाव

मौलना अबुल कलाम आजाद

26 जनवरी, सन् 1941। पता चला कि सुभाषचन्द्र बोस भारत से बाहर चले गये। तभी मार्च 1941 में संदेह का सारा कुहासा नष्ट हो गया जब सुभाष बाबू की आवाज बर्लिन रेडियो पर एक दिन सुनाई पड़ी। जर्मनी पहुंचकर वे तत्परता से ब्रिटिश विरोधी मोर्चे की तैयारी कर रहे थे। इसी बीच, भारत में हो रहे ब्रिटिश कार्यकलापों के विरुद्ध जापान के भारी प्रचार का प्रभाव भारतीय जनता पर भी पड़ा। किन्तु गांधी जी का विश्वास था कि जर्मनी और जापान की विजय नहीं होगी।

इस सम्बन्ध में मेरा मत गांधी जी से भिन्न था। उनके साथ चर्चा करते हुए मैने अनुभव किया कि वे उपर्युक्त प्रसंग में अधिकाधिक सशंकित होते जा रहे थे। तभी मैने देखा कि सुभाष बोस के भारत से बचकर निकलजाने का उन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। पहले बोस के अनेक कार्य गांधीजी को रूचिकर नहीं प्रतीत होते थे, लेकिन मुझे लगा अब उनके दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन हो गया है। भारत से बाहर जाने में सुभाषचन्द्र ने जिस अपूर्व साहस का परिचय दिया था, उसके लिए गांधीजी ने उस समय उनकी बड़ी प्रशंसा की। उनकी इस प्रशंसा के सारे वातावरण को एक विचित्र हौसले से सराबोर कर दिया।

इसेक कुछ समय बाद जब यह समाचार आया कि एक विमान दुर्घटना में सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु हो गयी, तब भारत में एक गहरी तनावपूर्ण हलचल मच गई और स्वयं गांधीजी भी इस गंभीर विपत्ति से आंदोलित हुए बिना न रह सके। सुभाष बोसकी पूजनीय मां के नाम भेजे गए एक शोकपत्र में उन्होने उनके बेटे द्वारा की गई भारत माता की सेवाओं की भूरि-भूरि सराहना की थी। बाद में पता लगा कि मृत्यु संबंधी यह समाचार गलत था।

उस समय मि0 क्रिप्स ने मुझसे यह शिकायत थी कि उन्होने गांधीजी जैसे व्यक्ति से यह अपेक्षा नहीं की थी कि वे सुभाष बोस के विषय में इतने जोश-खरोश से बोलेगे। गांधीजी का अहिंसा में पक्का विश्वास था। जबकि सुभाष बोस खुले रूप में सशस्त्र संघर्ष के पक्ष में थे।

(इण्डिया विन्स फ्रीडम से साभार)

आखिर स्वीकार किया कि 'नेताजी को देशद्रोही कहना भूल थी'

-मुख्यमंत्री ज्योति बसु (बंगाल)

सन् 1978 में पश्चिम बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री ज्योति बसु ने प्रथम बार स्वीकार किया कि नेताजी को 'देश द्रोही' कहना भारतीय कम्युनिस्टों की भूल थी।''

एक रैली में श्री ज्योति बसु ने कहा कि 'नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के बारे में कम्युनिस्टों का अनुमान गलत सूचना पर आधारित था। अब हमें महसूस हो रहा है कि नेताजी सुभाष न तो फासिस्ट थे और न कम्युनिस्टों के विरोधी।'[1]

1— वचनेश त्रिपाठी, अंगार पुरुष–सुभाष चन्द्र बोस ; पृष्ठ 114

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

★ मौलिक ग्रन्थ :-

Books by Subhas Chandra Bose (In English)

1- All power to the Indian people, (1939-40)] Compiled by the Forword bloc office, calcutta.

2- An Indian pilagrim : An unfinished Autobiography and collected letters-(1897-1921), translated from Bengali and (Ed.) Sisir Kumar Bose, Nataji Research Bureau, Callutta, 1962. and 2nd ed. Asia Publishing house, Bombay 1965.

3- Blood Bath, Narayan Menon (Ed.) The Indian Independence League, Singapore, 1944.

4- Correspondence (1924-32), Collection of letters, Calcutta, Netaji Research Buseau, 1967.

5- Crossroads : The work of subhas chandra Bose 1938-40, ed, sisir K.Bose Calcutta, Nataji Research Bureau, 1981.

6- Famous Speeches and writings of subhas Bose, Ganpatrai (Ed.) Lohore, Lion press 1946.

7- Importent speeches and writings of subhas Bose, J.S. Bright, (Ed) Lahore, The Indian Printing works. 2nd Ed, 1947.

8- Nataji's life and writings : Autobiography by subhas chandra Bose (1897-1920), Calcutta, Thacker, spink and Co, 1948.

9- On to Delhi : Collection of war time speeches, (Ed) The Indian Independence League, Singapore, 1944.

10- Selected Speeches, S.A. Ayer, (Ed) Delhi Publications Division, Government of India,1955

11- Selected Speeches of subhas chandra Bose, New Delhi, Publications Division, Government of India, 1962. rev.ed., 1974

12- Testament of Subhas Chandra Bose, being the complete and authentic record of Nataji's broadcast speeches (1942-45) Arun/Ed) Delhi, Rajkamal Prakashan 1946.

13- The Indian Slruggle (1920-42), Sisir Bose and sugata Bose (Ed) oxford University press 1997.

14- The Indian Struggle (1935-42), Calcutta, Chuckerverty, Chatterjee & Co. 1952.

15- Total Mobilization in East Asia, Narayan Menon, (Ed) The India Independence leage, singapore, 1944.

Books by Subhas Chandra Bose (in Bengali)

16- Biswas, R.N., Aami Subhas Bolchi, Calcutta. 1970

17- Dutta, Charu Bikash, Chattogram Astragaar Lunthan, Calcutta

18- Gupta Anand prasad, Chattogram Bidroher kahini, Calcutta.

19- majumdar, Nepal, Rabindra Nath O subhas chandra, Calcutta 1935.

20- Sailesh Roy, Aami Subhas Bolchi.

21- Singha, Ananta, Chattogram Juba Bidroha, Calcutta.

★ **सहायक ग्रन्थ-**

22–	मन्मथ नाथ गुप्ता	भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास	आत्माराम एण्ड संस दिल्ली–6 / 1986
23–	अ0अ0 अनन्त	सुभाषचन्द्र बोस	आधुनिक प्रकाशन / दिल्ली –53
24–	आशा गुप्ता	निस्संग क्रान्ति पथिक (सुभाष चन्द्र बोस)	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
25–	एन0जी0जोग	इन फ्रीडम्स क्वेस्ट	ओरियण्ट लॉगमैन्सफ / 1969
26–	गाना पुली	नेताजी इन जर्मनी	भारतीय विद्या भवन / 1960
27–	अलेक्जेण्डर वर्थ और हैरविक वाल्टर	नेताजी इन जर्मनी	नेताजी रिसर्च ब्यूरो कलकत्ता 23 जनवरी 1970
28–	पट्टाभि सीतारमैय्या	हिस्ट्री ऑफ दी इण्डियन नेशनल कांगेस (1885–1935)	पदमा पब्लिकेशन बम्बई 1937–47
29–	जवाहर लाल नेहरू	एन ऑटो वायोग्राफी	एलाइड पब्लिशर्स बम्बई 1962
30–	दिलीप कुमार रॉय	नेताजी दी मैन	भारतीय विद्या भवन बम्बई 1960

31–	सचीन्द्र नाथ सान्याल	वन्दी जीवन	
32–	सरल श्रीकृष्ण	राष्ट्रपति सुभाष चन्द्र बोस	साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली
33–	वीरेन्द्र ग्रोवर	सुभाष चन्द्र बोस	दीप एंड पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1990
34–	पट्टाभि सीता रमैय्या	कांग्रेस का इतिहास	पदमा पब्लिकेशन बम्बई 1946–47
35–	हीरालाल सेठ	पर्सनालिटी एण्ड पॉलिटिकल आइडियास ऑफ सुभाष	हीरो पब्लिकेशन, 1943 लाहौर
36–	माइकिल एडवार्डस	द लास्ट ईयर्स ऑफ ब्रिटिश इन्डिया	लन्दन जेल सेन्टर 1967
37–	अनन्त, अशफाक अहमद	क्रान्ति का देवताःसुभाष चन्द्र बोस	
38–	राम गोपाल	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास	भारत बुक सेण्टर 17, अशोक मार्ग लखनऊ 1996
39–	श्रवण कुमार	नेताजी सुभाष चन्द्र बोस	हिमाचल पुस्तक भण्डार, सरस्वती भंडार, गांधीनगर, दिल्ली 2000
40–	राजशेखर व्यास	सरहद पार सुभाष (क्या सच : क्या झूठ)	हरीराम द्विवेदी पांडुलिपि–प्रकाशन 77/1 ईस्ट आजाद नगर दिल्ली–1998
41–	शैलेश डे, अनुवाद ममता खेर	मैं सुभाष बोल रहा हूं (प्रथम भाग)	रवीन्द्र प्रकाशन 3/1वी0के0 वनर्जी मार्ग, इलाहाबाद 1992
42–	,,	(द्वितीय भाग)	,,
43–	,,	(तृतीय भाग)	,,
44–	सुधीर शर्मा	भारत के कर्णधार	साहित्य प्रकाशन मालीवाड़ा दिल्ली 1988
45–	डा0 गिरिराज शरण	सुभाष ने कहा था	प्रतिभा प्रतिष्ठान, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 1996
46–	डा0 वीरेन्द्र शर्मा	आधुनिक भारतीय राजनैतिक विचारधाराये	रस्तोगी पब्लिकेशन शिवाली रोड, मेरठ

47–	डा0वी0पी0 शर्मा	आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन	लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशन एवं विक्रेता हास्पीटल रोड आगरा, 2060
48–	रिमाण्ड रनवेल	टाइगर शकेल	
49–	सत्य शकुन	मैं तुम्हे आजादी दूंगा भाग–1	आशा साहित्य केन्द्र जी–10 सेक्टर–22, नोएडा (यू0पी0)2001
50–	,,	,, भाग–2	,,
51–	सं0 वचनेश त्रिपाठी	अंगार पुरूष सुभाषचन्द्र बोस	अखिल भारतीय, 3014 चर्खे वालान, दिल्ली, 1998
52–	लियोनार्ड भोसले	भारत में ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिन	आत्माराम एण्ड संस 1992 द सेन्ट्रल इलैक्ट्रिकल प्रेस, दिल्ली–6
53–	एम0पी0 कमल	नेताजी सुभाष चन्द्र बोस (भारत के वीर सपूत)	राजा पॉकेट बुक्स / 2002 330 / 1 मेन रोड बुराड़ी, दिल्ली 2002
54–	सुभाष चन्द्र बोस हिन्दी रूपान्तर छेदीलाल गुप्त	तरूणाई के सपने	भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली 2001
55–	जवाहर लाल नेहरू	डिस्कवरी ऑफ इण्डिया	एलाइड पब्लिशर्स बम्बई
56–	जवाहर लाल नेहरू	गिल्मपसिज इण्डिया ऑफ दी वर्ल्ड हिस्ट्री	,, 1962
57–	सरोजनी नायडू	वर्ल्ड ऑफ टाइम गोल्डेन थ्रेस डार्क चेम्बर	
58–	मोहन दास करम चन्द्र गांधी	सत्य के साथ मेरे प्रयोग	बनारस 1952
59–	आर0सी0 अग्रवाल	भारतीय संविधान का विकास एवं राष्ट्रीय आन्दोलन	नई दिल्ली 1982
60–	रामशंकर त्रिपाठी	आजाद हिन्द फौज	कलकत्ता
61–	आर0कूपलैण्ड	कास्टीट्यूशनल प्राब्लम ऑफ इण्डिया	साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
62–	एन0वी0खरे	मेरी राजनीतिक यादगारे	नई दिल्ली 1959
63–	रजनी पामदत्त	आज का भारत	नई दिल्ली 1977
64–	आर0सी0प्रधान	इण्डियन स्ट्रगल फार स्वराज्य	
65–	व्यथित ह्रदय	स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी सेनानी	सामयिक प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली 1982
66–	के0के0 बोस	भारतीय राष्ट्रीय सेना	मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन 1969

67–	काली प्रसन्न चौधरी	नेताजी और भारत	शिलांग प्रेस 1956
68–	कैलाशचन्द्र जैन	भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास	नई दिल्ली 1990
69–	पुखराज जैन	भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन	साहित्य भवन आगरा 1982.
70–	नेत्रचन्द्र पाण्डेय	भारत वर्ष का सम्पूर्ण इतिहास भाग–दो	इलाहाबाद 1965
71–	प्यारे लाल	महात्मा गांधी विद लास्ट फेस (भाग–2)	
72–	नरसेन जी	कांग्रेस प्रेसीडेन्ट एड्रेसेज	मद्रास
73–	हमेन्द्रनाथ दास गुप्ता	सुभाष चन्द्र बोस	ज्योति प्रकाशन कलकत्ता 1946
74–	बेनी प्रसाद	इण्डियन हिन्द मुस्लिम प्राब्लम	
75–	सूर्य नारायण सक्सेना	नेताजी सम्पूर्ण वाड्मय भाग–1	1982
76–	गिरिराज शरण	सुभाष ने कहा था	प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली 1996
77–	गिरिराज शरण	क्रान्तिवीर सुभाष	डायमण्ड पॉकेट बुक्स प्रा०लि०दिल्ली

Books On Subhas Chandra Bose (in English)

76- Arun, (Ed) Tastament of Subhas Chandra Bose, being the complete and autthentic record of Netaji's broadcast speeches, 1942, 45, Delhi Rajkamal Publications 1946,

77- Ayer S.A. (Ed) story of the INA Delhi Indian National Book trust, 1942.

78- Ayer, S.A. (Ed) Selected Speeches, Delhi Publications Division, Government of India,1955

79- Ayer, S.A. Unto Him A Witness, Bombay, Thacker and Co., 1951.

80- Basu Shanklar Prasad, Rabindranath and Subhas Chandra

81- Bose, Amiya Nath, Bose Borther and the Indian freedom struggle, Calcutta, Sarat Bose Academy Publicatins. 1983

82- Bose Dr. Ashok Nath, Hy uncle Netaji, Calcutta, 1977.

83- Bose, Mihir, The lost Hero, London, Quartet Books, 1982.

84- Bose, Sisir Kumar (ed-in-chief), A Beacon Across Asia : A Biography of Subhas Chandra Bose, New Delhi, Orient Longaman, 1973.

85- Chatto Padhyay, Gautam, Subhas Chandra Bose-A Biography, New Delhi NCERT 1997.

86- Dhillon, G.S, from my Bones, New Delhi, Aryan Books, 1998.

87- Dubey, Muchkund, Subhas Chandra Bose- The Man and His vision, New Delhi Har-Anand Publications, 1998.

88- Gordon, Leonord A., Borther Against the Raj, Delhi, Viking Penguin Books, 1990.

89- Guha, Samar, The Mahatma and Netaji : Two Men of Destiny of India.

90- Guha, Samar, Netaji Dead or Alive, New Delhi 1978.

91- Jog. N.G., In Freedom's Quest-A Biography of Netaji Subhas Chandra Bose, Delhi, Orient Longman 1969.

92- Khan, Major General Shah Nawoz, My memories of the I.N.A. and its Netaji, Delhi 1946.

92- Markandeya, Subodh, Subhas Chandra Bose, Bangalore, Bombay, Calutta, Arnold Publishers, 1990.

93- Meikap, Dr. Satish Chandra Netaji Subhas Chandra Bose and the Indian war of Independence, Calcutta, Punaschi, 1998.

94- Mukerjee, Nanda, Vivekananda's Influence on Subhas Calcutta 1977.

95- Mukkar, Daya, Subhas Chandra Bose-Accelerator of India's Independence, New Delhi, General publishing house, 1995

96- Nair, Kusum, The sotry of the I.N.A. Bombay 1946.

97- Pandit H.N. Netaji Subhas Chandra Bose from kabul to the Battle of Imphal, New Delhi, Sterling Publishers, 1988.

98- Patil V.S, Subhas Chandra Bose : His contribution to Indian Naliona lism, New Delhi, Sterling Publishes, 1988.

99- Roy, Dilip Kumar, The Subhas I knew.

100- Roy, Dilip Kumar, Netaji-The Man : Reminiscences, Bombay, 1966.

101- Sahoo, Sridhar Charan, Subhas Chandra Bose - Political Philosophy, New Delhim Asia Publishing House. 1997.

102- Shah Newaz Khan, Netaji Enguiry Committee Report Government of India, New Delhi 1956.

103- Toye, Hugh, The Springing Tiger-A Study of Subhas Chandra Bose, Foreword by philip Nason, London, William Clowes and sons, 1959.

104- Reva Chatterjee Netaji Subhas Bosé/Bengal Revolution and Independance New Delhi Ocean Books Pvt. Ltd. 2000.

105- Elenjimittam, Anthony, The Hero of Hindustan, Calcutta, Orient Books Co., July 1947.

106- Ganguli, Subodh Chandra, Early life of Netaji Calcutta, Book House.

107- Ghosh kali Caran, The Role of Honour, Anecdotes of Indian martyrs, Calcutta, Vidhya Bharti, 1965

108- Hayashida, Tatsuo, Netaji Subhas Chandra Bose, ed. by Bishwanath Chatterjee, New Delhi, Allied Publishas, 1970.

109- Jhaveri, Vithalbhai, K. (ed) Jai-Hind-The Diory of a rebel daughter of India with Rani of the Jhansi Regiment, Bombay,

110- Janmabhumi Prakashan Mandir, 1945. Freedom's Battle, Bombay 1947.

111- Mohan Singh, Leaves from My Dairy, Lahore : Free world Publications, 1946.

112- Moti Ram (ed) Two Historic Trials in Red fort, (The I.N.A) court Martial of 1943 and the trial of Bahadur shah, New Delhim, Roy Printing works. 1946.

113- Nehru, Jawaharlal, A Bunch of Letters, Bobay, Asia Publishing House, 2nd Ed. 1960.

114- Palta, K.R., My Adventures with the I.N.A.

115- Roy, Bholanath, Oaten Incident, 1916 ; A Chapter in the life of subhas chandra Bose, Calcutta S.C. Sarkar & Sons 1975.

116- Sehgal, Lakshmi : The Role of women in the Azad Hind Movement, Netaji Oration 1964. Cal Bulletin of the Netaji Research Bureau 1965.

117- Sengal, P.K. Presidential Speech, Neataji Birth Aniversary, Calcutta, Netaji Research Bureau, 1967.

118- Singh Durlabh the Rebel President Lahore, Hero Publications 1943.

119- Singh, Durlabh, (ed) formation and Growth of the Indian National Army-Azad Hind Fauj, Lahore Hero Publications, 1946.

120- Sinha, Satyanarayan, Netaji Mystery, Calculte A.G. Press 1965

121- The Socialist Republican Party (camp). What we Believe (21st October Azad Hind, Calcutta, Government Day) 1948.

122- Sopan, Netaji Subhas Chandra Bose, His life and work, Bhavanger Shankar Sahitya Mandir 1940.

123- Subuhey,'s Netaji Speaks, Bombay, Padma Publication Ltd. 1946.

124- Uttam Chand, When Bose was Ziauddin, Delhi Raj kamal Publications, 1946.

125- Safrani Abid Hasan and Thivry, Jhon A., The man from Imphal, Calcutta, Netaji Research Bureau, 1965.

126- Saggi, P.D. (ed) A Nation's homage Life and work of Netaji Subhas Chandra Bose, Bombay Overseas Publishing House.

127- Ohsowa, J.G. The two great Indians in Japan : Rashbehari Bose And Netaji Subhas Chandra Bose, Vol. 7, Calcutta Kusha Publication 2954.

128- Sanyal, Gopalan (ed) Mission of life, Calcutta Thakur, Spinkd co., 1953

129- Mukharjee Girija K., This Europe, Calcutta, University Press, 1950.

130- Mukharjee, Hiren, Bow of Burning Gold, A study of Subhas Chandra Bose, New Delhi, people's publishing House, 1977.

131- Nag,Shiva Prasad, Liu Po-Chang or Netaji, Calcutta.

Other Books.

132- Andrews, C.F. and Mukharji, Girija, Rise and Growth of the Indian National.

133- Azad, Maulana Abul kalam, India wins freedom, Madras, Orient Longman, 1988.

134- Benerjee Surendranath, A Nation in the Making Bombay, Oxford University Press, 1950.

135- Benerjee, S.K., From Dependence to Non-Alignment, New Delhi Enkay Publishers, 2nd edn. 1992.

136- Bowkik, Jyotish, History of the Conspiracy in Dalhousee Square

137- Bose, Suresh Chandra, Dissenting Report (Netaji Enguiry committea), Kodalia, 24-Parganas, 1956.

138- Chatterjee, A.C. India's Struggle for freedom, Calcutte, Chakravarty, Chatterjee and Co., 1947.

139- Congress, London, George, Allen and Unwin.

140- Das, Nearen, History of Midnapure Parts I & II

141- Ciano, Diary and Diplomatic papers, London. Ed. Malcolm Muggoridge. 1948.

142- Coupland, Reginald, India-A Restatement, Britain and India.

143- Dasgupta Hemendra Nath, Deshbandhu Chitta Ranjan Das, New Delhi publications Division, Government of India, 1960

144- Griffiths, Sir Percival, The British in India, Modern India.

145- Yunus, Mohammad, persons, Passions and politics New Delhi, Vikas Publishing House, 1980.

समाचार पत्र एवं पत्रिकायें

1- इण्डिया एनवरल रजिस्टर -1921

2- टाइम्स ऑफ इण्डिया, बाम्बे

3- टाइम्स ऑफ फाइड

4- दैनिक जागरण समाचार पत्र

5- अमर उजाला समाचार पत्र कानपुर

6- राष्ट्रीय सहारा समाचार पत्र लखनऊ- 4 अप्रैल 2002

7- आज समाचार पत्र कानपुर - 13 अप्रैल 2002

8- हिन्दुस्तान समाचार पत्र लखनऊ

9- नूतन सवेरा स्वाधीनता विशेषांक 1994

10- नूतन सवेरा साप्ताहिक समाचार पत्र बम्बई

11- प्रतियोगिता दर्पण, आगरा

12- आउट बुक साप्ताहिक विशेषांक - 23 अगस्त 2004

13- सन्देश पत्रिका- उत्तर प्रदेश - जनवरी 1998

14- लन्दन टाइम्स

15- स्टेट्स मैन न्यूज पेपर, कलकत्ता

16- दिनमान

17- जनसत्ता

18- रोजगार समाचार

19- योजना पत्रिका

20- क्रानिकल

21- साप्ताहिक हिन्दुस्तान पत्रिका दिल्ली

22- जनगर्जन मासिक नई दिल्ली 1998

23- इण्डिया टुडे मासिक पत्रिका

24- अभिनव ज्योति-स्वर्ण जयंती अंक 1998